अध्याय 9

कृषि विभाग (सचिवालय स्तर)

राजस्थान राज्य के एकीकरण के पश्चात् 1949 में सचिवालय स्तर पर कृषि विभाग स्थापित किया गया। यह विभाग राजस्थान में कृषि के विकास से सम्बन्धित नीतियों के निर्माण एवं उनके सफल निष्पादन से सम्बन्धित है। पिछले कुछ वर्षों में बड़ी संख्या में अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय कृषि विकास योजनाओं तथा सम्बन्धित क्षेत्रों की परियोजनाओं की मात्रा लगातार बढ़ने से कृषि विभाग के दायित्व में काफी वृद्धि हुई है।

भूमिका

सचिवालय स्तर पर स्थित राजस्थान सरकार के कृषि विभाग के मुख्य दायित्व इस प्रकार हैं:

1. कृषि नीति का निर्माण

यद्यपि कृषि के क्षेत्र में राजस्थान पिछले 51 वर्षों में प्रचुर प्रगति कर रहा है, किन्तु व्यवस्थित एवं सुचारु रूप से समग्रता का गुण लेते हुए एक कृषि नीति का निर्माण अभी तक नहीं हो पाया है। यह कृषि विभाग का दायित्व है कि वह एक ऐसी समग्र कृषि नीति का निरूपण करे जिसमें निम्नलिखित तत्त्व हों:

1. कृषि उत्पादन नीति जिसमें फसलों के उत्पादन से सम्बन्धित प्रामाणिकता के बारे में प्रावधान हों।
2. उत्पादन में गुणात्मकता की अभिवृद्धि जिससे कि बीजों, खाद्य आदि क्षेत्र में उच्चतम कोटि के आदानों का उपयोग किया जाए।
3. भू-संरक्षण के उपाय।
4. जल ग्रहण क्षेत्र का विकास।
5. उद्यानों का विकास।
6. कृषि उद्योग के क्षेत्र में उच्चतम उत्पादन।
7. कृषि विपणन व्यवस्था में कुशाग्रता।
8. भण्डार व्यवस्था का सुसंगठित स्वरूप।
9. सिंचित क्षेत्र विकास, सिंचाई विभाग, इंदिरा गांधी नहर परियोजना, ग्रामीण विकास आदि विभागों से निरन्तर समन्वय।
10. केन्द्रीय कृषि नीति एवं प्रशासन से सामन्जस्य।

पिछले कुछ वर्षों में इस हेतु गंभीर प्रयास किये गये हैं तथा राजस्थान सरकार ने राज्य कृषि नीति का मसौदा स्वीकृति के लिए केन्द्रीय सरकार को भेजा है, किन्तु संशोधनों के सुझाव के साथ यह तीन बार केन्द्रीय सरकार से वापस आ चुका है। इन सुझावों का समावेश करने का प्रयत्न किया जा रहा है। ऐसी आशा है कि शीघ्र ही राजस्थान सरकार एक सर्वांगीण राज्य कृषि नीति की घोषणा कर सके।

2. भविष्यात्मक आयोजना

बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता के अनुरूप खाद्यान्नों का अधिकतम उत्पादन अनिवार्य है। यह प्रक्रिया अनवरत है। अतः आवश्यक है कि अगले 25 वर्षों, 15 वर्षों, 10 वर्षों तथा 5 वर्षों के लिए विकासात्मक योजनाएँ इस क्षेत्र में निर्मित की जायें। ऐसी योजनाएँ अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय कृषि विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत मिलने वाली संभावित सहायता को समक्ष रखकर बनाई जाती हैं। इनका मुख्य उद्देश्य है कि आगे आने वाले काल में बढ़ती हुई आवश्यकताओं और संभावित स्थितियों का इस प्रकार समन्वय किया जाये जिससे राजस्थान का कृषि के क्षेत्र में तथा विशेषतया खाद्यान्नों के उत्पादन एवं कुशल वितरण के क्षेत्र में, समय की मांग के अनुसार विकास हो सके। राज्य सरकार के सचिवालय का कृषि विभाग इस सम्बन्ध में निरन्तर योजनाएँ व उप-योजनाएँ निर्मित करता रहता है तथा इन योजनाओं हेतु संसाधनों की उपलब्धता संभव कराने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों व केन्द्रीय सरकार के निरन्तर विमर्श एवं सम्पर्क करता रहता है। इन योजनाओं को सरकार की स्वीकृति मिलने के पश्चात् उपयुक्त संस्थाओं को प्रेषित कर दिया जाता है जिससे कि उनके निष्पादन हेतु आवश्यक वित्तीय एवं तकनीकी साधन उपलब्ध हो सकें।

राज्य सरकार की पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं में कृषिगत क्षेत्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कृषि के विकास से सम्बन्धित पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं के निरूपण में आवश्यक प्रमुख समन्वयात्मक भूमिका सचिवालय स्थित कृषि विभाग की ही होती है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के कार्यक्रमों का प्रबन्धन

विश्व बैंक की सहायता से राजस्थान को कई कृषि विकास के कार्यक्रम स्वीकृत होते रहते हैं। उदाहरणार्थ "प्रशिक्षण एवं भ्रमण (T & V)" कार्यक्रम, जिसे अन्तर्गत गाँवों में किसानों तक आवश्यक तकनीकी परामर्श एवं आदान वितरित किये गये तथा जिससे राज्य में "हरित क्रांति" संभव बनी, वह विश्व बैंक की योजना का ही अंग थी। इसके अतिरिक्त राज्य में कृषि के विकास के लिए कृषि विभाग विश्व बैंक तथा विश्व खाद्य संगठन जैसी संस्थाओं को समय-समय पर प्रस्ताव भेजता रहता है जिसकी स्वीकृति के पश्चात् उपलब्ध वित्तीय साधनों का अधिकतम संभव व विवकेपूर्ण उपयोग सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी भी इसी विभाग की है। उल्लेखनीय है कि पिछले लगभग 6 वर्षों से राजस्थान में विश्व बैंक द्वारा समर्थित एवं प्रवर्तित "कृषि विकास परियोजना" लागू की जा रही है जिसके अन्तर्गत कृषि, उद्यानों, भू-जल संग्रहण, कृषि विपणन, सड़क एवं यार्डों का निर्माण, भण्डारण आदि क्षेत्रों हेतु समन्वित विकास कार्यक्रम लागू किये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों के निष्पादन हेतु आवश्यक संसाधन विश्व बैंक ही प्रदान करता है।

4. केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रवर्तित योजनाओं का प्रबन्धन

भारत सरकार द्वारा कृषि के विकास के लिए कई महत्त्वपूर्ण योजनाएँ चलाई जाती हैं जिनके क्रियान्वयन

हेतु राज्य सरकार को आवश्यक वित्तीय संसाधन प्रदान किये जाते हैं। जिन केन्द्रीय वैकासिक योजनाओं के प्रबन्धन के लिए कृषि विभाग उत्तरदायी है, वे इस प्रकार हैं:

1. राष्ट्रीय दलहन विकास परियोजनाएँ
2. राष्ट्रीय तिलहन विकास परियोजनाएँ
3. केन्द्रीय रुई विकास परियोजनाएँ
4. राष्ट्रीय उद्यान मंडल से सम्बन्धित परियोजनाएँ
5. फसल बीमा परियोजनाएँ
6. राष्ट्रीय सर्वेक्षण एवं अध्ययन
7. राष्ट्रीय गन्ना विकास परियोजनाएँ
8. राष्ट्रीय कृषि सिंचाई परियोजनाएँ
9. मिनीकिट् कार्यक्रम
10. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन-जातीय क्षेत्रों में मक्का प्रदर्शन कार्यक्रम
11. राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान परियोजनाएँ
12. कृषि अर्थव्यवस्था एवं सांख्यिकी तथा कृषि सांख्यिकी का विकास।

इनके अतिरिक्त राष्ट्रीय कृषि विस्तार कार्यक्रमों के प्रबंधन का दायित्व भी इसी विभाग का ही है। केन्द्र सरकार की परियोजना से सम्बन्धित दो महत्त्वपूर्ण बातें हैं। पहली, यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुशंसित कृषि परियोजनाओं के निष्पादन के समय नियमों व उपनियमों का पूरी तरह से पालन किया जाये तथा दूसरी, इन परियोजनाओं के लिए होने वाली वित्तीय सहायता का उपयोग केवल उन्हीं उद्देश्यों के लिए किया जाये जिसके लिए कि वह साधन उपलब्ध कराये गये और साथ ही इन साधनों का विवेकपूर्ण एवं ईमानदारी से उपयोग हो। कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह अपने सभी अधीनस्थ सम्बन्धित संगठनों द्वारा इन परियोजनाओं को लागू करने की प्रक्रिया पर निरन्तर नियंत्रण रखे। अनवरत् पर्यवेक्षण द्वारा ही इन कार्यक्रमों की कुशलता सुनिश्चित की जा सकती है।

5. कृषि विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु समन्वय

चूँकि कृषि प्रशासन के क्षेत्र में बड़ी मात्रा में संस्थाएँ राजस्थान में कार्य कर रही हैं, अतः यह आवश्यक हो जाता है कि ये सभी संस्थाएँ परस्पर एकीकृत एवं समन्वित रूप से कार्यरत हों जिससे कि पारस्परिक सहयोग स्थापित हो एवं सभी परियोजनाएँ विवेकपूर्ण ढंग से निष्पादित हो सकें। समन्वय के अभाव में होने वाले विलम्ब एवं साधनों के अपव्यय को रोकना भी आवश्यक है। मितव्ययता एवं कुशलता के लिए इन सभी संगठनों में तालमेल आवश्यक है। इस तालमेल को कृषि विभाग अपने स्तर पर संभव बनाता है।

जिन विभिन्न कृषि विकास कार्यक्रमों से कृषि विभाग सम्बन्धित है, वे इस प्रकार हैं:

(i) कृषि उतपादन कार्यक्रमों से सम्बन्धित अभियान
(ii) न्यूनतम बीजों का उत्पादन एवं वितरण, भूमि संरक्षण
(iii) शुष्क भूमि विकास परियोजना
(iv) पौध संरक्षण तथा कीटनाशक से सम्बन्धित परियोजनाएँ, खाद विकास कार्यक्रम

(v) सरकारी फार्म का विकास
(vi) खाद की मांग के अनुसार, आपूर्ति एवं वितरण
(vii) कृषि उपज मंडियों का प्रबन्धन
(viii) उद्यानों व नर्सरी का विकास
(ix) अजमेर तथा सांगरिया में स्थित कृषि महाविद्यालय को अनुदान
(x) पशु विकास, निर्देशन एवं प्रशासन विस्तार कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षण एवं
(xi) कृषि वस्तु भण्डारण की व्यवस्था।

इन सभी कार्यक्रमों को लागू करने में कई राज्य स्तरीय संस्थाएँ संलग्न हैं। अतः उन सभी संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना कृषि विभाग का ही उत्तरदायित्व है। उच्चतर स्तर पर समन्वय के लिए कई समितियाँ गठित की जाती हैं, इनमें से कुछ समितियों की अध्यक्षता कृषि मंत्री करते हैं, जबकि कुछ अन्य समितियों की अध्यक्षता कृषि उत्पादन सचिव करता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी समितियाँ हैं जिनकी अध्यक्षता मुख्य सचिव द्वारा की जाती है, तथा जिनमें कृषि विभाग तथा कृषि से सम्बन्धित अन्य विभागों व इकाइयों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। निरन्तर सूचनाएँ मंगाकर एवं नीति निर्देश प्रदान कर कृषि विभाग अपनी विभिन्न अधीनस्थ संस्थाओं को राज्य नीति के अनुसार समन्वित करता है। जहाँ आवश्यक हो वहाँ प्रबोधन एवं नियंत्रण के विभिन्न विधियों को उपयोग में लिया जाता है।

सम्बद्ध संस्थाओं पर आवश्यक नियंत्रण

कृषि विकास एवं प्रबन्धन से सम्बन्धित कुछ संस्थाएँ तो सीधे ही सचिवालय स्थित कृषि विभाग के अधीन कार्य करती हैं, जैसे कि कृषि निदेशालय, कृषि विपणन निदेशालय, उद्यान निदेशालय, भू-जल संग्रहण एवं भू-संरक्षण निदेशालय। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी स्वायत्त संस्थाएँ भी हैं जो कार्यात्मक स्वायत्तता लिए हुए है, यद्यपि उन पर वृहत् नियंत्रण सचिवालय स्थित कृषि विभाग का ही है। ये संस्थाएँ हैं – राजस्थान राज्य कृषि विपणन मंडल, राजस्थान राज्य बीज निगम, राजस्थान बीज प्रमाणन अभिकरण, राजस्थान राज्य कृषि तथा उद्योग निगम तथा राज्य भण्डारण निगम। इन स्वायत्त संस्थाओं के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में कृषि विभाग का हस्तक्षेप नहीं होता किन्तु नीति के निर्माण, उच्च स्तरीय पदों पर नियुक्तियाँ, बड़ी राशि के निवेशों एवं व्यय आदि के क्षेत्र में कृषि विभाग का इन स्वायत्त संस्थाओं पर नियंत्रण बना रहता है। इन संस्थाओं के कई ऐसे महत्त्वपूर्ण मामले होते हैं जिनकी स्वीकृति कृषि उत्पादन सचिव अथवा कृषि मंत्री द्वारा प्रदान की जाती है। कई ऐसे स्वायत्त संस्थाओं के अध्यक्ष कृषिमंत्री होते हैं तथा इन मंडलों के सदस्य कृषि उत्पादन सचिव भी होते हैं।

उल्लेखनीय है कि कृषि प्रशासन से सम्बन्धित लगभग सभी स्वायत्तशासी संस्थाओं के प्रबन्ध निदेशक अथवा प्रशासनिक अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते हैं और चूँकि कृषि उत्पादन सचिव एक सुपर टाइम शृंखला का भारतीय प्रशासनिक सेवा का ही अधिकारी होता है, अतः उसके लिए यह कठिन नहीं होता कि वह अपनी ही सेवाओं के अधिकारियों पर आवश्यक नियंत्रण स्थापित कर सके।

कार्मिक प्रशासन

यद्यपि सम्बन्धित विभाग राजस्थान कृषि सेवा, राजस्थान सेवा नियम तथा विभिन्न स्वायत्त संगठनों के सेवा नियमों के अनुसार आवश्यक अधिकारों का उपयोग करते हैं, किन्तु इन संस्थाओं में उच्च स्तरीय नियुक्तियाँ, पदस्थापन, पदोन्नतियाँ, प्रशिक्षण, सेवा की शर्तों आदि के बारे में महत्त्वपूर्ण निर्णय कृषि विभाग द्वारा ही लिये जाते हैं। इन विषयों से सम्बन्धित कई ऐसे मामले हैं जिन पर कृषि उत्पादन सचिव की स्वीकृति आवश्यक है तथा कई इस प्रकार के विषय हैं जिन पर कृषि मंत्री की स्वीकृति आवश्यक होती है। अलबत्ता कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह अपने अधीन एवं सम्बद्ध सभी संस्थाओं के कार्मिक प्रशासन पर निगरानी रखे तथा यह सुनिश्चित करे कि स्थापित नियमों एवं मानकों का उल्लंघन नहीं हो।

वित्त प्रशासन

कृषि निदेशालय, उद्यान निदेशालय, कृषि विपणन निदेशालय, भू-जल संग्रहण एवं भू-संरक्षण निदेशालय आदि के बजट प्रस्तावों का समायोजन कृषि विभाग में ही किया जाता है तथा इसके पश्चात् ही इन प्रस्तावों को वित्त विभाग को सम्प्रेषित किया जाता है। इसके अतिरिक्त स्वायत्त संस्थाओं जैसे राजस्थान कृषि विपणन मंडल, राजस्थान कृषि उद्योग निगम, राजस्थान राज्य बीज निगम आदि के बजट प्रस्तावों पर भी कृषि विभाग अपनी स्वीकृति देता है जिससे कि ये सभी बजट प्रस्ताव राज्य की कृषि विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप हों एवं समन्वित रूप से इन्हें वित्त विभाग को प्रेषित किया जा सके।

बजट प्रस्तावों के पारित होने के पश्चात् बजट निष्पत्ति का महत्त्वपूर्ण दायित्व सभी निदेशालयों एवं स्वायत्त संस्थाओं का बनता है। सचिवालय स्थित कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी संस्थाएँ वैकासिक आवश्यकताओं और वित्तीय नियमों के अनुसार कार्य करें तथा उचित समय पर आवश्यक व्यय किये जाएँ। कृषि विभाग का यह दायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि वह आन्तरिक अंकेक्षण की व्यवस्था सुचारु रूप से उसके अधीनस्थ एवं सम्बन्धित संस्थाओं में लागू की जाए तथा महालेखापाल द्वारा की गई अंकेक्षण टिप्पणियों पर त्वरित कार्यवाही विभिन्न संस्थाओं द्वारा की जाये।

विधानसभा से सम्बन्धित कार्य

कृषि विभाग का दायित्व है कि वह उससे सम्बन्धित एवं अधीनस्थ सभी संस्थाओं के कार्य परिचालन से सम्बन्धित यदि संसद या राज्य विधानसभा में प्रश्न उठाये गये हों तो उनके समुचित उत्तर तैयार करे। इन तैयार किये गये विवरणों के आधार पर कृषि मंत्री विधानसभा में अपना उत्तर दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त जन लेखा समिति, लोक उपक्रम समिति तथा अन्य विधानसभा की समितियों के कृषि से सम्बन्धित विभागों से सम्पर्क को सुलभ बनाने हेतु भी सचिवालय स्थित कृषि विभाग को आवश्यक दिशा-निर्देश समय-समय पर देने पड़ते हैं। एक लोकतन्त्र में विधायी समितियों का अत्यधिक महत्त्व है। अतः उनकी भावना व टिप्पणी का आदर करना एवं आवश्यक कार्यवाही करना विभिन्न शासकीय विभागों का दायित्व है। इस सम्बन्ध में कृषि विभाग आवश्यक नेतृत्व प्रदान करता है।

संगठन

राज्य सरकार में कृषि विभाग का राजनीतिक प्रमुख कृषि मंत्री होता है जो कि कैबिनेट स्तर का अथवा राज्यमंत्री स्तर का मंत्री होता है। कृषि विभाग के स्थायी आदेशों में उल्लेख है कि कृषि मंत्री के पास कौन-कौन से मामले स्वीकृति के लिए आयेंगे तथा कौन से मामले वे उच्च स्वीकृति के लिए मुख्य-मंत्री अथवा मंत्रीमंडल को भेजेंगे। किन्तु अधिकांश मामलों में कृषि मंत्री ही अंतिम निर्णय ले लेते हैं।

कृषि नीति के निर्माण, उसकी क्रियान्विति पर निगरानी, उच्चस्तरीय पदों पर स्थानान्तरण, अनुशासनात्मक कार्यवाही, बजट स्वीकृति, उच्च राशि के व्यय नियमानुसार अनुमोदित करना एवं संसद एवं विधानसभा के प्रश्नों के उत्तर को अंतिम रूप देना कृषि मंत्री का ही दायित्व है। यह उल्लेखनीय है कि कृषि मंत्री का कार्य केवल सचिवालय की चारदीवारी तक सीमित नहीं होता। सारे राज्य में विभिन्न क्षेत्रों में कृषिगत विकास की निगरानी के लिए उसे भ्रमण करना पड़ता है। इसी प्रकार कृषि से सम्बन्धित विभिन्न स्वायत्त संस्थाओं के क्रियाकलापों पर भी निगरानी रखनी पड़ती है।

प्रशासनिक स्तर पर सचिवालय में कृषि विभाग का प्रमुख कृषि उत्पादन सचिव ही होता है जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा का सुपर टाइम वेतन शृंखला का अधिकारी होता है। विभाग के स्थायी आदेशों में यह उल्लेख होता है कि कौन-कौन से मामले निर्णय अथवा अनुमोदन हेतु अथवा कृषि मंत्री को आगे भेजने हेतु उत्पादन सचिव के समक्ष आयेंगे। आवश्यकता पड़ने पर कृषि उत्पादन सचिव अपने विभाग व संस्था से सम्बन्धित कोई भी पत्रावली मंगवा सकता है तथा अधिकारियों से विमर्श कर सकता है। प्रशासनिक नियुक्ति, पदोन्नति, स्थापन, प्रशिक्षण, अनुशासन, प्रशासनिक निर्देशन एवं नियंत्रण, बजट प्रशासन आदि से सम्बन्धित मामले कृषि उत्पादन सचिव तक अवश्य जाते हैं।

कृषि उत्पादन सचिव की सहायता के लिए कृषि विभाग में दो उपसचिव हैं जिनमें एक तो कृषि विभाग का प्रशासनिक कार्य देखता है तथा दूसरा खेती एवं राष्ट्रीय बीज परियोजना से सम्बन्धित है। इनकी सहायता के लिए दो सहायक सचिव हैं। इसके अतिरिक्त कृषि विभाग में उप-निदेशक (प्रबोधन), विशेषाधिकारी (विपणन) तथा वरिष्ठ लेखाधिकारी नियुक्त हैं।

विश्व बैंक द्वारा परिवर्द्धन कृषि विकास परियोजनाओं के निष्पादन हेतु एक विशिष्ट सचिव, कृषि विकास परियोजनाएँ है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा की सुपर टाइम शृंखला का अधिकारी है। यह अधिकारी सिंचित क्षेत्र विकास का भी सचिव होता है। इस अधिकारी के दो उत्तरदायित्व हैं– एक तो सिंचित क्षेत्र विकास का प्रशासन तथा दूसरा कृषि विकास परियोजनाओं का निर्देशन। इस अधिकारी की सहायता के लिए एक उपसचिव, कृषि विकास परियोजना भी नियुक्त है।

आंतरिक प्रशासन हेतु कृषि विभाग को 4 समूहों में बांटा गया है। ये समूह इस प्रकार हैं:

समूह 1– यह राजस्थान राज्य भण्डार निगम, विपणन तथा विपणन मंडल से सम्बन्धित मामलों को निष्पादित करता है तथा साथ ही यह कृषि मामलों के प्रशासनिक और गैर-प्रशासनिक अधिकारी के कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित मामलों को निपटाता है।

समूह 2– यह केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रवर्तित परियोजनाओं, विश्व बैंक से सहायता प्राप्त कार्यक्रमों, राष्ट्रीय कृषि विस्तार कार्यक्रमों, कृषि उत्पादन अभियान, समन्वय समितियों, वार्षिक योजनाओं, समुन्नत बीजों के उत्पादन, ऋण विस्तार कार्यक्रमों के लिए प्रशिक्षण, फसल, मौसम तथा वर्षा से जुड़े मामलों से सम्बन्धित है।

सचिवालय स्थित कृषि विभाग का संगठन

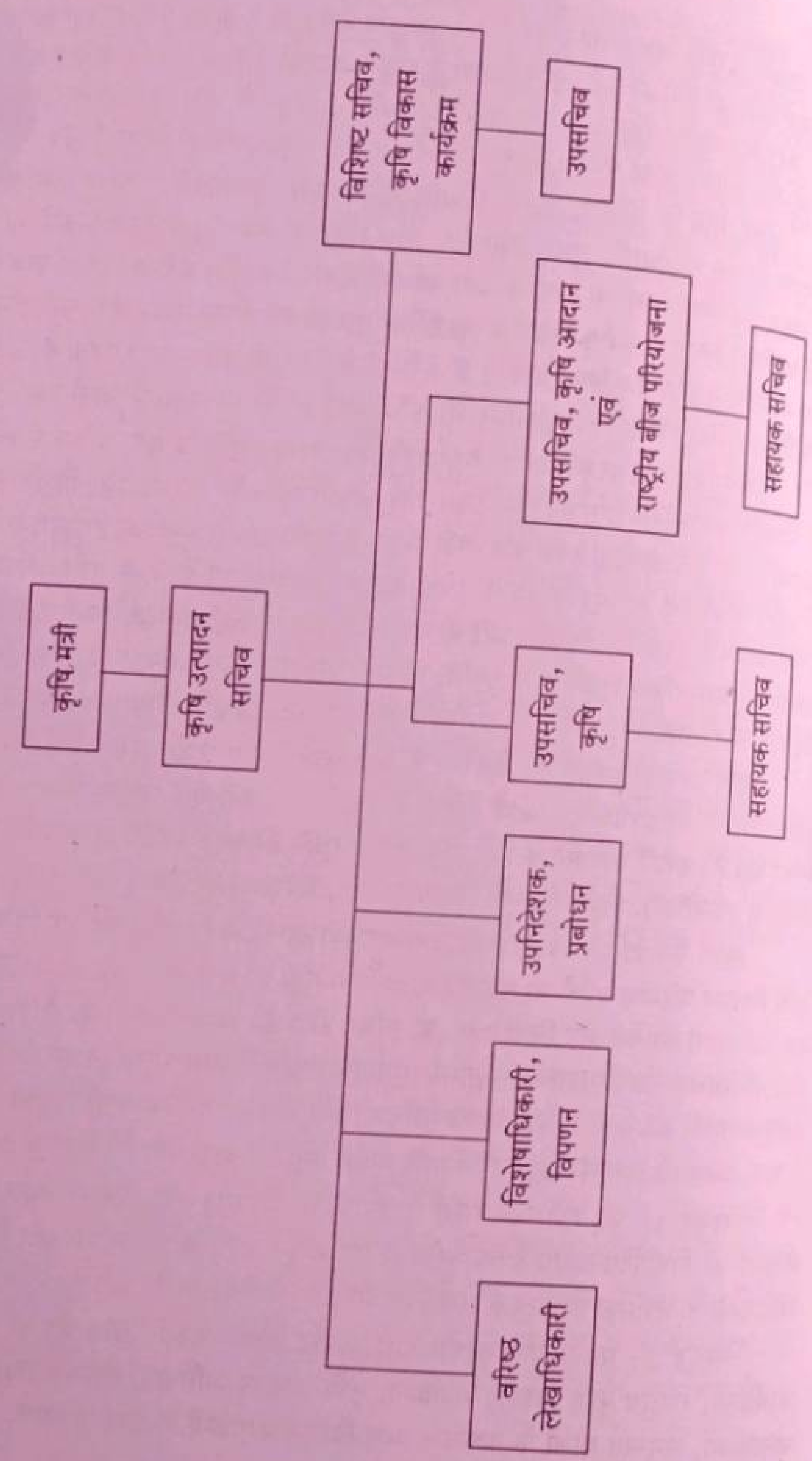

समूह 3– यह समूह कृषि विकास कार्यक्रम, निर्माण ऋण, खेती की अपर्याप्तता, मांग व वितरण, कीटनाशक दवाओं, सरकारी फार्म आदि से सम्बन्धित है।

समूह 4– यह समूह कृषि उपज मण्डियों से सम्बन्धित है तथा राज्य कृषि विपणन मंडल (स्थापना सम्बन्धी मामलों के अतिरिक्त) से सम्बन्धित विषयों का निपटारा करता है। यह लोक लेखा समिति एवं विधानसभा में सरकार द्वारा दिये गये आश्वासनों के निष्पादन से जुड़े कार्यों को भी करता है।

कार्यकारी संगठन

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, कृषि विभाग कई संगठनों का प्रशासनिक विभाग है तथा इन संस्थाओं पर आवश्यक एवं पर्यवेक्षण करता है। इस विभाग का कार्यकारी संगठन इस प्रकार हैं:

1. कृषि निदेशालय
2. आदान निदेशालय
3. भू-जल ग्रहण क्षेत्र विकास तथा भू-संरक्षण निदेशालय
4. कृषि विपणन निदेशालय
5. राजस्थान राज्य बीज निगम
6. राजस्थान राज्य भू-विकास निगम
7. राजस्थान राज्य कृषि विपणन मंडल
8. राजस्थान राज्य कृषि उद्योग निगम
9. राजस्थान बीज प्रमाणन अभिकरण

सम्बन्धित संस्थाएँ

कृषि विभाग का जिन अन्य सरकारी विभागों के साथ निरन्तर सम्पर्क रहता है, वे इस प्रकार है:

1. सिंचित क्षेत्र विकास तथा जल उपयोग विभाग
2. सिंचाई विभाग
3. खाद्य विभाग
4. इंदिरा गांधी नहर परियोजना
5. राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय
6. राजस्थान राज्य विपणन मण्डल
7. पशु पालन विभाग
8. भेड़ व ऊन विभाग
9. डेयरी विभाग
10. सहकारिता विभाग
11. ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग
12. वन विभाग

उपरोक्त तथा सम्बन्धित संस्थाओं के साथ सचिवालय स्थित कृषि विभाग का निरन्तर सम्पर्क बना रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर की कई संस्थाओं से विभिन्न परियोजनाओं के प्रशासन से सम्बन्धित विषयों पर भी कृषि विभाग अनवरत् समन्वय बनाए रखता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान सरकार के सचिवालय स्थित कृषि विभाग की कृषि नीति के निरूपण एवं उसके निष्पादन से सम्बन्धित भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। अतः इस विभाग का कार्य-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है। अपने प्रत्यक्ष रूप से अधीन निदेशालयों एवं सम्बन्धित स्वायत्त संस्थाओं पर निरन्तर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण के माध्यम से यह विभाग कृषि-विकास के विभिन्न कार्यक्रमों को कुशलता से लागू करने में उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है।

यद्यपि राजस्थान कृषि के क्षेत्र में प्रगतिशीलता का मार्ग अपना कर आगे बढ़ रहा है, किन्तु जनसंख्या-वृद्धि के कारण खाद्यान्नों के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि आवश्यक है। कृषि-गत वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण आवश्यकतानुसार हो, इसे सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व कृषि विभाग का है। इक्कीसवीं शताब्दी की दहलीज पर खड़ा राजस्थान कृषि विकास के क्षेत्र में एक अग्रणी राज्य बने, इस हेतु किये जाने वाले प्रयासों को सांगठनिक आधार कृषि विभाग ही दे सकता है।

□□□

अध्याय 10

राजस्व मंडल

एक कृषि-प्रधान एवं ग्राम-प्रधान देश में राजस्व प्रशासन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में राजस्व प्रशासन की भूमिका बहु-आयामी एवं विस्तृत है। इसके मुख्य दायित्व इस प्रकार हैं– भू-राजस्व एकत्रित करना; भूमि के सम्बन्ध में अधिकारों को स्पष्ट करना एवं इस सम्बन्ध में मामलों को निपटाना– इसमें सरकार तथा जनता (रैयत, जमीदार, खातेदार) के अधिकार सम्मिलित हैं; ग्रामीण जीवन के सभी पहलू जैसे भूमि, फसलें, सिंचाई के तरीके आदि के बारे मे अभिलेख रखना; तथा गाँवों पर आने वाले संकटों जैसे बाढ़, सूखा, अकाल, पौधों एवं पशुओं के रोग आदि पर विजय पाने हेतु आवश्यक प्रयत्न करना, सरकारी ऋणों को उपलब्ध कराने में सहायता करना तथा कृषि के क्षेत्र में समृद्धि हेतु उपाय करना। इन सभी भूमिकाओं का निर्वाह करने के लिए राजस्व प्रशासन में एक पदसोपानात्मक व्यवस्था है जो पटवारी से लेकर सम्भागीय आयुक्त तक विकसित है। राजस्व प्रशासन की कुशलता एवं ईमानदारी पर गाँवों में शांति व्यवस्था एवं समृद्धि निर्भर करती है।

राजस्व प्रशासन का एक महत्वपूर्ण दायित्व और भी है जो राजस्व न्याय से सम्बन्धित है। इसके हेतु प्रत्येक गाँव में राजस्व न्यायालय काम करते हैं जो भू-अभिलेखों, भू-अधिकारों, क्षतिपूर्ति आदि से सम्बन्धित विवादों का निपटारा करते हैं। प्रत्येक राज्य में इस राजस्व न्याय व्यवस्था में उच्चतम राजस्व न्यायालय राजस्व मंडल है जो प्रशासनिक एवं न्यायिक संस्था दोनों ही है।

भारत में मद्रास राजस्व मंडल की स्थापना 1786 में हुई थी। बंगाल राजस्व मंडल की स्थापना भी इसी वर्ष हुई थी। इसे बाद में विघटित कर दिया गया। ब्रिटिश काल में मालगुजारी का प्रशासन आबकारी व अन्य कर, भू-प्रबन्ध, सिंचाई, कृषि आदि राजस्व मंडल के ही उत्तरदायित्व थे। शनैः-शनैः विशिष्ट कार्यों हेतु विभिन्न संस्थाओं के बनने से राजस्व मंडल के कार्यों में कमी अवश्य हुई, किन्तु आज भी ग्रामीण विकास प्रशासन पर इसका प्रभाव गहन है। आज भारत के लगभग सभी राज्यों में राजस्व मंडल कार्य कर रहे हैं। अधिकांश मंडल बहु-सदस्यीय हैं। हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब में मंडल के सदस्यों को वित्तीय आयुक्त कहा जाता है।

राजस्थान में राजस्व मंडल का विकास

राजस्थान के एकीकरण के पूर्व सभी राजपूताना रियासतों में राजस्व प्रशासन एवं न्याय के पृथक्-पृथक् नियम, प्रणालियाँ एवं संरचनाएँ थीं। इन सबके एकीकरण के साथ ही राजस्व मंडल की स्थापना की आवश्यकता अनुभव की गई।

अन्य राज्यों की भाँति, राजस्थान में भी राजस्व मंडल की स्थापना राजस्व अधिकारियों के कार्यों का प्रभावी पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण रखने तथा राजस्व मामलों के उच्च-स्तर के निपटारे के लिए हुई। इस संस्था की रचना के पीछे दीवानी न्यायालयों के अतिरेक कार्य के बोझ तले दबे होना था। फलस्वरूप परम्परागत न्यायिक व्यवस्था में फंसे राजस्व मामलों का निपटारा धीमा तथा खर्चीला हो गया था। इसी कारण राजस्व मंडल जैसी विशिष्ट वैकल्पिक व्यवस्था की स्थापना की गई। 7 अप्रैल, 1949 को एक अध्यादेश के माध्यम से राजस्थान राजस्व मंडल की स्थापना की गई। इसके साथ ही बीकानेर, जयपुर, जोधपुर, मत्स्य संघ तथा पूर्व राजस्थान के राजस्व मंडलों का इसमें एकीकरण हो गया।

कार्य एवं भूमिका

राजस्व मंडल के, जो अजमेर में स्थित है, कार्य दो प्रकार के हैं– न्यायिक एवं प्रशासनिक।

न्यायिक कार्य

राजस्व मंडल राज्य का सर्वोच्च राजस्व न्यायालय है। यह विभिन्न भू-राजस्व से सम्बन्धित अधिनियमों के अन्तर्गत विवादों का निपटारा करता है। वे अधिनियम जिनसे सम्बन्धित अपीलें, संशोधन एवं सन्दर्भों की शक्तियाँ मंडल के पास हैं, निम्नलिखित हैं :

1. राजस्थान भूमि सुधार एवं जागीरदारी पुनर्ग्रहण अधिनियम, 1952
2. राजस्थान सहकारी समितियाँ अधिनियम, 1953
3. राजस्थान जागीर निर्णय एवं कार्यवाही (वैधीकरण) अधिनियम, 1955
4. राजस्थान खातेदारी अधिनियम, 1955
5. राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956
6. राजस्थान राजगामी सम्पत्ति नियमन अधिनियम, 1956
7. राजस्थान लोक मांग वसूली अधिनियम
8. राजस्थान वन अधिनियम
9. राजस्थान स्टैम्प अधिनियम
10. राजस्थान जमींदारी तथा बिस्वादारी उन्मूलन अधिनियम, 1959

उल्लेखनीय है कि 1984 से पूर्व राजस्व मंडल को राजस्थान वाणिज्य कर अधिनियम, 1954 के अधीन भी न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त थीं। अगस्त, 1984 में अजमेर में ही पृथक् वाणिज्य कर अधिकरण की स्थापना के साथ ही राजस्व मंडल की इस शक्ति को नवगठित संस्था को हस्तान्तरित कर दिया गया। इसी प्रकार राज्य में सम्भागीय आयुक्तों के पद के पुनर्स्थापना के साथ ही राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 तथा राजस्थान उत्पाद-शुल्क, अधिनियम, 1950 के अधीन मामले राजस्व मंडल के क्षेत्राधिकार से हटा कर सम्भागीय आयुक्तों को सौंप दिये गये।

राजस्व मंडल राज्य के राजस्व के मामलों में अपील, संशोधन एवं संदर्भ की उच्चतम न्यायिक संस्था है। किन्तु, जहाँ यह संदेह हो कि मंडल ने अपने क्षेत्राधिकार का अनुचित अथवा अवैधानिक उपयोग किया है अथवा जहाँ इसके क्षेत्राधिकार के मामले में कोई अस्पष्टता अथवा विवाद हो तो, राजस्थान का उच्च न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। ऐसी अवस्था में उच्चतम न्यायालय का निर्णय ही अंतिम माना जायेगा तथा वह राजस्व मंडल पर भी लागू होगा।

प्रशासनिक कार्य

राजस्थान का राजस्व मंडल राजस्व प्रशासन की शीर्ष संस्था है। राजस्व प्रशासन से सम्बन्धित सभी अधीनस्थ अधिकारी एवं संस्थाएँ इसी के नियंत्रण में कार्य करते हैं। उल्लेखनीय है कि राजस्व प्रशासन से सम्बन्धित नीतियों एवं नियम का निर्धारण राज्य का राजस्व विभाग (जो जयपुर स्थित शासन सचिवालय का एक अंग है) करता है, किन्तु इस सम्बन्ध में की जाने वाली पहल राजस्व मंडल के सुझावों एवं सिफारिशों पर ही आधारित होती है।

मंडल के प्रमुख प्रशासनिक कार्य निम्न विषयों से सम्बन्धित हैं :

(i) राजस्थान राज्य के राजस्व कानूनों के प्रवर्तन को सुनिश्चित करना तथा उससे सम्बन्धित प्रशासनिक व्यवस्था पर निगरानी रखना;
(ii) तार्किक एवं मान्य आधारों पर राजस्व दरों का निर्धारण एवं पुनर्निर्धारण;
(iii) राजस्व अधिकारियों एवं संस्थाओं के कार्य-निष्पादन का समय-समय पर निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण तथा उन पर आवश्यक नियंत्रण;
(iv) भू-राजस्व की वसूली प्रक्रिया एवं प्रशासन को वस्तु-निष्ठ, विवेकपूर्ण एवं कुशल बनाने हेतु निरन्तर निदेशक एवं पर्यवेक्षण। मुख्य रूप से इसमें जिलाधीश, एस.डी.ओ. तथा तहसीलदार कार्यालयों का निरीक्षण शामिल है;
(v) भू-अभिलेखन की प्रक्रिया को अधिक सुसंगत एवं वैज्ञानिक बनाने हेतु निर्देशन तथा नियंत्रण;
(vi) भूमि तथा उसके प्रबन्धन से सम्बन्धित सांख्यिकी का संकलन एवं समेकन;
(vii) राजस्व नीति एवं प्रशासन में सुधार सम्बन्धी विषयों पर राज्य सरकार को समय-समय पर परामर्श देना;
(viii) राजस्थान तहसीलदार सेवा का प्रशासन तथा इस सेवा के अधिकारियों का कार्मिक प्रबन्धन; तथा
(xi) राजस्व अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, अजमेर तथा राजस्व स्कूल, टोंक के प्रशासन का पर्यवेक्षण।

अतः राजस्व मंडल एक न्यायाधिकरण होने के साथ एक प्रशासनिक संगठन भी है। एक न्यायिक संस्था के रूप में यह राजस्व न्यायालय का कार्य करता है जिसके समक्ष, अपीलें, संशोधन एवं सन्दर्भ के मामले आते हैं। भू-अभिलेखों तथा भू-राजस्व के मामलों में इसने न्यायिक दक्षता का परिचय दिया है। दीवानी प्रक्रिया पर आधारित इसकी कार्यवाही से निष्पक्षता को बल मिला है। साथ ही मंडल कतिपय प्रशासनिक दायित्वों का भी वहन करता है। राज्य सरकार कई बार मंडल के प्रशासनिक दायित्वों में वृद्धि कर देती है।

संगठन

राजस्थान के राजस्व मंडल की शक्तियाँ एवं भूमिका राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम, 1956 की धारा 4 में वर्णित है। इस अधिनियम के अनुसार राजस्व मंडल का एक अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य होते हैं जिनकी संख्या तीन से पन्द्रह के बीच हो सकती है। इसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती

है तथा उनका कार्यकाल भी उसके प्रसाद पर्यन्त रहता है। समस्त अधिकारी प्रशासनिक एवं न्यायिक दोनों भूमिकाएँ निभाते हैं। अध्यक्ष राज्य के भारतीय प्रशासनिक सेवा के राजस्थान 'संवर्ग' के वरिष्ठतम अधिकारियों में से एक होता है तथा इसका वेतन मुख्य सचिव के समान होता है (2004 में 26,000 रुपये)। अन्य सदस्यों की नियुक्ति के बारे में निम्नलिखित योग्यताओं का उल्लेख अधिनियम में किया गया है :

(i) भारतीय प्रशासनिक सेवा का कम से कम 12 वर्ष का अनुभव प्राप्त अधिकारी।

(ii) राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा का अधिकारी जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यताएँ रखता हो।

(iii) एक अधिवक्ता (एडवोकेट) जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने की योग्यता रखता हो।

उल्लेखनीय है कि प्रथम वर्ग में अब वे ही अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जो भारतीय प्रशासनिक सेवा के सुपर-टाइम स्केल के हों अर्थात् जिन्होंने लगभग 16 से 18 वर्ष का काल इस सेवा में पूर्ण किया हो। राजस्थान में यह प्रथा-सी बन गई है कि सुपर-टाइम स्केल में आते ही एक आई.ए.एस. अधिकारी का स्थानान्तरण राजस्व मंडल में किया जाता है जहाँ वह लगभग दो वर्ष कार्य करता है। तत्पश्चात् ही उसे अन्य सरकारी पदों पर स्थापित किया जाता है। इस प्रथा की अनुपालना राजस्व मंडल में रिक्त स्थानों पर भी निर्भर करती है।

द्वितीय एवं तृतीय वर्ग अर्थात् उच्चतर न्यायिक सेवा के अधिक रियों तथा अधिवक्ताओं की राजस्व मंडल के सदस्य के रूप में नियुक्ति हेतु सिफारिश एक उच्च-स्तरीय समिति द्वारा की जाती है, जिसकी रचना इस प्रकार होती है :

(i)	राजस्थान उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश	अध्यक्ष
(ii)	राजस्थान लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष	सदस्य
(iii)	राजस्थान राज्य का मुख्य सचिव	सदस्य
(iv)	राजस्थान राजस्व मंडल का अध्यक्ष	सदस्य
(v)	राजस्थान सरकार का प्रमुख शासन सचिव, राजस्व विभाग	सदस्य सचिव

समिति अधिवक्ताओं के चयन के बारे में सिफारिशें करते हुए यह सुनिश्चित करती है कि जिन व्यक्तियों के नामों की सिफारिश की जा रही है, उन्हें राजस्व कानून एवं प्रशासन का प्रचुर ज्ञान हो तथा उन्हें राज्य के न्यायिक एवं राजस्व न्यायालयों में राजस्व मुकदमों की पैरवी का अनुभव हो।

राजस्व मंडल के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में मंडल का अध्यक्ष मंडल मुख्यालय स्थित सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों के कार्य का पर्यवेक्षण करता है। मंडल के विभिन्न अनुभागों के दक्षतापूर्ण कार्य हेतु आवश्यक निर्देश देता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि मंडल का कार्य अच्छे प्रबन्धन के सिद्धान्तों के अनुसार सम्पन्न हो। इस महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक उत्तरदायित्व के वहन के अतिरिक्त मंडल-अध्यक्ष का प्रमुख कार्य न्यायिक भी है। यह उसका दायित्व एवं अधिकार है कि वह मंडल में मामलों की सुनवाई के लिए विभिन्न पीठों (बैंच) की रचना करे। अध्यक्ष स्वयं भी मामलों की सुनवाई कर राजस्व से सम्बन्धित मामलों का निपटारा करता है।

राजस्थान उच्च न्यायालय की भाँति राजस्व मंडल में भी मामलों की सुनवाई एवं उन पर

निर्णय करने हेतु पीठ (बैंच) की व्यवस्था है। अधिकांश पीठें एक-सदस्यीय ही होती है। ए सदस्यीय पीठों के निर्णयों के विरुद्ध सुनवाई द्वि-सदस्यीय पीठों में की जाती है। सम्पूर्ण मंडल पीठ का पूर्ण बैंच के रूप में गठन बहुत ही कम अवसरों पर होता है। इसकी आवश्यकता भी पड़ती है।

ऐसा अनुभव किया गया है कि राजस्व मंडल के अध्यक्ष की योग्यता, प्रखरता, निष्ठा नेतृत्व पर आयोग की कुशलता काफी मात्रा में निर्भर करती है। कई बार ऐसे भी अध्यक्ष नियुक्त हैं जिनके काल में मामलों का निपटारा सामान्य से दुगनी गति से हुआ।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के मंडल-सदस्यों के मध्य राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों को दिया जाता है, जिनमें आने वाले जिलों के सम्बन्ध में वे निम्नलिखित उत्तरदायित्व निभाते हैं :

1. राजस्व प्रशासन के सम्बन्ध में निर्देशन एवं पर्यवेक्षण।
2. ज़िलाधीश के आदेशों के विरुद्ध अधीनस्थ राजस्व कार्यालयों के कार्मिकों की अप सुनना।
3. राजस्व अपील अधिकरणों, जिलाधीश कार्यालय, कोषागार व अधीनस्थ राज न्यायालयों का निरीक्षण।

क्षेत्र का विभाजन सम्भाग के आधार पर किया जाता है। मंडल के 20 अगस्त, 1994 आदेश के अनुसार मंडल के छः आई.ए.एस. अधिकारियों के क्षेत्रों का आवंटन इस प्रकार किया गय

- अजमेर सम्भाग
- जयपुर सम्भाग
- कोटा सम्भाग
- जोधपुर सम्भाग
- उदयपुर सम्भाग
- बीकानेर सम्भाग

1994 के आदेशों के अन्तर्गत ही विभिन्न आई.ए.एस. अधिकारियों को निम्नलिखि विषयों के लिए पृथक्-पृथक् प्रभारी अधिकारी बनाया गया :

- सांख्यिकी शाखा
- लेखा शाखा, कम्प्यूटर, राजस्व अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थान, स्थापना शाख तथा पूल
- राजस्व प्रशिक्षण स्कूल शाखा, भू-अभिलेख शाखा
- पुस्तकालय निरीक्षण शाखा
- विभागीय जाँच शाखा
- स्टोर

प्रत्येक अधिकारी के साथ अध्यक्ष द्वारा एक 'लिंक सदस्य' भी मनोनीत किया जाता है ज अपने साथ जुड़े सदस्य के अवकाश पर रहने पर उसका कार्य निर्वाह करता है।

आई.ए.एस. सदस्यों तथा अन्य के मध्य भी विशिष्ट अनुभागों के कार्य आवंटित कर दि जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर इस कार्य-वितरण में संशोधन किये जा सकते हैं।

पिछले दस वर्षों में मंडल की सदस्यता के बारे में एक नवीन व्यवस्था को लागू किया गया है। ऐसे आई.ए.एस. अधिकारी जो सेवानिवृत्त होने वाले हैं, वे सेवानिवृत्ति के नियत समय से कुछ समय पूर्व आई.ए.एस. से त्यागपत्र दे कर 60 वर्ष की आयु पूर्ण करने से पहले ही राजस्व मंडल के सदस्य बनाए जा सकते हैं। उस स्थिति में वे 62 वर्ष की आयु तक मंडल में सदस्य के रूप में बने रह सकते हैं। ऐसे सदस्यों के चयन हेतु सिफारिश करने के लिए वही समिति कार्य करती है जो राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा तथा अधिवक्ताओं के चयन हेतु सिफारिशें करती है। यह व्यवस्था इस कारण करनी पड़ी कि कई आई.ए.एस. अधिकारी मंडल में सदस्यता को कम प्रतिष्ठित पद मानते हैं तथा वहाँ से वापस जयपुर के शक्ति-सम्पन्न पदों पर आसीन होना चाहते हैं। इस दृष्टिकोण को बदलने की सख्त आवश्यकता है।

ऐसा कई बार होता है कि राजस्व मंडल के सदस्यों के कुछ पद खाली रह जाते हैं तथा रिक्त पदों पर नियुक्तियाँ विलम्ब से होती हैं। इससे मंडल की दक्षता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। न केवल सदस्यों की पद-स्थापना समय पर हो साथ ही, उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य पर पर्यवेक्षण भी दक्षतापूर्ण होना चाहिए। इस सम्बन्ध में राजस्व मंडल के अध्यक्ष का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है।

रजिस्ट्रार

प्रशासनिक समन्वय हेतु राजस्व मंडल में एक पंजीयक (रजिस्ट्रार) कार्य करता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अथवा चयन शृंखला का अधिकारी होता है। रजिस्ट्रार ही मंडल कार्य का मुख्य पर्यवेक्षक है तथा वह सभी अनुभागों पर प्रशासनिक नियंत्रण रखता है। राजस्थान राजस्व न्यायालय मैन्युअल में वर्णित प्रक्रिया के अन्तर्गत राजस्व मंडल का कार्य सम्पन्न किया जाता है। इन्हीं प्रावधानों के अनुपालन हेतु रजिस्ट्रार समस्त आवश्यक कार्यवाही को निर्देशित करता है। न्यायिक मामलों से सम्बन्धित नोटिसों की तामील करवाने, प्रार्थनापत्रों से सम्बन्धित आदेश जारी करने व उन्हें निपटाने, गवाहों को व्यय एवं भत्तों का भुगतान कराने, निर्णयों के संशोधन एवं पुनरावलोकन हेतु अपील तथा प्रार्थनापत्र स्वीकारने अन्य न्यायालयों को राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेशों को क्रियान्वयन हेतु भेजने आदि से सम्बन्धित कार्य रजिस्ट्रार द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। रजिस्ट्रार राजस्व प्रशासन से सम्बन्धित अधिकारियों जैसे सम्भागीय आयुक्त, जिलाधीशों, उपखण्ड अधिकारियों आदि से मंडल की ओर से सम्प्रेषण एवं सम्पर्क का कार्य करता है। मंडल के कार्मिक वर्ग, अधीनस्थ (तहसीलदार) सेवाओं की स्थापना, राजस्व प्रशिक्षण संस्थाओं के संचालन, कार्मिकों के स्थानान्तरण, पदोन्नति, अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि से जुड़े कार्यों को वही सम्पन्न करता है।

रजिस्ट्रार की सहायता के लिए कतिपय अन्य वरिष्ठ अधिकारी कार्यरत हैं जो इस प्रकार हैं– दो अतिरिक्त रजिस्ट्रार, एक संयुक्त रजिस्ट्रार, तीन उप-रजिस्ट्रार तथा अन्य अधीनस्थ अधिकारी जो मंडल के विशिष्ट नियत कार्यों को सम्पन्न करते हैं।

राजस्व मंडल के बहु-आयामी दायित्वों को देखते हुए उसके आन्तरिक प्रशासन को कई शाखाओं में बाँटा गया है जिसमें लगभग चार सौ कर्मचारी काम करते हैं। ये अनुभाग इस प्रकार हैं :

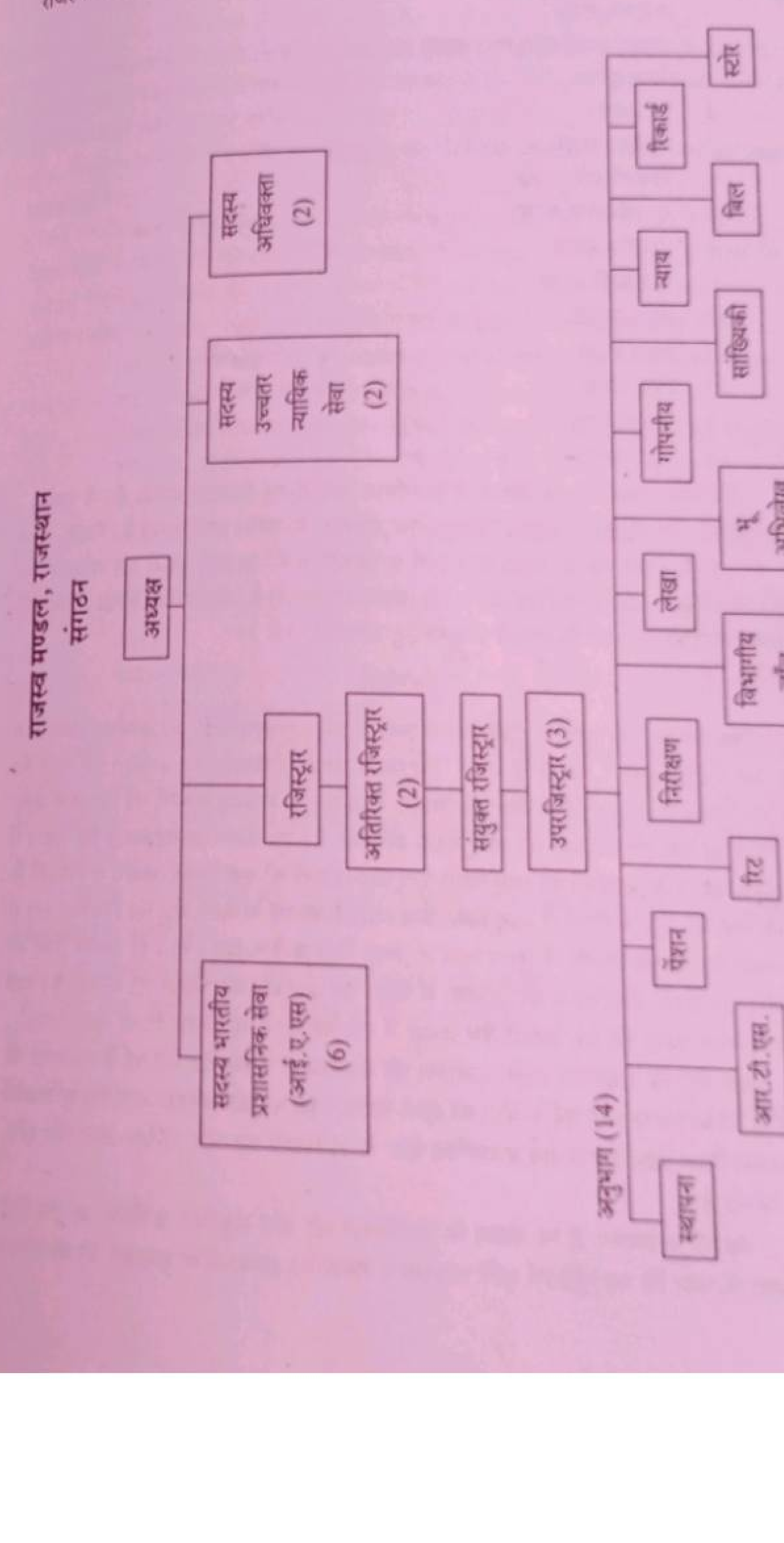

1. स्थापना शाखा
2. राजस्व तहसीलदार सेवा शाखा
3. पेंशन शाखा
4. रिट शाखा
5. निरीक्षण शाखा
6. विभागी जाँच शाखा
7. भू-अभिलेख शाखा
8. गोपनीय शाखा
9. सांख्यिकी शाखा
10. लेखा शाखा
11. न्याय शाखा
12. बिल शाखा
13. रिकार्ड शाखा
14. स्टोर शाखा

विभिन्न शाखायें अपने विषयों से सम्बन्धित मामलों का निपटारा करती हैं। वे शाखा-अधिकारियों, उप-रजिस्ट्रार, संयुक्त रजिस्ट्रार तथा रजिस्ट्रार के अधीन कार्य करती हैं। किन्तु, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, मंडल के सदस्यों से भी अपेक्षा की जाती है कि वे उन शाखाओं के कार्यों पर निगरानी रखें जिनके लिए उन्हें प्रभारी सदस्य बनाया गया है। अन्ततः तो मंडल अध्यक्ष ही समस्त शाखाओं के कार्यों के प्रभावी प्रशासन हेतु उत्तरदायी होता है।

निष्कर्ष

प्रशासनिक एवं न्यायिक कार्यों के दोहरे उत्तरदायित्वों के कारण राजस्व मंडल का कार्यभार अत्यधिक बढ़ गया है। फलस्वरूप, मंडल के समक्ष विचाराधीन मामले दीर्घकाल तक लम्बित पड़े रहते हैं। कई बार विशेष बैंचों तथा क्षेत्रिय बैंचों की स्थापना के माध्यम से लम्बित मामलों को निपटाया जाता है, किन्तु हर बार इस व्यवस्था को लागू करना असम्भव है। इस कारण आवश्यक है कि मंडल में वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों को लागू किया जाए तथा मामलों को एक विशेष अवधि में निपटाने के मानक बना कर उन्हें कठोरता से लागू किया जाए। प्रत्येक सदस्य के कार्य-भार का नियमित रूप से मूल्यांकन कर उसकी निष्पत्ति में सुधार लाने के उपाय किये जाने चाहिए। साथ ही क्षेत्रीय बैंचों की स्थापना एवं उनके क्षेत्राधिकार की स्पष्टता से मंडल का कार्यभार कम किया जा सकता है। इसी प्रकार राजस्व मंडल की एक स्थायी बैंच जयपुर में स्थापित करने पर विचार किया जाना चाहिए, उसी प्रकार जैसे कि राजस्थान उच्च न्यायालय की बैंच जयपुर में स्थापित की गई है। सदस्यों की नियुक्ति भी कम से कम दो वर्ष के लिए की जानी चाहिए। इस पद को अधिक आकर्षक सुविधाओं से सम्पन्न किया जाए तो भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी इस ओर अधिक आकर्षित होंगे, ऐसी आशा है।

यह भी आवश्यक है कि मंडल के क्षेत्राधिकार को और संकुचित न किया जा कर ऐसी व्यवस्था की जाए कि वह भूमि एवं कृषि व्यवस्था से सम्बन्धित संस्थाओं के समन्वय को भी सम्भव

कर सके। मंडल को राजस्व कानूनों के सरलीकरण एवं अधिक विवेकपूर्ण बनाने के सम्बन्ध में अधिक प्रयत्न करने चाहिए। राजस्व विधि एवं प्रशासन के क्षेत्र में निरन्तर सुधार राजस्व मंडल का एक महत्वपूर्ण दायित्व होना चाहिए।

मंडल के कार्य को अधिक कुशलतापूर्वक करने हेतु जहाँ-जहाँ आवश्यक हो, कम्प्यूटरीकरण करना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान की प्रशासनिक सुधार समिति, जिसकी स्थापना 1992 में पूर्व मुख्य-सचिव श्री गोपाल कृष्ण भनोत के अध्यक्षता में की गई थी, ने अपने अंतरिम प्रतिवेदन में राजस्व मंडल में सदस्यों की नियुक्ति को व्यवस्थित एवं उसे अधिक आकर्षक बनाने के लिए कतिपय सुझाव दिये हैं। इस सम्बन्ध में भनोत समिति की मुख्य सिफारिशें इस प्रकार हैं :

- भारतीय प्रशासनिक सेवा के सभी अधिकारियों को सुपर-टाइम स्केल मिलने पर राजस्व मंडल में पदस्थापित किया जाना चाहिए।
- जिन अधिकारियों को सुपर-टाइम स्केल में राजस्व मंडल के कार्य करने का अनुभव न मिला हो, उन्हें उच्चतर स्केल में आने पर मंडल में 'वरिष्ठ सदस्य' के रूप में पद-स्थापित किया जाना चाहिए।
- दो अथवा तीन वर्षों तक मंडल में कार्य कर चुके भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी को अपनी रुचि के पद पर स्थानान्तरित किये जाने का प्रयास करना चाहिए।
- जो अधिकारी कुछ माह में ही सेवा-निवृत्त होने वाले हों, उन्हें पद-स्थापित न किया जाए।
- राजस्व मंडल के सदस्यों को मिलने वाली आवास, कार एवं टेलिफोन की सुविधाओं को अधिक आकर्षक बनाया जाए।

खेद का विषय है कि उच्चतम आई.ए.एस. अधिकारी केवल राजस्थान एवं भारत की राजधानी में सचिवालय स्थित पदों को ही आकर्षक पद मानते हैं। इस मानसिकता को बदलना होगा। जब तक यह न बदले, पदस्थापन के नियमों को विवेकसंगत बना कर उन्हें समता एवं कठोरता से लागू करना चाहिए।

सरकार को चाहिए कि मंडल में सदस्य के किसी पद के रिक्त होने पर तुरन्त ही नये सदस्य को पदस्थापित किया जाए।

आवश्यकता है कि भारतीय परिवेश में राजस्व मंडल के केन्द्रीय महत्त्व को भी पुनः स्थापित किया जाए तथा उसकी दक्षता-अभिवृद्धि हेतु निरन्तर उपाय किए जाएँ।

□□□

अध्याय 11

राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल का पुनर्गठन

राजस्थान के लोक उपक्रमों में सर्वाधिक विशाल राजस्थान राज्य विद्युत मंडल है। भारत के विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत इस संगठन की स्थापना एक निगम के रूप में एक विशेष अधिनियम के अंतर्गत 1957 में की गई थी। जुलाई, 2000 से पूर्व की स्थिति के अनुसार राजस्थान राज्य विद्युत मंडल की भूमिका एवं कार्यों का विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

भूमिका एवं कार्य

ऊर्जा क्षेत्र में जुलाई, 2000 के सुधारों से पूर्व राजस्थान राज्य विद्युत मंडल के मुख्य कार्य निम्नलिखित थे–

1. विद्युत उत्पादन एवं क्रय

अभी तक राजस्थान की विद्युत की मांग का लगभग 48 प्रतिशत भाग राजस्थान राज्य विद्युत मंडल के माध्यम से उत्पादित किया जाता था और शेष लगभग 52 प्रतिशत विद्युत को विभिन्न स्रोतों से क्रय किया जाता था। राजस्थान राज्य विद्युत मंडल द्वारा संचालित मुख्य इकाइयाँ निम्न थीं :

(1) कोटा तापीय परियोजना
(2) माही पन परियोजना
(3) रामगढ़ गैस परियोजना
(4) लघु पन विद्युत गृह
(5) सूरतगढ़ तापीय परियोजना (1998-99 में आरम्भ)

इसके अतिरिक्त कई लघु पन विद्युतगृह हैं जो कि मंडल द्वारा संचालित हैं।

अन्तर्राज्यीय परियोजनाएँ– निम्नलिखित चार ऐसी अन्तर्राज्यीय परियोजनाएँ हैं जिनमें राजस्थान का भी एक महत्वपूर्ण अंश है :

(1) भाखड़ा परियोजना
(2) व्यास परियोजना
(3) चम्बल परियोजना
(4) सतपुड़ा परियोजना

इनके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित ऐसी 11 परियोजनाएँ हैं जिनसे उत्पादित

विद्युत का एक महत्त्वपूर्ण अंश राजस्थान को भी प्राप्त होता है। यह विद्युत राजस्थान को क्रय करनी पड़ती है। ये परियोजनाएँ इस प्रकार हैं :

(1) राजस्थान अणु विद्युत परियोजना
(2) नरौरा अणु विद्युत परियोजना
(3) सिंगरौली तापीय परियोजना
(4) रिहन्द तापीय परियोजना
(5) ऊँचाहार तापीय परियोजना
(6) अन्ता गैस परियोजना
(7) औरैया गैस परियोजना
(8) दादरी गैस परियोजना
(9) टनकपुर जल परियोजना
(10) सलाल-द्वितीय पन परियोजना
(11) चमेरा पन परियोजना

हाल ही में कई नवीन लघु विद्युत गृहों के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ की गई है तथा देशी व विदेशी निजी क्षेत्रों को विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने हेतु प्रेरित एवं आमंत्रित किया गया है। यद्यपि इस दिशा में हुई प्रगति अभी तक संतोषजनक नहीं रही है, इस कारण राजस्थान राज्य विद्युत मंडल को अन्य स्रोतों से विद्युत प्राप्त करनी पड़ती थी। पिछले कुछ वर्षों में विद्युत की उपलब्धि व आपूर्ति को बांटने के लिए विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में निजी क्षेत्र के प्रवेश को बढ़ावा दिया गया है तथा केन्द्रीय विद्युत परियोजनाओं से राज्यों को आवंटन में वृद्धि के साथ-साथ अतिरिक्त विद्युत क्रय के लिए भी प्रयत्न किया गया है। छोटे विद्युत गृहों की स्थापना के माध्यम से भी विद्युत उत्पादन के विकास को बल दिया जा रहा है। जैसलमेर, बाड़मेर एवं जोधपुर क्षेत्र में सौर ऊर्जा के विकास के लिए प्रयत्न किये जा रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में विद्युत की मांग का लगभग 52 प्रतिशत क्रय करना पड़ता है, जबकि अन्य राज्यों में यह अनुपात कम है। पश्चिम बंगाल में विद्युत मांग का 76 प्रतिशत उत्पादन होता है तथा कुल 24 प्रतिशत ही विद्युत क्रय करनी पड़ती है। महाराष्ट्र प्रदेश में विद्युत का उत्पादन मांग का 70 प्रतिशत है जबकि 30 प्रतिशत विद्युत क्रय करनी पड़ती है।

2. विद्युत वितरण

राजस्थान राज्य विद्युत मंडल के लगभग 45 लाख से अधिक विद्युत उपभोक्ता हैं। इन्हें विद्युत वितरित करने के लिए मंडल के पास अलग-अलग क्षमताओं की कई विद्युत लाइनें हैं। विद्युत सब-स्टेशनों का निर्माण, विद्युत लाइनों का संधारण, ट्रांसफार्मरों को विभिन्न क्षेत्रों में लगवाने तथा उनके रख-रखाव एवं उपभोक्ताओं को कनेक्शन उपलब्ध कराने का उत्तरदायित्व विद्युत मंडल का ही है। क्रय की जाने वाली ऊर्जा का लग़भग 15 प्रतिशत घरेलू कार्यों के लिए, 33 प्रतिशत कृषि के लिए, 44 प्रतिशत उद्योगों के लिए, 5 प्रतिशत गैर-घरेलू कार्यों के लिए एवं 3 प्रतिशत अन्य उद्देश्यों के लिए किया जाता है। ऊँचे मूल्यों पर क्रय करके और कृषकों को नीचे मूल्यों पर विद्युत बेचने के कारण मंडल को काफी हानि होती है। कृषि में जहाँ 33 प्रतिशत विद्युत की खपत होती है जिससे

मिलने वाली आय विद्युत-विक्रय से होने वाली आय का केवल 7 प्रतिशत ही है। दूसरी ओर उद्योगों में 44 प्रतिशत विद्युत खपत होती है परन्तु उनसे मिलने वाली आय कुल का 71 प्रतिशत है। घरेलू कार्यों के लिए 15 प्रतिशत विद्युत खपत होती है किन्तु उससे मिलने वाली आय 10 प्रतिशत है।

3. ग्रामीण विद्युतीकरण

राजस्थान में गाँवों में सिंचाई की सुविधाओं तथा पेयजल की उपलब्धता एवं शिक्षा व स्वास्थ्य का विस्तार काफी कुछ विद्युतीकरण पर निर्भर है। राजस्थान राज्य विद्युत मंडल ने ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यों को गंभीरता से लिया था। लगभग 5 लाख कुओं का विद्युतीकरण मंडल के प्रयत्नों से संभव हुआ है तथा लगभग 35 हजार गाँवों का विद्युतीकरण किया जा चुका है। इस कार्यक्रम को विकासोन्मुखी कार्यक्रमों, विशेषतया जनजातीय क्षेत्रीय विकास तथा अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से जोड़कर, मंडल ने प्रशंसनीय कार्य किया है। पिछले 2-3 वर्षों में "नर्सरी योजना" के माध्यम से सापेक्षिक रूप से उच्चतर स्तर पर एक-एक विद्युत कनेक्शन देने में प्राथमिकता प्रदान करने की योजना भी काफी लोकप्रिय रही किन्तु फिर भी लम्बे काल तक कनेक्शन के लिए प्रार्थना-पत्रों का निपटारा नहीं हो पा रहा है क्योंकि मंडल के पास आवश्यक संसाधन नहीं थे। एक अन्य कारण यह भी है कि आपूर्ति की जाने वाली बिजली का लगभग 35 से 40 प्रतिशत अंश चोरी कर लिया जाता है तथा इसे रोक पाना सरल नहीं है।

4. राज्य का सर्वांगीण विकास

औद्योगिक विकास तथा अन्य क्षेत्रों में उपभोक्ता विद्युत आपूर्ति पर निर्भर करती है अतः राज्य विद्युत मंडल से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह राजस्थान के समग्र विकास में महती भूमिका निभाए। जिन कारणों से राजस्थान में औद्योगिकीकरण की गति मंद रही है उनमें ऊर्जा की कमी सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है। अतः विद्युत मंडल का यह उत्तरदायित्व माना जाता रहा है कि वह इस क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभाये।

5. विविध कार्य

राज्य विद्युत मंडल का यह उत्तरदायित्व रहा है कि वह विद्युत उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी योजनाओं हेतु संविदा की शर्तों के क्रियान्वयन एवं निजी क्षेत्रों एवं विदेशी निजी क्षेत्र की कम्पनियों द्वारा विद्युत उत्पादन एवं वितरण के सम्बन्ध मे की जाने वाली व्यापारिक गतिविधियों पर नियंत्रण रखे। गैर-पारम्परिक स्रोतों से उत्पन्न विद्युत की मात्रा की अभिवृद्धि को अभिप्रेरित कर तथा उस क्षेत्र के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का उत्तरदायित्व भी परोक्ष रूप से विद्युत मंडल का ही है। मंडल की यह जिम्मेदारी रही है कि वह विद्युत स्टेशनों, पावर हाऊसों, विद्युत ट्रांसफार्मरों तथा विद्युत लाइनों का उचित रख-रखाव रखे, इन लाइनों पर पड़ने वाले बोझ पर नियंत्रण रखे, विद्युत चोरी को रोकने के उपाय करे तथा इस सम्बन्ध में जनता का सहयोग प्राप्त करे।

6. प्रशासनिक कार्य

किसी भी विशाल संस्थान की भाँति राजस्थान राज्य विद्युत मंडल भी विभिन्न प्रशासकीय कार्यों को कुशलता से सम्पन्न करने का प्रयत्न करता रहता है। इसमें नियोजन, नीति-निर्माण, निर्णय-प्रक्रिया, निर्देशन, नियंत्रण, कार्मिकों की भर्ती, श्रम कल्याण, पदस्थापन, पदोन्नति, प्रशिक्षण, सेवा शर्तें, अनुशासन एवं अभिप्रेरणा जैसे विभिन्न पहलू शामिल हैं। मंडल के बजट का निर्माण, उसके निष्पादन, वित्तीय नियंत्रण, मितव्ययता, व्यय लेखन, आंतरिक अंकेक्षण एवं वित्तीय अनुशासन स्थापित करने जैसे कार्य भी राज्य विद्युत मंडल के रहे हैं।

संगठन

राजस्थान राज्य विद्युत मंडल के प्रबन्ध में सर्वोच्च स्तर पर प्रबन्धक मंडल था जो कि नीति-निर्माण एवं निष्पादन पर नियंत्रण की शक्तियाँ अपने आप में निहित रखता था। किन्तु इसकी विवेचना से पूर्व सर्वोच्च स्तर पर कार्यरत परामर्शदात्री परिषद् का संदर्भ प्रासंगिक होगा।

राजस्थान राज्य विद्युत परामर्शदात्री परिषद्

भारत सरकार के विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 के प्रावधानों के अनुसार राजस्थान विद्युत परामर्शदात्री परिषद् का गठन किया गया था। इस परिषद् में कुल 22 सदस्य होते थे। इस परिषद् का अध्यक्ष राजस्थान राज्य विद्युत मंडल का ही अध्यक्ष होता था। मंडल के तीन अन्य पूर्णकालिक व तीन अंशकालिक सदस्य इस परिषद् के सदस्य होते थे। इन सात सदस्यों के अतिरिक्त परिषद् में मंडल अधीक्षक पश्चिम रेल्वे, कृषि निदेशक, आयोजना सचिव, निदेशक स्थापित निकाय, दो विधानसभा सदस्य तथा उद्योग, व्यापार एवं श्रमिकों के प्रतिनिधि होते थे।

राजस्थान राज्य विद्युत परामर्शदात्री परिषद् की वर्ष में सामान्यता चार बैठकें होनी चाहिए थीं, यद्यपि व्यवहार में कई बार चार से कम हो पाती थीं। इस परिषद् के मुख्य कार्य इस प्रकार थे :

(1) विद्युत उत्पादन व वितरण के क्षेत्र में नीति-निर्माण।

(2) मंडल की विद्युत उत्पादन एवं वितरण से सम्बन्धित परियोजनाओं, कार्यक्रमों तथा गतिविधियों की समीक्षा करना।

(3) मंडल के बजट में आय तथा व्यय के विभिन्न मदों पर समीक्षा करना तथा इस सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देना।

अन्य कोई भी कार्य जो कि सामान्यतया राज्य सरकार इस परिषद् को सौंपती थी, इस परिषद् द्वारा सम्पन्न किये जाते थे, किन्तु ऐसा देखने में आया है कि इस परिषद का महत्त्व सामान्यतया औपचारिक ही होता था तथा काफी कुछ इस बात पर निर्भर करता था कि अध्यक्ष कितने खुले मस्तिष्क से इस परिषद् में आने वाले सुझावों को गंभीरता से लेते हैं।

प्रबन्धक मंडल

राजस्थान राज्य विद्युत मंडल के पाँच पूर्णकालिक सदस्य होते थे, जिसमें कि अध्यक्ष भी सम्मिलित था। यह उल्लेखनीय है कि इन सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार करती थी। पूर्णकालिक सदस्य निम्नलिखित होते थे :

(1) तकनीकी सदस्य, प्रसारण

(2) तकनीकी सदस्य, वितरण

(3) तकनीकी सदस्य, उत्पादन

(4) लेखे एवं वित्त सदस्य

इसके अतिरिक्त दो अंशकालिक सदस्य होते थे – वित्त सचिव एवं ऊर्जा विभाग। इस प्रकार

से मंडल में 7 में से 3 अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा के होते थे, तीन तकनीकी सदस्य तथा एक विषय विशेषज्ञ होते थे। उल्लेखनीय है कि प्रबन्धक मंडल के सदस्यों की संख्या अधिनियम के अन्तर्गत 3 से 12 हो सकती थी किन्तु राजस्थान में इनकी संख्या केवल 7 ही रही है।

प्रबन्धक मंडल के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं –

(1) मंडल की विद्युत उत्पादन व वितरण से सम्बन्धित नीतियों तथा उपनीतियों का निर्माण।
(2) नीतियों तथा उपनीतियों के निष्पादन पर निगरानी रखना।
(3) केन्द्रीय सरकार व अन्य राज्य सरकारों के साथ सम्बन्ध, सम्पर्क एवं समन्वय रखना।
(4) राजस्थान में विद्युत उत्पादन एवं वितरण हेतु भविष्यात्मक नियोजन का निर्माण एवं इनका कार्यान्वयन।
(5) सम्पूर्ण मंडल के कार्मिकों पर नियंत्रण तथा कार्मिकों की भर्ती, पदोन्नति, पदस्थापन, सेवा शर्तें, वेतन, सेवानिवृत्ति, अनुशासन, प्रशिक्षण से सम्बन्धित प्रशासनिक पहलुओं पर उच्च स्तरीय निर्णय लेना तथा इन निर्णयों के कुशलता से निष्पादन को सुनिश्चित करना।
(6) मंडल के बजट का निर्माण, उसका निष्पादन, वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन, वित्तीय अनुशासन, लेखन, आंतरिक लेखा परीक्षा, अंकेक्षण तथा सम्बन्धित पहलुओं पर निर्णय लेने तथा इन निर्णयों के भली प्रकार लागू किये जाने को सुनिश्चित करना।
(7) अन्य ऐसे तकनीकी एवं प्रशासनिक मामलों में निर्णय लेना जो कि मंडल के सुचारू रूप से संचालन हेतु आवश्यक हों।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान राज्य विद्युत मंडल में एक ऐसी परम्परा बनाई गई है कि अधिकांश निर्णय मंडल के चार सदस्य मिलकर करते रहे हैं। यद्यपि मंडल की औपचारिक बैठकें वर्ष में लगभग चार हो जाती थीं, किन्तु पूर्णकालिक सदस्यों की बैठकें कई बार हर सप्ताह भी होती रही हैं। अनौपचारिक विचार-विमर्श मंडल के चारों सदस्यों में नित्य-प्रति होता रहा है तथा इस प्रकार से विद्युत मंडल केन्द्रीयकरण की निर्बलता से बचा रहा।

अध्यक्ष

राजस्थान राज्य विद्युत मंडल के प्रबन्धक मंडल की विस्तृत भूमिका के बावजूद सर्वाधिक नीतिगत एवं प्रशासनिक उत्तरदायित्व मंडल के अध्यक्ष का ही रहा है। मंडल में अध्यक्ष की नियुक्ति राज्य सरकार करती थी। मंडल का प्रशासनिक विभाग ऊर्जा विभाग रहा है, जिसका राजनीतिक प्रमुख ऊर्जा मंत्री होता है तथा प्रशासनिक प्रमुख ऊर्जा सचिव होता है। मंडल स्वयं निगम होने के कारण आंतरिक प्रशासन के क्षेत्र में पर्याप्त स्वतंत्रता लिए हुए रहा है, किन्तु फिर भी वित्तीय ऋण लेने, बिजली आपूर्ति की दरों तथा अन्य संविदाओं के बारे में महत्त्वपूर्ण निर्णय राज्य सरकार की मंशा से ही किये जाते हैं। अतः मंडल के अध्यक्ष तथा राज्य सरकार के बीच निरन्तर सम्पर्क बना रहता है।

विद्युत मंडल का अध्यक्ष या तो भारतीय प्रशासनिक सेवा का एक वरिष्ठ अधिकारी होता है अथवा एक वरिष्ठ इंजीनियर। लम्बे काल तक भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी भी इसके अध्यक्ष रहे हैं। श्री वी. आई. राजगोपाल, श्री मंगल बिहारी तथा श्री पी.एन. भंडारी (तीन बार) इसके अध्यक्ष रहे हैं। एक अभियंता श्री आर.सी. दवे लम्बे काल तक मंडल के अध्यक्ष रहे हैं, जो

कि 67 वर्ष की आयु तक (मृत्यु पर्यन्त) मंडल के अध्यक्ष रहे थे। एक अन्य अभियंता श्री पृथ्वीसिंह भी मंडल के अध्यक्ष कुछ वर्ष तक रहे। अध्यक्ष के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है कि वह मंडल को क्या रूप दे। वैसे तो दोनों ही प्रकार के अध्यक्ष–प्रशासनिक एवं इंजीनियर–क्षमता की दृष्टि से लगभग समान ही रहे हैं तथा इन सभी ने मंडल को आगे बढ़ाने में अहम् भूमिका निभाई है।

विद्युत मंडल का अध्यक्ष मंडल का मुख्य कार्यपालक था। अतः नियोजन, आंतरिक संगठन, निर्देशन, नियंत्रण, नीति-निर्माण, नीति निष्पादन, कार्मिक प्रशासन, बजट निर्माण एवं निष्पादन, लेखांकन एवं अंकेक्षण तथा तकनीकी परिचालन आदि से सम्बन्धित सभी कार्यों पर उसका वृहत् नियंत्रण एवं उत्तरदायित्व रहा है। मंडल के प्रशासन तंत्र के सभी अंगों के बीच कुशल समन्वय स्थापित करना अध्यक्ष का ही दायित्व रहा है। कुछ ऐसे भी अध्यक्ष हुए हैं, जो कि राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के दौरे करके मंडल के उपभोक्ताओं के साथ सीधे सम्पर्क स्थापित कर उनकी समस्याओं का निदान एवं हल करने का प्रयत्न करते रहे हैं। ऐसे खुले मस्तिष्क के अध्यक्ष किसी भी क्षेत्र से मिलने वाली राय एवं सुझावों का स्वागत करते रहे हैं। यह सत्य है कि मंडल के अध्यक्ष की दूरदर्शिता, नेतृत्व शक्ति एवं अभिप्रेरणा देने की क्षमता, कार्य क्षमता एवं कर्म के प्रति प्रतिबद्धता व ईमानदारी मंडल की सफलता को सुनिश्चित करते रहे हैं।

मंडल के अन्य चार सदस्य अपने क्षेत्रों से सम्बन्धित नीतियों के निरूपण, उपनीतियों के निर्माण एवं उच्च स्तरीय निर्णय तथा उनके भली प्रकार से निष्पादन को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। शक्तियों के प्रतिनिधान की व्यवस्था के अन्तर्गत कई मामले तो वे अपने स्तर पर निपटाते रहे हैं, तथा अन्य मामले जिनमें कि महत्त्वपूर्ण नीतिगत प्रश्न सम्मिलित हैं, उन्हें वह अंतिम निर्णय हेतु अध्यक्ष अथवा मंडल के पास सम्प्रेषित करते रहे हैं। विद्युत मंडल एक टीम के रूप में कार्य करता रहा है, तथा यह इसकी विशेषता रही है।

आंतरिक संगठन– प्रशासनिक दृष्टि से राजेस्थान राज्य विद्युत मंडल को चार पूर्णकालिक सदस्यों (अध्यक्ष सहित) के क्षेत्राधिकार के अनुसार बांटा गया :

(1) **अध्यक्ष–** सम्पर्ण मंडल का प्रशासनिक प्रमुख अध्यक्ष था जिसके अधीन निम्न अधिकारी कार्य करते थे :

(i) **कार्यकारी निदेशक–** इस पद की रचना 1998 में की गई है। इस पद पर आई.ए.एस. की चयनित वेतन शृंखला का एक अधिकारी कार्य करता था। इसका मुख्य दायित्व राज्य विद्युत मण्डल की योजनाओं का निमार्ण, केन्द्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से सम्बन्ध, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से समझौते आदि से सम्बन्धित रहा है।

(ii) **सचिव–** राजस्थान राज्य विद्युत मंडल का सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का एक चयनित वेतन शृंखला का अधिकारी होता था। इसके अधीन दो अतिरिक्त सचिव तथा दो संयुक्त सचिव कार्य करते थे। उल्लेखनीय है कि मंडल के प्रतिदिन के प्रशासन का उत्तरदायित्व सचिव का ही था।

(iii) **निदेशक, कार्मिक–** इस अधिकारी को सहायता प्रदान करने के लिए संयुक्त निदेशक कार्यरत थे जिन्हें उपनिदेशक एवं कार्मिक अधिकारी सहायता प्रदान करते थे। कार्मिकों की संस्थापना सम्बन्धी मामलों तथा तकनीकी प्रशिक्षण से सम्बन्धित विषय इन अधिकारियों के कार्य क्षेत्र में आते थे।

(iv) निदेशक, विधि मामलात– यह अधिकारी राजस्थान राज्य न्यायिक सेवा का एक वरिष्ठ अधिकारी होता था जो मंडल में प्रतिनियुक्ति पर कार्य करता था। जिन मामलों पर कानूनी परामर्श की आवश्यकता होती है वह इस अधिकारी को परामर्श हेतु सौंपे जाते थे। विद्युत मंडल के विभिन्न न्यायालयों में दायर सैकड़ों मुकदमों के बारे में भी यह आवश्यक कार्यवाही करता था, मंडल के वकीलों की नियुक्ति यह करता था एवं विभिन्न मुकदमों की प्रगति के बारे में प्रबोधन करता था।

(v) निदशक, वाणिज्य कार्य विधि– यह अधिकारी मंडल की समस्त व्यापारिक गतिविधियों से सम्बन्धित था। विद्युत मंडल द्वारा विक्रय की जाने वाली विद्युत का विभिन्न वर्गों के लिए मूल्य निधारित करना, विद्युत की मांग व आपूर्ति में समन्वय स्थापित करना, विद्युत की खरीद एवं बिक्री, अन्तर्राज्यीय ऊर्जा क्रय व विक्रय आदि से सम्बन्धित मामलों पर आवश्यक कार्यवाही इसी अधिकारी के क्षेत्राधिकार में आती थी।

(vi) निदेशक, सुरक्षा एवं सर्तकता– इस पद पर भारतीय पुलिस सेवा का एक अधिकारी प्रतिनियुक्ति पर कार्य करता रहा है। सेवानिवृत्त अधिकारी को भी इस पद पर नियुक्त किया जाता रहा है। निदेशक, सुरक्षा एवं सतर्कता की सहायता के लिए एक उपनिदेशक, सतर्कता कार्य करता रहा है जो कि राजस्थान पुलिस सेवा के अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक स्तर का अधिकारी होता था। ये अधिकारी अपने अधीनस्थ कार्मिकों की सहायता से विद्युत की चोरी को रोकने का कठिन कार्य निष्पादित करते रहे हैं तथा पावर हाऊस, ग्रिड सब-स्टेशन आदि पर सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध करते रहे हैं।

(2) सदस्य वित्त एवं लेखा– राजस्थान राज्य विद्युत मंडल का सदस्य (वित्त एवं लेखा) इस संगठन का एक पूर्णकालिक सदस्य रहा है। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय इस अधिकारी से परामर्श के आधार पर लिये जाते रहे हैं। इस अधिकारी के अधीन तीन अन्य अधिकारी कार्य करते थे :

(i) निदेशक, आंतरिक अंकेक्षण– जो कि मंडल के आंतरिक अंकेक्षण को निर्देशित करता था।

(ii) निदेशक, लेखा– जो कि बजट निर्माण एवं निष्पादन तथा लेखा से सम्बन्धित कार्य को निर्देशित करता था।

(iii) वित्तीय सलाहकार एवं लेखा निदेशक– यह अधिकारी मंडल के वित्तीय प्रशासन के नियंत्रण का महत्त्वपूर्ण उपकरण था तथा अधिकांश व्यय एवं निवेश इसकी राय से ही स्वीकृत किये जाते थे।

विभिन्न उच्चाधिकारियों को शक्तियों का आवश्यक प्रत्यायोजन किया जाता रहा है, किन्तु ऐसे कई मामले भी रहे हैं, जिन पर निर्णय के लिए सदस्य, वित्त एवं लेखा को अनुमोदन हेतु पत्रावलियाँ भेज दी जाती थीं। सदस्य, वित्त एवं लेखा के स्तर पर कतिपय निर्णय अन्तिम रूप से ले लिये जाते रहे जबकि नीतिगत एवं उच्च स्तरीय निर्णयों को अनुमोदन हेतु अध्यक्ष को भेज दिया जाता रहा है।

(3) सदस्य उत्पादन– सदस्य उत्पादन एक पूर्णकालिक सदस्य था जो कि सम्पूर्ण मंडल में विद्युत उत्पादन से सम्बन्धित कार्यों का निर्देशन एवं समन्वय करता रहा है। इसके अधीन निम्नलिखित अधिकरी कार्य करते थे :

(i) मुख्य अभियंता, तापीय डिजाइन निदेशालय– इस अधिकारी के अधीन तीन अधीक्षण अभियंता कार्यरत थे।

(ii) मुख्य अभियंता, पन एवं उत्पादन परियोजना– यह अधिकरी जयपुर स्थित कार्यालय का प्रमुख था जिसके अधीन चार अधीक्षण अभियंता कार्य करते थे। इनमें से तीन जयपुर क्षेत्र हेतु तथा एक अधीक्षण अभियंता उत्पादन कोटा में कार्यरत थे।

(iii) मुख्य अभियंता, कोटा तापीय परियोजना (निर्माण)– इन अभियंता के अधीन भी एक क्षेत्रीय कार्यालय था तथा यह कोटा तापीय परियोजना के निर्माण से सम्बन्धित कार्य का पर्यवेक्षण करता था। इसके अधीन एक मुख्य अभियंता तथा सात अधीक्षण अभियंता कार्य करते थे।

(iv) मुख्य अभियंता, कोटा तापीय परियोजना (परियोजना व संधारण)– यह अधिकारी भी कोटा तापीय परियोजना के परिचालन एवं संचालन से सम्बन्धित कार्य का निर्देशन करता था। इस प्रकार कोटा तापीय परियोजना में दो मुख्य अभियंता थे जो कि क्रमशः निर्माण तथा परिचालन व संचालन से सम्बन्धित थे। इस मुख्य अभियंता के अधीन एक अतिरिक्त मुख्य अभियंता, पाँच मुख्य अभियंता तथा पाँच उपमुख्य अभियंता कार्यरत थे, जिनकी सहायता 18 अधीक्षण अभियंता करते थे।

(v) मुख्य अभियंता, सूरतगढ़ तापीय परियोजना– इस परियोजना में उत्पादन 1998-99 में आरम्भ हुआ। इस परियोजना का प्रमुख मुख्य अभियंता रहा है जिसके अधीन एक उप मुख्य अभियंता तथा छः अधीक्षण अभियंता कार्यरत थे।

(vi) अतिरिक्त अभियंता, रामगढ़ गैस परियोजना– इस अधिकारी के अधीन दो अधीक्षण अभियंता कार्यरत थे।

(4) सदस्य, प्रसारण एवं वितरण– इस पूर्णकालिक सदस्य के अधीन दो प्रकार के अधिकारी थे। एक तो वे जो क्षेत्रीय अधिकारी थे और दूसरे वे जो विभिन्न विशिष्ट प्रकृति का उत्तरदायित्व वहन कर रहे थे।

सदस्य, उत्पादन एवं वितरण के अधीन कार्य कर रहे अधिकरी इस प्रकार थे :

(i) मुख्य अभियंता, मीटर एवं प्रोटेक्शन– इस अधिकारी के अधीन जयपुर, बीकानेर, भीलवाड़ा व जोधपुर में एक-एक अधीक्षण अभियंता कार्यरत था।

(ii) मुख्य अभियंता, सिविल– यह अधिकारी जयपुर में कार्यरत था तथा इसके अधीन एक निदेशक सिविल तथा चार अधीक्षण अभियंता नियुक्त थे। इन चार अधीक्षण अभियंताओं में से दो जयपुर तथा एक-एक बीकानेर व उदयपुर में कार्य कर रहे थे।

(iii) मुख्य अभियंता, सामग्री प्रबन्ध– इसकी सहायता के लिए एक उप मुख्य अभियंता कार्यरत था जिसकी सहायता के लिए पाँच अधीक्षक अभियंता विभिन्न उत्तरदायित्वों के लिए नियुक्त थे, जैसे– भण्डार नियंत्रण, सामग्री निरीक्षण, प्रक्योरमेन्ट आदि।

(iv) मुख्य अभियंता, ग्रामीण विद्युतीकरण एवं लोड डिस्पैच– इस अधिकारी की सहायता के लिए मुख्य अभियंता, लोड डिस्पैच नियुक्त था तथा दो अधीक्षण अभियंता सर्वे एवं जाँच तथा मोनिटरिंग का कार्य करते थे।

(v) मुख्य अभियंता, आयोजना, पर्यवेक्षण एवं अनुसंधान– इस अधिकारी की सहायता

चार अधीक्षण अभियंता करते थे जो कि अनुश्रवण, डिजाइन आदि से सम्बन्धित आवश्यक तकनीकी कार्य करते थे।

जोनल चीफ सदस्य, प्रसारण एवं वितरण के अधीन विद्युत मंडल में आठ जोनल चीफ, प्रसारण एवं वितरण, कार्यरत थे जो उप मुख्य अभियंता, अतिरिक्त मुख्य अभियंता अथवा मुख्य अभियंता स्तर के होते थे। जुलाई, 2000 में दो जोनल चीफ मुख्य अभियंता के स्तर के थे, दो अतिरिक्त मुख्य अभियंता स्तर के थे तथा चार उप मुख्य अभियंता स्तर के थे।

प्रत्येक जोनल चीफ, क्षेत्रीय कार्यालय का तकनीकी प्रमुख था। ये क्षेत्रीय कार्यालय इस प्रकार थे–

(1) जयपुर (2) झुंझनूं (इस क्षेत्र की स्थापना हाल ही में हुई थी।) (3) उदयपुर (4) जोधपुर (5) अजमेर (6) बीकानेर (7) अलवर। प्रत्येक जोनल चीफ की सहायता के लिए अधीक्षण अभियंता नियुक्त थे, जिनकी संख्या कार्यभार के अनुसार कम अथवा अधिक होती थी। जैसे जयपुर में तीन, झुंझनूं में दो, उदयपुर में तीन, जोधपुर में चार, अजमेर में तीन, बीकानेर में चार, अलवर में दो तथा कोटा में तीन अधीक्षण अभियंता नियुक्त थे।

स्पष्ट है कि राजस्थान राज्य विद्युत मंडल का संगठन अत्यधिक विशाल एवं विस्तृत था तथा इस मंडल की प्रशासनिक दक्षता केवल अध्यक्ष एवं सदस्यों पर ही नहीं अपितु उच्चतर स्तर के सभी तकनीकी प्रशासनिक एवं वित्तीय अधिकारियों पर निर्भर करती थी।

समीक्षा

एक विशाल संगठन की अपनी समस्याएँ होती हैं, विशेषतया उन संगठन में अधिक समस्याएँ होती हैं जो कि व्यापारिक प्रकृति का होते हुए भी राजनीतिक तंत्र के दबाव में हो। राजस्थान राज्य विद्युत मंडल पिछले कुछ वर्षों से भारत के उन राज्य विद्युत मंडलों में अपना स्थान बना पाया जिनमें प्रशासनिक दक्षता व विद्युत क्षमताओं की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। इसके बावजूद यह विद्युत मंडल घाटे में चल रहा था तथा इसकी वित्तीय स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती थी।

जुलाई, 2000 में राजस्थान राज्य विद्युत मंडल कतिपय समस्याओं का सामना कर रहा था, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं :

(1) राजस्थान की विद्युत की मांग हेतु आवश्यक उत्पादन राज्य में नहीं होना, अतः कई बार मंहगी दरों पर बिजली क्रय करनी पड़ती थी।

(2) ऊँची दर पर क्रय करने के बाद भी किसानों तथा घरेलू उपभोक्ताओं को लागत से काफी कम दर पर बिजली वितरित करनी पड़ती थी।

(3) 35 से 40 प्रतिशत बिजली की चोरी हो जाती थी तथा इस चोरी को रोकने में जन-सहयोग बहुत कम प्राप्त हो पाया।

(4) ग्रामीण विद्युतीकरण की अधिक आवश्यकता होने के कारण गाँवों में विद्युत यंत्रों व लाइनों का जाल बिछाना काफी महंगा होता है।

(5) कर्मचारियों की विशाल संख्या होते हुए भी उनकी उत्पादकता अपेक्षा से कम है। दूसरी ओर, उनके वेतन व भत्ते निरन्तर बढ़ते रहते हैं।

(6) निजी एवं विदेशी क्षेत्रों को विद्युत उत्पादन एवं वितरण के क्षेत्रों में नियंत्रण के बावजूद उनकी प्रतिक्रिया एवं प्रगति अधिक संतोषजनक नहीं रही।

अतः यह अनुभव किया गया कि राज्य विद्युत मंडल को अपने प्रबन्धकीय क्षमताओं में सुधार के प्रयास करने चाहिए। साथ ही इस बात पर भी बल दिया गया कि ऊर्जा की चोरी पर रोकथाम हो, संस्थापना व्यय में मितव्ययता हो, कार्मिकों की उत्पादकता में वृद्धि हो तथा इस हेतु श्रमिक संगठनों का सहयोग लिया जाए एवं निजी उपक्रमियों को विद्युत उत्पादन एवं वितरण के क्षेत्र में प्रवेश करने हेतु अभिप्रेरित किया जाए। दीर्घकालीन आवश्यकताओं को देखते हुए यह आवश्यक था कि अनुदान पर विद्युत वितरण की नीति की समीक्षा की जाए तथा विभिन्न राजनीतिक दलों एवं दबाव समूहों को विश्वास में लेकर एक ऐसी नीति बनाई जाए जिससे कि कृषकों व घरेलू उपभोक्ताओं को वितरित की जाने वाली विद्युत की दर विवेकसंगत हो। आवश्यकता इस बात की थी कि विद्युत मंडल एक दक्ष व्यापारिक संस्था के रूप में कार्य करे।

1994 में पूर्व मुख्य सचिव श्री गोपाल किशन भनोत की अध्यक्षता में गठित प्रशासनिक सुधार समिति ने राजस्थान राज्य विद्युत मंडल के सम्बन्ध में दक्षता एवं उत्पादकता अभिवृद्धि के मामलों में कतिपय महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की थी, जिसमें से मुख्य इस प्रकार हैं – अनौपचारिक आधार पर उच्चतम परामर्श समिति का गठन किया जाए; मंडल में वित्तीय एवं प्रशासनिक शक्तियों का प्रत्यायोजन अधिक किया जाए; भण्डार प्रबन्धन एवं सामग्री कार्य के लिए प्रवर्तन नियमावली तैयार की जाए; प्रशासन में कम्प्यूटर का अधिक उपयोग हो; नीवन कर्मचारियों की नियुक्तियों पर कुछ वर्ष रोक लगे; तकनीकी प्रशिक्षण के साथ-साथ प्रशासनिक प्रशिक्षण का विस्तार किया जाए; विद्युत दर निर्धारित करने में विद्युत मंडल को अधिक स्वतंत्रता दी जाए; विद्युत मंडल की बकाया राशि की वसूली राजस्व कार्मिकों के माध्यम से की जाए; ऊर्जा की चोरी को अधिक कठोरता से रोका जाये तथा जहाँ आवश्यक हो इन मामलों पर नियंत्रण एवं नियमंन के लिए चल मजिस्ट्रेट की व्यवस्था की जाए; ऊर्जा बचत हेतु अधिक शिक्षा, परिचर्चा तथा प्रसार हो; अधिक आधुनिक मीटरों का उपयोग हो; जन-शिकायतों को अधिक मुस्तैदी से निराकरण किया जाए; नये विद्युत कनेक्शनों को देने में अनावश्यक विलम्ब न हो; विद्युत लाइनों की देख-रेख हेतु अधिक कुशाग्रता हो तथा विद्युत उत्पादन एवं वितरण में निजी क्षेत्रों को अधिक प्रोत्साहित किया जाए।

विद्युत सुधार

भारत सरकार की विद्युत-क्षेत्रीय सुधारों के सम्बन्ध में नीति एवं विश्व बैंक की सिफारिशों के अनुरूप हाल ही में भारत के कई राज्यों में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं। राजस्थान में राजस्थान पावर सेक्टर सुधार अधिनियम, 1998 के अन्तर्गत राजस्थान राज्य विद्युत मंडल को भंग कर 9 जुलाई, 2000 से पाँच नवीन कम्पनियों को उसकी सम्पत्ति एवं दायित्व सौंप दिये गये। ये पाँच संगठन इस प्रकार हैं :

1. राजस्थान राज्य विद्युत उत्पादन निगम लिमिटेड

इस कम्पनी का मुख्य कार्य विद्युत के उत्पादन से सम्बन्धित है। इसके प्रशासनिक प्रमुख अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक हैं। मुख्य अभियंत्रा (ताप) डिजाइन विंग का कार्यालय जयपुर में स्थित है, जबकि कोटा ताप, सूरतगढ़ एवं रामगढ़ गैस उत्पादन केन्द्रों पर भी मुख्य अभियंता एवं उनका स्टाफ कार्य

करता है। अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक के अधीन एक सचिव एवं कतिपय सम्भाग हैं, जिनमें प्रमुख हैं– वित्त एवं अंकेक्षण, वाणिज्यिक, लेखा, नियोजन, कार्मिक एवं विधिक।

2. राजस्थान राज्य विद्युत प्रसारण निगम लिमिटेड

इस कम्पनी का मुख्य कार्य विद्युत की खरीद, प्रसारण एवं आपूर्ति है। यह कम्पनी भी एक अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक के अधीन कार्य करती है। इस उच्चतम अधिकारी के अधीन भी एक सचिव तथा अन्य सम्भाग हैं, जैसे नियोजन, वितरण, वित्त, वाणिज्यिक, लेखा, कार्मिक एवं सामग्री प्रबन्धन। विभिन्न विद्युत उत्पादन केन्द्रों से खरीदी विद्युत का परिपोषण कर वितरण कम्पनियों को विक्रय करने का उत्तरदायित्व इस कम्पनी का है।

वितरण कम्पनियाँ

उपरोक्त दो मुख्य कम्पनियों के अतिरिक्त तीन विद्युत वितरण कम्पनियाँ भी गठित की गई हैं। ये हैं:

1. जयपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड
2. जोधपुर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड
3. अजमेर विद्युत वितरण निगम लिमिटेड

जयपुर वितरण कम्पनी के क्षेत्राधिकार में जयपुर, अलवर, भरतपुर, दौसा, झालावाड़, कोटा तथा सवाईमाधोपुर के क्षेत्र आते हैं। जोधपुर वितरण कम्पनी के क्षेत्र में जोधपुर, पाली, बाड़मेर, चूरू, हनुमानगढ़, श्रीगंगानगर तथा बीकानेर के क्षेत्र आते हैं। अजमेर [illegible]रण कम्पनी के क्षेत्राधिकार में अजमेर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, बांसवाड़ा, नागौर, सीकर तथा झुन्झनूं के क्षेत्र आते हैं।

उपरोक्त तीनों कम्पनियों के अध्यक्ष एक आई.ए.एस. अधिकारी हैं। प्रत्येक कम्पनी का एक पृथक् प्रबन्ध निदेशक है। जयपुर तथा जोधपुर की कम्पनी के प्रबन्ध निदेशक अभियंता हैं जबकि अजमेर की कम्पनी के प्रबन्ध निदेशक एक आई.ए.एस. अधिकारी है। प्रत्येक कम्पनी में एक मुख्य अभियंता (परिचालन) होता है। साथ ही, प्रत्येक कम्पनी में वित्त एवं अंकेक्षण, वाणिज्यिक, नियोजन, कार्मिक, सामग्री-प्रबन्धन, विधिक एवं सिविल विषयों के सम्भाग होते हैं।

उपरोक्त व्यवस्था को लागू हुए कई वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु 2005 के आरम्भ तक इन पाँच कम्पनियों के बीच समन्वय का कार्य अभी अधूरा है। कम्पनियों के बीच कार्य, कार्मिकों, एवं सम्पत्ति के बंटवारे के बारे में पूर्ण समन्वय अभी तक नहीं हो पाया है। आवश्यकता इस बात की है कि इन प्रश्नों पर सरकार अपना रुख स्पष्ट कर पाँचों संस्थाओं के बीच सम्बन्धों की अस्पष्टता को दूर करे तथा इन संस्थाओं की एक शीर्ष समन्वयक संस्था का निर्माण किया जाए।

उल्लेखनीय है कि 1 जनवरी, 2000 से वितरित की जाने वाली विद्युत की विभिन्न वर्गों – उद्योग, कृषि एवं गृह-कार्य के लिए दरों का निर्धारण अब सरकार नहीं करती किन्तु एक स्वायत्त संस्था करती है जिसका नाम **राजस्थान विद्युत नियामकीय आयोग** है। इसके एक अध्यक्ष तथा तीन अन्य सदस्य हैं। यह आयोग समय-समय पर विद्युत दरों का निर्धारण करेगा तथा उन्हीं दरों पर विद्युत कम्पनियों को विद्युत विक्रय करनी पड़ेगी।

आगे आने वाले काल में विद्युत सुधारों की प्रभाविता के परिणाम समक्ष आएंगे, तभी वर्तमान व्यवस्था का वास्तविक मूल्यांकन तथा तदनुकूल संशोधन के अवसर प्रस्तुत होंगे।

□□□

अध्याय 12

कृषि निदेशालय

भारतवर्ष की 10 प्रतिशत भूमि पर बसे राजस्थान प्रदेश की विडम्बना है कि यहाँ देश की केवल 1 प्रतिशत वर्षा ही होती है। राज्य का लगभग दो-तिहाई क्षेत्र मरुस्थलीय होने के कारण आर्थिक दृष्टि से इस राज्य का पिछड़ा हुआ होना स्वाभाविक है। राज्य में कृषि अधिकांशतः वर्षा पर निर्भर है, यद्यपि सिंचाई की सुविधाओं के क्षेत्र में यहाँ उल्लेखनीय प्रगति हुई है तथापि हर वर्ष यहाँ कम एवं असमान वर्षा के कारण सूखे की स्थिति बनी रहती है, जिसका प्रभाव असिंचित फसलों के उत्पादन पर पड़ता है।

विकट प्राकृतिक परिस्थितियों के बावजूद राजस्थान उन राज्यों में से एक है जहाँ कृषि उत्पादन के क्षेत्र में हरित क्रांति के माध्यम से विभिन्न वैकासिक योजनाओं एवं कार्यक्रमों का सफलतापूर्वक निष्पादन हुआ है। राज्य में खरीफ फसलें सामान्यतया 120 लाख हैक्टर क्षेत्र में बोयी जाती हैं, इनमें से 70 प्रतिशत क्षेत्र में खाद्यान्न, 8 प्रतिशत क्षेत्र में तिलहन, 4 प्रतिशत क्षेत्र में कपास व गन्ना एवं शेष 18 प्रतिशत क्षेत्र में अन्य फसलें बोयी जाती हैं। खरीफ की फसलों में मुख्यतया ज्वार, बाजरा, मक्का, मौंठ, मूँग, उड़द, तिल, मूंगफली, सोयाबीन एवं कपास सम्मिलित हैं। राज्य में रबी फसलों की बुवाई सामान्यतया 78 से 80 लाख हैक्टर क्षेत्र में की जाती है जिसमें लगभग 45 लाख हैक्टर क्षेत्र सिंचित है। रबी में मुख्यतः गेहूँ, जौ, चना, राई, सरसों, धनिया, जीरा व मैथी की बुवाई की जाती है।

स्थापना

राजस्थान में सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र को विकसित करने, कृषि से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करने, किसानों को तकनीकी ज्ञान उपलब्ध कराने, उनको कृषि उत्पादन एवं वितरण में सहायता प्रदान करने एवं खाद्यान्न के उत्पादन पर विशिष्ट ध्यान देने के उद्देश्य से राजस्थान में 1949 में कृषि निदेशालय स्थापित किया गया। 1949 से लेकर अब तक कृषि के क्षेत्र में हुई सर्वांगीण प्रगति के फलस्वरूप सम्बन्धित प्रशासनिक एवं तकनीकी संस्थाओं में निरन्तर वृद्धि होती रही है, तथापि कृषि निदेशालय का इस सम्पूर्ण व्यवस्था में केन्द्रीय स्थान ही रहा है। आरम्भ में कृषि विभाग कृषि से सम्बन्धित कई सम्बद्ध कार्यों का भी निर्वाह करता था, किन्तु विशिष्टीकरण एवं कार्यों के भार की वृद्धि के साथ-साथ यह स्वाभाविक था कि विशिष्ट विषयों से सम्बन्धित

पृथक् संस्थाओं का निर्माण किया जाए। कालान्तर में कृषि से सम्बन्धित क्षेत्रों से जुड़े संगठनों की रचना राजस्थान राज्य में की गई। वर्तमान में कृषि निदेशालय के अतिरिक्त एक विस्तृत राजस्थान राज्य कृषि विपणन मंडल भी कार्य कर रहा है जिसकी स्थापना 1980 में की गई। यह मंडल किसानों को उनकी उपज के विपणन एवं विक्रय में आवश्यक सहायता उपलब्ध कराता है तथा कृषि मण्डियों का पर्यवेक्षण करता है। 1990 में एक पृथक् उद्यान निदेशालय की स्थापना की गई जो कि राजस्थान के विभिन्न उद्यानों के विकास को दिशा प्रदान करने के अतिरिक्त उनके विकास में योगदान कर रहा है। 1991 में राज्य में जल ग्रहण क्षेत्र विकास एवं भू-संरक्षण निदेशालय की स्थापना की गई जिसने अल्पकाल में ही भारतवर्ष में अपना एक अनूठा स्थान बना लिया है। इन विभिन्न स्वतंत्र निदेशालयों के निर्माण के साथ ही कृषि निदेशालय का कार्य कुछ कम हुआ है किन्तु यह उल्लेखनीय है कि इस निदेशालय के इस क्षेत्र में समन्वयात्मक कार्य का महत्त्व अभी बना हुआ है।

उपरोकत चार निदेशालयों के अतिरिक्त कृषि से सम्बन्धित तीन सहायक संस्थाएँ भी कार्य कर रही हैं, वे हैं– राजस्थान राज्य बीज निगम, राजस्थान राज्य भूमि विकास निगम तथा राजस्थान राज्य विपणन मंडल। इनके अतिरिक्त एक कृषि सांख्यिकी कार्यालय भी कार्यरत है जो कि कृषि से सम्बन्धित आंकड़ों का संग्रहण एवं विश्लेषण करता है।

भूमिका एवं कार्य

राजस्थान राज्य में कृषि के विकास एवं प्रबन्धन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व कृषि विभाग का ही है। पिछले पाँच दशकों में इस विभाग ने वैकासिक दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी भूमिका निभाई है। इसी कारण कृषि निदेशालय के संगठन का विस्तार शनैः-शनैः होता रहा है तथा आज यह राजस्थान राज्य के सर्वाधिक विस्तृत एवं व्यापक संगठनों में से एक है। संक्षेप में कृषि निदेशालय के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं :

1. कृषि नीति निर्माण एवं कार्यान्वयन में योगदान

यद्यपि राजस्थान की कृषि नीति का निरूपण राष्ट्रीय कृषि नीति के अनुरूप होता है, किन्तु राजस्थान की विशिष्ट आवश्यकताओं एवं साधनों को ध्यान में रखते हुए राज्य की कृषि नीति के निरूपण का मुख्य दायित्व राजस्थान राज्य के सचिवालय में स्थित कृषि उत्पादन विभाग का है। यह विभाग कृषि निदेशालय तथा अन्य सम्बन्धित संगठनों द्वारा प्रदत्त आंकड़ों, सुझावों एवं विचारों के आधार पर नीति निरूपित करता है। कृषि निदेशालय के अधिकारी इस प्रक्रिया से निकट रूप से जुड़े रहते हैं।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान राज्य की नवीन कृषि नीति का मसविदा तैयार है तथा उसे विमर्श के लिए केन्द्र सरकार के पास भिजवाया गया है। इस नीति के निरूपण से सम्पूर्ण कृषि क्षेत्र में सर्वांगीण विकास को संबल प्राप्त होगा।

कृषि नीति के निष्पादन का दायित्व मुख्यतः कृषि निदेशालय एवं अन्य सम्बन्धित संस्थाओं का है जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। परन्तु यह स्पष्ट है कि कृषि नीति के कार्यान्वयन की मुख्य जिम्मेदारी कृषि निदेशालय की है जो कि अपनी क्षेत्रीय एवं विकेन्द्रित संस्थाओं के माध्यम से इसको मूर्त रूप प्रदान करता है। ऐसा देखा गया है कि कृषि नीति के क्रियान्वयन के समय कई व्यावहारिक कठिनाइयाँ आती हैं जो कि संसाधनों की कमी के अतिरिक्त जमीन से जुड़ी व्यावहारिक

समस्याओं से सम्बन्धित होती हैं। प्राकृतिक साधनों पर निर्भर रहने वाली कृषि वर्ष भर में कई अनिश्चिततओं का सामना करती है। फलस्वरूप, कई ऐसे अवसर आते हैं जबकि कृषि निदेशालय के अधिकारियों को कृषि नीति के निष्पादन के दौरान दिशा-निर्देश की आवश्यकता पड़ती है। परिणामस्वरूप कृषि नीति में समन्जन एवं समायोजन समय-समय पर आवश्यक बन जाता है।

2. कृषि उत्पादन से सम्बन्धित समन्वय सम्बन्धी कार्य

कृषि उत्पादन की प्रक्रिया इतनी अधिक जटिल है कि कई केन्द्रीय, राज्यीय, जिला एवं स्थानीय स्तर के संगठनों की पारस्परिक अन्तःक्रिया एवं समन्वय के माध्यम से ही यह महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हो पाता है। किसी भी क्षेत्र में अन्तर-सांस्थानिक समन्वय के अभाव में कृषि उत्पादकता पर विषम प्रभाव पड़ता है। इस सम्पूर्ण समन्वय का भार या तो सचिवालय स्थित कृषि विभाग पर पड़ता है अथवा कृषि निदेशालय पर। तकनीकी संस्था होने के कारण कृषि निदेशालय की समन्वयक भूमिका और अधिक बढ़ जाती है। विभिन्न योजनाओं को निरूपित करने, उन्हें स्वीकृत कराने तथा उन्हें निष्पादित करने हेतु वित्तीय साधन उपलब्ध कराने हेतु कृषि निदेशालय को विश्व बैंक, विश्व खाद्य संगठन, केन्द्रीय सरकार के कृषि मंत्रालय, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, योजना आयोग एवं भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् आदि से निरन्तर समन्वय स्थापित करना पड़ता है। राज्य स्तरीय कृषि उत्पादन कार्यक्रमों के सम्बन्ध में इस निदेशालय को राज्य शासन सचिवालय के कृषि उत्पादन विभाग, वित्त विभाग, सिंचाई विभाग, आयोजना विभाग, विशिष्ट योजना एवं एकीकृत ग्रामीण विकास विभाग, ग्रामीण योजना एवं पंचायती राज विभाग, शिक्षा विभाग, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय तथा अन्य सम्बन्धित संगठनों से निरन्तर सम्पर्क रखना पड़ता है। इनके अतिरिक्त, इंदिरा गांधी नहर परियोजना, उद्यान विभाग, मत्स्य निदेशालय, वन विभाग, राजस्थान कृषि उद्योग निगम, विभिन्न शोध संस्थाओं तथा जनसम्पर्क निदेशालय से भी निरन्तर एवं निकट सम्पर्क बनाए रखना पड़ता है। इस क्षेत्र में समन्वयं कई समितियों तथा बैठकों के माध्यम से सम्पन्न किया जाता है। सामान्यतया ये समितियाँ अन्तर-विभागीय होती हैं जिससे कि सभी सम्बन्धित संस्थाएँ मिलकर पारस्परिक हित के संवर्द्धन हेतु विचार-विमर्श के माध्यम से आवश्यक निर्णय ले सकें।

3. कृषि विस्तार

राज्य में 1 जनवरी, 1993 से संशोधित कृषि विस्तार परियोजना लागू की गई जिसके अन्तर्गत तकनीकी ज्ञान के हस्तान्तरण एवं सम्बन्धित प्रशिक्षण पर भरपूर बल दिया गया है। इस परियोजना के अन्तर्गत प्रत्येक गांव में प्रगतिशील कृषकों को प्रतिनिधित्व किसान मंडलों के माध्यम से दिया जाता है। साथ ही प्रत्येक कृषि पर्यवेक्षण, सहायक कृषि अधिकारी मुख्यालय, सहायक निदेशक कृषि (विस्तार) मुख्यालय एवं जिला मुख्यालय पर एक-एक किसान सेवा केन्द्र का गठन किया गया है जिनके माध्यम से किसानों को कृषि उत्पादन एवं सम्बन्धित क्षेत्रों के सम्बन्ध में नवीन जानकारी प्रदान की जाती है। इनके अतिरिक्त कृषि विभाग द्वारा एक दिवसीय महिला प्रशिक्षण, छः दिवसीय कृषि महिला प्रशिक्षण तथा विभिन्न फसलों के उत्पादन से सम्बन्धित प्रशिक्षण विभिन्न केन्द्रों पर आयोजित किये जाते हैं। इन सभी प्रयासों के कारण राजस्थान में कृषि उत्पादन में नई तकनीकों के विकास को प्रेरणा मिली है।

4. कृषि शिक्षा एवं कृषि सूचना

राजस्थान में उच्चतर कृषि शिक्षा का उत्तरदायित्व राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय पर है जो बीकानेर में स्थित है, किन्तु मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, जोबनेर, जयपुर तथा अन्य केन्द्रों पर कृषि शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर कार्यक्रम एवं पाठ्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। कृषि विभाग का यह उत्तरदायित्व है कि वह इस क्षेत्र में कृषि शिक्षण संस्थाओं से निरन्तर सम्पर्क रख उनके पाठ्यक्रमों में परिवर्तन हेतु सुझाव दे तथा इन संस्थाओं में आयोजित किए जाने वाले पाठ्यक्रमों के व्यावहारिक पक्ष को अधिक सुदृढ़ बनाए।

राज्य के कृषकों को निरन्तर शिक्षित एवं सूचित करने का उत्तरदायित्व भी कृषि विभाग का ही है। कृषि निदेशालय ने सूचना-संचार क्षमता के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति अर्जित की है। विभिन्न संचार विधाओं तथा मुद्रण, श्रव्य, दृश्य, वीडियो आदि साधनों को आधुनिकतम स्वरूप प्रदान करने के अतिरिक्त खण्ड व जिला स्तर पर लघु सूचना इकाइयों की स्थापना की गई है। उप जिला स्तर पर कृषि तकनीकी के प्रसार एवं विस्तार को कर्मचारियों के प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बनाया गया है। इनके अतिरिक्त तकनीकी साहित्य का प्रकाशन भी सरल भाषा एवं आकर्षक रूप में किया जाता है। प्रदर्शनियाँ, छाया चित्रण तथा *राजस्थान कृषि समाचार* आदि माध्यमों से कृषकों को निरन्तर शिक्षित किया जाता है।

5. कृषि उपकरण वितरण

कृषि उत्पादन में आधुनिक कृषि यंत्रों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। राजस्थान का कृषि निदेशालय तिलहन उत्पादन कार्यक्रम, राष्ट्रीय दलहन विकास कार्यक्रम, समन्वित अनाज विकास कार्यक्रम तथा ट्रैक्टर योजना के अन्तर्गत विभिन्न जिलों में कृषकों को अनुदानित आदानों पर कृषि यंत्र एवं उपकरण उपलब्ध कराता है। इनके अतिरिक्त उन्नत बीज तथा उर्वरकों के वितरण में कृषि निदेशालय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा साथ ही वह विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से उच्च कोटि की कीटनाशक दवाओं के वितरण को भी सुलभ कराता है। यह उल्लेखनीय है कि उच्चतर उत्पादकता को संभव बनाने वाले बीजों, रसायनों एवं उपकरणों के व्यवस्थित वितरण के क्षेत्र में इस विभाग की अग्रणी भूमिका के फलस्वरूप ही हरित क्रान्ति संभव हो सकी। अब जबकि भारत द्वितीय हरित क्रान्ति के कगार पर खड़ा है इस क्षेत्र में कृषि निदेशालय की भूमिका और अधिक विकसित होने की आशा है।

6. कृषि अनुसंधान एवं गुणात्मकता नियंत्रण

निरन्तर प्रगति एवं समुन्नति के माध्यम से ही कृषि जैसे वैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रभाविता एवं उत्पादकता की वृद्धि संभव है। राजस्थान का कृषि निदेशालय, कृषि अनुसंधान एवं गुणात्मकता नियंत्रण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। दुर्गापुरा स्थित प्रयोगशाला में जीवाणु खाद के उत्पादन पर गुणात्मक नियंत्रण किया जाता है। उल्लेखनीय है कि यह प्रयोगशाला भारतीय मानक संस्थान द्वारा जीवाणु खाद का विश्लेषण करने हेतु मान्यता प्राप्त संस्थान है।

बीज, उर्वरक तथा कीटनाशक औषधियों में मिलावट को रोकने के लिए निरूपित कानूनों को लागू करने का उत्तरदायित्व कृषि निदेशालय का ही है। राज्य के कृषि निदेशक को उर्वरक, बीज

तथा कीटनाशक औषधियों के लिए मुख्य निरीक्षक माना गया है। इस निदेशालय द्वारा जिला स्तरीय अधिकारियों को लाइसेंसिंग के अधिकार दिये गये हैं। विभाग में 172 बीज निरीक्षक, 172 उर्वरक निरीक्षक तथा 192 कीटनाशक औषधियों के निरीक्षक नियुक्त किये गये हैं। राजस्थान में कीटनाशक औषधियों की जयपुर एवं बीकानेर में प्रयोगशाला स्थित है। उर्वरक प्रयोगशालाएँ जयपुर, जोधपुर एवं उदयपुर में स्थित हैं एवं बीज प्रयोगशालाएँ जयपुर, श्रीगंगानगर, कोटा एवं चित्तौड़ में स्थित हैं। इन प्रयोगशालाओं ने राजस्थान में कृषि-आदान की गुणात्मकता को सुनिश्चित करने में यथेष्ट भूमिका निभाई है।

कृषि अनुसंधान का वृहत्तर दायित्व तो कृषि विश्वविद्यालय का है। किसानों को इन अनुसंधानों का लाभ प्रदान करने हेतु कतिपय स्थानीय परीक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं। ''कृषि सह परीक्षण कार्यक्रम'' के अन्तर्गत तबीजी फार्म (अजमेर), दतपुर (बूँदी), मलिकपुर (भरतपुर), रामपुरा (जोधपुर), सुमेरपुर (पाली), श्रीकरणपुर (श्रीगंगानगर) तथा चित्तौड़गढ़ में कृषिगाह परीक्षण केन्द्र स्थापित किये गये हैं।

उल्लेखनीय है कि कृषि विभाग द्वारा कृषि कार्यक्रमों से सम्बन्धित प्रबोधन एवं मूल्यांकन सर्वेक्षण निरन्तर आयोजित किये जाते हैं। प्रबोधन सर्वेक्षणों द्वारा प्रसार कार्यक्रमों की गतिविधियों का आकलन किया जाता है तथा मूल्यांकन सर्वेक्षण द्वारा कृषकों को हुए लाभ का भी आकलन किया जाता है। कम्प्यूटरीकरण के माध्यम से वर्षा एवं फसलों की स्थिति की समीक्षा, भौतिक एवं वित्तीय प्रगति की मासिक समीक्षा, प्रबन्धकीय सूचनाओं का संकलन तथा अन्य अनुसंधान एवं सूचना एकत्रण सम्बन्धी क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। इनके माध्यम से कृषि निदेशालय द्वारा मोनिटरिंग तथा नियंत्रण अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

7. कृषि योजनाओं तथा कार्यक्रमों का निष्पादन

राजस्थान कृषि विभाग द्वारा कृषि के विकास एवं विस्तार से सम्बन्धित तीन प्रकार की योजनाएँ हैं– पहली वे जो अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा स्वीकृत हैं। इन अन्तर्राष्ट्रीय विकास परियोजनाओं की स्वीकृति में केन्द्रीय सरकार के कृषि मंत्रालय तथा अन्य सम्बन्धित संस्थाओं की भी समन्वयक भूमिका रहती है। उदाहरणार्थ विश्व बैंक द्वारा समर्थित परियोजना 1992-93 में ''सर्वांगीण कृषि विकास योजना'' आरम्भ की गई जिसकी अवधि पाँच वर्ष थी। इस परियोजना में फसल उत्पादन, भूमि सुधार, जल विकास, चारा विकास, फल एवं सब्जी विकास, भू-जल उपयोग, सिंचाई व्यवस्था, पशुपालन, मछली पालन, सहकारिता आदि कार्यक्रम सम्मिलित किए गये हैं। इस परियोजना में उन्नत तकनीक, वित्तीय एवं आर्थिक क्षमता की वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों का उपयुक्त प्रबन्ध एवं संरक्षण तथा विकास की गति में महिलाओं की भागीदारी आदि मुख्य आयाम हैं। दूसरे कार्यक्रम वे हैं जिन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर संचालित किया जाता है तथा जिनके निष्पादन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों को दिया गया है।

जहाँ तक केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रवर्द्धित योजना का प्रश्न है, ये योजनाएँ एवं परियोजनाएँ समय-समय पर निर्मित एवं संशोधित होती रहती हैं। कुछ केन्द्रीय कृषि विकास कार्यक्रम इस प्रकार हैं– बीज विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय तिलहन विकास कार्यक्रम, दलहन विकास कार्यक्रम, गन्ना विकास कार्यक्रम, त्वरित मक्का विकास कार्यक्रम, बायो कैमिस्ट्री विकास कार्यक्रम एवं समेकित

बीज विकास कार्यक्रम। उल्लेखनीय है कि इन कार्यक्रमों के निष्पादन के अतिरिक्त राजस्थान राज्य को केन्द्रीय सरकार से बड़ी मात्रा में संसाधन प्राप्त होते हैं जिनका उपयोग इन विशिष्ट कार्यक्रमों के निष्पादन में किया जाता है। राज्य सरकार को यह स्वतंत्रता नहीं होती कि वे इन कार्यक्रमों के लिए प्राप्त राशि का अन्य कार्यक्रमों के निष्पादन में समायोजन कर सके। अतः कई बार राज्य सरकार को इस कार्यक्रम को लागू करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा है। किन्तु फिर भी यह स्पष्ट है कि इन विभिन्न केन्द्रीय कार्यक्रमों के फलस्वरूप ही राजस्थान जैसा राज्य कृषि के क्षेत्र में भरपूर प्रगति कर सका है।

तीसरे वे कार्यक्रम हैं जो राजस्थान सरकार के द्वारा निरूपित एवं नियंत्रित हैं। इनकी संख्या बहुत बड़ी है और ये कृषि विकास के लगभग सभी तकनीकी व प्रबन्धकीय पहलुओं से सम्बन्धित हैं। मुख्य रूप से ये कार्यक्रम शुष्क खेती, पौध विक्रय, पौध संरक्षण, कृषि अनुसंधान, कृषि विज्ञान (एग्रोनोमी), कृषि रसायन, खाद्य, कृषि अभियांत्रिकी, कृषि आदान, प्रशिक्षण, बीज प्रशिक्षण एवं अन्य सम्बन्धित विषयों से जुड़े हुए हैं। देखा जाए तो कृषि विस्तार एक सम्पूर्ण विषय के रूप में इतना विस्तृत हो गया है कि कृषि निदेशालय के कार्यों को पूर्णतया सूचीबद्ध किया जाना कठिन है।

8. प्रशासनिक कार्य

राज्य सरकार का कृषि निदेशालय पिछले लगभग 50 वर्षों से प्रशासन से सम्बन्धित बहुआयामी कार्य सम्पन्न कर रहा है। लगभग 8,000 अधिकारी, विशेषज्ञ तथा कर्मचारियों से सम्पन्न कृषि निदेशालय निश्चित रूप से एक विशाल प्रशासनिक संगठनों में से एक है। एक प्रशासनिक संगठन की कुशाग्रता एवं कुशलता मूलतः इस बात पर निर्भर करती है कि उसका आन्तरिक प्रशासन किस सीमा तक व्यवस्थित है।

कृषि निदेशालय अपना आन्तरिक प्रशासन से सम्बन्धित वह सभी कार्य सम्पन्न करता है जो कि प्रशासनिक संगठन के लिए अपेक्षित एवं अनिवार्य है। इन कार्यों में मुख्य रूप से हैं– कृषि विकास से सम्बन्धित योजनाओं का निर्माण, निष्पादन एवं मूल्यांकन; विभिन्न अधिकारियों के बीच कार्यों का स्पष्ट विभाजन एवं समन्वय; कार्मिक प्रबन्धन कार्य जैसे– जन-शक्ति नियोजन, भर्ती, पदोन्नति, निष्पत्ति-मूल्यांकन, प्रशिक्षण, वेतन, भत्ते, सुविधाएँ, अनुशासन, विभागीय बजट निरूपण एवं प्रशासन, लेखांकन, आन्तरिक अंकेक्षण, कृषि सांख्यिकी एवं सूचनातंत्र; जनसम्पर्क एवं प्रशासनिक कार्यों की गुणात्मकता सुनिश्चित करना।

ऐसा देखा गया है कि कृषि निदेशालय के उच्च प्रशासनिक अधिकारी अधिकांशतया प्रशासनिक कार्यों की जटिलताओं में फँस जाते हैं तथा कृषि के विकास हेतु रचनात्मक दिशा-निर्देशों के लिए आवश्यक एकाग्रता का अभाव हो जाता है। वास्तव में सरकारी संस्थाओं में नियमित (रुटीन) प्रशासनिक कार्य इतने बढ़ गये हैं कि रचनात्मक क्रियाओं से जुड़े पहलू दब से जाते हैं।

संगठन

राजस्थान सरकार के कृषि निदेशालय का प्रमुख कृषि निदेशक होता है। अपनी स्थापना के तीन दशकों से अधिक काल तक कृषि निदेशालय का प्रमुख एक विशेषज्ञ हुआ करता था। वास्तव में यह

स्वाभाविक ही था कि कृषि जैसे एक जटिल एवं विशिष्टीकृत विषय का प्रशासन ऐसे व्यक्ति की देख-रेख में किया जाये जो कि कृषि उत्पादन के विभिन्न आयामों से जुड़े पहलुओं को गहराई से समझता हो। किन्तु आज से लगभग डेढ़ दशक पूर्व राज्य कृषि सेवा के अधिकारियों की वरिष्ठता के प्रश्न पर मतभेद होने के कारण भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक वरिष्ठ अधिकारी को इस पद पर आसीन किया गया। कुछ अन्तराल के बाद 1983 से भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी ही कृषि निदेशक के रूप में कार्य कर रहे हैं। भारत के अधिकांश राज्यों में स्थिति इसके विपरीत है। किन्तु अनुभव यह बताता है कि कृषि विभाग के विशेषज्ञों ने इस नई स्थिति को स्वीकार लिया है एवं सामान्य प्रशासकों एवं विशेषज्ञों के बीच कोई संघर्ष एवं विरोध उत्पन्न नहीं हुआ है।

कृषि निदेशक कृषि निदेशालय से सम्बन्धित सभी प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करता है जैसे– नियोजन, बजट प्रशासन, वित्त प्रबन्धन, कार्मिक प्रशासन, कार्य विभाजन, पर्यवेक्षण, नियंत्रण, समन्वय, जनसम्पर्क आदि। किन्तु इस अधिकारी का एक मुख्य दायित्व कुशल नेतृत्व प्रदान करना है जो कि सम्पूर्ण कृषि निदेशालय को दिशा-निर्देश देना एवं उसके कार्मिकों में अभिप्रेरणा का संचार करने से सम्बन्धित है। एक विशाल संगठन के प्रशासन की अपनी समस्याएँ होती हैं तथा इन समस्याओं का समाधान अकेले निदेशक द्वारा संभव नहीं हो सकता। फलस्वरूप, कृषि निदेशालय की प्रवीणता, उसके निदेशक एवं उसकी ''टीम'' पर निर्भर करती है।

कृषि निदेशक की सहायता के लिए चार अतिरिक्त निदेशक हैं जो क्रमशः आदान, विस्तार एवं अनुसंधान से सम्बन्धित हैं। इनके अतिरिक्त एक निदेशक प्रशिक्षण से सम्बन्धित है।

अगली कड़ी में संयुक्त निदेशक आते हैं जो कृषि विज्ञान, प्रशासन, नियोजन, विस्तार, पौध संरक्षण, तिलहन, दलहन, सांख्यिकी, रसायन, सूचना, प्रबन्धन आदि से सम्बन्धित हैं। इन संयुक्त निदेशकों की नियुक्ति मुख्यालय में होती है। इनके अतिरिक्त कई क्षेत्रीय स्तर के संयुक्त निदेशक हैं जिनकी चर्चा नीचे की जा रही है।

संयुक्त निदेशकों के नीचे उप निदेशक एवं कई समकक्ष अधिकारी हैं। कृषि निदेशालय के मुख्यालय में जिन-जिन विषयों के लिए पृथक् उप-निदेशक नियुक्त किया गया है, वे हैं– प्रशासन, नियोजन, खाद्य, सांख्यिकी, विस्तार, अभियांत्रिकी, कृषि शास्त्र इत्यादि। इन अधिकारियों के नीचे सहायक निदेशक नियुक्त किये गये हैं जो कि प्रशासन, नियोजन, पौध संरक्षण, सांख्यिकी, सूचना इत्यादि से सम्बन्धित कार्य सम्पादित करते हैं। सहायक निदेशक के नीचे विषय विशेषज्ञ कार्य करते हैं जो कि अधिकांशतया क्षेत्रीय स्तर पर भी होते हैं।

कृषि निदेशालय का मुख्यालय आठ खण्डों में विभक्त है :

1. **परियोजना निर्माण सांख्यिकी एवं प्रबोधन खण्ड**, जो अतिरिक्त निदेशक (अनुसंधान) के अधीन कार्य करता है।
2. **अनुसंधान एवं प्रयोगशाला खण्ड**, जो अतिरिक्त निदेशक (अनुसंधान) के अधीन कार्य करता है।
3. **आदान खण्ड**, जो अतिरिक्त निदेशक (आदान) के अधीन कार्य करता है।

4. **प्रशिक्षण खण्ड**, जो अतिरिक्त निदेशक (प्रशिक्षण) के अधीन कार्य करता है। वह कृषि विभागीय प्रशिक्षण केन्द्र का प्राचार्य भी है।
5. **विस्तार खण्ड**, जो अतिरिक्त निदेशक (विस्तार) के निर्देशन में कार्य करता है।
6. **वित्त खण्ड**, जो मुख्यलेखाधिकारी के पर्यवेक्षण में कार्य करता है।
7. **केन्द्रीय प्रवर्तित योजना खण्ड**, जो संयुक्त निदेशक (योजना) के अधीन कार्यरत है।
8. **प्रशासनिक खण्ड**, जो संयुक्त निदेशक (प्रशासन) के अधीन कार्य करता है।

अतः स्पष्ट है कि अनुसंधान एवं प्रयोगशाला खण्ड तथा परियोजना निर्माण, सांख्यिकी, प्रबोधन खण्ड दोनों ही अतिरिक्त निदेशक (अनुसंधान) के अधीन कार्य करते हैं।

क्षेत्रीय स्तर

अन्य विभागों की भाँति कृषि निदेशालय में भी अधीनस्थ श्रेणी के कई अधिकारी नियुक्त हैं, जैसे– सहायक कृषि अधिकारी, सहायक कृषि अनुसंधान अधिकारी, लेखाकार, कृषि विशेषज्ञ, अन्वेक्षक, कनिष्ठ लेखाकार तथा मंत्रालयिक व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी।

कृषि निदेशालय जैसे विकासशील विभाग का विस्तार क्षेत्रीय एवं स्थानीय स्तर पर होना स्वाभाविक है। इस दृष्टि से समस्त राजस्थान को सात क्षेत्रों में बांटा गया है। यह सात क्षेत्र पृष्ठ–155 व 156 पर दिये गये हैं :

प्रत्येक क्षेत्र एक संयुक्त निदेशक के अधीन कार्य करता है जो कि कृषि निदेशक के द्वारा किये गये दिशा-निर्देशों एवं पर्यवेक्षण के अनुसार कार्य करता है। प्रत्येक संयुक्त निदेशक के अधीन सामान्यतः उप-निदेशक कार्य करते हैं जो कि शुष्क कृषि केन्द्र के प्रभारी होते हैं। इनके नीचे कृषि अनुसंधान अधिकारी कार्य करते हैं जो कि पौध व्याधि एवं कीट विषय के प्रभारी होते हैं। उल्लेखनीय है कि कृषि अनुसंधान अधिकारी सहायक निदेशक के समकक्ष होते हैं। सभी क्षेत्रों में एक सहायक निदेशक (पौध संरक्षण) नियुक्त होता है तथा एक सहायक निदेशक क्षेत्रीय स्तर पर सांख्यिकी से सम्बन्धित कार्य सम्पन्न करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में कृषि अधिकारी की नियुक्ति की गई है।

जिला स्तर

कृषि निदेशालय अपने जिला स्तरीय प्रशासकीय तन्त्र के माध्यम से सम्पूर्ण राज्य में फैला हुआ है। राज्य के प्रत्येक जिले में जिला कृषि अधिकारी नियुक्त हैं। विभिन्न जिला कृषि अधिकारियों का पर्यवेक्षण एक उप निदेशक (कृषि) सम्पन्न करता है। उल्लेखनीय है कि प्रत्येक क्षेत्रीय स्तर पर एक संयुक्त निदेशक के अधीन एक उप-निदेशक, कृषि अनुसंधान अधिकारी, कृषि अधिकारी एवं सांख्यिकी अधिकारी कार्य करते हैं।

जिला स्तर के नीचे उप-जिला स्तर पर 63 सहायक निदेशक हैं जिनके अधीन कृषि अधिकारी कार्य करते हैं। उनके नीचे समस्त राजस्थान में सहायक कृषि अधिकारी 714 एवं ग्राम विस्तार कार्यकर्ता 4,373 कार्यरत हैं। यह जमीन से जुड़े हुए कर्मचारी राजस्थान के खेतों और खलिहानों को जयपुर नगर स्थित कृषि निदेशालय से जोड़ते हैं तथा यह प्रशासनिक शृंखला सम्पूर्ण कृषि प्रशासन को एक समन्वित गति प्रदान करती है।

कृषि निदेशालय संगठन

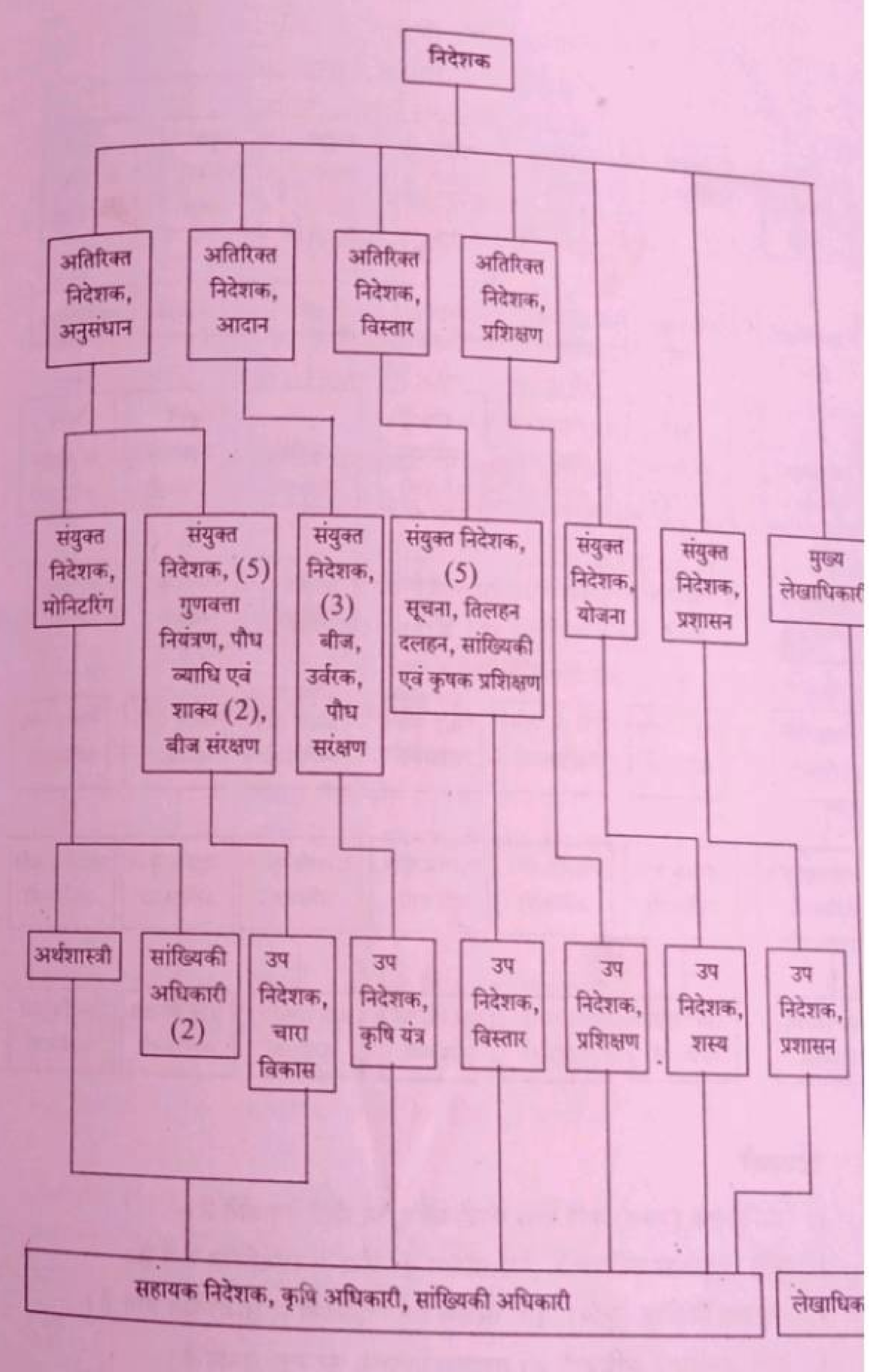

कृषि निदेशालय क्षेत्रीय संगठन

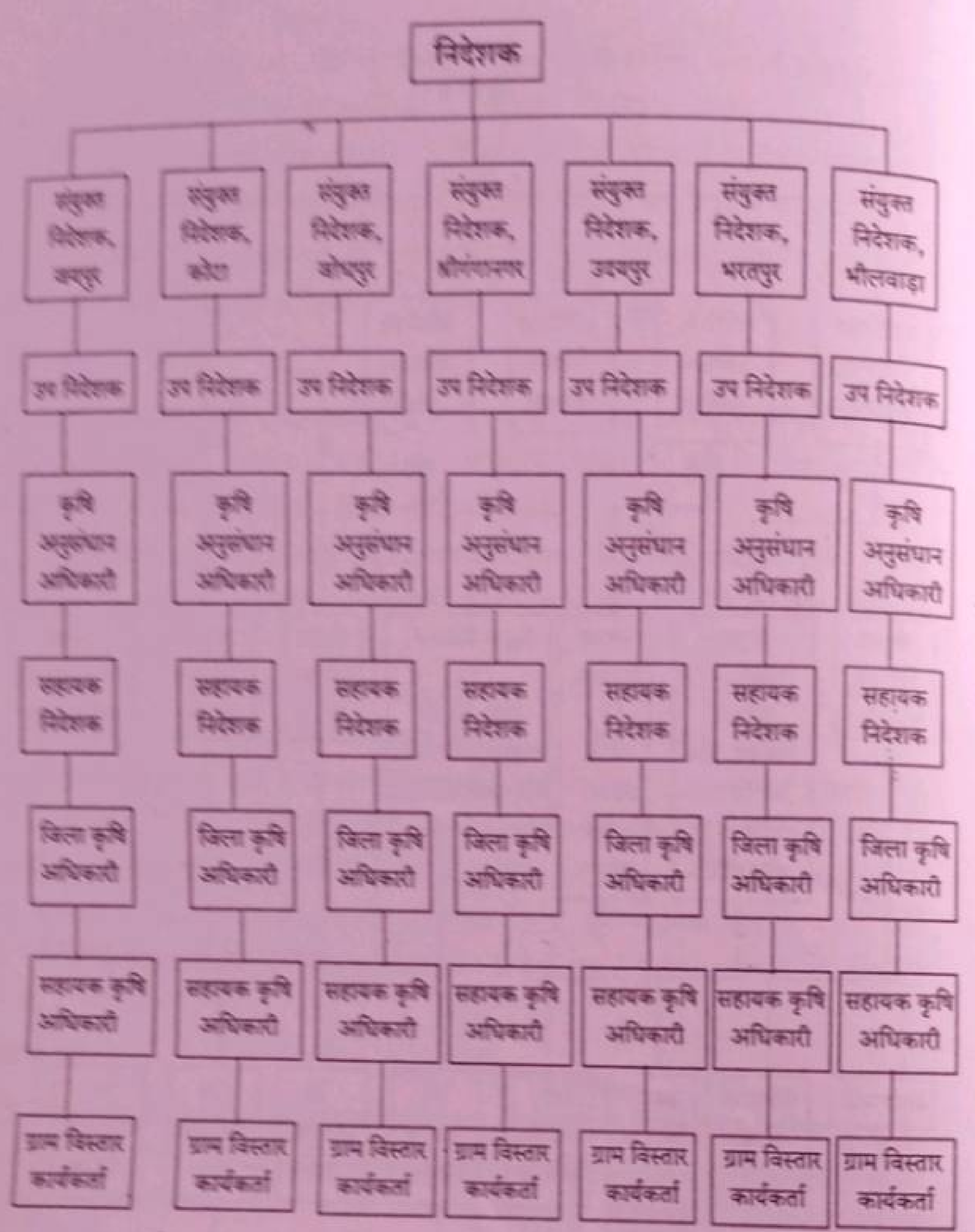

टिप्पणी

1. उपनिदेशक (शस्य) कृषि ग्राह्य केन्द्रों एवं शुष्क खेती हेतु होते हैं।
2. कृषि अनुसंधान अधिकारी, पौध संरक्षण एवं कीट से सम्बन्धित होते हैं।
3. सहायक निदेशक (कृषि), पौध संरक्षण एवं सांख्यिकी से सम्बन्धित होते हैं।
4. कृषि अनुसंधान अधिकारी एवं सहायक निदेशक का स्तर समान है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजस्थान सरकार का कृषि निदेशालय राजस्थान के सामाजिक और आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। कृषि विभाग निदेशालय का मुख्य दायित्व कृषकों की सहायता करना है, अतः इन संगठनों की भूमिका निश्चित रूप से अभिप्रेरणात्मक होनी चाहिए। किन्तु अभिप्रेरणा भी तभी सार्थक हो सकती है जबकि प्रशासनिक दृष्टि से भी निदेशालय दक्ष हो। अतः कृषि निदेशालय को अपना आंतरिक प्रशासन एवं पर्यवेक्षण के कार्य को इस प्रकार सम्पन्न करना चाहिए कि जिससे मानवीय संसाधन, वित्तीय सहायता, विशिष्ट ज्ञान एवं समय का भरपूर उपयोग हो सके।

बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खाद्यान्न उत्पादन में बहुत ही अधिक दक्षता एवं कुशाग्रता की आवश्यकता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि राजस्थान को मानसून की विफलता जैसे अप्रत्याशित संकटों के लिए भी तैयार रहना चाहिए। अतः परिपूर्ण कृषि प्रशासन को एक भविष्यात्मक परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता है। इस परिप्रेक्ष्य में कृषि यंत्रीकरण, बीज, खाद्य, सिंचाई, विवेकपूर्ण उत्पादन एवं कुशल वितरण व्यवस्था से सम्बन्धित पहलुओं पर सृजनशील एवं दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। माना कि कृषि प्रशासन से सम्बन्धित विषयों के प्रबन्धन करने हेतु पृथक् एवं विशिष्टीकृत निदेशालय एवं सहायक संस्थाओं का निर्माण किया गया है, किन्तु नेतृत्व प्रदान करना एवं समन्वय स्थापित करने का दायित्व अभी तक कृषि निदेशालय का बना हुआ है। इक्कीसवीं शताब्दी में आने वाली चुनौतियों के लिए तैयारी समय से पूर्व ही कर लेनी चाहिए। निश्चित रूप से कृषि निदेशालय की भूमिका चुनौती से भरी हुई है इन चुनौतियों का सामना करना काफी कुछ इसकी प्रशासनिक दक्षता पर भी निर्भर करता है।

❑❑❑

अध्याय 13

कॉलेज शिक्षा निदेशालय

स्वतंत्रता से पूर्व राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में धीमी प्रगति हुई थी तथापि कतिपय ऐसे प्रयास भी हुए जो कि इस प्रदेश के राजसी प्रान्तों में प्रगतिशीलता के प्रतीक थे। 1929 में बीकानेर में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम लागू हुआ। अनुसूचित जातियों के लिए प्रथम स्कूल की स्थापना सन् 1923 में फतेहपुर में हुई तथा जयपुर में 1927 में इस वर्ग के लिए विशेष पाठशाला का निर्माण हुआ।

उल्लेखनीय है कि सन् 1866 में कई राजसी प्रान्तों में बालिकाओं के लिए स्कूल आरम्भ किये गये। किन्तु 1930 तक राज्य में बालिकाओं के लिए हाईस्कूल भी नहीं था। ऐसा पहला स्कूल सन् 1931 में जयपुर में ही बना। सन् 1943 में भारत का विख्यात महारानी गायत्री देवी पब्लिक स्कूल जयपुर में स्थापित हुआ। महिलाओं का पहला इंटरमीडिएट कॉलेज सन् 1944 में जयपुर में महारानी कॉलेज के रूप में स्थापित हुआ। यही कॉलेज सन् 1947 में एक डिग्री कॉलेज बना।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में राजपूताना में कुल तीन ही महाविद्यालय कार्यरत थे– अजमेर का शासकीय महाविद्यालय जो सन् 1836 में स्थापित हुआ, जयपुर का महाराजा कॉलेज सन 1873 में आरम्भ हुआ था तथा जोधपुर का जसवन्त कॉलेज जिसका निर्माण सन् 1893 में हुआ। उल्लेखनीय है कि महाराजा कॉलेज सन् 1844 में एक मदरसे के रूप में चालू हुआ था। कालान्तर में यह उच्च शिक्षा का एक अच्छा केन्द्र बन गया। सन 1895 में यह कॉलेज एम.ए. के पाठ्यक्रम के लिए राजस्थान के बाहर के विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध हुआ। सन् 1900 में यह पहला कॉलेज बना जिसमें स्नातक स्तर तक विज्ञान का अध्ययन आरम्भ हुआ। शनैः-शनैः महाराजा कॉलेज की ख्याति बढ़ती चली गई तथा कई मेधावी छात्रों ने इस कॉलेज का नाम रोशन किया। उल्लेखनीय है कि "उसने कहा था" की प्रसिद्ध कहानी के लेखक पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी महाराजा कॉलेज के ही विद्यार्थी थे। सन् 1865 में महाराजा कॉलेज से संस्कृत विभाग पृथक् हो गया तथा एक स्वतंत्र कॉलेज का निर्माण हुआ जिसका नाम महाराजा संस्कृत कॉलेज रखा गया।

धीरे-धीरे राजपूताना के कई प्रान्तों में नये महाविद्यालयों की स्थापना हुई, जैसे सन् 1922 में उदयपुर में महाराणा भूपाल कॉलेज, सन् 1924 में कोटा में हार्बर्ड कॉलेज, सन्1928 में बीकानेर में डूँगर कॉलेज, सन् 1929 में ब्यावर तथा पिलानी में, सन् 1930 में अलवर, सन् 1941 में भरतपुर एवं नवलगढ़, सन् 1945 में बूँदी एवं चूरू, सन् 1946 में बीकानेर में महिला कॉलेज तथा 1947 में फतेहपुर तथा सीकर में महाविद्यालयों की स्थापना हुई। अतः स्वतंत्रता से पूर्व राजस्थान

में 24 महाविद्यालय, तीन अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय, अभियांत्रिकी महाविद्यालय, पिलानी तथा एक मेडिकल कॉलेज, जयपुर कार्य कर रहे थे। राजस्थान का पहला विश्वविद्यालय जनवरी, 1947 में बना जिसे राजपूताना विश्वविद्यालय के नाम से जाना गया, जिसका पुनः नामकरण बाद में राजस्थान विश्वविद्यालय के नाम से हुआ।

वर्तमान स्थिति

शिक्षा के प्रशासन के लिए वर्तमान में राजस्थान में निम्नलिखित निदेशालय कार्य कर रहे हैं :

1. प्राथमिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर (28 नवम्बर, 1997 से)
2. माध्यमिक शिक्षा निदेशालय, बीकानेर
3. कॉलेज शिक्षा निदेशालय, जयपुर
4. साक्षरता एवं सतत् शिक्षा निदेशालय, जयपुर
5. संस्कृत शिक्षा निदेशालय, जयपुर
6. प्राविधिक शिक्षा निदेशालय, जोधपुर

विश्वविद्यालय स्तर पर पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा का काफी प्रसार हुआ है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि सन् 1947 में राजस्थान विश्वविद्यालय (पूर्व नाम राजपूताना) की स्थापना की गई थी। तत्पश्चात् सन् 1962 में उदयपुर तथा जोधपुर में नये विश्वविद्यालय बने। सन् 1987 में कोटा खुला विश्वविद्यालय, बीकानेर में कृषि विश्वविद्यालय तथा महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, अजमेर की स्थापना हुई। 2003 में कोटा तथा बीकानेर में एकीकृत विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। संस्कृत एवं विधि के क्षेत्र में पृथक् विश्वविद्यालय का निर्माण क्रमशः जयपुर एवं जोधपुर में हुआ। इनके अतिरिक्त राजस्थान में चार मान्य (डीम्ड) विश्वविद्यालय हैं, जो इस प्रकार हैं :

1. बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलौजी एण्ड साइन्स, पिलानी
2. वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली
3. राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर
4. जैन विश्व भारती, लाडनूँ

कॉलेज शिक्षा निदेशालय

महाविद्यालय शिक्षा को समन्वित एवं नियंत्रित करने के लिए सन् 1958 में कॉलेज शिक्षा निदेशालय की स्थापना हुई जिसका मुख्यालय जयपुर में है। पिछले 40 वर्षों में इस निदेशालय ने राजस्थान में शिक्षा के विस्तार में महत्ती भूमिका निभाई है।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान सरकार के सचिवालय में एक पृथक् उच्च शिक्षा विभाग कार्य कर रहा है। एक केबिनेट स्तरीय मंत्री के निर्देशन में कार्य करने वाला यह विभाग प्रशासनिक दृष्टि से सचिव, उच्चतर तथा तकनीकी शिक्षा के निर्देशन में कार्य करता है। यह सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा के सुपर-टाइम वेतन शृंखला का अधिकारी होती है।

कॉलेज शिक्षा निदेशालय सचिवालय के उच्चतर शिक्षा अनुभाग के निर्देशन से कार्य करता है। इस निदेशालय की मुख्य भूमिका इसके निम्नलिखित कार्यों से स्पष्ट होती है।

भूमिका

1. शिक्षा नीति के निर्माण में सहायक

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में उच्च शिक्षा नीति के कई महत्त्वपूर्ण प्रयास एवं परिवर्तन पिछले कई दशकों में किये गये। कतिपय मुख्य समितियाँ जिन्होंने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण परामर्श दिये हैं, वे हैं डॉ. मोहन सिन्हा मेहता समिति, डॉ. के.एल. श्रीमाली समिति तथा एम.वी. माथुर समिति। इन सभी समितियों में कॉलेज शिक्षा निदेशालय का प्रतिनिधित्व रहा है। साथ ही कॉलेज शिक्षा निदेशालय का इन विभिन्न समितियों के प्रतिवेदन के निरूपण में केन्द्रीय भूमिका रही है।

राजस्थान सरकार की वृहत् शिक्षा नीति के अन्तर्गत कॉलेज शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक एवं वांछनीय उपनीति का निर्माण कॉलेज शिक्षा निदेशालय द्वारा ही किया जाता है। परिवर्तित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा नीति में क्या परिवर्तन हो इस सम्बन्ध में भी कॉलेज शिक्षा निदेशालय निरन्तर विमर्श करता रहा है।

2. शिक्षा नियोजन

राजस्थान राज्य की पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजना में उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में संस्थाओं की आवश्यकता एवं वांछनीय प्रगति की दिशा के बारे में विचारों का उद्गम स्थल कॉलेज शिक्षा निदेशालय ही है। यह योजनाओं से उच्चतर शिक्षा की गति एवं दिशा को निर्धारित करता है। उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय सरकार, विशेषतया विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को राजस्थान की ओर से प्रस्तुत की जाने वाली योजनाओं का निरूपण भी कॉलेज शिक्षा निदेशालय में ही होता है। राज्य में उच्चतर शिक्षा के सांगोपांग विकास के लिए यह निदेशालय ही आवश्यक वित्तीय सहायता के बारे में प्रस्ताव तैयार करता है। निजी क्षेत्र में चलने वाली शिक्षण संस्थाओं की अपेक्षित प्रगति एवं आवश्यकताओं के बारे में विवरण का भी समावेश निदेशालय की योजनाओं में किया जाता है।

निदेशालय का यह भी कर्तव्य है कि वह उच्चतर शिक्षा से सम्बन्धित योजनाओं के निष्पादन के बारे में निरंतर जाँच करे तथा उनमें आवश्यक संशोधन हेतु अपने सुझाव दे।

3. शैक्षणिक वातावरण का निर्माण

राजस्थान के शासकीय एवं गैर-शासकीय महाविद्यालयों में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हो रही प्रगति एवं गुणात्मकता के बारे में उचित मानदण्ड की स्थापना का दायित्व कॉलेज शिक्षा निदेशालय का ही रहा है। यह निदेशालय सुनिश्चित करता है कि शैक्षणिक प्रगति के साथ-साथ शैक्षणिक गतिविधियों का स्तर भी उच्च कोटि का रहे। अतः राष्ट्रीय सेवा योजना, राष्ट्रीय कैडिट कोर, साहित्यिक गतिविधियाँ, सांस्कृतिक समन्वय, क्रीड़ा आदि के माध्यम से उच्चतर शिक्षा को समग्रता प्रदान करने की जिम्मेदारी प्रत्येक महाविद्यालय तथा कॉलेज शिक्षा निदेशालय की है। आवश्यकता इस बात की है कि महाविद्यालय के छात्र-छात्राएँ न केवल कुशल नेतृत्व का विकास करें अपितु साथ ही एक सौद्देश्यपूर्ण समाज के लिए उपयुक्त पर्यावरण बनायें। इस हेतु आवश्यक संसाधनों के प्रबन्धन का उत्तरदायित्व कॉलेज शिक्षा निदेशालय का है।

4. समन्वयात्मक भूमिका

कॉलेज शिक्षा निदेशालय शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संस्थाओं के साथ निरन्तर सम्पर्क एवं

समन्वय बनाये रखता है। मुख्यतः केन्द्रीय सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग, सभी विश्वविद्यालयों की अनुसंधान संस्थाएँ, माध्यमिक शिक्षा निदेशालय तथा सम्बद्ध संस्थाओं के साथ इस निदेशालय का निकट सम्पर्क रहता है। कॉलेज शिक्षा निदेशालय लगभग सभी विश्वविद्यालयों के सिंडीकेट अथवा प्रबन्धकीय मंडल का सदस्य होता है। इस प्रकार राज्य की शिक्षा नीति को एकीकृत एवं समन्वित दृष्टिकोण अपनाने में वह सहायक होता है।

5. मार्गदर्शन एवं निर्देशन

राजस्थान में वर्तमान में सैंकड़ों महाविद्यालय हैं, इनमें से सरकारी महाविद्यालय, अनुदानित महाविद्यालय तथा गैर-अनुदानित महाविद्यालय सम्मिलित हैं। अधिकांश महाविद्यालयों में सह-शिक्षा का प्रावधन है तथा कई महाविद्यालय केवल महिलाओं के लिए हैं। काफी महाविद्यालय स्नाकोत्तर स्तर के हैं तथा बड़ी संख्या में महाविद्यालय स्नातक स्तर के हैं। इन सभी महाविद्यालयों में शैक्षणिक गुणात्मकता को सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी वैसे तो वहाँ के प्रशासन एवं प्रबन्धन की होती है, किन्तु ये महाविद्यालय कॉलेज शिक्षा निदेशालय के निर्देशन में कार्य करते हैं। महाविद्यालय में प्रवेश, कॉलेजों में विद्यार्थियों की अधिकतम संख्या, सैक्शनों की संख्या, छात्र उपस्थिति, प्राध्यापकों की नियुक्ति, पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकें, प्रयोगशाला सुविधा, खेलकूद एवं मनोरंजन की सुविधाएँ, अवकाश, परीक्षा आदि के सम्बन्ध में समय-समय पर कॉलेज शिक्षा निदेशालय आदेश एवं नियम जारी करता रहता है जो कि सभी कॉलेजों पर लागू होते हैं। यह अवश्य है कि गैर-अनुदानित महाविद्यालयों पर नियंत्रण कुछ कम है किन्तु वहाँ भी मुख्य शैक्षणिक प्रबन्धन के नियम वही होते हैं जिन्हें कि कॉलेज शिक्षा निदेशालय निर्देशित करता है।

किसी भी नये महाविद्यालय की स्थापना से पूर्व कॉलेज शिक्षा निदेशालय से अनुमति लेना आवश्यक है। समय-समय पर निदेशालय के अधिकारी विभिन्न महाविद्यालयों में जाकर वहाँ के प्रशासन और शैक्षिक प्रगति के बारे में आकलन करते रहते हैं। वहाँ कमियाँ पाने पर आवश्यक कार्यवाही हेतु वे निर्देश भी देते हैं। इन महाविद्यालयों की प्रगति के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराने हेतु निदेशालय द्वारा प्रयत्न भी किया जाता है। वैसे भी सभी महाविद्यालयों से अपेक्षा होती है कि वे विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली प्रगति के सम्बन्ध में लेखा-जोखा निरन्तर कॉलेज शिक्षा निदेशालय को भिजवाते रहें। इस प्रकार के बंधन शासकीय महाविद्यालयों पर अधिक लागू होते हैं। निजी महाविद्यालयों पर इससे कम तथा गैर-अनुदानित महाविद्यालयों पर सबसे कम, किन्तु कोई भी महाविद्यालय शिक्षा निदेशालय के नियंत्रण से अछूता नहीं रह सकता है।

6. वित्तीय अनुदान, छात्रवृत्ति एवं ऋण

शासकीय महाविद्यालयों का सम्पूर्ण बजट सरकार के शिक्षा विभाग के बजट का अंग होता है। इस प्रकार बजट की स्वीकृति कॉलेज शिक्षा निदेशालय द्वारा ही होती है। अनुदानित महाविद्यालयों में 90 प्रतिशत अनुदान राज्य सरकार द्वारा दिया जाता है। इनके अतिरिक्त राजकीय एवं निजी महाविद्यालयों को विशिष्ट कार्यक्रमों, पाठ्यक्रमों, भवन, पुस्तकालय व प्रयोगशालाओं आदि के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं राज्य सरकार द्वारा आवश्यक अनुदान दिया जाता है। इन सभी अनुदानों का समन्वय कॉलेज शिक्षा निदेशालय में ही सम्पन्न होता है।

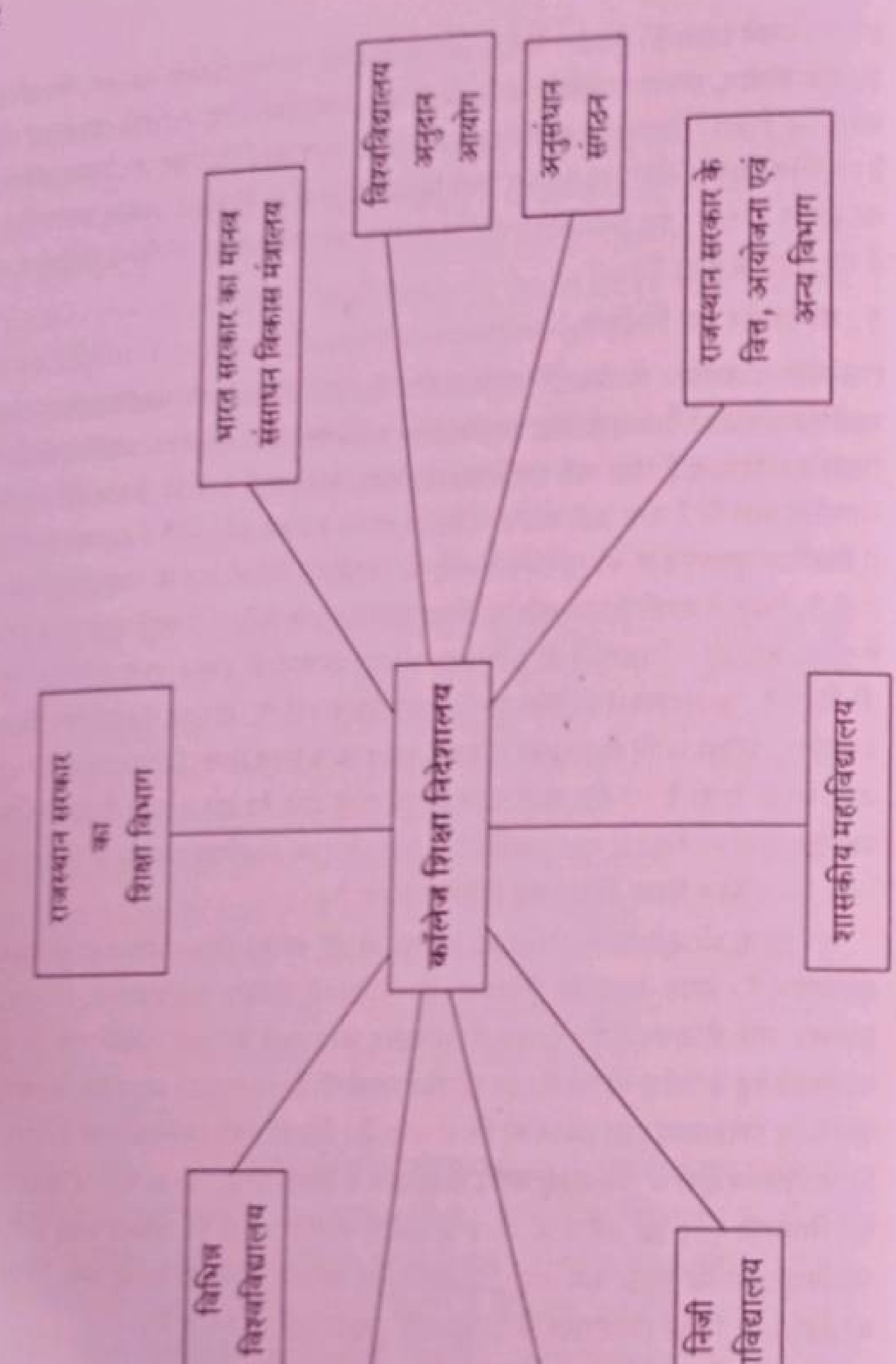

कॉलेज शिक्षा निदेशालय का भूमिका-तंत्र

निर्धन तथा मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति एवं ऋण प्रदान करने का कार्य भी कॉलेज शिक्षा निदेशालय द्वारा सम्पन्न किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों से अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति के छात्रों तथा विकलांग छात्रों को सरकार की ओर से विशेष छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है। इनमें से कुछ छात्रवृत्तियाँ समाज कल्याण विभाग के माध्यम से दी जाती हैं। इस सम्बन्ध में भी उच्चतर स्तर पर समन्वय का कार्य कॉलेज शिक्षा निदेशालय द्वारा किया जाता है।

7. कार्मिक प्रशासन

कॉलेज शिक्षा निदेशालय सभी शासकीय एवं गैर-शासकीय महाविद्यालयों के कार्मिक प्रशासन से प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से जुड़ा होता है। राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा प्राचार्य, उप-प्राचार्य एवं व्याख्याताओं की नियुक्तियों के सम्बन्ध में अनुशंसाओं को कार्यान्वित करने, पदोन्नति के लिए विभागीय पदोन्नति समिति के कार्यों को सुलभ बनाने, कॉलेज शिक्षा में नियुक्त, शैक्षणिक एवं गैर-शैक्षणिक कार्मिकों की सेवाओं के अभिलेख रखने तथा उनके वेतन एवं भत्ते का प्रबन्धन, अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि उत्तरदायित्व का निर्वाह कॉलेज शिक्षा निदेशालय ही करता है।

विभिन्न महाविद्यालयों के अध्यापकों का अकादमिक स्टॉफ कॉलेज में पुनश्चर्या (Refresher) एवं अभिमुखीकरण (Orientation) कार्यक्रमों में नामांकन इस निदेशालय द्वारा ही किया जाता है। एक संस्था से दूसरी संस्थाओं में शैक्षिक एवं गैर-शैक्षिक कार्मिकों का स्थानान्तरण भी कॉलेज शिक्षा निदेशालय द्वारा किया जाता है, यद्यपि इस सम्बन्ध में पिछले कुछ वर्षों में अत्यधिक केन्द्रीकरण हुआ है तथा स्थानान्तरण के बारे में लगभग सभी निर्णय सचिवालय स्तर पर ही लिये जाते हैं।

उल्लेखनीय है कि राज्य के सरकारी महाविद्यालयों में 3,800 से अधिक व्याख्याता हैं तथा लगभग इतनी ही संख्या में गैर-शैक्षणिक कार्मिक हैं। इन सभी से सम्बन्धित कार्मिक एवं प्रशासनिक कार्य अपने आप में बोझिल हैं।

निजी महाविद्यालयों के प्राचार्यों एवं अध्यापकों की नियुक्ति के लिए बनाई गई चयन समिति में कॉलेज शिक्षा निदेशक का एक प्रतिनिधि अवश्य होता है। इन सभी महाविद्यालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने कर्मचारियों की सेवाओं की शर्तें वही रखें जो कि सरकार द्वारा स्वीकृत हों। कॉलेज शिक्षा निदेशालय का यह उत्तरदायित्व है कि वह इन महाविद्यालयों के कार्मिक प्रशासन पर भी निगरानी रखे।

8. वित्त प्रशासन

कॉलेज शिक्षा निदेशालय अपने विभाग का बजट तो बनाता ही है, उसके निष्पादन का उत्तरदायित्व भी इसी का है। विभिन्न सरकारी महाविद्यालयों के बजट को स्वीकार करना एवं उनके कार्यान्वयन पर निगरानी रखने की जिम्मेदारी भी इसी निदेशालय की है। मुख्यतया इस निदेशालय को या सुनिश्चित करना होता है कि विभिन्न महाविद्यालयों में वित्तीय प्रशासन में अपव्यय व अनियमितता न हों, लेखे नियमित एवं व्यवस्थित हों एवं उनमें आंतरिक अंकेक्षण लगातार होता रहे। जि संस्थाओं की इस क्षेत्र में कोई कमियाँ दृष्टि में आए उनको शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न प्रत्येक महाविद्यालय निदेशालय के निर्देशन में ही करता है।

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कॉलेज शिक्षा निदेशालय कुछ अन्य कार्य भी सम्पन्न करता है जैसे कि जयपुर स्थित संगीत संस्थान व स्कूल ऑफ आर्ट की परीक्षाओं का आयोजन और इसमें सफल विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र जारी करना।

संगठन

कॉलेज शिक्षा निदेशालय का प्रशासनिक प्रमुख निदेशक, कॉलेज शिक्षा होता है जो कि सामान्यतया एक सरकारी कॉलेज का अनुभवी प्राचार्य होता है। इसकी नियुक्ति राजस्थान सरकार के द्वारा की जाती है। जब भी इस अधिकारी की नियुक्ति तदर्थ रूप से की जाती है तो राजस्थान में सरकारी महाविद्यालय के वरिष्ठतम अध्यापकों को ही इस पद के लिए चुना जाता है, किन्तु स्थायी नियुक्ति हेतु विभागीय पदोन्नति हेतु विभागीय पदोन्नति समिति का गठन होता है जिसमें कि योग्यता के "जोन" में आने वाले 4-5 प्राध्यापकों को सम्मिलित कर लिया जाता है। इन प्राध्यापकों का निष्पत्ति रिकार्ड जाँचा जाता है तथा वरिष्ठ एवं योग्यता के आधार पर एक का चयन कर लिया जाता है।

निदेशक सामान्यतया वही व्यक्ति बनता है जिसे अध्यापन के साथ-साथ प्रशासन का लम्बा अनुभव हो एवं इस अधिकारी का यह दायित्व है कि वह सम्पूर्ण निदेशालय को एक कुशल एवं गतिशील संगठन के रूप में चलाये। इस हेतु आवश्यक है कि इस अधिकारी में वे सभी गुण हों जो एक अच्छे प्रशासक में होते हैं। उसमें दूरदर्शिता हो, नियोजन प्रक्रिया में कुशलता हो, नीति और उपनीति के निर्माण करने की दक्षता हो, वह कुशल निर्णयकर्ता हो, अधिनियमों और नियमों का ज्ञाता हो, संप्रेषण में प्रवीण हो, नियंत्रण एवं प्रबोधन कुशलता व कठोरता से करे तथा कार्मिकों में अभिप्रेरणा तथा अनुशासन की भावना उत्पन्न कर सके। ऐसे गुणों से सम्पन्न व्यक्ति दुर्लभ ही होते हैं किन्तु राजस्थान के कॉलेज शिक्षा के इतिहास में कई ऐसे कॉलेज शिक्षा निदेशक हुए हैं जिन्होंने कि अपनी योग्यता, व्यवहार कुशलता एवं ईमानदारी की छाप सम्पूर्ण कॉलेजों पर छोड़ी है। वर्तमान में भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक अधिकारी को कॉलेज शिक्षा आयुक्त नियुक्त किया गया है। इसे अन्तरिम व्यवस्था कहा जा सकता है।

निदेशक की सहायता के लिए कॉलेज शिक्षा निदेशालय में संयुक्त निदेशक होते हैं जो कि क्रमशः कार्मिक एवं प्रशासनिक, शैक्षणिक, अनुदान, युवा, खेल-कूद, महिला शिक्षा एवं विश्वविद्यालय जैसे विषयों से सम्बन्धित होते हैं। इनके अतिरिक्त निदेशालय में उपनिदेशक हैं जो कि कार्मिक, अनुदान, अकादमिक तथा योजना एवं समन्वय से सम्बन्धित कार्य करते हैं। निदेशालय में एक राष्ट्रीय सेवा योजना का समन्वयक भी होता है तथा एक प्रशासनिक अधिकारी एवं एक वरिष्ठ लेखाधिकारी भी कार्य करते हैं। निदेशालय में सहायक निदेशक नियुक्त हैं जो कि उप-निदेशक योजना एवं समन्वय के अधीन कार्य कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य सहायक निदेशक होते हैं जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, लेखा, अनुदान तथा युवा गतिविधियों एवं विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित हैं। साथ ही जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बीकानेर तथा अजमेर में छः क्षेत्रीय सहायक निदेशक कार्यरत हैं। सभी शैक्षणिक अधिकारी राजस्थान शिक्षा सेवा, कॉलेज शाखा के होते हैं।

निदेशालय को प्रशासनिक दृष्टि से निम्नलिखित शाखाओं में विभाजित किया गया है–

1. संस्थापन शाखा
2. लेखा शाखा
3. बजट शाखा
4. अनुदान शाखा
5. अकादमिक शाखा
6. छात्रवृत्ति शाखा
7. गोपनीय शाखा
8. विधि शाखा
9. युवा, खेल-कूद एवं विश्वविद्यालय शाखा
10. सांख्यिकी शाखा
11. परीक्षा शाखा
12. राष्ट्रीय सेवा योजना शाखा
13. पत्र प्राप्ति तथा प्रेषण शाखा
14. कम्प्यूटर शाखा
15. भण्डार शाखा

इनके अतिरिक्त कॉलेज शिक्षा निदेशालय में एक पुस्तकालय भी है जिसमें कॉलेज विधि एवं शिक्षा प्रशासन पर पुस्तकें एवं पत्रिकाओं का संग्रह है।

निष्कर्ष

कॉलेज शिक्षा निदेशालय के समक्ष आने वाली कतिपय मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं :

1. रिक्त पदों पर नियुक्ति विलम्ब से होती है। राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा इन पदों पर नियुक्ति के बारे में अनुशंसा करने की प्रक्रिया में लगभग दो वर्ष लग जाते हैं। अस्थायी नियुक्तियों पर पहले से ही प्रतिबंध है अतः अध्यापकों सहित कई ऐसे पद हैं जिन पर समय पर नियुक्ति नहीं होती है तथा विद्यार्थियों को इसका खामियाजा भुगतना पड़ता है।
2. विद्यार्थियों की संख्या महाविद्यालयों में निरन्तर बढ़ती चली जा रही है तथा उनके लिए आवश्यक भौतिक व शैक्षणिक सुविधाएँ कम पड़ गई हैं। इससे गुणात्मकता का ह्रास होता है। मुख्यतः यह ह्रास पुस्तकालय एवं कक्षा की सुविधाओं में परिलक्षित होता है।
3. विभिन्न स्रोतों से मिलने वाले वित्तीय साधन आवश्यकता से बहुत कम हैं। राजस्थान सरकार की वित्तीय साधनों की कमी का प्रभाव उच्च शिक्षा पर भी होना स्वाभाविक है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से मिलने वाला अनुदान सामान्यतः कॉलेज भवनों, छात्रावास, पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं के लिए ही पर्याप्त होता है। किन्तु महाविद्यालयों की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति राजस्थान सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से मिलने वाले अनुदान से भी नहीं हो पाती।

4. एक समय में ऐसी अपेक्षा थी कि कॉलेज शिक्षा निदेशक वर्ष में एक बार तो सभी महाविद्यालयों का दौरा करेगा किन्तु महाविद्यालयों की संख्या बढ़ने एवं कॉलेज शिक्षा निदेशक के दायित्वों में वृद्धि के कारण ऐसा कतई नहीं हो पा रहा है। यहाँ तक कि संयुक्त निदेशक अथवा उप-निदेशक भी इन महाविद्यालयों की जाँच कई वर्षों तक नहीं कर पाते। फलस्वरूप नियंत्रण एवं प्रबोधन के स्तर में गिरावट आई है।

अब जबकि राजस्थान इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर चुका है, उच्चतर शिक्षा का विकास तीव्र गति से होना अपेक्षित है। राजस्थान के प्रत्येक जिले में महिला महाविद्यालय स्थापित किये जा चुके हैं। निजी क्षेत्र भी बड़ी मात्रा में उच्चतर शिक्षा में प्रवेश कर रहे हैं। किन्तु यह प्रयास पर्याप्त नहीं है। आगे आने वाले काल में न केवल भौतिक सुविधाओं का विकास तीव्र गति से होना चाहिए, किन्तु गुणात्मकता की दृष्टि से भी उच्चतर शिक्षा में प्रभावी कदमों की अपेक्षा है।

आज के विद्यार्थियों एवं अध्यापकों में ज्ञान के प्रति अभिप्रेरणा काफी कम हो चुकी है। इसका मुख्य कारण पाठ्यक्रम का बहुत ही सरल होना है। सत्य तो यह है कि राजस्थान, विश्व ही नहीं, भारत के भी कई क्षेत्रों की तुलना में उच्चतर शिक्षा में पिछड़ गया है। पतन के इस प्रवाह को रोकने की आवश्यकता है और इस हेतु कॉलेज शिक्षा निदेशालय एवं विश्वविद्यालयों को मिलकर चिन्तन करना होगा।

❑❑❑

अध्याय 14

लोक सेवाओं की भूमिका

किसी भी राष्ट्र का राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं प्रावैधिक विकास जिन महत्त्वपूर्ण साधनों पर निर्भर करता है उनमें लोक सेवाओं का स्थान सर्वोपरि है। ऐसा देखा गया है कि एशिया तथा अफ्रीका के देश जो कई सदियों की दासता के पश्चात् स्वतंत्र हुए हैं एवं वे देश जो दूसरों की अपेक्षा अधिक द्रुत गति से आगे बढ़ सके हैं उन सभी का विकास एक कुशल, उत्तरदायी तथा ईमानदार लोक सेवा के फलस्वरूप ही सम्भव बन सका है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् यह स्पष्ट हुआ कि नव-निर्मित राज्यों में कई राज्य दूसरों की अपेक्षा कम विकसित थे। इन कम विकसित राज्यों में राजस्थान भी एक था। सीमित प्राकृतिक साधन तथा निरन्तर प्राकृतिक आपदाओं का सामना करता हुआ यह राज्य आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। एक कुशल एवं जागृत राजनीतिक नेतृत्व तथा दक्ष लोक सेवा के सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप राजस्थान आज प्रगतिशील राज्यों में से एक है। यह नहीं कि इसने अपनी निर्धनता से जुड़ी समस्याओं का हल कर लिया है किन्तु यह भी सर्वविदित है कि जड़त्व एवं निरन्तर पिछड़ेपन की अवस्था को छोड़ यह राज्य आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों के कई आयामों में पूर्व से अधिक समुन्नत है। यह प्रगति की यात्रा पूर्णतया संतोषप्रद तो नहीं मानी जा सकती तथापि एक ऐसा आधार अवश्य निर्मित हो चुका है जहाँ पर विकास के एक विशाल भवन का निर्माण करना पहले से अधिक सहज है।

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में उदारीकरण एवं निजीकरण के पक्ष में काफी आवाज उठायी जा रही है तथापि विकास प्रक्रिया में राज्य एवं सरकार की भूमिका किसी प्रकार से संकुचित नहीं होती। हाल ही में नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. अमर्त्य सेन के सिद्धान्तों के अनुरूप भारत में एक ऐसी सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें निजीकरण एवं उदारीकरण के साथ-साथ एक उत्तरदायित्वपूर्ण एवं प्रतिबद्ध सरकार अपनी भूमिका दक्षता से निभा सके। आवश्यकता इन दोनों उन्मुखीकरणों के संश्लेषण की है न कि इनमें से किसी एक को चुनने की।

राजस्थान में लोक सेवा

राजस्थान में छः श्रेणियों की लोक सेवाएँ हैं:

(1) अखिल भारतीय सेवाएँ–भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा तथा भारतीय वन सेवा इस श्रेणी में आते हैं। इन सेवाओं के अधिकारी राज्य सरकार के महत्त्वपूर्ण

प्रशासनिक पदों पर कार्य करते हैं तथा सम्पूर्ण नीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था को अपने कार्यकलापों से प्रभावित करते हैं।

(2) केन्द्रीय सेवाएँ–जैसे कि भारतीय डाक सेवा, भारतीय दूर संचार सेवा, भारतीय लेखा एवं अंकेक्षण सेवा, भारतीय राजस्व सेवा आदि जिनके अधिकारी केन्द्रीय सरकार के उन विभागों को संचालित करते हैं जो राजस्थान में स्थित हैं। इन सेवाओं का राजस्थान के विकास एवं आर्थिक नियमन एवं नियंत्रण में बहुत बड़ा योगदान है जिसकी चर्चा सामान्यतः कम की जाती है।

(3) राजस्थान की राज्य स्तरीय सेवाएँ–इन सेवाओं की भूमिका राजस्थान के विकास में महत्त्वपूर्ण है, किन्तु यह स्पष्ट होना चाहिए कि राजस्थान के विकास एवं प्रशासनिक नियंत्रण में ये सेवाएँ तथा उपरोक्त प्रथम श्रेणी की अखिल भारतीय सेवाएँ मिलकर ही कार्य करती हैं तथा इन दोनों के सहयोग से ही प्रशासन व्यवस्थित रूप से चल पाता है। यह कहना कठिन है कि अखिल भारतीय सेवाओं की भूमिका कहाँ आरम्भ होती है तथा कहाँ समाप्त होती है। दोनो सेवाएँ अन्तरगुंठित हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि राजस्थान प्रशासनिक सेवा, राजस्थान लेखा सेवा तथा कतिपय अन्य विशिष्ट सेवा के अधिकारी पदोन्नति से भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी बन सकते हैं तथा इसी प्रकार राजस्थान पुलिस सेवा के अधिकारी भारतीय पुलिस सेवा में प्रवेश कर सकते हैं।

कतिपय मुख्य राज्य सेवाएँ इस प्रकार हैं:

(1) राजस्थान प्रशासनिक सेवा
(2) राजस्थान पुलिस सेवा
(3) राजस्थान लेखा सेवा
(4) राजस्थान वाणिज्य कर सेवा
(5) राजस्थान पर्यटन सेवा
(6) राजस्थान सहकारिता सेवा
(7) राजस्थान जेल सेवा
(8) राजस्थान नियोजन सेवा
(9) राजस्थान परिवहन सेवा
(10) राज्य बीमा सेवा
(11) राजस्थान खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति सेवा
(12) राजस्थान कृषि सेवा
(13) राजस्थान कॉलेज शिक्षा सेवा

(4) अधीनस्थ सेवाएँ–यह सेवा, तीसरी श्रेणी की सेवाओं की सहायक होती हैं। उल्लेखनीय है कि राज्य सेवा तथा अधीनस्थ सेवा के लिए राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा भर्ती सामान्य प्रतियोगी परीक्षा के माध्यम से होती है। अतः इन दोनों श्रेणियों की सेवा में नियुक्त अधिकारियों की योग्यता में विशेष अन्तर नहीं होता। इन सेवाओं ने राजस्थान के विकास में महती भूमिका निभाई है। कतिपय अधीनस्थ सेवाएँ इस प्रकार हैं:

1. राजस्थान तहसीलदार सेवा
2. राजस्थान सहकारी अधीनस्थ सेवा

3. वाणिज्य कर अधीनस्थ सेवा
4. आबकारी अधीनस्थ सेवा
5. राजस्थान भूमि एवं भवन कर अधीनस्थ सेवा
6. राजस्थान खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति अधीनस्थ सेवा

उल्लेखनीय है कि राज्य स्तरीय सेवाओं के सभी अधिकारी राजपत्रित अधिकारी होते हैं अर्थात् इनकी नियुक्ति की घोषणा राजपत्र में की जाती है, तथा उनकी शक्तियाँ तथा उत्तरदायित्व विस्तृत होते हैं। अधीनस्थ सेवाओं में राजस्थान तहसीलदार सेवा ही एक ऐसी सेवा है जिसका अधिकारी तहसीलदार भी राजपत्रित होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि राजस्थान प्रशासन से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण निर्णय तहसीलदार को लेने होते हैं जो कि प्रशासनिक और न्यायिक दृष्टि से वैधता तभी ले सकते हैं जबकि वे इस स्तर के अधिकारी द्वारा अनुशंसित हों।

(5) मंत्रालयिक सेवा– इसमें कार्यालय सहायक, वरिष्ठ लिपिक, कनिष्ट लिपिक, निजी सहायक, स्टेनोग्राफर आदि विभिन्न सेवाओं के वे कार्मिक आते हैं जो मंत्रालयिक कार्यों को सम्पन्न करते हैं। कई बार सामान्यतया इन सेवाओं के सदस्यों को निम्न श्रेणी का माना जाता है किन्तु लोक प्रशासन के व्यावहारिक पहलू को समझने वाले विद्यार्थी एवं विधिवेत्ता इस बात को भली प्रकार समझते हैं कि प्रशासन की वास्तविक रीढ़ मंत्रालयिक कर्मचारी ही हैं। इन कर्मचारियों के पास कानून, नियम व प्रक्रिया का अथाह भंडार होता है। एक पद पर बहुत लम्बे काल तक कार्य करते-करते यह कार्मिक अपने विषय में पारंगत हो जाते हैं। कानून व नियम तो जैसे इन्हें रट ही जाते हैं व कम्प्यूटर की कुशाग्रता लिए इन मंत्रालयिक कर्मचारियों का महत्व किसी प्रकार से निम्न स्तर पर नहीं आंका जा सकता। सत्य तो यह है कि सरकारी पत्रावली पर जो टिप्पणी मंत्रालयिक कर्मचारी लिखते हैं उनको उच्च अधिकारी काटने का न तो साहस कर पाते हैं और न ही उनका ज्ञान इतना अधिक व्यापक होता है कि वह अपने अधीन कार्यरत मंत्रालयिक कर्मचारी की राय को पलट सकें। ब्रिटिश युगीन "बाबू", जिसका जन्मदाता "लार्ड मैकाले" था, ने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत अपने वर्चस्व का जाल बिछाये रखा है। इस कारण से आई.सी.एस. अधिकारी ए.डी. गोरवाला ने भारतीय प्रशासन को "बाबू ब्यूरोक्रेसी" अथवा बाबू प्रशासन-तंत्र का विशेषण दिया था। अतः किसी भी राज्य एवं राष्ट्र के प्रशासन में मंत्रालयिक कर्मचारियों का दृष्टिकोण एवं प्रशिक्षण पर्याप्त महत्व लिये हुए है किन्तु विडम्बना यह है कि भारत की स्वतंत्रता के बाद इस वर्ग के वेतन व भत्तों पर तो पर्याप्त ध्यान दिया गया परन्तु उनके मनोबल, उनकी अभिप्रेरणा, उनके दृष्टिकोण व उनके प्रशिक्षण पर अपर्याप्त ध्यान दिया गया है। एक अन्य विडम्बना यह है कि इन अनुभवी कर्मचारियों की राय व सुझावों को प्रशासनिक परिवर्तन की प्रक्रिया के दौरान बहुत कम महत्व दिया जाता है। यह आश्चर्य ही है कि जो कर्मचारी प्रशासन को अपने ज्ञान एवं अनुभव से संजोये हुए हैं, वे सामान्यतया महत्वपूर्ण प्रशासनिक परिवर्तन की प्रक्रिया में अप्रासंगिक माने जाते हैं।

(6) चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी सेवा– चपरासी, अर्दली, जमादार, दफ्तरी, बागवान आदि कार्मिक इस श्रेणी के सदस्य होते हैं। भारत की औपनिवेशिक एवं सामन्तवादी संस्कृति के कारण चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की एक भीड़ प्रशासन में जुटा ली गई है।

जहाँ विकसित देशों के प्रशासन में चपरासी देखने को नहीं मिलता वहाँ पर भारत जैसे

विकासशील देश में यह बहुत बड़ी कतार में प्रशासन का अनिवार्य अंग बन गये हैं। इनका उपयोग उच्चाधिकारी अपनी सुख-सुविधा के लिए भी करते हैं तथा प्रशासनिक सेवाओं और सम्प्रेषण को गति देने के लिए भी इनका उपयोग किया जाता है।

इन चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की दक्षता-अभिवृद्धि हेतु तथा उनकी शक्तियों का अधिक सार्थक उपयोग करने के लिए कोई विशेष प्रयत्न भारत में स्वतंत्रता के बाद नहीं किया गया। इस कारण इन कर्मचारियों के व्यक्तित्व एवं व्यावसायिक विकास हेतु कोई भी विशेष अभियान कहीं पर नहीं छेड़ा गया। आवश्यकता चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के पदों को नियंत्रित करने की तो है किन्तु अधिक बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि इन कर्मचारियों को विभिन्न विशिष्ट क्षेत्रों में प्रशिक्षित कर प्रशासन का एक उत्तरदायी अंग बनाया जाए। ऐसा देखा गया है कि इस वर्ग के अधिकांश सदस्य पढ़े-लिखे बुद्धिमान एवं निष्ठावान होते हैं तथा इनकी शक्तियों का उपयोग अधिक सार्थकता से किया जाना राज्य हित में ही होगा। एक जनतंत्रात्मक देश में जहाँ मानवीय मूल्यों का स्थान सर्वोपरि होना चाहिए वहाँ पर चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार नहीं होना चाहिए तथा उनका प्रशासनिक तंत्र में विवेकपूर्ण एकीकरण होना चाहिए।

लोक सेवक की भूमिका

जब हम लोक सेवकों की भूमिका की चर्चा करते हैं तो यह सामान्यतया पूर्ण प्रशासनिक तंत्र की भूमिका से ही सम्बन्धित होती है, क्योंकि लोक सेवकों से ही प्रशासन-तंत्र को जीवन एवं गत्यात्मकता प्राप्त होती है। राज्य प्रशासन का ऐसा कोई कार्य एवं पहलू नहीं है जो कि लोक सेवकों की भूमिका से अछूता हो। फिर भी संक्षेप में हम उन महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों का विवेचन कर रहे हैं जो कि लोक सेवकों की भूमिका से जुड़े रहते हैं।

(1) विधान निर्माण में सहायता–राजस्थान विधान सभा में पारित होने वाले सभी विधेयकों का मसौदा लोक सेवकों द्वारा ही तैयार किया जाता है। इसके लिए राज्य का विधि विभाग प्रमुख रूप से उत्तरदायी है, किन्तु भूमिका उन सभी विभागों के लोक सेवकों की होती है जिनके विषय से सम्बन्धित विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। लोक सेवक प्रत्यायोजित विधान की शक्तियों का उपयोग करते हैं तथा इस सम्बन्ध में आवश्यक नियम बनाने में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

(2) राज्यपाल एवं मंत्रियों को प्रशासनिक सहायता–राज्यपाल का अपना एक सचिवालय होता है जिसमें कि सहायता प्रदान करने के लिए एक सचिव होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य होता है। इसके अधीन राज्य प्रशासनिक सेवा का उप-सचिव तथा एक राज्य लेखा सेवा का अधिकारी नियुक्त होता है। कई अन्य अधीनस्थ अधिकारी भी राज्यपाल सचिवालय में राज्यपाल को उसके कार्यों के निर्वहन में सहायता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार मुख्यमंत्री का अपना एक विस्तृत मुख्यमंत्री सचिवालय होता है जिसके बारे में पहले उल्लेख किया जा चुका है। राज्य सरकार के सभी मंत्रियों को भी सहायता प्रदान करने हेतु सैंकड़ों कर्मचारी कार्यरत होते हैं।

लोक सेवा के सदस्यों का उत्तरदायित्व है कि वे मंत्रियों को प्रशासनिक कार्य करने हेतु आवश्यक सहायता एवं परामर्श प्रदान करें, क्योंकि मंत्रीमंडल एवं विभिन्न विषयों के मंत्रियों की नीति निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, और इस प्रक्रिया में आवश्यक सुझाव एवं राय देना लोक

सेवकों का कर्तव्य है। इसी प्रकार विधान सभा में मंत्रियों के कार्यों को सुलभ बनाने हेतु आवश्यक सूचनाओं व प्रमाण देने का उत्तरदायित्व भी लोक सेवकों का होता है।

(3) **न्यायिक प्रशासन में सहायता**–राजस्थान के उच्च न्यायालय, जिला एवं सत्र न्यायालय, अधीनस्थ न्यायालय एवं अन्य विशेष न्यायालयों के प्रशासन को सुलभ बनाने के लिए इन न्यायालयों में प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करने हेतु तथा न्यायालय के निर्णयों को लागू करने के लिए लोक सेवकों की भूमिका अहम् होती है। बिना प्रशासनिक एवं पुलिस तंत्र की सहायता के न्यायालय कार्य नहीं कर सकते हैं, तथा इस सम्बन्ध में प्रदत्त प्रशासनिक सहायता न्यायिक व्यवस्था को सशक्त बनाने में उपयोगी होती है।

(4) **नियोजन**–राजस्थान राज्य के नियोजन विभाग तथा जिला एवं खण्ड स्तर के नियोजन तंत्र की व्यवस्था संचालन में लोक सेवकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। योजनाओं का निर्माण तथा उनके निष्पादन में प्रबोधन (मोनिटरिंग) लोक सेवकों की कुशाग्रता पर ही निर्भर करती है। राजस्थान में जिला तथा खण्ड स्तर पर नियोजन भली प्रकार से अभी लागू नहीं हुआ है जबकि 73वें संविधान संशोधन के अंतर्गत यह प्रक्रिया विधिवत् रूप से प्रारम्भ हो जानी चाहिए थी।

(5) **वित्तीय प्रशासन**–राज्य के बजट के निर्माण, विधान सभा में उसको प्रस्तुत करने, बजट के अंतिमीकरण, उसके निष्पादन, शिक्षा एवं अनुसंधान आदि में सम्बन्धित कार्यों एवं राज्य की आय के स्रोतों की अभिवृद्धि एवं वित्त पर नियंत्रण एवं नियमन की भूमिका लोक सेवकों के माध्यम से ही होती है। इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा वित्त विभाग के संगठन एवं भूमिका के अध्याय में की जा चुकी है।

(6) **राज्य का समग्र विकास**–शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, संचार, कृषि, सिंचाई, उद्योग, ग्रामीण विकास आदि के वैकासिक क्षेत्रों में निरन्तर प्रगतिशील नीतियों का बनाना व उनको लागू करने में लोक सेवकों की महत्ती भूमिका रहती है।

सचिवालय स्तर पर स्थित विभिन्न विभाग, विकास प्रशासन से जुड़े विभिन्न निदेशालय, संभागीय स्तर पर कार्यरत विभागों के कार्यालय, जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, विभिन्न विभागों के जिला स्तरीय कार्यालय जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण जिलाधीश कार्यालय है आदि के माध्यम से वैकासिक कार्यक्रमों को निष्पादित किया जाता है। जिला स्तरीय अधिकारी अपने अधीन उप-जिला स्तर एवं खण्ड एवं ग्राम स्तर पर होने वाले वैकासिक कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करते हैं तथा उस क्षेत्र में होने वाली प्रगति का निरन्तर प्रबोधन करते हैं।

यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान में विकास की कुछ विशेष आवश्यकताएँ हैं जो मरुस्थलीय विकास, जनजातीय क्षेत्रीय विकास एवं पहाड़ी क्षेत्रीय विकास से जुड़ी हुई हैं। निर्धनता, अशिक्षा, बेकारी एवं बीमारी जैसी समस्याएँ राजस्थान में सापेक्ष रूप से अधिक विकराल रूप लिए हुए हैं तथा लोक सेवकों का उत्तरदायित्व है कि वे विशिष्ट समस्याओं के समाधान में एकाग्रतापूर्वक योगदान करें।

(7) **स्थानीय शासन संस्थाओं का संचालन एवं नियंत्रण**–पंचायती राज संस्थाएँ, नगरपालिकाएँ, नगरपरिषद्, नगर विकास न्यास व विकास प्राधिकरण जैसी संस्थाओं के माध्यम से राजस्थान के गाँवों व नगरों के व्यवस्थित विकास करने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है।

स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के माध्यम से राजस्थान का नागरिक शासकीय तंत्र से जुड़ गया है तथा इसकी कुशलता पर ही जनता का विश्वास निर्भर करता है। राजस्थान में स्थानीय शासन संस्थाओं में कुशलता का स्तर अभी अपेक्षा से काफी कम है। अतः 73वें एवम् 74वें संविधान संशोधन को कुशलता से लागू करने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है।

(8) **जनता के प्रति संवेदनशीलता एवं प्रशासन में जन-सहभागिता**–एक संवेदनशील प्रशासन जनता की आवश्यकताओं व आकांक्षाओं को ध्यान में रख कर अपनी गतिविधियाँ संचालित करता है। प्रशासनिक नीतियों व योजनाओं के निर्माण एवं उनको लागू करने में जनता की भावनाओं को ध्यान में रखना परमावश्यक है। जनता की शिकायतों को दूर करना तथा उनमें प्रशासन के प्रति आस्था उत्पन्न करना भी लोक सेवकों का ही उत्तरदायित्व है। जनता की प्रशासन में सहभागिता जितनी अधिक होगी, उतनी ही प्रशासन में गत्यात्मकता एवं यथार्थता आयेगी। जनता की सहभागिता की क्षमता एवं उसकी इच्छा-शक्ति की अभिवृद्धि के लिए जनता की सहभागिता के अधिकतम अवसर प्रदान किये जाने चाहिए तथा लोक सेवक जनता के विकास प्रक्रियाओं में ही नहीं नियामकीय प्रशासन में भी सीधे व निरन्तर सम्बन्ध रखें तभी जनतंत्रात्मक प्रशासन की भावना पूर्ण हो सकती है।

(9) **सामाजिक न्याय सुलभ कराना**–निर्धन, पिछड़े, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्यों, बेकार व भूमिहीन, विकलांग, निरीह महिलाएँ तथा बालकों के विकास पर अधिक भलीभाँति एवं एकाग्रता से ध्यान देने का उत्तरदायित्व लोक सेवकों का ही है। ये समाज के विशेष वर्ग हैं तथा इनको प्राथमिकता प्रदान करना कल्याणकारी राज्य का प्रमुख उत्तरदायित्व है।

(10) **कानून व व्यवस्था का सुचालन**–राज्य में कानूनों का पालन ईमानदारी व कुशलता से हो, जन-जीवन सुरक्षित हो, जनता में सुरक्षा की भावना विकसित हो, अपराध पर नियंत्रण हो, कुशल विधि पालन हो एवं सामान्य व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित महसूस करे, यह सुनिश्चित करना राज्य सरकार तथा जिला एवं स्थानीय सरकार से जुड़े सभी लोक सेवकों का उत्तरदायित्व है। पुलिस प्रशासन की मुश्तैदी एवं ईमानदारी से एक ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है कि जिसमें कि अपराधी भयभीत तथा सहज सामान्य व्यक्ति अपने आपको सुरक्षित अनुभव करे। इस हेतु वर्तमान प्रशासन-तंत्र में एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न होना चाहिए जिसमें कि पुलिस प्रशासन शक्तिशाली वर्गों का नहीं, किन्तु निर्बलों का मित्र बन सके।

(11) **विविध कार्य**–चुनावों को कुशलता से सम्पन्न कराना, जनगणना प्रवीणता से संचालित करना, राज्य की नीतियों का आवश्यक प्रचार-प्रसार करना, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध में व अन्य राज्यों के साथ राज्य के सम्बन्धों को विवेकपूर्ण ढंग से संचालित करना आदि कुछ ऐसे कार्य हैं जिन्हें लोक सेवक कुशलता से सम्पादित करते हैं।

संक्षेप में कोई भी जन-जीवन से जुड़े ऐसे कार्य नहीं जो कि लोक सेवकों के उत्तरदायित्वों की परिधि से परे हों। एक प्रशासनिक राज्य एवं कल्याणकारी राज्य की भूमिका निभाने वाले प्रदेश की सरकार में नियुक्त लोक सेवक उन सभी उत्तरदायित्वों का वहन करते हैं जो कि जन-कल्याण एवं जन-सुरक्षा से जुड़े हों। आवश्यकता इस बात की है कि इन महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से निभाया जाए तथा प्रत्येक लोक सेवक की शैली एवं व्यवहार में ''लोक'' अर्थात् ''जनता'' की सेवा को तन्मयता से करने की भावना झलकती हो।

अध्याय 15

राजस्थान लोक सेवा आयोग

राजस्थान लोक सेवा आयोग का दायित्व राज्य प्रशासन को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए कुशल अधिकारियों-कर्मचारियों का चयन करना है। प्रशासन के विद्वानों का मानना है कि यदि कर्मचारी अच्छे हैं तो अवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित संगठनों को भी सफल बना सकते है और यदि कर्मचारी अच्छे नहीं हो तो अच्छे से अच्छे वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित संगठन भी नष्ट हो जायेंगे।[1] भावी प्रशासकों में एक वैचारिक स्पष्टता तथा नवीन मूल्यों को ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए, अन्यथा प्रशासन द्वारा सामाजिक परिवर्तन तथा विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा। ऐसे में किसी भी सरकार का कुशल होना इस बात पर निर्भर करता है कि उसमें कार्य करने वाले लोग कैसे हैं? ऐसी अपेक्षाओं की पूर्णता के लिए भर्ती करने वाला संगठन बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है तथा उसका समुचित रूप से सुव्यवस्थित होना भी आवश्यक है।

राजस्थान लोक सेवा आयोग का विकास

स्वतंत्रता-पूर्व भारत में राजस्थान की संस्कृति तथा व्यवस्था राजशाही की रही है। राजस्थान विभिन्न रियासतों व राज्यों में बँटा हुआ था जिनकी अपनी-अपनी अलग प्रशासनिक व्यवस्था थी। उनमें प्रशासनिक व्यवस्था में एकरूपता नहीं थी। कुछ राज्यों में प्रधान प्रशासनिक प्रमुख होता था तथा उसकी स्थिति राजा के बाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती थी। कुछ राज्यों जैसे कोटा में दीवान ही नागरिक तथा सैनिक सेवाओं का मुखिया होता था। बीसवीं शताब्दी में राजस्थान के कुछ राज्यों ने अपनी प्रशासनिक सेवाएँ प्रारम्भ की तथा भर्ती के लिए आयोग की स्थापना की। जोधपुर में 1939, जयपुर में 1940 तथा बीकानेर में 1946 में राज्य लोक सेवा आयोग ने अपना कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इन आयोगों का दायित्व भर्ती तथा सेवा सम्बन्धी नियमों का निर्माण तथा कुछ वर्गों के कर्मचारियों की नियुक्ति करना था। स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। अन्ततः 1949 एवं उसके पश्चात् 1956 में एकीकृत राजस्थान ने अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण किया। 1948-49 में प्रारम्भ हुई यह एकीकरण की प्रक्रिया पाँच चरणों में पूरी हुई। एकीकरण के पश्चात् जो राज्य का स्वरूप उभरा उसमें कई प्रकार की विषमताएँ थीं। विभिन्न राज्यों में आकार, जनसंख्या, आर्थिक, राजनैतिक-सांस्कृति-सामाजिक दृष्टि से विभिन्नताएँ तथा विशिष्टताएँ थीं। उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर जैसे राज्यों का कुशल तथा सुसंगठित प्रशासनिक तंत्र था जबकि कुछ

राज्यों में सामन्ती प्रथा पर आधारित प्रशासनिक व्यवस्था कायम थी। ऐसे में सम्पूर्ण राज्य के लिए प्रशासनिक एकरूपता लाना आवश्यक था।

इसी उद्देश्य से 16 अगस्त, 1949 को राजस्थान की तत्कालीन सरकार ने एक अध्यादेश जारी करके राजस्थान लोक सेवा आयोग की स्थापना की तथा तब तक जो विभिन्न लोक सेवा आयोग कार्यरत थे उन्हें समाप्त कर दिया गया। भारत का संविधान 1950 में लागू हुआ। उसके अन्तर्गत केन्द्र व राज्य दोनों ही स्तरों पर लोक सेवा आयोग की स्थापना की गई।

संगठन

राजस्थान लोक सेवा आयोग के प्रारम्भिक समय में यह व्यवस्था की गई थी कि आयोग का अध्यक्ष तथा सदस्य राजप्रमुख द्वारा नियुक्त किये जायेंगे। इन सदस्यों में से आधे सदस्यों को दस वर्षों का सरकारी सेवा का अनुभव होना आवश्यक था। राजप्रमुख को ही यह अधिकार था कि वह आयोग के सदस्यों की संख्या, सेवा-शर्तें तथा अन्य नियमों का निर्धारण करे। इसी अध्यादेश की व्यवस्था के अनुसार 28 जुलाई, 1950 को श्री एस.सी. त्रिपाठी राजस्थान लोक सेवा आयोग के प्रथम अध्यक्ष तथा श्री देवीशंकर तिवाड़ी और श्री एन.आर. चंडोरकर सदस्य नियुक्त किये गये।[2] 1968 में आयोग के सदस्यों की संख्या दो से बढ़कार तीन कर दी गई।[3] लेकिन धीरे-धीरे यह अनुभव किया गया कि सदस्यों की यह संख्या भी पर्याप्त नहीं है फलतः 1973 में यह संख्या चार[4] तथा 1981 में पाँच कर दी गई।[5] इन संशोधनों को दृष्टिगत रखते हुए आयोग का संगठन इस प्रकार है :

1. अध्यक्ष
2. सदस्य
3. आयोग सचिवालय के कार्यरत अधिकारी तथा कर्मचारी

सर्वप्रथम हम आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों के सांगठनिक पक्षों की चर्चा करेंगे।

सदस्यों की नियुक्ति

राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति राज्य के राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की सलाह पर की जाती है। आयोग के वरिष्ठ सदस्य को अध्यक्ष बनाये जाने की परम्परा है। आयोग के आधे सदस्यों को दस वर्ष का केन्द्र या राज्य सरकारी सेवा का अनुभव होना आवश्यक है। आयोग के अन्य सदस्यों के सम्बन्ध में संविधान द्वारा कोई विशेष दिशा-निर्देश नहीं दिये गये हैं।[6] आयोग के अध्यक्ष प्रशासनिक सेवा, पुलिस सेवा, इंजीनियरिंग सेवा, शिक्षा, वकालत आदि क्षेत्रों से चुने जाते हैं। राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष पद पर सामान्यतया सेवानिवृत्त उच्च शिक्षा अधिकारी, प्रशासक एवं अभियंता नियुक्त किये जाते हैं। कभी-कभी जन सेवा के क्षेत्र के व्यक्ति भी अध्यक्ष बनाये जाते हैं। इस पद पर आसीन प्रत्येक व्यक्ति की पृष्ठभूमि एवं उसके मूल्यों का प्रभाव आयोग के क्रियाकलाप एवं नैतिकता के मानदण्डों पर पड़ता है।

कार्यकाल, वेतन एवं भत्ते

आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष या 62 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक रहता है।[7] सेवाकाल समाप्त होने पर अध्यक्ष तथा सदस्य इसी आयोग में सेवा विस्तार का लाभ नहीं उठा सकते तथा किसी भी केन्द्रीय या राज्य सरकार के पद को ग्रहण नहीं कर सकते। आयोग के अध्यक्ष

रहे व्यक्ति को संघीय लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष या सदस्य नियुक्त किया जा सकता है या अन्य किसी राज्य के लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है। राज्य लोक सेवा आयोग के सदस्यों को उसी आयोग का अध्यक्ष, अन्य राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष, संघ लोक सेवा आयोग का सदस्य या अध्यक्ष नियुक्त किया जा सकता है। स्मरण रहे, केन्द्रीय लोक सेवा आयोग में सेवा-निवृत्ति आयु 65 वर्ष है।

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष को 24,000 रुपये (मूल) मासिक वेतन तथा सदस्यों को 22,000 रुपये मूल मासिक वेतन देय होता है। साथ ही राज्य के सचिव स्तर के अधिकारियों को देय मंहगाई भत्ते तथा अन्य परिलाभ भी प्रदान किये जाते हैं। यदि कोई राजकीय सेवानिवृत्त व्यक्ति आयोग का अध्यक्ष या सदस्य नियुक्त किया जाता है तो उसके वेतन से पेन्शन राशि काट ली जाती है। उसे सेवा निवृत्ति के बाद पूर्व विभाग की पेन्शन लेते रहने की छूट प्राप्त है, अन्यथा अध्यक्ष अथवा सदस्यों को सेवानिवृत्ति के बाद नियमानुसार पेन्शन देय होती है। सेवाकाल में इन्हें सभी सुविधाएँ यथा– यात्रा भत्ता, चिकित्सा तथा आवास सुविधाएँ इत्यादि मिलती हैं जो राज्य सरकार के सचिव स्तर के अधिकारी को देय होती हैं। इन्हें अवकाश आदि राज्य के राज्यपाल द्वारा विनियमों के अन्तर्गत निर्देश के अनुसार दिये जाते हैं। संविधान के प्रावधान के अनुसार इनके सेवाकाल में कोई हानिकारक परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यदि सदस्य को अध्यक्ष का स्थान रिक्त होने पर राज्यपाल द्वारा अस्थायी तौर पर अध्यक्ष का कार्य दायित्व सौंपा जाता है तो उसके लिए उसे अतिरिक्त भत्ता देय होता है। यह भत्ता तीस दिन से कम, तथा चार माह से अधिक के लिए प्राप्त नहीं हो सकता।

सेवा विमुक्ति

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों को पद विमुक्त करने का अधिकार राष्ट्रपति को है। यदि अध्यक्ष या सदस्य अपने पद का दुरुपयोग करता है या भ्रष्ट साधनों का सहारा लेता है और उसे उच्चतम न्यायालय द्वारा उक्त आरोप का दोषी पाया जाता है तो राष्ट्रपति के आदेश द्वारा उसे पद से हटाया जा सकता है। आरोप की जाँच के दौरान राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह आरोपी अध्यक्ष या सदस्य को निलम्बित कर दे। अन्य कई स्थितियों में भी अध्यक्ष तथा सदस्य को राष्ट्रपति पद-विमुक्त कर सकता है, जैसे– न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया गया हो, वे अपने पद के अलावा अन्य लाभ के कार्य में संलग्न पाये गये हों, राष्ट्रपति की राय में शारीरिक या मानसिक दुर्बलता के कारण पद पर बने रहने योग्य न रह गये हों। राजस्थान में इस प्रकार की पद मुक्ति अभी तक किसी अध्यक्ष अथवा सदस्य की नहीं की गई है।

अध्यक्ष चाहे तो अपने हस्ताक्षरों से त्याग-पत्र अंकित करते हुए समय से पूर्व अपने पद से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

आयोग सचिवालय

राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह लोक सेवा आयोग के कर्मचारियों की संख्या तथा उनकी सेवा के सम्बन्ध में नियम-विनियम निर्धारित करे। इन्हीं नियमों के प्रावधान के अनुसार आयोग में एक सचिव होता है। अराजपत्रित व राजपत्रित अधिकारियों की संख्या राज्यपाल द्वारा समय-समय पर निर्धारित की जाती है।

सचिव ही आयोग प्रशासन का व्यावहारिक कार्यपालक होता है जो या तो भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है अथवा आयोग के उप-सचिव पद से पदोन्नत करके सचिव के पद पर नियुक्त किया जाता है। राजस्थान लोक सेवा आयोग का सचिव सामान्यतया भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य ही रहा है। सचिव की किसी भी प्रकार की नियुक्ति के सम्बन्ध में राज्यपाल की अनुमति आवश्यक है। उसके वेतन तथा भत्तों का निर्धारण भी राज्यपाल द्वारा ही किया जाता है। सचिव का कार्यकाल सामान्यतः पाँच वर्ष का होता है। किन्तु इस नियम का पालन सामान्यतः नहीं किया जाता। सचिव के प्रति किसी भी प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही का अधिकार अध्यक्ष को ही है। ऐसी किसी कार्यवाही के विरुद्ध सचिव का अधिकार है कि वह राज्यपाल को अपील करे।

आयोग सचिवालय के अराजपत्रित कर्मचारियों की नियुक्ति अध्यक्ष की अनुमति से सचिव द्वारा की जाती है। इन कर्मचारियों पर वही सेवा शर्तें लागू होती हैं जो राज्य सचिवालय में कार्यरत समान स्तर के कर्मचारियों के लिए निर्दिष्ट हैं। सचिव को अधिकार है कि वह आवश्यकता पड़ने पर कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करे। ऐसी किसी कार्यवाही के विरुद्ध अपील आयोग के अध्यक्ष के समक्ष की जा सकती है।

सचिव के अधीन उप-सचिव, सहायक सचिव, अनुभाग अधिकारी तथा अन्य कार्यालय कर्मचारी होते हैं। ये सभी अधिकारी तथा कर्मचारी आयोग के सेवारत व्यक्तियों में से ही पदोन्नति के आधार पर नियुक्त किये जाते हैं। यहाँ भी सचिव ही इनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने में सक्षम है तथा ऐसी किसी कार्यवाही के विरुद्ध आयोग के अध्यक्ष के समक्ष अपील की जा सकती है।

सांगठनिक संरचना

आयोग सचिवालय में कार्यकुशलता, विशिष्टता तथा विभिन्न स्तर पर विभिन्न वर्गों के अधिकारियों व कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना बढ़ाने के उद्देश्य से इसे छः संभागों में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं :

1. प्रशासनिक संभाग
2. भर्ती संभाग
3. परीक्षा संभाग
4. लेखा संभाग
5. विधि संभाग
6. शोध संभाग

प्रशासनिक संभाग को संस्थापन तथा निरीक्षण विभागों में बाँटा गया है। संस्थापन विभाग सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सेवा शर्तें निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी है, जबकि निरीक्षण विभाग का कार्य है– सुरक्षा व्यवस्था, आपूर्ति, भण्डार की देखभाल, रिकार्ड की व्यवस्था आदि।

आयोग का सबसे महत्वपूर्ण दायित्व भर्ती का है। इस दृष्टि से **भर्ती संभाग** का महत्त्व स्वयं सिद्ध है। विभिन्न पदों के लिए आयोजित परीक्षाओं के आवेदन-पत्र को प्राप्त करना, तत्सम्बन्धी

रिकार्ड रखना, परीक्षा की कार्यवाही करना तथा साक्षात्कार परिणाम तैयार करना इसी संभाग का दायित्व है। विभागीय पदोन्नति के लिए भी यही विभाग उत्तरदायी है।

परीक्षा संभाग सभी प्रकार के परीक्षा सम्बन्धी कार्यों के कुशलतापूर्वक संचालन के लिए उत्तरदायी है। ये कार्य निर्धारित पद्धति के अनुसार किये जाते हैं। परीक्षा सम्बन्धी सुधार कार्यक्रम, साक्षात्कार तथा संवीक्षा कार्यों के समन्वयन के लिए भी यही विभाग उत्तरदायी है।

लेखा संभाग का मुख्य कार्य बजट बनाना तथा आय-व्यय का हिसाब-किताब रखना है।

विधि संभाग आयोग से सम्बन्धित न्यायालय में मामले, अपील इत्यादि की कार्यवाही करने के लिए जिम्मेदार है।

भर्ती तथा **परीक्षा प्रक्रिया** में समय के अनुसार निरन्तर सुधार की आवश्यकता है इस सम्बन्ध में शोध कार्य व सुधार से सम्बन्धित सुझाव के लिए **शोध संभाग** स्थापित किया गया है। यही संभाग आयोग के वार्षिक प्रतिवेदन भी तैयार करता है।

आयोग के दायित्व

आयोग के विभिन्न संभागों से सम्बन्धित संक्षिप्त जानकारी से स्पष्ट है कि आयोग के प्रमुख दायित्व इस प्रकार हैं :

भर्ती प्रक्रिया का क्रियान्वयन : परीक्षा तथा साक्षात्कार का आयोजन

राजस्थान लोक सेवा आयोग की स्थापना के लिए जो अध्यादेश 1949 में जारी किया गया था उसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया था कि राज्य की असैनिक सेवा तथा असैनिक पदों पर भर्ती के लिए परीक्षाओं को आयोजन करना आयोग का दायित्व होगा। **राजस्थान लोक सेवा आयोग (दायित्व की सीमाएँ) विनियम 1951** के द्वारा उन क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है जिनमें भर्ती करने के लिए आयोग को कार्य नहीं करना है। यह उल्लिखित निषिद्ध क्षेत्रों को छोड़कर सभी पदों की नियुक्तियों के लिए आयोग उत्तरदायी है।

राज्य की प्रशासनिक, पुलिस, लेखा, सहकारिता आदि सेवाओं के रिक्त पदों व नवसृजित पदों पर भर्ती का कार्य आयोग करता है। रिक्त पदों के सम्बन्ध मे विज्ञापन प्रमुख राष्ट्रीय, राज्य-स्तरीय, स्थानीय समाचार-पत्रों तथा रोजगार समाचार में प्रकाशित किये जाते हैं। निर्धारित तिथि तक आये आवेदन पत्रों को छाँटकर भर्ती के लिए परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं। कुछ समय पूर्व तक अभ्यर्थियों की संख्या इतनी अधिक नहीं होती थी, अतः लिखित परीक्षा तथा साक्षात्कार के माध्यम से उम्मीदवारों का चयन कर लिया जाता था। शिक्षा के प्रचार-प्रसार, बढ़ती जनसंख्या, उच्च पदों के लिए बढ़ती महत्त्वाकांक्षा तथा अधिक जानकारी की उपलब्धता के कारण प्रार्थना-पत्रों की इतनी अधिक संख्या बढ़ गई है कि उन सबको सीधे लिखित परीक्षा के लिए आमंत्रित करना संभव नहीं है। अतः 1984 में राज्य एवं अधीनस्थ सेवाओं में चयन हेतु संवीक्षा परीक्षा प्रारम्भ की गईं जिसमें अभ्यर्थियों की सामान्य ज्ञान तथा एक वैकल्पिक विषय में परीक्षा ली जाती है। इस परीक्षा में जो निर्धारित प्रतिशत अंक प्राप्त करते हैं उन्हें मुख्य परीक्षा के लिए आमंत्रित किया जाता है। तत्पश्चात् उनमें से सफल उम्मीदवारों को साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। इन दायित्वों के निर्वहन के लिए आयोग को लम्बी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, पर उम्मीदवारों की बेहिसाब बढ़ती संख्या को देखते हुए ही इस पद्धति को प्रारम्भ किया गया है।

राजस्थान लोक सेवा आयोग
संगठन

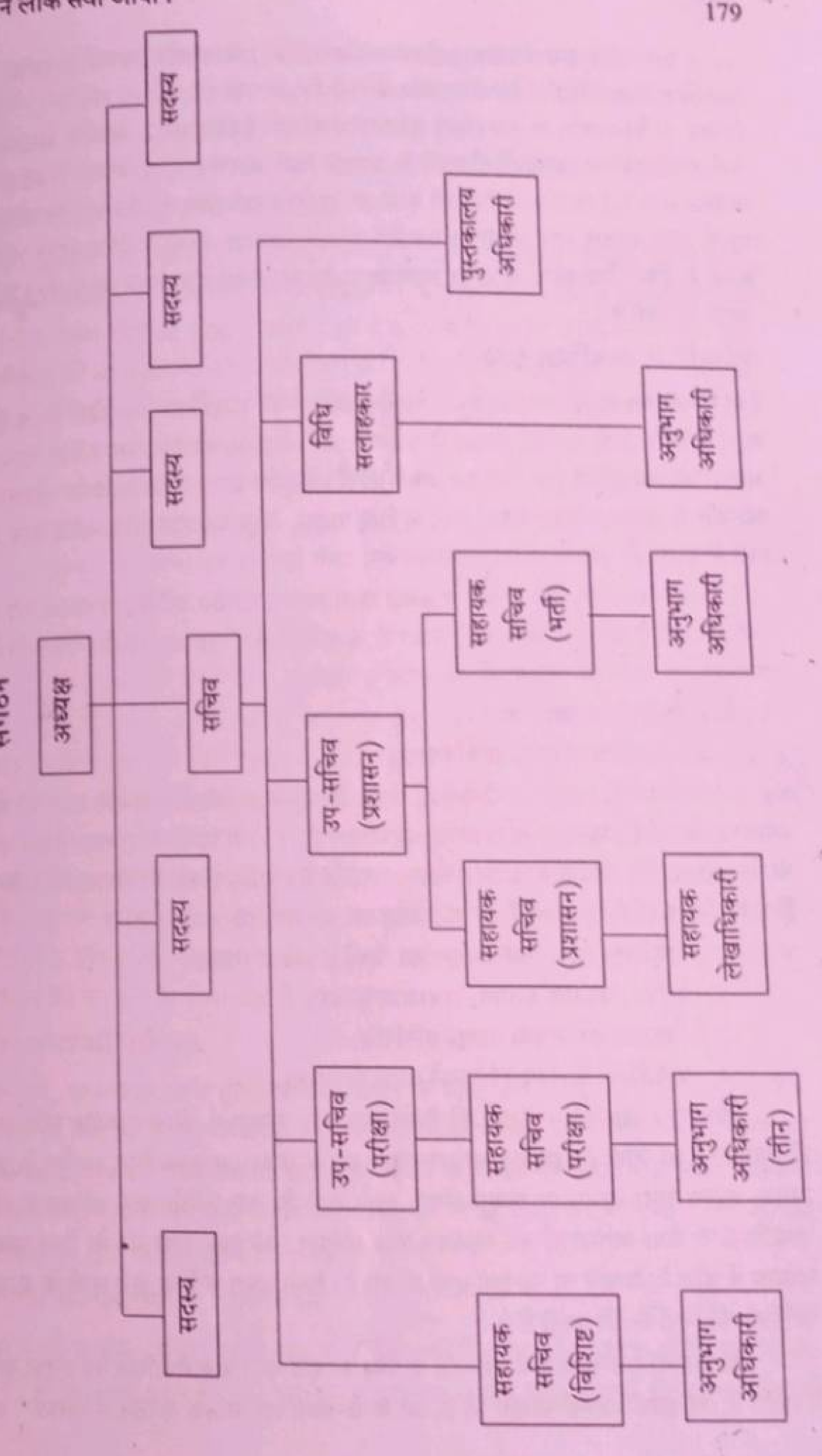

इस पद्धति द्वारा चयनित सर्वोत्तम उम्मीदवारों के नाम आयोग अपनी अनुशंसा के साथ सम्बन्धित विभागों में भेज देता है। उम्मीदवारों को नियुक्ति देने का दायित्व सम्बन्धित प्रशासनिक विभाग का है। आयोग तो चयन करने का परामर्श ही देता है। सामान्यतः आयोग द्वारा अनुशंसित सभी उम्मीदवारों को नियुक्ति दे दी जाती है। पर यदि किसी कारण से राज्य सरकार किसी उम्मीदवार के सम्बन्ध में कोई विपरीत निर्णय लेती है तो उसे इसका स्पष्टीकरण आयोग को देना होता है। जो मामले राज्य सरकार द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाते हैं, आयोग उनका उल्लेख अपने प्रतिवेदन में करता है, जिसे विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है। सामान्यतः इस प्रकार के मामलों की संख्या नगण्य ही रहती है।

पदोन्नति से सम्बन्धित दायित्व

सेवा में पदोन्नति की व्यवस्था कार्यकुशलता एवं मनोबल की वृद्धि में सहायक होती है। काट्ज तथा कान्ह ने कर्मचारियों के लिए संगठन में पदोन्नति की व्यवस्था को प्रेरक माना है।[8] एण्डरसन के अनुसार भी कर्मचारियों द्वारा किये गये अच्छे कार्यों को इनाम प्रदान करना चाहिए।[9] भेदभाव रहित पदोन्नति के समान अवसर, बेहतर कार्य के लिए प्रशंसा, अनुशासनहीन दायित्वहीन कार्य के लिए सजा से संगठन में काम करने का वातावरण बना रहता है।

राजस्थान लोक सेवा आयोग न केवल राज्य सरकार की सेवाओं में कर्मचारियों की भर्ती के लिए उत्तरदायी है अपितु आरम्भ से ही पदोन्नति के दायित्व से भी सम्बद्ध रहा है। पदोन्नति के लिए सामान्यतः दो प्रकार की प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है:

1. परीक्षा के द्वारा, एवं
2. विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा।

राजस्थान की लगभग सभी सेवाओं में सीधी भर्ती के अतिरिक्त पदोन्नति द्वारा भी भर्ती की व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 320 (3) में निर्देश दिया गया है कि पदोन्नति के लिए सरकार को आयोग का परामर्श लेना आवश्यक है। विभिन्न स्तर की सेवाओं में पदोन्नति के लिए विभागीय समितियाँ होती हैं जिनकी सामान्यतः संरचना इस प्रकार होती है:

1. राजस्थान लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य;
2. सचिव, कार्मिक विभाग, राजस्थान सरकार;
3. विभागाध्यक्ष अथवा उसका प्रतिनिधि; एवं
4. प्रत्याशियों के कार्य को जानने वाला विशेषज्ञ।

विभागीय पदोन्नति समितियों की बैठकें सामान्यतः जयपुर में स्थित राजकीय सचिवालय में ही आयोजित की जाती है। इस हेतु आवश्यकता पड़ने पर राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष अथवा सदस्य समय-समय पर जयपुर प्रवास करते रहते हैं। इस समिति का दायित्व है कि वह प्रत्याशियों के सेवा अभिलेखों का अध्ययन करे। योग्यता, वरिष्ठता तथा पद के लिए पात्रता के सम्बन्ध में जाँच के आधार पर यह एक सूची बनाती है। रिक्त उच्च पदों पर इसी सूची के क्रमानुसार कार्मिकों की नियुक्ति की जाती है।

यह प्रक्रिया कुछ सीमा तक पदोन्नति के प्रश्न को हल करने व कर्मचारियों को संतुष्ट कर पाने में सक्षम है, पर इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं, जो कभी-कभी प्रशासनिक संगठन में अंसतोष उत्पन्न

करती है। कई बार विभागीय पदोन्नति समितियों की बैठकें समय पर आयोजित नहीं हो पाती हैं। इस बारे में अधिकांश विलम्ब सरकारी विभागों के कारण होता है। सम्बन्धित मंत्री अथवा अधिकारियों की तत्परता एवं रुचि के अभाव में इन समितियों की बैठकें बुलाये जाने में अनावश्यक विलम्ब भी देखा गया है। समय निकलने के बाद मिले लाभ से कर्मचारियों का मनोबल क्षीण होता है।

अनुशासनिक कार्यवाही सम्बन्धी दायित्व

जिस प्रकार योग्यता एवं ईमानदारी के लिए प्रशंसा का महत्त्व है उसी प्रकार उच्छृंखलता व उत्तर-दायित्वविहीन व्यवहार के लिए दण्ड भी आवश्यक है। अनुशासनात्मक कार्यवाही नियोक्ता तथा कर्मचारियों के मध्य संतुलित सम्बन्ध बनाये रखने में सहायक है। इसका उद्देश्य नकारात्मक नहीं, अपितु कर्मचारियों को कर्तव्यनिष्ठ, उत्तरदायी एवं संगठन के प्रति जवाबदेह बनाना है। डा. एल.डी. व्हाइट ने अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए निम्नलिखित कारणों को पर्याप्त आधार बताया है[10]:

1. कर्तव्यपालन में लापरवाही
2. कार्य में विलम्ब
3. कार्य-कुशलता का अभाव
4. कानूनों व नियमों का उल्लंघन
5. भ्रष्ट व अनैतिक आचरण
6. उच्च पदस्थ अधिकारियों की अवज्ञा, तथा
7. कार्य स्थल पर नशा करना आदि।

उपर्युक्त स्थितियों में कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है। राजस्थान राज्य सरकार यदि किसी कर्मचारी को उपर्युक्त में से किसी भी प्रकार के कारण का दोषी पाये तो वह उक्त कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही का निर्णय ले सकती है तथा इस सम्बन्ध में राजस्थान लोक सेवा आयोग को मामले की जानकारी देते हुए उसका परामर्श ले सकती है। आयोग के परामर्श बाध्यकारी तो नहीं होते पर सरकार अधिकतर उसके निर्देश को स्वीकार करती है। आयोग का दायित्व होता है कि वह यह सुनिश्चित करे कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के लिए निर्धारित प्रक्रिया की अनुपालना की गई है या नहीं एवं कर्मचारी को अपनी बात कहने तथा स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया गया है अथवा नहीं।

परामर्श सम्बन्धी दायित्व

स्थानान्तरण, पदस्थापन, क्षतिपूर्ति, न्यायिक मामले के लिए खर्च आदि की नीति के सम्बन्ध में राज्य सरकार आयोग से परामर्श लेती है। वरिष्ठता-निर्धारण तथा सेवा नियमों का परीक्षण भी आयोग का दायित्व है। राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर तत्कालीन आवश्यकतानुसार अस्थायी नियुक्तियाँ कर ली जाती हैं। ऐसी नियुक्तियों का आयोग से अनुमोदन कराना आवश्यक है अन्यथा कर्मचारियों को सेवा के सारे लाभ प्राप्त नहीं होते।

राज्यपाल को आयोग का प्रतिवेदन

राजस्थान लोक सेवा आयोग अपने समस्त कार्यकलापों के लिए राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी है। संविधान के अनुच्छेद 323 की इसी व्यवस्था के अनुसार आयोग प्रतिवर्ष अपने विविध कार्यकलापों

यथा भर्ती, पदोन्नति, वरिष्ठता-निर्धारण, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अस्थायी सेवाओं की स्वीकृति तथा अन्य परामर्श सम्बन्धी कार्यों का सम्पूर्ण विवरण राज्यपाल को प्रेषित करता है। इस प्रतिवेदन में उन मामलों का भी उल्लेख होता है जिन पर आयोग द्वारा परामर्श दिया गया हो तथा राज्य सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया हो। ऐसे प्रतिवेदन की प्रतिलिपि राज्यपाल राज्य विधान-सभा के विचारार्थ प्रस्तुत करवाते हैं। विधान-सभा पटल पर रखे जाने का उद्देश्य जनप्रतिनिधियों के समक्ष आयोग की कार्यवाही तथा सरकार के तदनुरूप व्यवहार के सम्बन्ध में पारदर्शिता को स्पष्ट करना है, किन्तु व्यवहार में देखा गया है कि इन प्रतिवेदनों पर विधान-सभा में गंभीर विचार-विमर्श नहीं किया जाता है, जो संवैधानिक भावनाओं के प्रतिकूल है। इस सम्बन्ध में एक अन्य कमी यह है कि राजस्थान लोक सेवा आयोग के प्रतिवेदन विधान-सभा में विचारार्थ समय पर नहीं लिये जाते। कई बार इस सम्बन्ध में दो-दो, तीन-तीन वर्षों का विलम्ब हो जाता है। निश्चित रूप से यह स्थिति वांछनीय नहीं है।

मूल्यांकन

राजस्थान लोक सेवा अयोग की संगठन विधि से लेकर कार्य प्रणाली, स्थिति, अधिकार तथा उसके दिये गए परामर्शों का सरकार द्वारा क्रियान्वयन, ये सभी क्षेत्र चर्चा तथा विवाद का विषय रहे हैं। यही कारण है कि समय-समय पर इनमें परिवर्तन तथा संशोधन की माँग की जाती रही है।

एक विवाद **अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति** सम्बन्धी प्रक्रिया का है। कई बार आलोचना की जाती है कि वर्तमान पद्धति में यह पूर्ण संभावना है कि मुख्यमंत्री की अपनी पसन्द का व्यक्ति ही इन पदों पर नियुक्त होता है। राजनीतिक आधार पर नियुक्त व्यक्ति राजनीतिक प्रभाव में कार्य करे ऐसी संभावना बनी रहती है।[11] इस सन्दर्भ में नियुक्ति पद्धति में परिवर्तन के सुझाव दिये जाते रहे हैं, यथा राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के समय संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष की सलाह ली जानी चाहिए।[12] राजनीति में सक्रिय रहे व्यक्तियों तथा किन्हीं विशिष्ट राजनीतिक अथवा कट्टर सामुदायिक दृष्टिकोण के व्यक्ति को इन पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। प्रतिनिध्यात्मकता के नाम पर न्याय एवं वस्तुनिष्ठता के मानकों को तिलांजलि नहीं दी जानी चाहिए।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की **सेवानिवृत्ति की आयु** 62 वर्ष निर्धारित की गई है तथा सेवानिवृत्ति के पश्चात् कोई अन्य लाभकारी रोजगार न करने का प्रतिबन्ध भी लगाया गया है। विशेषज्ञों का मानना है कि आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की सेवानिवृत्ति की आयु 65 वर्ष कर देनी चाहिए ताकि उनके अनुभव तथा बौद्धिक क्षमताओं का अधिकतम उपयोग किया जा सके तथा उन बुद्धिजीवियों की सेवा का लाभ उठाया जा सके जिनकी सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष है ताकि वे भी अपनी सेवानिवृत्ति के पश्चात् आयोग को अपने अनुभव का लाभ दे सकें।

कर्मचारियों के विरुद्ध **अनुशासनात्मक कार्यवाही** के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि राज्य सरकार कई बार आयोग की अनुशंसाओं की उपेक्षा कर देती है, क्योंकि आयोग की अनुशंसा को मानने के लिए राज्य सरकार कानूनी तौर पर बाध्य नहीं है। इस सम्बन्ध में पुनर्विचार की आवश्यकता है।

राजस्थान लोक सेवा आयोग की संवैधानिक स्थिति **स्वायत्त निकाय** के रूप में है, लेकिन व्यावहारिक रूप में कई अवसरों तथा क्षेत्रों में इसकी स्वायत्तता अर्थहीन हो जाती है, उसकी भूमिका

ऐसे सलाहकार की हो जाती है जिसकी राय मानना या न मानना राज्य सरकार की स्वेच्छा पर निर्भर करता है। कार्यपालिका ने इसके लिए कई तरीके निकाले हैं।आयोग का **वार्षिक प्रतिवेदन** विधान-सभा पटल पर इसलिए रखा जाता है ताकि उस पर व्यापक विचार-विमर्श हो, तथा राज्य सरकार की कार्यशैली जनप्रतिनिधियों के सामने स्पष्ट हो। पर प्रतिवेदन पर चर्चा न हो पाने से यह उद्देश्य भी उपेक्षित रह गया है। संविधान के अनुच्छेद 321 के प्रावधानों के अनुसार राज्यपाल को अधिकार है कि वह उन क्षेत्रों को सुनिश्चित करे जहाँ आयोग की सलाह की आवश्यकता नहीं है। 1951 में राजस्थान लोक सेवा आयोग के कार्यों को परिसीमित करते हुए अधिनियम पारित किया गया। 1961 में संशोधन द्वारा कुछ सेवाओं को आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया। ऐसी परिसीमन करने वाली प्रक्रियाओं का न रुकने वाला सिलसिला शुरु हुआ। फलतः 1983 में एक संशोधन और प्रस्तुत किया गया जिसके अनुसार आयोग की सलाह भर्ती, नियुक्ति, स्थानान्तरण, पदोन्नति, अनुशासनात्मक कार्यवाही के कुछ मामले में आवश्यक नहीं है, यथाः

1. नवीन सेवाओं तथा पदों का सृजन तथा संगठन
2. सेवाओं तथा पदों का वर्गीकरण
3. सेवाओं तथा पदों की भर्ती की सामान्य पद्धति
4. विशिष्ट वर्ष में किसी सेवा के रिक्त स्थानों पर भर्ती की संख्या का निर्धारण
5. सरकारी कर्मचारियों की प्रथम नियुक्ति के समय वेतन का निर्धारण तथा किसी पद के स्थानापन्न पदधारियों के वेतन का निर्धारण
6. पदोन्नति द्वारा भर्ती किये गए कर्मचारियों के वेतन का निर्धारण
7. सरकारी कर्मचारियों के परिवीक्षा (प्रोबेशन), प्रशिक्षण तथा सेवाओं में स्थायीकरण की शर्तें।

कुछ अन्य पद भी है जिनकी भर्ती व नियुक्ति राजस्थान लोक सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार में नहीं हैं यथा :

1. राज्यपाल के आवास तथा राज्यपाल के सचिव के कार्यालय के कार्मिक
2. महाधिवक्ता एवं सरकारी वकील
3. राजस्थान सशस्त्र पुलिस तथा राजस्थान पुलिस सेवा के अन्तर्गत निर्धारित पदों के अतिरिक्त अन्य सभी पद
4. राजस्थान सिविल सर्विस ट्रिब्यूनल के सदस्य
5. पायलट इन्सपेक्टर इन्चार्ज
6. एयर क्राफ्ट मेनटेनेन्स इंजीनियर
7. ग्लाइडिंग मेनटेनेन्स इंजीनियर
8. ग्लाइडिंग इन्सट्रक्टर इन्चार्ज।

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण पदों पर भर्ती को आयोग के क्षेत्राधिकार से बाहर रखने से उसकी स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

आयोग को अपने कार्यालय कर्मचारियों की स्वीकृति के लिए सरकारी प्रशासनिक विभागों पर निर्भर रहना पड़ता है। व्यवहार में यह देखा गया है कि आयोग की आवश्यकताओं के प्रस्तावों

को सम्पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जाता तथा अतिरिक्त कर्मचारियों के प्रस्ताव की स्वीकृति में काफी विलम्ब हो जाता है। यहाँ तक कि आयोग के सदस्यों की नियुक्ति भी समय पर नहीं हो पाती। ऐसे में यह स्वभाविक है कि आयोग की कार्यगति में शिथिलता आती है और अन्ततः राज्य के कार्मिक प्रशासन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

व्यवस्थापिका का यह अधिकार है कि वह समसामयिक आवश्यकता के अनुसार आयोग के कार्यों में वृद्धि या कटौती कर दे, आयोग के कार्यों से सम्बन्धित राज्यपाल द्वारा बनाये नियमों में परिवर्तन या संशोधन कर दे अथवा आयोग के प्रतिवेदन पर विचार-विमर्श के दौरान प्रश्न पूछे। इन सभी प्रक्रियाओं द्वारा विधायिका का आयोग पर पर्याप्त नियंत्रण रहता है।

आयोग के प्रत्येक कार्य यथा भर्ती, पदोन्नति, अनुशासनिक कार्यवाही आदि को न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। इससे न्यायपालिका को ऐसे अवसरों पर आयोग के कार्यकरण से सम्बन्धित नियमों-विनियमों की व्याख्या करने का अवसर मिलता है। न्यायपालिका की ऐसी किसी व्याख्या को आयोग तथा सरकार दोनों ही स्वीकार करते हैं। यद्यपि सरकार के पास यह विकल्प होता है कि यदि वह इस व्याख्या को स्वीकार न करे तो प्रावधानों में मनोनुकूल संशोधन कर दे।

ये नियंत्रण आयोग को निरंकुश होने से तो रोकते हैं पर कभी-कभी इनसे आयोग के अधिकार क्षेत्र में पर्याप्त कमी आ जाती है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. फेलिक्स ए. नीग्रो, *मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन* (न्यूयार्क : हार्पर इन्टरनेशनल एडीशन, 1970),पृ. 265.
2. राजस्थान लोक सेवा आयोग, *प्रथम प्रतिवेदन 1950-51* (जयपुर 1952).
3. राजस्थान सरकार,*अधिसूचना संख्या एफ 6 (19), नियुक्तियाँ (ए-10) 68*, दिनांक 2 दिसम्बर, 1968.
4. राजस्थान सरकार, *अधिसूचना संख्या एफ 8 (17), कार्मिक विभाग/ए- II/73.*
5. 17 नवम्बर, 1981 को राजस्थान लोक सेवा आयोग की सेवा शर्तों में संशोधन करके सदस्यों की संख्या चार से बढ़ाकर पाँच कर दी गई।
6. *भारतीय संविधान*, धारा 316.
7. *भारतीय संविधान*, 41वें संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा संशोधित।
8. डेनियल काट्ज तथा रोबर्ट एल. कान्ह, *द सोशल साइकोलोजी ऑफ आरगेनाइजेशन* (नई दिल्ली : वाइले ईस्टर्न प्राइवेट लि. 1970), पृ. 344.
9. रिचार्ड सी. एण्डरसन, *मोटिवेशन : द मास्टर की* (केलिफोर्निया : कोरेलेन पब्लिकेशन्स, 1973), पृ. 12.
10. एल.डी. व्हाइट, *इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन* (न्यूयार्क : मैकमिलन, 1954).
11. नीरेन हजारिका, *पब्लिक सर्विस कमीशन्स* (नई दिल्ली : लीला देवी पब्लिकेशन्स, 1978), पृ. 43.
12. भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग का यही मत था।

□□□

अध्याय 16

लोक सेवा में भर्ती

भारत में संघीय व्यवस्था की भावना के अनुकूल लोक सेवाओं में केन्द्र व राज्य दोनों के द्वारा भर्ती की व्यवस्था की गई है। राज्य की लोक सेवाओं में कर्मचारियों की नियुक्ति राज्य लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है, यद्यपि उच्च प्रशासनिक पदों पर संघ लोक सेवा आयोग द्वारा चुने व्यक्तियों को ही पदस्थापित किया जाता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 309 में राज्य सरकार के लिए प्रशासनिक सेवाओं के सम्बन्ध में निर्देश दिये गये हैं। सेवाओं में भर्ती के नियम बनाते समय संवैधानिक प्रावधानों यथा कानूनों के समक्ष समानता तथा प्रशासनिक सेवाओं में सभी को समान अवसर का ध्यान रखना आवश्यक है।

राजस्थान में लोक सेवाओं का संगठन राजस्थान लोक सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील), नियम 1958 के आधार पर किया जाता है। इन नियमों के अनुसार राज्य की लोक सेवाओं को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है:

1. राज्य सेवाएँ
2. अधीनस्थ सेवाएँ
3. मंत्रालयिक सेवाएँ (मिनिस्ट्रीरियल)
4. चतुर्थ श्रेणी सेवाएँ

राज्य सेवाएँ

लोक सेवा के शीर्ष पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा, राजस्थान पुलिस सेवा, राजस्थान लेखा सेवा, राजस्थान उद्योग सेवा, राजस्थान पर्यटन सेवा, राजस्थान सहकारी सेवा, राजस्थान नियोजन सेवा तथा अन्य सेवाएँ आती हैं, जिनकी कुल संख्या 61 है। इसके अतिरिक्त यातायात विभाग, चिकित्सा तथा जनस्वास्थ्य, मेडीकल कॉलेज, हरिचन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान तथा सार्वजनिक उद्यम विभाग के कुछ पद भी उच्चतर राज्य सेवाओं के अंग है।

अधीनस्थ सेवा

अधीनस्थ सेवाओं में राज्य सेवाओं के निचले स्तर की सेवाएँ है, जिसमें उद्योग, तहसीलदार, कनिष्ठ नियोजन, अधिकारी, देवस्थान, अधीनस्थ सेवाएँ, आबकारी अधीनस्थ सेवा तथा अधीनस्थ

सहकारी सेवाएँ सम्मिलित हैं। इनके अतिरिकत राजस्व, मूल्यांकन, नागरिक सुरक्षा, होमगार्डस्, गजेटियर्स, पुरातत्त्व संग्रहालय तथा श्रम विभाग की कुछ सेवाएँ भी इस श्रेणी में आती हैं।

मंत्रालयिक श्रेणी की सेवाएँ कार्यालय लिपिक, टाइपिस्ट, स्टेनोग्राफर आदि से सम्बन्धित हैं। चतुर्थ श्रेणी की सेवाएँ भी राजस्थान लोक सेवाओं के अंग हैं।

भर्ती की प्रक्रिया

उच्च लोक सेवाओं में भर्ती की दो प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं:

1. **प्रत्यक्ष भर्ती–** प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से युवा नागरिक प्रशासन के सदस्य के रूप में प्रवेश करते हैं। इस सम्बन्ध में आगे विस्तार से चर्चा की जायेगी।

2. **अप्रत्यक्ष भर्ती–** राज्य सेवाओं में कार्यरत कर्मचारियों को ही पदोन्नति के माध्यम से उच्च सेवा में कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाता है। उच्च लोक सेवा मे अधिकतर पद प्रत्यक्ष भर्ती से भरे जाते हैं, कुछ पद पदोन्नति द्वारा भी भरे जाने के लिए रखे जाते हैं ताकि राज्य सेवा में लम्बे समय से कार्यरत अधिकारियों को उच्च प्रशासनिक पदों पर कार्य करने का अवसर मिले।

प्रत्यक्ष भर्ती

सरकारी सेवाओं के विभिन्न विभागों में अवकाश प्राप्ति, पदोन्नति तथा असामयिक मृत्यु जैसे कारणों से प्रत्येक वर्ष कुछ पद रिक्त होते रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर नये पदों का सृजन भी किया जाता है जिन पर भी नियुक्ति करना आवश्यक है। सभी सरकारी विभाग अपने रिक्त स्थानों की भर्ती के लिए अपनी आवश्यकताएँ तथा माँग के बारे में सरकार के माध्यम से राजस्थान लोक सेवा आयोग के पास सूचनाएँ भेजते हैं। इन्हीं आवश्यकताओं की सूचना के आधार पर राजस्थान लोक सेवा आयोग रिक्त पदों के सम्बन्ध में राज्य के प्रमुख समाचार पत्रों तथा ***रोज़गार समाचार*** में विज्ञापन प्रकाशित करता है। रिक्त स्थानों के बारे में सूचना ***राजस्थान गजट*** में भी प्रकाशित की जाती है। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग, विकलांग या अन्य किसी प्रकार के आरक्षण की व्यवस्था हो तो उसकी सूचना विज्ञापन में दी जाती है। सेवाओं में भर्ती के लिए आवेदन पत्र निर्धारित प्रपत्र में आमंत्रित किये जाते हैं। राज्य-स्तरीय उच्च प्रशासनिक सेवाओं के लिए एक प्रत्याशी को कई अवसर प्रदान किये जाते हैं। सामान्य अभ्यर्थी को चार अवसर प्रदान किये जाते हैं। राज्य सेवा में अराजपत्रित कर्मचारी के लिए आरक्षित पदों के लिए तीन अतिरिक्त अवसर दिये जाते हैं। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। प्रारम्भिक परीक्षा में कोई अभ्यर्थी असफल हो जाए तो उसे भी एक अवसर माना जाता है।

परीक्षा शुल्क

सामान्य प्रत्याशी को अपने प्रार्थना-पत्र के साथ 100 रुपये का तथा विकलांग अभ्यर्थी को 25 रुपये का पोस्टल आर्डर सचिव, राजस्थान लोक सेवा आयोग के पक्ष में अपने प्रार्थना-पत्र के साथ संलग्न करना आवश्यक है। राजस्थान के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा नेत्रहीन आवेदकों को शुल्क में पूर्णतया छूट प्रदान की गई है। परीक्षा शुल्क के सम्बन्ध में आयोग को अधिकार है कि वह समयानुसार परिवर्तन करे।

पात्रता

प्रतियोगी परीक्षाओं में भाग लेने के लिए एक प्रत्याशी को निम्नलिखित योग्यताएँ पूरी करना आवश्यक है:

1. वह भारत का नागरिक हो।
2. किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय से कला, विज्ञान, वाणिज्य, कृषि, अभियांत्रिकी, मेडीकल में स्नातक होना चाहिए।
3. विज्ञापन जब निकाला गया हो तब तक उसके आगामी वर्ष के एक जनवरी को प्रत्याशी ने 21 वर्ष की आयु परी कर ली हो, पर 35 वर्ष से अधिक का नहीं हो। राजस्थान के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिला प्रत्याशियों को 5 वर्ष की छूट दी गई है, अर्थात् वे 40 वर्ष की आयु तक अभ्यर्थी बन सकते हैं। राजस्थान सरकार के स्थायी रूप से कार्यरत कर्मचारी के लिए अधिकतम आयु सीमा 42 वर्ष निर्धारित की गई है। विधवा तथा तलाकशुदा महिला आवेदकों के लिए कोई आयु सीमा नहीं है। पंचायत समितियों, जिला परिषदों में संस्थायी रूप से कार्यरत कर्मचारियों के लिए केवल अधीनस्थ सेवा पदों के लिए उच्चतम आयु सीमा 40 वर्ष तय की गई है।

परीक्षा प्रणाली

यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त अर्हताएँ पूरी करता हो तो राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा राज्य एवं अधीनस्थ संयुक्त सेवाएँ प्रतियोगी परीक्षा में भाग लेने के योग्य है। ये परीक्षाएँ तीन स्तर पर ली जाती है:

1. प्रारम्भिक परीक्षा
2. मुख्य परीक्षा
3. साक्षात्कार।

प्रारम्भिक परीक्षा

प्रत्याशियों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए मुख्य परीक्षा तक पहुँचने के लिए एक चरण और प्रारम्भ किया गया है जो प्रारम्भिक परीक्षा के नाम से जाना जाता है। यह पद्धति अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय लोक सेवाओं की भर्ती की प्रक्रिया के प्रतिमान पर आरम्भ की गई है। इस चरण में सफल अभ्यर्थी ही मुख्य परीक्षा में भाग लेने का हकदार है। प्रांरभिक परीक्षा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के आधार पर ली जाती है। इस स्तर पर दो प्रश्न पत्र होते हैं:

1. **सामान्य ज्ञान एवं सामान्य विज्ञान–** इस प्रश्न पत्र द्वारा प्रत्याशी के सामान्य ज्ञान का आकलन किया जाता है यथा राज्य, देश तथा विदेश में होने वाली महत्त्वपूर्ण घटनाएँ, दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाले सामान्य विज्ञान की जानकारी; भूगोल तथा प्राकृतिक संसाधन जैसे महत्त्वपूर्ण स्थान, नदी, पहाड़ आदि; राजस्थान का भौगोलिक वातावरण, जलवायु, मानव संसाधन यथा जनसंख्या, बेरोजगारी, गरीबी की समस्या; प्राकृतिक आपदाएँ यथा सूखा, बाढ़, दुर्भिक्ष आदि; राजस्थान के प्राकृति संसाधन यथा खनिज, खानें, जंगल, भूमिजल, पशु संसाधन, वन्यजीवन संरक्षण, पारम्परिक तथा गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत आदि। इसी प्रश्न पत्र में कृषि तथा आर्थिक विकास से

सम्बन्धित जानकारी के ज्ञान का भी परीक्षण किया जाता है, यथा राजस्थान की फसलें, कृषि आधारित उद्योग, प्रमुख सिंचाई तथा नदी घाटी योजनाएँ, इंदिरा गांधी नहर परियोजना, औद्योगिक कच्चे माल की उपलब्धता, खनिजीय उद्योग, ग्रामीण व कुटीर उद्योग, लघु उद्योग तथा वित्तीय संस्थाएँ। एक अभ्यर्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह राजस्थान के इतिहास व संस्कृति की भी जानकारी रखता हो। अतः भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य, राष्ट्रीय आन्दोलन, राष्ट्रीय एकीकरण, राजस्थान की प्रमुख भाषा तथा बोलियाँ, तीज-त्यौहार, साहित्य तथा धार्मिक आस्था से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। यह प्रश्न-पत्र 200 अंकों का होता है तथा परीक्षा अवधि दो घण्टे की होती है।

2. **ऐच्छिक विषय–** यह भी 200 अंकों का होता है तथा परीक्षा अवधि दो घण्टों की होती है। अभ्यर्थी द्वारा निम्नलिखित में से एक विषय का चुनाव किया जा सकता है:

1. कृषि विज्ञान
2. पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान
3. वनस्पति विज्ञान
4. रसायन शास्त्र
5. सिविल अभियांत्रिकी
6. वाणिज्य
7. अर्थशास्त्र
8. विद्युत अभियांत्रिकी
9. भूगोल
10. भू-गर्भ विज्ञान
11. भारतीय इतिहास
12. विधि
13. गणित
14. यांत्रिक अभियांत्रिकी
15. दर्शन शास्त्र
16. भौतिक शास्त्र
17. राजनीति विज्ञान
18. मनोविज्ञान
19. लोक प्रशासन
20. समाज शास्त्र
21. सांख्यिकी, तथा
22. प्राणी शास्त्र।

यह केवल संवीक्षा परीक्षा होती है। इसमें प्राप्त अंकों को अंतिम योग्यता क्रम निर्धारित करने हेतु नहीं जोड़ा जाता है तथा प्राप्त अंकों की पुनः गणना नहीं की जाती है।

मुख्य परीक्षा

राजस्थान राज्य सेवाओं में प्रवेश के लिए जो अभ्यर्थी प्रारम्भिक परीक्षा के चरण में उत्तीर्ण होता है वह द्वितीय चरण में प्रवेश करता है, अर्थात् वह मुख्य परीक्षा के लिए योग्यता अर्जित कर लेता है।

मुख्य परीक्षा में कुछ विषय अनिवार्य होते हैं तथा कुछ ऐच्छिक होते हैं। अनिवार्य विषय इस प्रकार हैं:

1.	सामान्य ज्ञान एवं सामान्य विज्ञान	100 अंक
2.	राजस्थान, राजस्थानी समाज, कला एवं संस्कृति का सामान्य ज्ञान	100 अंक
3.	सामान्य हिन्दी	200 अंक
4.	सामान्य अंग्रेजी	100 अंक

ऐच्छिक विषय– अभ्यर्थी को कोई दो एच्छिक विषय चुनने की स्वतंत्रता है। प्रत्येक विषय के दो प्रश्न पत्र होते हैं। प्रत्येक प्रश्न पत्र की अवधि तीन घण्टे तथा अधिकतम अंक 200 होते हैं। अतः ऐच्छिक विषयों के कुल प्रश्न पत्र चार होते हैं। निम्नलिखित विषयों में से किन्हीं दो विषयों को चुना जा सकता है:

1. कृषि विज्ञान 2. पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान 3. वनस्पति विज्ञान 4. रसायन शास्त्र 5. सिविल अभियांत्रिकी 6. वाणिज्य एवं लेखा कार्य 7. अर्थशास्त्र 8. विद्युत अभियांत्रिकी 9. भूगोल 10. भू-गर्भ विज्ञान 11. इतिहास 12. विधि 13. प्रबन्ध 14. गणित 15. यांत्रिक अभियांत्रिकी 16. दर्शन शास्त्र 17. भौतिक शास्त्र 18. राजनीति विज्ञान एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध 19. मनोविज्ञान 20. लोक प्रशासन 21. समाज शास्त्र 22. सांख्यिकी 23. प्राणी शास्त्र 24. अंग्रेजी 25. हिन्दी 26. उर्दू 27. संस्कृत 28. सिंधी।

स्पष्ट है कि प्रांरभिक परीक्षा के समस्त 22 विषय मुख्य परीक्षा के लिए भी उपलब्ध हैं। केवल प्रबन्ध एवं पाँच भाषाएँ ही ऐसे विषय हैं जो प्रांरभिक परीक्षा में नहीं हैं, किन्तु मुख्य परीक्षा में हैं।

साहित्य के विषय में से किसी एक का चुनाव किया जा सकता है। कुछ विषय संयोजन हैं जिन्हें चुनने की अनुमति नहीं है। वे इस प्रकार हैं–

1. राजनीति विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा लोक प्रशासन।
2. वाणिजय और लेखा कार्य तथा प्रबन्ध।
3. गणित और सांख्यिकी।
4. कृषि और पशुपालन तथा पशु चिकित्सा विज्ञान।
5. प्रबन्ध व लोक प्रशासन।
6. सिविल, विद्युत और यांत्रिक अभियांत्रिकी में से एक से अधिक नहीं।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान लोक सेवा आयोग ने भी मुख्य परीक्षा में प्रत्येक विषय के दो प्रश्न-पत्र निर्धारित करने की प्रणाली को अखिल भारतीय एवं केन्द्रीय सेवाओं के लिए लागू व्यवस्था के आधार पर 1996 से ही लागू करने का निश्चय किया है। इससे पूर्व चार पृथक्-पृथक् विषय चुनने की छूट थी तथा विषय समूह प्रणाली का प्रचलन नहीं था।

इस लिखित परीक्षा में प्रत्याशी जो अंक प्राप्त करता है उसे साक्षात्कार में प्राप्त अंकों के साथ जोड़कर योग्यता सूची बनाई जाती है। अनिवार्य विषय के प्रश्न-पत्र सीनियर सैकेण्ड्री स्तर के होते हैं तथा ऐच्छिक विषयों का स्तर स्नातक कक्षाओं के स्तर का होता है।

भाषा और साहित्य के प्रश्न-पत्रों के अतिरिक्त सभी प्रश्न-पत्रों के उत्तर या तो हिन्दी या अंग्रेजी में देना आवश्यक है। ऐसा नहीं किया जा सकता कि प्रश्न-पत्र के कुछ हिस्से का जवाब हिन्दी में और कुछ का जवाब अंग्रेजी में दिया जाए, जब तक विशेष रूप से ऐसा करने की अनुमति न दी जाए। संस्कृत, उर्दू तथा सिन्धी भाषा के प्रश्न-पत्र के उत्तर उसी लिपि में दिये जाते हैं। यदि विशेष रूप से उल्लेख किया जाए तभी इन तीन भाषाओं के प्रश्न-पत्रों के उत्तर हिन्दी या अंग्रेजी में दिये जा सकते हैं। प्रश्न-पत्र हिन्दी तथा अंग्रेजी दोनों में पूछे जाते हैं जिसमें अति संक्षिप्त, संक्षिप्त तथा निबन्धात्मक उत्तरों की आवश्यकता होती है।

साक्षात्कार तथा व्यक्तित्व परीक्षण

आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम अंक लिखित परीक्षा में जिन उम्मीदवारों ने प्राप्त कर लिये हों उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया जाता है। यह व्यक्तित्व परीक्षण तथा साक्षात्कार 160 अंकों का होता है। इस मौखिक परीक्षा में प्रत्याशी की जागरुकता, चरित्र, व्यक्तित्व, संवाद का लहजा तथा राजस्थानी संस्कृति की जानकारी का परीक्षण किया जाता है। साक्षात्कार मंडल का अध्यक्ष राजस्थान लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य होता है तथा लगभग तीन विशेषज्ञ होते हैं जो सरकार के उच्चाधिकारी अथवा विशिष्ट ज्ञानयुक्त विशेषज्ञ होते हैं। लिखित परीक्षा में प्राप्तांक व साक्षात्कार में प्राप्तांक को जोड़कर योग्यता सूची तैयार की जाती है। इसी सूची के अनुसार मुख्य राज्य सेवाओं तथा अधीनस्थ सेवाओं में नियुक्ति की जाती है।

राजस्थान पुलिस सेवा के लिए एन.सी.सी. के "सी" प्रमाण-पत्र प्राप्त प्रत्याशी को प्राथमिकता दी जाती है। 1998 तक राजस्थान प्रशासनिक सेवा तथा राजस्थान पुलिस सेवा में साक्षात्कार में कम से कम 33 प्रतिशत अंक तथा लिखित व साक्षात्कार को मिलाकर 50 प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक था। 1998 में साक्षात्कार में प्राप्तांक की इस अनिवार्यता को समाप्त कर दिया गया है। 45 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले प्रत्याशियों को अन्य राज्य सेवाओं में नियुक्ति का अवसर प्राप्त होता है। यदि दो या उससे अधिक प्रत्याशी पूर्ण योग के समान अंक प्राप्त करते हैं तो आयोग उनकी आयु के आधार पर योग्यता सूची का क्रम निर्धारित करता है। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के प्रत्याशियों का साक्षात्कार में उत्तीर्ण होना आवश्यक नहीं है। यदि वे प्रत्याशी लिखित परीक्षा में न्यूनतम उत्तीर्णांक प्राप्त कर लेते हैं तो आयोग उनकी नियुक्ति के सम्बन्ध में सुझाव दे देता है। साक्षात्कार मंडल में राजस्थान लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य तथा दो विशेषज्ञ होते हैं जो या तो शैक्षणिक जगत के होते हैं या सेवारत या सेवानिवृत्त वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी होते हैं।

स्वास्थ्य परीक्षण, पुलिस जाँच तथा चरित्र प्रमाण-पत्र

प्रत्याशियों को परीक्षा के विभिन्न चरणों से गुजरते हुए इस अंतिम अवस्था तक पहुँचना पड़ता है। जो प्रत्याशी आयोग द्वारा सफल घोषित किये जाते हैं उनका एक मंडल द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण करवाया जाता है यानी नियुक्ति के पूर्व प्रत्याशी को स्वास्थ्य प्रमाण-पत्र लेना आवश्यक है। तत्पश्चात्

सरकार प्रत्याशी के सम्बन्ध में पुलिस जाँच के आदेश देती है। पुलिस प्रत्याशी के चरित्र तथा व्यक्तित्व सम्बन्धि सामान्य जानकारी प्राप्त करती है। स्वास्थ्य तथा चरित्र प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के पश्चात् ही प्रत्याशी को नियुक्ति के सम्बन्ध में आदेश व अनुमति प्राप्त होती है।

राजस्थान राज्य एवं अधीनस्थ सेवाओं के लिए संयुक्त प्रतियोगी परीक्षाएँ सामान्यतः वर्ष में एक बार आयोजित की जाती हैं। कभी-कभी न्यायालय में चयन सम्बन्धी मामलों के निपटारे में लगने वाले समय के कारण इस प्रक्रिया में व्यवधान भी उपस्थित हो जाता है जैसा कि 1996 में हुआ। आवश्यकता पड़ने पर राजस्थान प्रशासनिक सेवा में आपात भर्ती भी भूतकाल में की गई है। इसके लिए विशिष्ट नियमों की व्यवस्था की गई है जिनके आधार पर आपात भर्ती की जाती है। सरकारी व गैर-सरकारी अनुभवी व्यक्तियों की सेवा व अनुभव का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से यह व्यवस्था की गई है।

पदोन्नति द्वारा भर्ती या अप्रत्यक्ष भर्ती

सरकारी सेवा में लम्बे समय से कार्यरत कर्मचारियों को उच्च प्रशासनिक पदों पर काम करने का अवसर देने के उद्देश्य से पदोन्नति द्वारा भर्ती की प्रक्रिया अपनाई जाती है। समस्त रिक्त पदों का एक निश्चित प्रतिशत इसी व्यवस्था द्वारा भर्ती के लिए निर्धारित किया जाता है।

राजस्थान राज्य सेवाओं में पदोन्नति के लिए दो सिद्धान्तों को आधार बनाया जाता है– वरिष्ठता तथा योग्यता। वरिष्ठता का तात्पर्य कर्मचारी के लम्बे कार्य काल से है यानि एक निश्चित अवधि क बाद नियमों के अन्तर्गत वह पदोन्नति योग्य हो जाता है। योग्यता के आधार पर पदोन्नति में लम्बे सेवा काल के स्थान पर शैक्षणिक योग्यता तथा सेवा में उपलब्धियों पर ध्यान दिया जाता है। तहसीलदार एवं देवस्थान विभाग के ग्रेड-एक निरीक्षकों की राजस्थान प्रशासनिक सेवा में भर्ती पदोन्नति द्वारा की जाती है। राजस्थान पुलिस सेवा में पुलिस निरीक्षक पदोन्नति द्वारा प्रवेश पाते हैं।

पदोन्नति द्वारा भर्ती के लिए विभागीय पदोन्नति समितियाँ गठित की जाती हैं। राजस्थान में इन समितियों की सदस्यता इस प्रकार हैः

1. राजस्थान लोक सेवा आयोग का सदस्य अथवा अध्यक्ष	अध्यक्ष
2. कार्मिक विभाग का सचिव	सदस्य
3. सम्बन्धित प्रशासनिक विभाग का सचिव	सदस्य
4. विभागाध्यक्ष	सदस्य सचिव

राजस्थान पुलिस सेवा में पदोन्नति के लिए विभागीय समिति का संगठन इस प्रकार हैः

1. राजस्थान लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य	अध्यक्ष
2. गृह सचिव या सम्बन्धित विशेष अधिकारी	सदस्य
3. महानिदेशक, पुलिस	सदस्य
4. सचिव, कार्मिक विभाग	सदस्य
5. अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक	सदस्य सचिव

नियुक्तिकर्ता अधिकारी द्वारा वर्ष के आरम्भ में उस वर्ष पदोन्नति से भरे जाने वाले पदों की वास्तविक संख्या सुनिश्चित की जाती है। पिछले वर्ष के यदि कोई रिक्त स्थान न भरे गये हों तो उनकी भी सूची तैयार की जाती है। इसके पश्चात् उन पदों के योग्य व्यक्ति जो वरिष्ठतम भी हों, की

सूची तैयार की जाती है। यह सूची "वरिष्ठता एवं योग्यता" तथा वरिष्ठता के आधार पर तैयार की जाती है। प्रत्याशी को चयन किये जाने वाले वर्ष की एक अप्रैल को सेवा के पाँच वर्ष पूरे करने आवश्यक हैं। कतिपय सेवाओं में पदोन्नति हेतु सात वर्ष पूरे करने की अनिवार्यता है। एक प्रत्याशी के सेवाकाल के पिछले सात वर्षों के वार्षिक निष्पत्ति मूल्यांकन के आधार पर ही योग्यता सूची में उसका स्थान निर्धारित होता है। उच्चतर सरकारी पदों में वरिष्ठता एवं योग्यता का "कोटा" निर्धारित किया जाता है। आवश्यकता होने पर विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा तैयार सूची को राजस्थान लोक सेवा आयोग के पास विचारार्थ भेजा जाता है। इस सूची में प्रत्याशियों की व्यक्तिगत फाइल तथा वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदनों को भी सम्मिलित किया जाता है। आयोग विचार करके उन नामों को नियुक्तिकर्ता अधिकारी के पास वापिस भेज देता है और इस सूची में कोई परिवर्तन आयोग आवश्यक समझता है तो ऐसे प्रस्ताव से वह नियुक्तिकर्ता अधिकारी को अवगत करा देता है। अंतिम रूप से नियुक्तिकर्ता सूची को अनुमोदित करके व्यक्तियों को चयनित करता है तथा सम्बन्धित रिक्त पदों पर पदोन्नति के आदेश निकाल देता है।

इस पदोन्नति द्वारा भर्ती की प्रक्रिया में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लिए स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था भी है।

विभागीय पदोन्नति समितियों द्वारा जो भर्ती की विधि अपनाई जाती है उसमें कुछ व्यावहारिक कठिनाइयाँ देखने में आई हैं। कई बार वर्षों तक ऐसी समितियों की बैठक नहीं होती है। फलतः वरिष्ठ तथा योग्य व्यकित पदोन्नति के लाभ से वंचित रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में कम सक्षम व्यक्तियों को अस्थायी तौर पर पदों पर लगा दिया जाता है जिससे विभाग की कार्यकुशलता तथा क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी योग्य व्यक्तियों को अस्थायी तौर पर उच्च पदों पर पदस्थापित कर दिया जाता है पर उनके अस्थायी सेवा काल को वरिष्ठता में जोड़ा नहीं जाता। ऐसी स्थिति भी योग्य व सक्षम व्यक्ति के अन्दर मानसिक कुण्ठा की भावना उत्पन्न करती है जिसका अन्ततः बुरा प्रभाव विभाग के कार्य परिणाम पर पड़ता है। अतः विभागीय पदोन्नति समितियों की उचित समय पर बैठक होनी आवश्यक है।

इस प्रकार राजस्थान उच्च सेवा तथा अधीनस्थ सेवा में संयुक्त प्रतियोगी परीक्षाओं तथा पदोन्नति द्वारा भर्ती की व्यवस्था की गई है। स्पष्ट है कि निष्पक्ष भर्ती पद्धति को अपनाये जाने का प्रयास किया गया है ताकि सेवाओं में योग्य, कुशल, सक्षम, युवा तथा अनुभवी व्यक्तियों की सेवाओं तथा अनुभव का लाभ प्राप्त किया जा सके।

मंत्रालयिक सेवाओं में भर्ती

मंत्रालयिक सेवाओं में भी भर्ती की दो प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं, सीधी एवं प्रत्यक्ष भर्ती तथा दोन्नति द्वारा भर्ती। दो प्रकार की मंत्रालयिक सेवाओं के लिए यह प्रक्रिया अपनाई जाती है– जस्थान सचिवालय मंत्रालयिक सेवाएँ तथा राजस्थान अधीनस्थ कार्यालय मंत्रालयिक सेवाएँ।

राजस्थान लोक सेवा आयोग प्रत्येक भर्ती के लिए प्रतियोगी परीक्षाएँ आयोजित करता है। परीक्षाएँ कनिष्ठ लिपिक, स्टेनोग्राफर तथा विधि रचनाकार एवं अनुवादकों के पदों को भरने के नए आयोजित की जाती है। इन परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए प्रत्याशी की आयु कम से कम 8 वर्ष तथा अधिकतम 28 वर्ष होनी चाहिए। कनिष्ठ लिपिक के लिए सैकेण्डरी, स्टेनोग्राफर के

लिए हायर/सीनियर सैकेण्ड्री तथा अनुवादक के लिए कानून में स्नातक स्तर की योग्यता होना आवश्यक है। सभी पदों की भर्ती हेतु हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक है।

अनुवादक को दो प्रश्न-पत्रों की परीक्षा देनी होती है। दोनों प्रश्न-पत्र 100-100 अंकों के होते हैं। प्रत्येक प्रश्न-पत्र में कम से कम 35 अंक अवश्य प्राप्त करने चाहिए। पर दोनों प्रश्न-पत्रों को मिलाकर 50 प्रतिशत का योग होना चाहिए। हिन्दी से अंग्रेजी तथा अंग्रेजी से हिन्दी दोनों प्रकार के अनुवाद की परीक्षा भी ली जाती है।

स्टेनोग्राफर के लिए ए तथा बी ग्रुप के दो प्रश्न-पत्र होते हैं जिनमें से एक में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। अंग्रेजी शार्टहैण्ड तथा अंग्रेजी टाइप राइटिंग का एक प्रश्न-पत्र होता है, हिन्दी शार्टहैण्ड तथा टाइप राइटिंग का दूसरा।

कनिष्ठ लिपिक के पद के लिए आयोजि परीक्षाओं में तीन प्रश्न-पत्र होते हैं– हिन्दी, अंग्रेजी एवं सामान्य ज्ञान। इनके अतिरिकत हिन्दी या अंग्रेजी टंकण में से एक ऐच्छिक विषय की परीक्षा देना आवश्यक है।

राजस्थान सरकार के अधीनस्थ कार्यालयों के लिए मंत्रालयिक कर्मचारी सेवा नियम 1957 में बनाये गये थे। इनके अन्तर्गत भी कनिष्ठ लिपिक तथा स्टेनोग्राफर के लिए राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा प्रतियोगी परीक्षाओं द्वारा भर्ती का प्रावधान है। परीक्षा योजना तथा प्रत्याशी की आवश्यक योग्यता उसी प्रकार की है जिस प्रकार राजस्थान सचिवालय मंत्रालयिक सेवाओं के लिए निर्धारित की गई है।

चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती

राजस्थान चतुर्थ श्रेणी सेवाएँ भर्ती तथा अन्य सेवा शर्त नियम 1963 के तहत चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती की जाती है। इन नियमों के अनुसार चतुर्थ श्रेणी के लिए निम्नलिखित भर्ती की प्रक्रियाएँ अपनायी जाती है :

1. प्रत्यक्ष भर्ती
2. समान पद पर एक विभाग से दूसरे विभाग पर कर्मचारी का स्थानान्तरण
3. वर्क-चार्ज्ड कर्मचारियों में से चयन
4. अंश-कालिक (पार्ट-टाइम) कर्मचारियों में से चयन
5. पदोन्नति द्वारा।

चपरासी, साइकिल सवार, अर्दली, चौकीदार, फर्राश आदि के लिए प्रत्यक्ष भर्ती की व्यवस्था है। प्रत्यक्ष भर्ती के लिए स्थानीय रोजगार कार्यालय से प्रत्याशियों की सूची नियुक्तिकर्ता द्वारा मंगवाई जाती है। यदि रोजगार कार्यालय में पर्याप्त प्रत्याशियों की सूची उपलब्ध नहीं हो तो प्रधान कार्यालय द्वारा उपयुक्त समझी जाने वाली विधि से भी नियुक्ति का अधिकार नियोक्ता को है। प्रत्यक्ष भर्ती के लिए प्रत्याशी को कम से कम पाँचवी कक्षा तक की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है तथा उसे देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी का व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए। प्रत्याशी की आयु कम से कम 18 वर्ष तथा अधिकतम 31 वर्ष होनी चाहिए। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति तथा महिला प्रत्याशियों के लिए उच्चतम आयु सीमा में पाँच वर्ष की छूट का प्रावधान है। भूतपूर्व सैनिकों के लिए अधिकतम आयु 50 वर्ष रखी गई है।

निष्कर्ष

राजस्थान उच्च लोक सेवा तथा अधीनस्थ सेवा के भर्ती के लिए अपनाई गई परीक्षा प्रणाली में समय-समय पर परिवर्तन तथा संशोधन होते रहे हैं। इन परिवर्तनों के उद्देश हैं, सेवाओं में समाज के विभिन्न वर्गों को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान करना। इस दृष्टि से राजस्थान सरकार की राज्य एवं अधीनस्थ सेवाओं को समुचित रूप से प्रतिनिध्यात्मक कहा जा सकता है। राजस्थान लोक सेवा आयोग इस सम्बन्ध में प्रशंसा का पात्र है कि उसने चयन प्रक्रिया में आरक्षित पदों पर नियुक्तियों हेतु निरन्तर अनुशंसा नियमानुसार की है।

ऐसा उपयुक्त होगा– यदि राज्य एवं अधीनस्थ सेवाओं के लिए भर्ती की प्रक्रिया प्रति वर्ष एक नियमित कलेण्डर से हो। संघीय लोक सेवा आयोग की पद्धति को राजस्थान में भी लागू करना चाहिए। 2003-04 में राज्य एवं अधीनस्थ सेवाओं हेतु परीक्षाएँ आयोजित करने में जो विलम्ब हुआ वह ऐसी ही प्रणाली से टाला जा सकता था। किन्तु इस हेतु राज्य सरकार का पूर्ण सहयोग आवश्यक है।

जैसा कि ज्ञात है कि राजस्थान सरकार की मंत्रालयिक सेवाओं के पहले चरण में अर्थात् कनिष्ठ लिपिकों के स्तर पर तो प्रत्यक्ष भर्ती की व्यवस्था है, किन्तु इसके ऊपर के सभी स्तरों पर वरिष्ठ लिपिक, वरिष्ठ सहायक एवं कार्यालय अधीक्षक के स्तर पर 100 प्रतिशत भर्ती पदोन्नति से होती है। राज्य सचिवालय के कई उप-सचिव पद पर कार्यरत अधिकारी तो कनिष्ठ लिपिक के पद पर प्रत्यक्ष भर्ती से आकर पदोन्नति के माध्यम से ही निरन्तर ऊँचे पद प्राप्त कर सके। बिना विशेष चुनौती के निरन्तर पदोन्नति कुशलता की अभिवृद्धि के लिए सहायक नहीं होती।

पदोन्नति का आधार वार्षिक निष्पत्ति मूल्यांकन है। गोपनीय प्रतिवेदनों का स्थान लेने वाली इस व्यवस्था में यद्यपि वस्तुनिष्ठता पहले से अधिक है, किन्तु ऐसा देखा गया है कि इनके भरने में अधिकारी यथोचित ध्यान नहीं देते। सारी प्रक्रिया एक औपचारिकता मात्र बनकर रह जाती है। वैसे भी अधिकारी इन मूल्यांकनों को सितम्बर-अक्टूबर तक भरते हैं। तब तक एक कर्मचारी की प्रगति के बारे में स्मृति एवं सूचना पुरानी पड़ चुकी होती है, अतः जिस ईमानदारी से यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए वह हो नहीं पाता। ऐसा भी देखा गया है कि कई बार वार्षिक निष्पत्ति मूल्यांकन दो-दो, तीन-तीन साल बाद भरे जाते हैं। इस विलम्ब से मूल्यांकन का सारा प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है।

आरक्षित पदों पर नियुक्त अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के अधिकारी सेवा में प्रवेश पाने के पश्चात् सीधी भर्ती वाले सामान्य श्रेणी के अधिकारियों की तुलना में कई बार अपने आपको कम क्षमतावान पाते हैं। उनके लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की मांग कई क्षेत्रों से की जाती रही है। इस प्रकार की व्यवस्था करना राज्य सेवाओं की दक्षता के हित में वांछनीय होगा।

राज्य सेवाओं के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण आवश्यकता ''काडर-नियंत्रण'' की है। विभिन्न सेवाओं के लिए कितने अधिकारी किस-किस प्रकार के पदों के लिए चाहिए, इस सम्बन्ध में नियोजन की निरंतर आवश्यकता है। कई सेवाओं के 'काडर' काफी स्थूलकाय अथवा भारी भरकम हो गये हैं, बाकी कुछ में अधिक विस्तार की संभावनाएँ हैं। इस क्षेत्र में अधिक विस्तृत नियोजन लाभप्रद रहेगा।

अपनी कतिपय सीमाओं के बावजूद राजस्थान लोक सेवा आयोग ने नियुक्तियों के सम्बन्ध में अनुशंसाएँ करने तथा अन्य उत्तरदायित्वों के वहन में सामान्यतः कुशाग्रता दिखाई है। प्रतियोगी परीक्षाओं की प्रणाली एवं पाठ्यक्रमों में संशोधन हेतु भी उसने कई पहलें की है तथा सुधारों का मार्ग प्रशस्त किया है। फिर भी एक बात जो सभी राज्य स्तरीय लोक सेवा आयोगों के बारे में व्यक्त की जाती है वह यह है कि दक्षता एवं नैतिकता के उच्चतम मानदण्डों का पालन इन आयोगों में कई बार नहीं हो पाता। इस मामले में संघीय लोक सेवा आयोगों की तुलना में यह आयोग काफी पीछे है। अतः संवैधानिक दर्जा प्राप्त इन संस्थाओं को अपना उत्तरदायित्व अधिक अच्छी प्रकार समझना चाहिए। लोक सेवा आयोग हमारे जनतंत्र की कुशलता एवं मर्यादा को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं। आवश्यकता है कि राज्य सरकारें इन संस्थाओं के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति में अधिकतम सावधानी बरतें तथा ये संस्थाएँ भी अपने उच्चतर उद्देश्यों की प्रकृति के अनुरूप अपना आचरण ढालें।

❑❑❑

अध्याय 17

प्रशिक्षण संस्थान : संगठन एवं कार्य

लोक प्रशासन का दायित्व बहुआयामी है, विशेषकर विकासोन्मुखी देश में जहाँ राष्ट्रीय पुनर्निमाण, सामाजिक विकास तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों को यथार्थ रूप में परिणित करना है। इन लक्ष्यों की पूर्ति में संलग्न, लोक सेवकों की भूमिका का बहु-आयामी होना स्वाभाविक है। लोक सेवक अपने उपरोक्त दायित्वों को क्षमता तथा संवेदनशीलता से पूरा कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें समय-समय पर प्रशासनिक प्रशिक्षण प्रदान करके उनमें अन्तर्दृष्टि एवं क्षमता विकसित की जाए। न केवल सेवा में प्रवेश के अवसर पर, अपितु सेवाकाल के दौरान भी प्रशिक्षण वांछनीय है। पर्यावरणिक परिवर्तन की गति इतनी तीव्र है कि दृष्टिकोण, क्षमताओं, ज्ञान तथा कुशलता में निरन्तर उच्चतर सुधार आवश्यक है, अन्यथा विकास की चुनौतियों का सामना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जायेगा।

राज्य स्तर का प्रशासन जन-सामान्य से सीधा जुड़ा हुआ होता है। उसे निम्नतम स्तर पर कार्यक्रमों तथा योजनाओं को क्रियान्वित करना होता है। राजस्थान, जो कि राजाओं, सामन्तों तथा ठिकानेदारों का प्रदेश है, जहाँ शासक तथा शासितों के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा रही है, जहाँ प्रशासन तथा जनता के बीच सम्बन्ध स्वामी तथा सेवक के रहे हों, वहाँ लोक प्रशासकों को जनतान्त्रिक भूमिका में प्रशिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है। इस स्वस्थ्य दृष्टिकोण की सहायता से ही वह जनता का सहभागी तथा सहगामी हो कर लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना को साकार करने में सफल होगा, जनता के बीच अपनी विश्वसनीयता बनाये रखने में सक्षम होगा, परिवर्तन के अनुकूल स्वयं में आवश्यक बदलाव लाने में सफल होगा तथा अपने व्यवहार व मानवीयता को सहृदय तथा उदार बनाये रख सकेगा।

विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजस्थान जब एक राज्य की इकाई के रूप में अस्तित्व में आया, तो यहाँ भी प्रशासकों के प्रशिक्षण के लिए संस्थाओं की स्थापना की आवश्यकता को अनुभव किया गया। 1954 में राजस्थान प्रशासनिक सेवा अस्तित्व में आ चुकी थी, पर प्रशासकों के प्रशिक्षण के लिए राज्य में अपनी कोई व्यवस्था नहीं थी। राजस्थान प्रशासनिक सेवा के प्रथम तथा द्वितीय बैच के प्रशासकों को प्रशिक्षण के लिए इलाहाबाद भेजा गया। पर उत्तर प्रदेश भी विकासोन्मुखी राज्य था

तथा आत्मनिर्भरता के लिए प्रयास कर रहा था, वहाँ भी नवनियुक्त प्रशासकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। अतः राजस्थान प्रशासनिक सेवा के तृतीय बैच के प्रशासकों के प्रशिक्षण में उत्तर प्रदेश ने स्वयं को असमर्थ पाया और ऐसी भावना प्रकट की। 1957 में अनुभव किया गया कि राज्य का अपना एक प्रशिक्षण संस्थान होना चाहिए। इसी उद्देश्य से 14 नवम्बर, 1957 को जोधपुर में अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई, जिसका मुख्य उद्देश्य राजस्थान प्रशासनिक सेवा के नवनियुक्त लोक प्रशासकों को प्रशिक्षित करना था। दो वर्ष पश्चात् भारतीय प्रशासनिक सेवा के राजस्थान संवर्ग (काडर) के परिवीक्षार्थियों को भी इस संस्थान में प्रशिक्षण प्रदान करना आरम्भ कर दिया गया।

1963 में इस प्रशिक्षण संस्थान को जोधपुर से जयपुर स्थानान्तरित कर दिया गया। प्रारम्भ में इस संस्थान ने एक किराये के भवन में अपना काम शुरू किया। 1966 में जवाहरलाल नेहरू मार्ग पर 70 एकड़ की जमीन पर एक नये भवन का निर्माण किया गया, जिसमें अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान को स्थायी रूप से स्थानान्तरित किया गया। इस संस्थान के साथ वाणिज्य कर संस्थान को भी जोड़ दिया गया। 1969 में इस संस्थान का पुनः नामकरण किया गया तथा इसे हरिश्चन्द्र माथुर राज्य लोक प्रशासन संस्थान के नाम से जाना जाने लगा। श्री हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान के सम्मानीय प्रशासक तथा सांसद रहे हैं तथा उन्होंने देश के प्रशासनिक विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी स्मृति तथा सम्मान में अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान को उनके नाम के साथ जोड़ दिया गया। 1983 में फिर इस संस्थान के नाम में थोड़ा सा परिवर्तन किया गया। अब इसे हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान या संक्षेप में रीपा (RIPA) के नाम से जाना जाता है।

1969 में इस संस्थान के विकास हेतु अमरीकी फोर्ड फाउन्डेशन द्वारा 95,400 डॉलर का अनुदान प्राप्त हुआ। बाद में इस अनुदान राशि को बढ़ा कर 1,11,000 डॉलर कर दिया गया। इस राशि के द्वारा प्रबन्ध संकाय को आधुनिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए विदेश भेजने, फैलोशिप प्रदान करने, शोध तथा सामग्री विकसित करने, पुस्तकालय का विस्तार करने, आधुनिक प्रशिक्षण सामग्री जुटाने का कार्य किया गया।

रीपा ने 17 प्रतिभागियों के लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम से एक छोटी शुरुआत 1957 में की थी। प्रारम्भिक कठिनाइयों की कंटीली, पथरीली, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों पर चलते-चलते अब यह बड़ी सख्या के प्रतिभागियों के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के राजमार्ग पर आ पहुँचा है। 1976 में केन्द्रीय सरकार के कार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार विभाग तथा अन्य मंत्रालयों की वित्तीय सहायता से रीपा ने अखिल भारतीय प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किया। 1979 में अधीनस्थ लेखा प्रशिक्षण स्कूल को भी रीपा के साथ सम्मिलित कर दिया गया।

रीपा ने उच्च तथा अधीनस्थ सेवाओं के उच्च तथा मध्य संवर्ग के अधिकारियों के लिए सेवा में प्रवेश के समय आधारभूत पाठ्यक्रम तथा सेवाकाल में प्रशिक्षण कार्यक्रम का लक्ष्य सामने रखा है। इसका उद्देश्य राजस्थान के विकास के बदलते परिप्रेक्ष्य तथा आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशासन में लगातार सुधार करते जाना है, ताकि जनतान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुकूल जन-अपेक्षाओं की कसौटी पर लोक प्रशासन खरा उतर सके। इन सभी लक्ष्यों को मद्देनजर रखते हुए रीपा के प्रशिक्षण कार्यक्रमों के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं:

(i) संगठन तथा प्रशासकों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करना और उनका संचालन करना।
(ii) विभिन्न विभागों की संगठनात्मक तथा अन्य समस्याओं का समाधान खोजने में उनकी मदद करना।
(iii) सरकारी अभिकरणों से सम्बन्धित विकास समस्याओं से सम्बन्धित शोध कार्य करवाना, प्राप्त परिणामों के सम्बन्ध में लोगों को जानकारी देना तथा सामाजिक व आर्थिक बदलाव के नये मानकों की जानकारी प्राप्त करते रहना, तदनुरूप लोक सेवकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में परिवर्तन करना।
(iv) रीपा एक ऐसे मंच के रूप में भी कार्य करता है जहाँ लोक प्रशासन के विद्वानों, अनुसंधानकर्ताओं तथा प्रशासकों के अनुभव, ज्ञान तथा विचारों का आदान-प्रदान सम्भव हो सके।
(v) संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं के माध्यम से बदलते परिप्रेक्ष्य के बारे में यह संस्थान सजग रहने का प्रयास करता है।

1981 में रीपा को प्राकृतिक प्रकोप का सामना करना पड़ा। अविश्वसनीय बाढ़ की वजह से रीपा की दो-तिहाई इमारत ढह गई। फिर शुरु हुआ पुनर्निमाण का कार्य। 1982 यानि अपने रजत जयन्ती वर्ष में रीपा की एक नई इमारत अधिक भव्यता तथा बुलन्दियों के साथ सामने आई। पुराने भवन को पटेल भवन तथा नये को नेहरू भवन का नाम दिया गया।

1982-83 में भारत सरकार के ग्रामीण पुनर्निमाण तथा विकास मंत्रालय की वित्तीय सहायता से यहाँ ग्रामीण विकास केन्द्र स्थापित किया गया। इसका उद्देश्य ग्रामीण विकास से सम्बन्धित प्रशिक्षण तथा शोध कार्यक्रम का संचालन करना था। 12 नवम्बर, 1982 को संस्थान के अन्तर्गत प्रबन्ध अध्ययन का स्वायत्त केन्द्र स्थापित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के प्रशासकों, अधिकारियों को प्रबन्ध व्यवस्था से सम्बन्धित प्रशिक्षण में बेहतरी लाने के लिए शोध करना था। रीपा संकाय तथा प्रबन्ध केन्द्र के संकाय शिक्षण, शोध तथा सलाह के मामले में एक-दूसरे की मदद ले सकते हैं। दिसम्बर, 1982 में रीपा की विकास यात्रा में एक चरण और जुड़ा। उदयपुर के राज्य सामुदायिक विकास तथा पंचायती राज प्रशिक्षण संस्थान को रीपा के साथ मिला दिया गया। 1983 में रीपा के चार क्षेत्रीय केन्द्रों ने उदयपुर, जोधपुर, कोटा तथा बीकानेर में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। इन केन्द्रों का उद्देश्य कनिष्ठ लेखाकारों को प्रशिक्षण प्रदान करना है। आज रीपा देश के उन महत्त्वपूर्ण सिविल सेवा प्रशिक्षण संस्थानों में से है जिनके पास विस्तृत-व्यापक प्रशिक्षण तथा विशाल संगठनात्मक एवम् संरचनात्मक व्यवस्था है।

संस्थान को समग्र निर्देशन प्रदान करने हेतु एक राज्य प्रशिक्षण परामर्शदात्री समिति का गठन किया गया है। जिसके अध्यक्ष राज्य सरकार के मुख्य सचिव हैं। इस समिति में कतिपय उच्च सरकारी अधिकारी एवं लोक प्रशासन के विषय-विशेषज्ञ हैं। रीपा के निदेशक इस समिति के सदस्य सचिव हैं। यह समिति रीपा के प्रशिक्षण कार्यक्रमों, अनुसंधानों तथा अन्य प्रशासनिक एवं अकादमिक गतिविधियों का लेखा-जोखा करने के साथ-साथ भविष्य के नियोजन के सम्बन्ध में अपनी राय देती है। 1996 से पूर्व कई वर्षों तक इस समिति की बैठकें नहीं हो रही थी। 1996 में ही इस समिति को पुनः सक्रिय किया गया है।

संगठन

हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान लोक प्रशासन संस्थान उच्चतर प्रशासकों तथा शिक्षाविदों का मिला-जुला संकाय है। संस्थान का निदेशक भारतीय प्रशासनिक सेवा का सुपरटाइम स्केल अधिकारी है। रीपा का निदेशक ही प्रबन्ध अध्ययन संस्थान तथा अन्य सभी सम्बन्धित संस्थानों का पदेन निदेशक होता है। निदेशक राज्य सरकार में प्रशिक्षण का प्रमुख सचिव भी होता है, साथ ही राज्य के प्रशिक्षण निदेशक तथा विभागीय परीक्षाओं के रजिस्ट्रार के रूप में कार्य करता है। निदेशक, संस्थान के विभिन्न कार्यक्रमों जैसे प्रशिक्षण, अनुसंधान, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, प्रकाशनों आदि का मुख्य समन्वयक भी होता है।

रीपा का निदेशक राजस्थान राज्य के अन्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए भी उत्तरदायी है। इसलिए राज्य के सभी विभागीय प्रशिक्षण संस्थानों के विकास के लिए वह समन्वयकर्ता का कार्य, विभागों के प्रशिक्षण समन्वयकों के माध्यम से करता है। वह राज्य के सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रमुखों का एक वार्षिक सम्मेलन का आयोजन करता है ताकि सभी अधिकारी अपने विचारों तथा अनुभवों का आदान-प्रदान कर सकें। निदेशक से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह समय-समय पर प्रशिक्षण संस्थाओं में जाए, प्रशिक्षण सम्बन्धी समस्याओं को सुने-समझे तथा उनका विश्लेषण करे तथा यदि संभव हो तो तत्कालिक समाधान भी सुझाये।

निदेशक के अधीन कार्यरत संकाय में दो धाराएँ हैं– अकादमिक एवं प्रशासनिक।

अकादमिक धारा में मुख्य पद इस प्रकार हैं:

विज़िटिंग प्रोफेसर (2)
प्राध्यापक, क्षेत्रीय नियोजन
प्राध्यापक, नगरीय विकास
प्राध्यापक, प्रबन्ध
प्राध्यापक, व्यावहारिक विज्ञान
प्राध्यापक, अर्थशास्त्र
सह-प्राध्यापक, कम्प्यूटर
सह-प्राध्यापक, समाज शास्त्र
सह-प्राध्यापक, लोक प्रशासन
सह-प्राध्यापक, राष्ट्रीय सेवा आयोग
पुस्तकालयाध्यक्ष
अनुसंधान अधिकारी
अनुसंधान सहायक

प्रशासनिक धारा में मुख्य पद इस प्रकार हैं:

अतिरिक्त निदेशक, प्रशासन
अतिरिक्त निदेशक (लेखा)
उपनिदेशक, योजना

उपनिदेशक, लेखा
उपनिदेशक, प्रशासन
सहायक निदेशक (प्रशासन)

रीपा के उदयपुर परिसर, जो रीपा निदेशक के अधीन ही कार्य करता है, में एक अतिरिक्त निदेशक, एक उपनिदेशक (प्रशासन), एक सह-प्राध्यापक (समाजशास्त्र), एक सहायक प्राध्यापक (अर्थशास्त्र), एक सहायक निदेशक (लेखा) एवं एक सहायक निदेशक (प्रशासन) कार्यरत हैं। रीपा के अन्य तीन क्षेत्रीय केन्द्र जो लेखा-प्रशिक्षण के लिए स्थापित है, एक-एक उपनिदेशक (लेखा) के अधीन कार्य करते हैं। बीकानेर केन्द्र में एक विज़िटिंग प्रोफेसर भी कार्यरत है।

प्रशासनिक पदों पर कार्यरत अधिकारी अधिकांशतः राजस्थान प्रशासनिक सेवा एवं राजस्थान लेखा सेवा के सदस्य होते हैं, जो स्थानान्तरण पर रीपा में सामान्यतः दो से चार वर्षों तक कार्य करते हैं। अतः निरन्तरता तो अकादमिक संकाय की ही रहती है।

उपर्युक्त स्थायी संकाय के अतिरिक्त विद्वान अतिथियों को समय-समय पर भाषण के लिए आमंत्रित किया जाता है। ऐसे व्यक्ति जिन्होंने किसी विशेष क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त की है उनके ज्ञान तथा अनुभव का लाभ उठाने के लिए यह व्यवस्था की गई है। अतः समय-समय पर भारत सरकार, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी; भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली; भारतीय प्रबन्ध संस्थान; राष्ट्रीय श्रम संस्थान; राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद; विभिन्न विश्वविद्यालयों से तथा विदेशों से विद्वानों, सलाहकारों को अतिथि प्रवक्ता-प्रशिक्षणकर्ता के रूप में आमंत्रित किया जाता है।

संस्थान के प्रशिक्षण तथा अन्य कार्यक्रम

संस्थान का प्रारम्भ भारतीय प्रशासनिक सेवा के राजस्थान संवर्ग के अधिकारियों तथा राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को आधारभूत तथा संस्थागत प्रशिक्षण देने के लिए किया गया था। पर जैसा कि पिछले पृष्ठों से स्पष्ट है कि समय के साथ संस्थान के दायित्वों में विस्तार तथा गहनता भी आती गई। वर्तमान में यहाँ प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के प्रशिक्षण के साथ-साथ अनुसंधान तथा प्रशासनिक सुधार की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। संस्थान के उत्तरदायित्वों का परिचय इस प्रकार है:

प्रशिक्षण कार्यक्रम

भारतीय प्रशासनिक सेवा के राजस्थान संवर्ग के अधिकारी लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासनिक अकादमी, मसूरी से प्रशिक्षण करने के साथ-साथ रीपा में भी प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। 1995 से 1997 तक केन्द्रीय सेवाओं के प्रत्यक्ष भर्ती हुए परिवीक्षार्थियों के आधारभूत पाठ्यक्रम भी रीपा में आयोजित हुए हैं। अखिल भारतीय सेवाओं तथा केन्द्रीय सेवाओं के अधिकारियों हेतु कई प्रशिक्षण कार्यक्रम भारत सरकार के सहयोग द्वारा आयोजित किये जाते हैं। प्रतिवर्ष भारतीय प्रशासनिक सेवा के विभिन्न राज्यों के अधिकारियों (6 से 9 वर्ष की सेवा) का प्रशिक्षण रीपा में आयोजित किया जाता है।

हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान लोक प्रशासन संस्थान संगठन

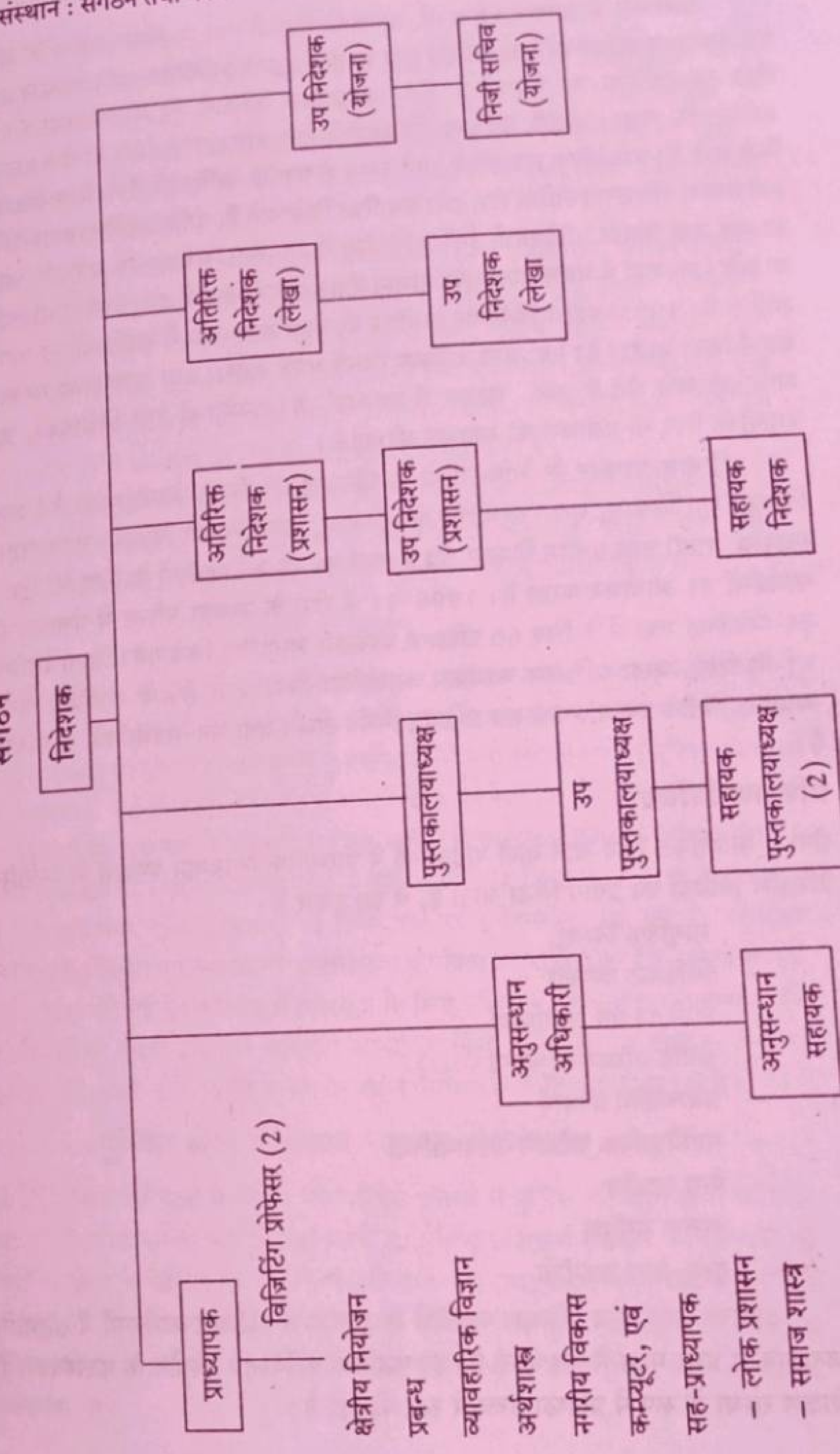

राजस्थान के सामान्यज्ञ सेवाओं, तकनीकी सेवाओं तथा न्यायिक सेवाओं के अधिकारियों को आधारभूत प्रशिक्षण देने का दायित्व रीपा का ही है। इसके अतिरिक्त यहाँ राजस्थान प्रशासनिक, लेखा एवं वाणिज्य-कर सेवाओं के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था है। राजस्थान तहसीलदार, लेखा कर्मचारी, वाणिज्य-कर आदि के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम भी रीपा द्वारा संचालित किये जाते हैं। प्रशासनिक सेवाओं में लम्बे समय से कार्यरत अधिकारियों के लिए सेवाकालीन या नवीनीकरण प्रशिक्षण इसीलिए रीपा द्वारा संचालित किये जाते हैं, ताकि उनकी क्षमताओं में वृद्धि की जा सके तथा बदलते परिप्रेक्ष्य में उनके दृष्टिकोण में आवश्यक सकारात्मक परिवर्तन को दिशा दी जा सके। इस कड़ी में भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा प्रवर्तित भी कई कार्यक्रम शामिल हैं। 1995-96 से विकेन्द्रित नियोजन पर बहुत बड़ी मात्रा में कार्यक्रमों का आयोजन इस क्षेत्र में किया जा रहा है। एक अन्य कार्यक्रम जिसमें भारत सरकार तथा अन्य राज्य सरकारों के कई अधिकारी भाग लेते हैं, वह ''सरकार में प्रबन्धन'' है। जनसेवकों तथा विधायकों, प्रमुख तथा प्रधानों के लिए भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है।

विकास प्रशासन के अधिकारियों के प्रशिक्षण की विशेष आवश्यकता है। अतः क्षेत्रीय विकास, थार विकास, सूखा-सम्भावित क्षेत्र विकास, जनजाति क्षेत्र विकास, सहकारिता, शिक्षा, स्वास्थ्य, शहरी तथा ग्रामीण विकास क्षेत्र में कार्य कर रहे अधिकारियों के लिए भी रीपा प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करता है। 1996-97 में रीपा के उदयपुर परिसर में पंचायत समिति के नव-निर्वाचित सदस्यों के लिए 60 प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये गये। जिला स्तरीय कार्मिक वर्ग के लिए जिला प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। ये कार्यक्रम संगठनात्मक व्यवहार, वित्तीय प्रबन्ध, न्यायालय प्रक्रिया, निर्णय लेखन तथा जन-सहभागिता से सम्बन्धित होते हैं।

प्रशिक्षण विधियाँ

रीपा में आयोजित किये जाने वाले पाठ्यक्रमों में पारम्परिक व्याख्यान प्रणाली के अतिरिक्त जिन प्रशिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता है, वे इस प्रकार हैं :

- सामूहिक विमर्श
- सिंडिकेट प्रणाली
- सम्मेलन एवं संगोष्ठियाँ
- क्षेत्रीय अध्ययन (फील्ड स्टडी)
- प्रबन्धकीय क्रीड़ाएँ
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण-प्रश्नावलियाँ
- केस स्टडीज
- पुस्तक समीक्षा
- दृश्य-श्रव्य तकनीकें

उपरोक्त तथा अन्य प्रशिक्षण पद्धतियों के उपयोग से प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सहभागिता एवं सृजनात्मकता प्रचुर मात्रा में बढ़ जाती है। इन पद्धतियों के विस्तृत उपयोग के फलस्वरूप रीपा की प्रशिक्षण संस्था के रूप में प्रतिष्ठा उच्चतर स्तर की रही है।

प्रशिक्षण का एकीकृत रूप

एक एकीकृत प्रशिक्षण संस्थान में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजित किये जाने के अतिरिक्त अन्य कई सम्बद्ध अकादमिक प्रक्रियाएँ भी सम्पन्न की जाती हैं जो अपने आप में महत्त्वपूर्ण होने के अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सम्बल एवं समर्थन प्रदान करती हैं। समस्त भारत की राज्य-स्तरीय प्रशिक्षण संस्थाओं में रीपा का अग्रणी स्थान इस कारण भी है कि इसने विभिन्न अकादमिक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है।

अनुसंधान के क्षेत्र में रीपा का योगदान प्रशंसनीय रहा है। ग्रामीण परिवर्तन, नगरीय विकास, पर्यावरण, सिंचाई, विपत्ति-प्रबन्धन, कम्प्यूटरीकरण आदि क्षेत्रों में संस्थान के संकाय ने उपयोगी अनुसंधान तथा अध्ययन किये हैं। इस प्रकार से कई उपयोगी केस स्टडीज भी प्रकाशित की गई हैं जो प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए लाभदायक सामग्री हैं। राज्य सेवा एवं वित्तीय प्रबन्धन के नियमों के सम्बन्ध में कई पुस्तिकाओं के साथ-साथ संस्थान ने प्रशिक्षण एवं विकास के क्षेत्र में कई प्रकाशन भी निकाले हैं। हाल ही में कम्प्यूटर के क्षेत्र में आशातीत विकास हुआ है।

संस्थान से जुड़ा प्रबन्ध अध्ययन संस्थान विभिन्न राज्य लोक उपक्रमों के अधिकारियों के लाभार्थ निरन्तर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता रहता है। 1996-98 में इसने एक वर्षीय व्यावसायिक प्रबन्धन पर एक अंशकालिक स्नातकोत्तर डिप्लोमा भी आयोजित किया था।

नवीन परिवर्तन

गत कुछ वर्षों में हरिश्चन्द्र माथुर लोक प्रशासन संस्थान में कार्यरत प्रबन्ध अध्ययन केन्द्र उच्च-स्तरीय प्रशिक्षण कार्यक्रम पिछले दो दशकों से आयोजित कर रहा है। संस्थान में प्रशासनिक प्रबन्धन के नये आयामों को दृष्टिगत रखते हुए नीवन संगठनों की स्थापना की गई है। महिला विकास कार्यक्रमों पर अनुसंधान एवं प्रशिक्षण हेतु महिला सन्दर्भ केन्द्र की स्थापना हुई है। आपदा प्रबन्धन केन्द्र, आपदा नियंत्रण एवं प्रबन्धन पर प्रशिक्षण एवं जागरुकता-विकास कार्यक्रम संचालित करता है। नगरीय विकास प्रशिक्षण पर नगरीय विकास केन्द्र ने पर्याप्त योगदान किया है। 2004 में सुशासन केन्द्र (सैन्टर फॉर गुड गवर्नेंस) की स्थापना हुई है जो दक्ष एवं संवेदनशील प्रशासन पर प्रशिक्षण आयोजित कर रहा है। निवेश एवं व्यापार पर अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करने के उद्देश्य से एक नवीन केन्द्र की रचना की गई है। संस्थान में प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण, गुणात्मकता प्रबन्धन, ई-गवर्नेंस आदि विषयों पर नवीन प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे है। यह संस्थान अब नई करवट ले रहा है। शनैः-शनैः रीपा प्रगति के पथ पर नवीन आयाम स्थापित करती जा रही है।

पुलिस सेवा प्रशिक्षण : सांगठनिक पहलू

राजस्थान के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र जनतान्त्रिक समाज में पुलिस की भूमिका में परिवर्तन आवश्यक था। इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए पुलिस प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई, ताकि पुलिस सेवा के अधिकारी तथा कर्मचारी दण्डकारी तथा अनुशासनात्मक भूमिका के स्थान पर नागरिकों के जीवन तथा सम्पत्ति के संरक्षक की भूमिका निभा सकने में सक्षम हों। प्रशिक्षण में भावी दायित्व को कुशलता से अंजाम देने के लिए दृष्टिकोण में सकारात्मक तथा रचनात्मक परिवर्तन आवश्यक था।

राजस्थान के एकीकरण के पूर्व पुलिस सेवा में भर्ती वंशानुगत आधार पर की जाती थी तथा उनके प्रशिक्षण की कोई व्यवस्थित संस्थात्मक अवधारणा का अस्तित्व नहीं था। सर्वप्रथम जयपुर, जोधपुर, उदयपुर तथा बीकानेर में कुछ पुलिस प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये। 1929 में जयपुर में एक त्रै-मासिक पुलिस प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था। यह प्रशिक्षण कार्यक्रम आधारभूत आवश्यकताओं तक सीमित था, जैसे– व्यायाम, परेड, हथियारों का प्रयोग आदि। किसी प्रकार के सकारात्मक दृष्टिकोण परिवर्तन या दृष्टिकोण निर्माण के लिए कार्यक्रम में कोई स्थान नहीं था।

स्वतन्त्रता तथा राजस्थान के एकीकरण के पश्चात् सर्वप्रथम चित्तौड़गढ़ में 1949 में पुलिस प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। पर चित्तौड़गढ़ की भौगोलिक स्थिति केन्द्रीय न होने के कारण इस संस्थान को 31 मार्च, 1950 को किशनगढ़ स्थानान्तरित करना आवश्यक हो गया। मई, 1950 में यहाँ प्रथम बैच का प्रशिक्षण प्रारम्भ हुआ। 1953 में जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर तथा कोटा में पाँच क्षेत्रीय पुलिस प्रशिक्षण केन्द्रों को स्थापित किया गया। किशनगढ़ पुलिस प्रशिक्षण संस्थान वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण तक सीमित रहा। 1967 में राजस्थान आर्म्ड कॉन्सटेबुलरी तथा आर्म्ड पुलिस प्रशिक्षण केन्द्र जयपुर में स्थापित किया गया।

अभी भी पुलिस प्रशिक्षण कार्यक्रम में सुधार की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए 1967 में श्री गणेश सिंह, पुलिस महानिरीक्षक की अध्यक्षता में एक राज्य-स्तरीय समिति स्थापित की गई। समिति की अनुशंसा के अनुरूप कई वर्ष पश्चात् 1975 में जयपुर में, राजस्थान पुलिस अकादमी स्थापित की गई।

राजस्थान पुलिस अकादमी

राजस्थान पुलिस अकादमी के सर्वोच्च पद पर निदेशक होता है जिसका पद पुलिस महानिरीक्षक के समकक्ष होता है। भारतीय पुलिस सेवा का यह अधिकारी अकादमी के प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा अधीनस्थ कर्मचारियों को नियंत्रित करने के लिए उत्तरदायी है। निदेशक की सहायतार्थ उपनिदेशक-कम-प्रिंसपल होता है। अकादमी की संरचना चार्ट (देखें– *पृ. 205*) द्वारा समझी जा सकती है।

राजस्थान पुलिस अकादमी में निदेशक एवं उप निदेशक भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी हैं। तीनों सहायक निदेशक जो अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक स्तर के हैं तथा आठ उप-अधीक्षक राजस्थान पुलिस सेवा के अधिकारी हैं। निरीक्षक एवं उप-निरीक्षक पुलिस अधीनस्थ सेवा के कार्मिक हैं। अधिकांश अध्यापन निरीक्षकों एवं उप-निरीक्षकों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। अकादमिक धारा में एक रीडर समाजशास्त्र के हैं जो समाजशास्त्रीय एवं मानवीय व्यवहार के पहलुओं पर कक्षाएँ लेते हैं। आवश्यकता पड़ने पर अतिथि वक्ताओं को भी प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु आमंत्रित किया जाता है।

पुलिस प्रक्रिया चूँकि तकनीकी पक्षों से ओत-प्रोत है, अतः तकनीकी क्षेत्र में प्रशिक्षण देने व इस बारे में सहायता प्रदान करने के लिए कई तकनीकी कर्मचारी (जैसे– स्लाइड निर्माता, सिनेमा आपरेटर, फोटोग्राफर आदि) भी राजस्थान पुलिस अकादमी में नियुक्त हैं।

राजस्थान पुलिस अकादमी संगठन

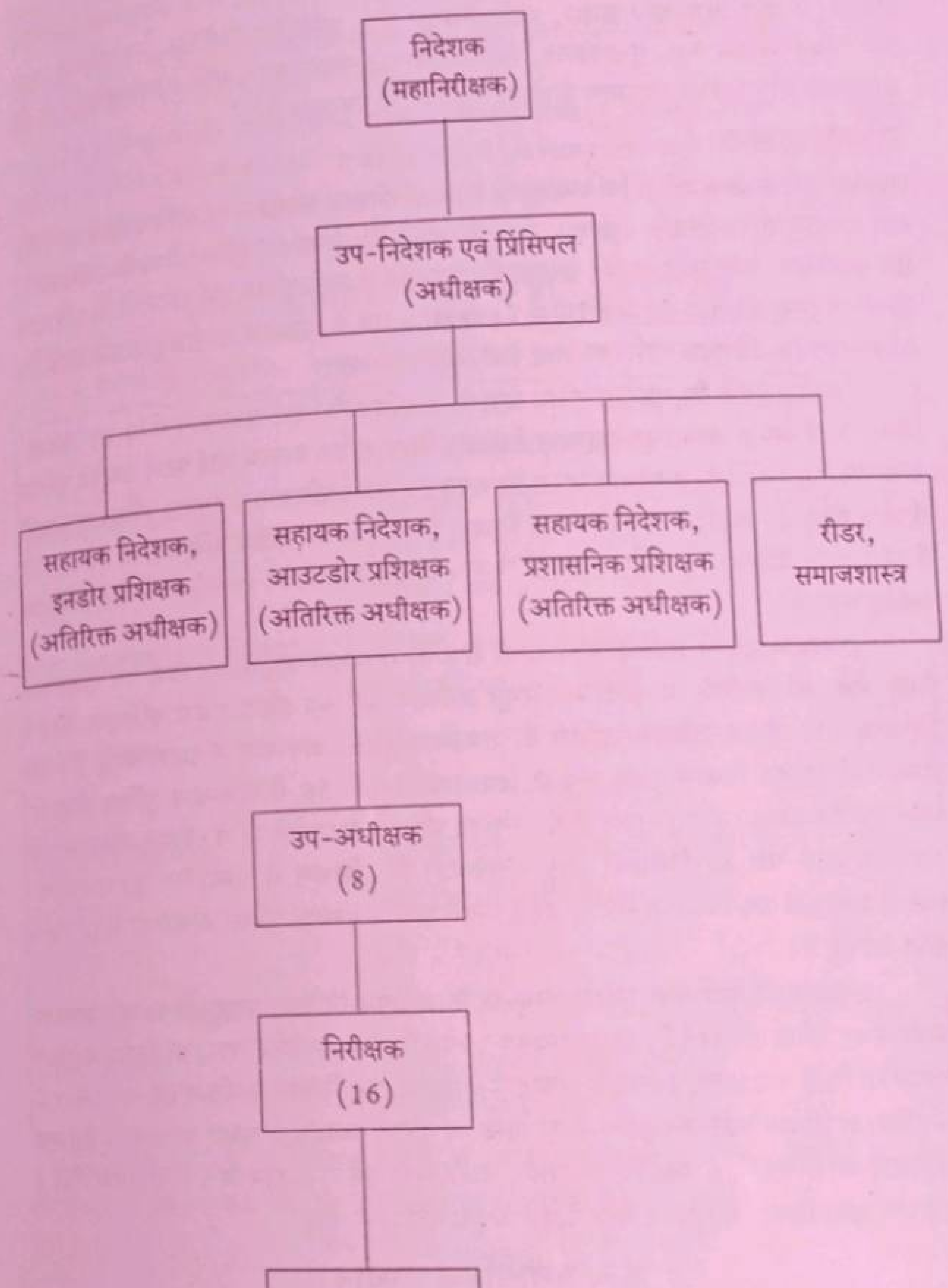

विशाल परिसर में फैली पुलिस अकादमी में प्रशिक्षण के लिए सभी आधुनिक उपकरण विद्यमान हैं यथा दृश्य-श्रव्य साधन, ध्वनि-विस्तार यंत्र, ओवरहेड प्रोजेक्टर, व्यवस्थित तथा विनियोजित शैक्षिक कक्ष, पुस्तकालय, म्युजियम तथा सम्मेलन-कक्ष आदि। प्रशिक्षणार्थियों के आवास के लिए स्वस्थ्य वातावरण में होस्टल सुविधा भी उपलब्ध है।

प्रशिक्षण कार्यक्रम

राजस्थान पुलिस अकादमी में विभिन्न संवर्गों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, यथा भारतीय पुलिस सेवा के राजस्थान संवर्ग के अधिकारी, राजस्थान पुलिस सेवा के अधिकारी, सब-इन्सपेक्टर, कॉन्स्टेबल आदि। सेवाकालीन पदोन्नति में आये पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जाती है। अकादमी में इस प्रकार दो तरह के प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाते हैं– अधिष्ठापन (फाउंडेशनल) प्रशिक्षण तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण।

उल्लेखनीय है कि भारतीय पुलिस सेवा के वे अधिकारी जिन्हें राजस्थान राज्य का 'काडर' मिलता है, वे अपना आधारभूत पाठ्यक्रम हैदराबाद स्थित सरदार वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी में पूरा करते हैं। तत्पश्चात् अपना संस्थागत एवं क्षेत्रीय प्रशिक्षण राजस्थान पुलिस अकादमी में प्राप्त करते हैं। अकादमी के निदेशक के निर्देशन में ही वे अपना क्षेत्रीय प्रशिक्षण भी प्राप्त करते हैं तथा अपने प्रशिक्षण के अंतिम चरण में वे पुनः हैदराबाद में स्थित अकादमी में शेष प्रशिक्षण अर्जित करते हैं।

राजस्थान पुलिस सेवा के परिवीक्षार्थी रीपा के राजस्थान प्रशासनिक सेवा एवं राजस्थान लेखा सेवा अधिकारियों के साथ आधारभूत प्रशिक्षण पूरा कर व्यवसायिक प्रशिक्षण जिसमें संस्थागत तथा क्षेत्रीय प्रशिक्षण शामिल है, राजस्थान पुलिस अकादमी में ग्रहण करते हैं। इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण पृथक रूप से दिया गया है। 1956 में राजस्थान पुलिस सेवा के परिवीक्षार्थी राजस्थान पुलिस अकादमी में संस्थागत प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। किन्तु अकादमी का सर्वाधिक कार्य-भार उप-निरीक्षकों (सब-इन्सपैक्टर) के प्रशिक्षण से सम्बन्धित है। उदाहरण-स्वरूप 1998 में उप-निरीक्षक स्तर के 260 परिवीक्षार्थी राजस्थान पुलिस अकादमी में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे।

अकादमी में यदा-कदा पुलिस व्यवस्था के कतिपय विशिष्ट पहलुओं पर भी प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं। उदाहरणस्वरूप 1996 में जाँच (इनवैस्टिगेशन) पर विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया। जून, 1998 में अकादमी में संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम एवं भारत सरकार के पुलिस अनुसंधान ब्यूरो के सहयोग से एक मास का पुलिस व्यवहार में सुधार प्राप्त करने हेतु एक पाठ्यक्रम आयोजित किया गया जिसमें असम, तामिलनाडु एवं राजस्थान के 28 पुलिसकर्मियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। यह अपने आप में एक अनूठा पाठ्यक्रम था।

अन्य प्रशासनिक संस्थान

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थान सरकार में जिन दो प्रशिक्षण संस्थाओं ने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं, वे हैं– हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान (रीपा) तथा राजस्थान पुलिस अकादमी। निष्पत्ति की दृष्टि से इन दोनों संस्थाओं में प्रचुर अन्तर है। जहाँ

एक ओर रीपा ने राष्ट्रीय महत्व अर्जित कर लिया है, वहाँ पुलिस अकादमी अब इस प्रकार के महत्व को अर्जित करने का सफल प्रयास कर रही है।

इन दो संस्थाओं के अतिरिक्त राज्य में विभिन्न विभागीय प्रशिक्षण संस्थान हैं जो अपने विशिष्ट क्षेत्रों में प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। ये संस्थान सामान्यतः अपने विभागाध्यक्षों के निर्देशन में कार्य करते हैं, यद्यपि कुछ मात्रा में इन्हें प्रशासनिक स्वायत्तता प्रदान की गई है। कुछ विभागीय अथवा विषय-विशेष के लिए निर्मित प्रशिक्षण संस्थाएं इस प्रकार हैं:

कतिपय विभागीय/विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थान

विभाग/ संस्थान	प्रशिक्षण संस्थान
राजस्व मंडल	राजस्व अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, अजमेर. राजस्व प्रशिक्षण स्कूल, टोंक.
चिकित्सा एवं स्वास्थ्य	राजस्थान राज्य स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, जयपुर. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण प्रशिक्षण केन्द्र, जयपुर. राजस्थान कॉलेज ऑफ़ नर्सिंग, जयपुर.
भेड़, ऊन एवम् मत्स्य निदेशालय	भेड़ तथा ऊन प्रशिक्षण संस्थान, जयपुर. मत्स्य प्रशिक्षण केन्द्र, जयपुर.
ग्रामीण विकास	इंदिरा गाँधी पंचायती राज संस्थान, जयपुर.
शिक्षा	राज्य शिक्षण संस्थान, उदयपुर.
जनजातीय विकास	माणिक्यलाल वर्मा अनुसंधान प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर.
उद्योग	औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, जयपुर.
कृषि	कृषि प्रशिक्षण केन्द्र, जयपुर.
राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल	राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल प्रशिक्षण केन्द्र, जयपुर.
सहकारिता वन	सहकारी प्रबन्धन संस्थान, जयपुर. वानिकी प्रशिक्षण संस्थान, जयपुर.

उपरोक्त सूची केवल संकेतक है पूर्ण नहीं। राजस्थान सरकार के विभिन्न विभागों के अधीन क्षेत्रीय जिला एवं स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण संस्थान कार्यरत हैं।

मूल्यांकन

राजस्थान में प्रशिक्षण संस्थानों के विस्तृत तंत्र के बावजूद स्थिति पूर्णतया सन्तोषप्रद नहीं कही जा सकती। राजस्थान पुलिस अकादमी तथा इंदिरा गाँधी पंचायती राज संस्थान जैसी विशालकाय एवं 'सुसज्जित' संस्थानों की क्षमता का केवल कुछ अंश ही उपयोग में आ रहा है। जितनी बड़ी मात्रा में यहाँ प्रशिक्षण कार्यक्रम कराए जाने चाहिए, वे नहीं हो पा रहे हैं। अन्य संस्थाओं के विकास के लिए जो साधन उपलब्ध किये जाने चाहिए, सरकार उन्हें उपलब्ध नहीं करा पाती। प्रशिक्षण संस्थानों के

पदों को अति महत्त्वपूर्ण भी नहीं माना जाता, अतः सामान्यतया कुशाग्र अधिकारी इन संस्थाओं में पद-स्थापन को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते। लोक सेवाओं में प्रशिक्षण की प्रक्रिया को सम्पूर्ण सरकारी-तंत्र में वह महत्त्व नहीं दिया जाता जो सुरक्षा सेवाओं में दिया जाता है। यह दृष्टिकोण परिवर्तित होना चाहिए।

राजस्थान सरकार के एक आदेश के अनुसार प्रत्येक सरकारी विभाग एवं उपक्रम में एक उप-निदेशक स्तर के अधिकारी को प्रशिक्षण समन्वयक बनाये जाने का प्रावधान है। इस अधिकारी का कर्तव्य है कि वह अपने विभाग के विभिन्न कार्मिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करे तथा इस हेतु विभिन्न प्रशिक्षण संस्थाओं से समन्वय रखे। किन्तु ऐसा देखा गया है कि अधिकांश विभाग इस प्रावधान का पालन नहीं करते। कई-कई वर्षों तक इन प्रशिक्षण-समन्वयकों की नियुक्ति नहीं होती तथा इस कारण विभिन्न विभागों की प्रशिक्षण व्यवस्था सुचारू रूप से कार्य नहीं करती। हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान का निदेशक राज्य का प्रशिक्षण निदेशक भी है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह प्रतिवर्ष विभिन्न प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रमुखों एवं विभिन्न विभागों के प्रशिक्षण-समन्वयकों की बैठकें बुलाए जिसमे विभागीय प्रशिक्षण की प्रगति का मूल्यांकन किया जाए तथा भविष्य की योजनाएँ बनाई जा सकें। किन्तु उल्लेखनीय है कि पिछले कई वर्षों से ऐसी बैठकों का आयोजन नहीं हो पाता है।

राजस्थान में प्रशिक्षण संगठनों की निष्पत्ति असंतुलित सी है। जहाँ एक ओर हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान (रीपा) ने निरन्तर प्रगति की है तथा इसके प्रशिक्षण-कार्यक्रमों की मात्रा एवं गुणात्मकता में अभिवृद्धि स्पष्ट है, वहाँ अन्य प्रशिक्षण संस्थान अपेक्षित विकास नहीं कर पाये। जिन दो संस्थानों की निष्पत्ति एवं विकास की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं, वे हैं– राजस्थान पुलिस अकादमी एवं इंदिरा गांधी पंचायती राज संस्थान। इन संस्थाओं को पर्याप्त भौतिक साधन एवं सुविधाएँ देकर इनमें लघुकालीन एवं दीर्घकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम नियोजित ढंग से बड़ी मात्रा में आयोजित किए जा सकते हैं। विशिष्ट क्षेत्रों में सेवाकालीन प्रशिक्षणों के आयोजन की आवश्यकता एवं गुजांइश भी प्रचुर है। एक क्षेत्र जिसमें अधिक गहन प्रशिक्षण की आवश्यकता है, वह है मानवीय व्यवहार। पुलिस प्रशिक्षण में विशेषतया मानव अधिकारों एवं संवेदनशीलता के विषयों पर प्रचुर बल दिये जाने की आवश्यकता है।

जहाँ तक हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान का प्रश्न है, वहाँ इन क्षेत्रों में सुधार की सम्भावनाएँ हैं– विशिष्ट योग्यता प्राप्त विद्वानों को स्थायी रूप से अथवा संविदा पर कुछ वर्षों के लिए नियुक्त किया जाए तथा उन्हें आकर्षक वेतन दिये जाएँ। विश्वविद्यालयों के समान वेतनमान रीपा के योग्य अकादमिक प्रशिक्षकों को मिलने लग जाए तो संस्थान में प्रशिक्षकों के स्तर के और अधिक उच्च होने की आशा है। केवल उन्हीं सरकारी अधिकारियों की रीपा में पदस्थापना की जाए जो प्रशिक्षण के लिए प्रतिबद्ध हैं। अनुसंधान एवं प्रकाशनों की दृष्टि से रीपा में अधिक नियोजित एवं लक्ष्योन्मुख कार्य की आवश्यकता है। प्रशिक्षण सामग्री का निर्माण भी विभिन्न पाठ्यक्रमों की आवश्यकतानुसार होना चाहिए। केस स्टडीज कार्यक्रम को पुनः सक्रिय करने की आवश्यकता है। प्रत्येक वर्ष के प्रशिक्षण कलेण्डर बनाते समय रीपा को विभिन्न विभागों का सहयोग अपेक्षित रूप से नहीं मिल पा रहा है। विभागों को इस सम्बन्ध में अधिक सक्रियता दिखानी चाहिए।

विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकन भी निरन्तर किया जाना चाहिए तथा यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि प्रशिक्षित व्यक्तियों को उपयुक्त पदों पर पदस्थापित किया जाए जिससे उन्हें प्राप्त प्रशिक्षण का पूरा-पूरा लाभ सरकार को मिल सके। कई बार रीपा में किए जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम में विभिन्न विभागों द्वारा नामांकित किये जाने वाले कार्मिकों की संख्या बहुत कम होती है। इन विभागों का दायित्व है कि वे प्रशिक्षण के महत्त्व को समझते हुए अपने कार्मिकों को विभिन्न क्षेत्रों में निरन्तर प्रशिक्षित कराते रहें।

उपरोक्त कदम राजस्थान की प्रशिक्षण व्यवस्था के सांगठनिक पक्ष को सशक्त करने में सहायक हो सकते हैं।

❑❑❑

अध्याय 18

राज्य सेवा में प्रशिक्षण

राजस्थान में प्रमुख राज्य स्तरीय सेवाओं के अन्तर्गत राजस्थान प्रशासनिक सेवा, राजस्थान पुलिस सेवा, राजस्थान लेखा सेवा, राजस्थान वाणिज्य-कर सेवा, राजस्थान उद्योग सेवा, राजस्थान पर्यटन सेवा, राजस्थान जेल सेवा, राजस्थान सहकारिता सेवा आदि के लिए प्रशिक्षण में समानता भी है तो अन्तर भी है। समानता इस दृष्टि से कि इन सभी सेवाओं में प्रवेश करने के पश्चात् प्रशिक्षणार्थी के लिए नव-नियुक्त अधिकारियों के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम एक ही है तथा अन्तर इस अर्थ में कि उनको दिये जाने वाले संस्थागत प्रशिक्षण एवं व्यावहारिक क्षेत्रीय प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम उनकी सेवाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। इस अध्याय में हम तीन प्रमुख राज्य सेवाओं– राजस्थान प्रशासनिक सेवा, राजस्थान पुलिस सेवा तथा राजस्थान लेखा सेवा के आधारभूत, संस्थागत एवं क्षेत्रीय प्रशिक्षण के बारे में कुछ विवेचन करेंगे। आज से कुछ वर्षों पहले तक राज्य सेवाओं तथा राज्य अधीनस्थ सेवाओं के प्रशिक्षण जयपुर में स्थित हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान (रीपा) में ही सम्पन्न किया जाता था, किन्तु नव-नियुक्त अधिकारियों की संख्या में अभिवृद्धि होने के कारण अब यह प्रशिक्षण दो स्थानों पर आयोजित किया जाता है। जयपुर स्थित रीपा में प्रमुख राज्य सेवाओं का आधारभूत प्रशिक्षण सम्पन्न होता है तथा इस संस्थान के उदयपुर परिसर में राजस्थान सहकारिता सेवा तथा कुछ अन्य राज्य सेवाओं एवं अधीनस्थ सेवाओं का प्रशिक्षण आयोजित किया जाता है। नीचे दिये गये आधारभूत प्रशिक्षण के बारे में विवरण उन सभी राज्य सेवाओं पर लागू होता है जिनका कि सामूहिक रूप से जयपुर अथवा उदयपुर परिसर में प्रवेशोपरान्त प्रशिक्षण आयोजित किया जाता है।

आधारभूत प्रशिक्षण

आधारभूत प्रशिक्षण का प्रायोजन नव-नियुक्त अधिकारियों-प्रशिक्षणार्थियों को उच्चतर लोक सेवा की भावना एवं मूल्यों से प्रथम साक्षात्कार कराना है। मुख्यतया ये मूल्य मानवीय सेवाओं, व्यावहारिकता एवं ईमानदारी से सम्बन्धित है। इस पाठ्यक्रम के माध्यम से भारतीय समाज के यथार्थ को समझने एवं देश तथा राजस्थान राज्य की सम्पूर्ण पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण का विश्लेषण करना संभव बनता है। एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य इस पाठ्यक्रम का यह है कि विभिन्न सेवाओं के प्रशिक्षु अधिकारियों में पारस्परिक रूप से एकात्मकता एवं टीम भावना का विकास हो सके।

अतः राज्य सेवाओं के आधारभूत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

1. विभिन्न सेवाओं के बीच अन्तर्निर्भरता एवं सहयोग की भावना का विकास करना एवं पारस्परिक समन्वय की भावना उत्पन्न करना।
2. प्रशिक्षु अधिकारियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास– बौद्धिक, नैतिक, शारीरिक विकास में सहायता प्रदान करना।
3. प्रशिक्षु अधिकारियों को अपने दृष्टिकोण में ''व्यावहारिक'' बनाना तथा लोक सेवा में उपलब्ध अवसरों व संभव चुनौतियों के प्रति उन्हें जागरुक करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आधारभूत पाठ्यक्रम में निम्नलिखित तत्त्वों का समावेश किया गया है:

1. विषय सम्बन्धित शिक्षण– आधारभूत पाठ्यक्रम का यह एक मुख्य भाग है। इसकी विस्तार से आगे चर्चा की जायेगी। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि कक्षा में दिये जाने वाले प्रशिक्षण का केवल व्याख्यान पद्धति से ही सम्प्रेषण नहीं किया जाता, किन्तु जिन अन्य पद्धतियों का उपयोग किया जाता है, वे हैं– समूह विमर्श, पुस्तक समीक्षा, केस-स्टडी, मनोवैज्ञानिक, प्रबन्धकीय क्रीड़ा, दृश्य-श्रव्य विधि एवं वे अन्य सभी विधियाँ, जो कि प्रशिक्षण को अधिक सुरुचिपूर्ण एवं सहभागितापूर्ण बनाती है। इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि एक प्रशिक्षु अधिकारी केवल श्रोता बनकर न रहे किन्तु वह सम्पूर्ण प्रणाली में एक महत्त्वपूर्ण सहभागी के रूप में कार्य करे।

2. ग्राम अध्ययन– प्रशिक्षु अधिकारियों को छः दिवसों के लिए एक दूरस्थ ग्रामों में वहाँ के जन-जीवन का अनुभव प्राप्त करने के लिए भेजा जाता है। यह प्रशिक्षु अलग-अलग टोलियों में विभिन्न ग्रामों में जाते हैं तथा अपने ग्राम का अध्ययन करने के पश्चात् वह एक समीक्षात्मक प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हैं। इस प्रतिवेदन को कतिपय विशेषज्ञों के सान्निध्य में प्रस्तुत किया जाता है। दिसम्बर, 1997 से मार्च, 1998 के बीच होने वाले आधारभूत पाठ्यक्रम में प्रशिक्षु उदयपुर, जोधपुर, कोटा, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, बीकानेर, डूँगरपुर तथा राजसमन्द जिलों के 3-3 ग्रामों में छोटे-छोटे समूह बनाकर अध्ययन के लिए गये। यह समूह सामान्यतः 3-3 प्रशिक्षु के थे।

3. परामर्शदाता समूह– विभिन्न प्रशिक्षुओं को लगभग 10-10 के समूहों में एक-एक परामर्शदाता के साथ सम्बद्ध कर दिया जाता है। यह परामर्शदाता रीपा के संकाय सदस्य होते हैं। पूरे आधारभूत पाठ्यक्रम के दौरान विभिन्न परामर्शदाता समूह अपने परामर्शदाता से औपचारिक रूप से सम्पर्क करते रहते हैं। सामान्यतः सप्ताह में दो बार होने वाली इन बैठकों में परामर्शदाता को विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली गतिविधियों व प्रगति के बारे में प्रत्येक प्रशिक्षु बताता है तथा इस प्रकार से मिलने वाले ''फीड-बैक'' के आधार पर पाठ्यक्रम में निरन्तर संशोधन एवं सुधार किया जाता है। एक परामर्शदाता समूह में कुछ सामूहिक बौद्धिक कार्य भी आवंटित कर दिया जाता है, जैसा कि किसी एक समस्या पर एक प्रतिवेदन तैयार करना। इन प्रतिवेदनों पर समूह में विचार-विमर्श भी होता है। उल्लेखनीय है कि आधारभूत पाठ्यक्रम के अन्त में सर्वोत्तम परामर्शदाता को पुरस्कार मिलता है तथा इसके अतिरिक्त प्रशिक्षुओं को व्यक्तिगत रूप से भी कई पुरस्कार मिलते हैं जैसे सर्वोत्तम समग्र निष्पत्ति हेतु निदेशक मैडल, सर्वोत्तम अकादमिक निष्पत्ति हेतु निदेशक मैडल, अशैक्षणिक गतिविधियों में सर्वोत्तम निष्पत्ति हेतु निदेशक मैडल आदि।

एक परामर्शदाता समूह जिन भी सह-शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेता है, उनका पूरा विवरण रखा जाता है जिससे कि अन्त में सर्वांगीण प्रगति वाले सर्वोत्तम समूह को पुरस्कृत किया जा सके।

4. परियोजना कार्य– प्रत्येक समूह के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक समस्या पर स्वतन्त्र विमर्श कर एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत करे। इस प्रतिवेदन के मुख्यतया तीन भाग होते हैं। पहले भाग में समस्याओं का विवरण एवं उसके कारण दूसरे भाग में समस्याओं के समाधान के लिए एक कार्यात्मक योजना तथा तीसरे भाग में इस कार्यात्मक योजना को लागू करने के लिए उठाये जाने वाले आवश्यक कदमों का विवरण होता है।

5. सत्र-पत्र (टर्म पेपर)– प्रशिक्षुओं में लेखन कुशलता की अभिवृद्धि, अनुसंधान करने की योग्यता एवं मौलिक चिन्तन विकसित करने के लिए प्रत्येक प्रशिक्षु द्वारा एक सत्र-पत्र का लेखन अनिवार्य होता है। इनमें 30 प्रतिशत अंक सामग्री का संरक्षण, संदर्भ सूची एवं रूप-रेखा बनाने के लिए; 30 प्रतिशत अंक, विषय सामग्री के लिए तथा 10 प्रतिशत अंक इस सत्र-पत्र को नियत समय में प्रस्तुत करने के लिए निश्चित होते हैं। सत्र-पत्र का विषय परामर्शदाता से विचार-विमर्श करके निर्धारित होता है।

6. कम्प्यूटर कार्यक्रम– सूचना प्राविधियाँ, वर्ड प्रोसेसिंग, डी-बेस III प्लस में आवश्यक ज्ञान प्रदान करने के लिए रीपा में इन प्रशिक्षणार्थियों के लिए कम्प्यूटर कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य कम्प्यूटर भाषा को समझना है, जिससे कि आगे आने वाले प्रशासनिक कार्यों में इसका भली प्रकार से उपयोग किया जा सके।

7. पैदल यात्रा– प्रशिक्षुओं को पर्वतीय क्षेत्रों में लम्बी पैदल यात्रा के लिए लगभग डेढ़ सप्ताह के लिए ले जाया जाता है। इस भ्रमण के दौरान टीम भावना, मानवीयता, साहस, सहन-शक्ति एवं पारस्परिक मेल-मिलाप की भावना का विकास स्वभावतः होता है। रीपा में इस यात्रा के आयोजित करने का परिणाम सुखद रहा है।

8. बहिर्द्वारी गतिविधियाँ– रीपा में शारीरिक प्रशिक्षण, क्रीड़ा, श्रमदान, लम्बी दौड़, खेल-कूद, व्यायाम, योग, ध्यान, पर्वतारोहण आदि गतिविधियों के लिए भी प्रावधान है। इन गतिविधियों में भाग लेने के फलस्वरूप जोखिम उठाना, अनुशासन, प्रेमानुभूति, दूसरों के लिए सौहार्द, विनम्रता तथा श्रम के प्रति सम्मान का भाव सुदृढ़ होता हैं।

9. प्रबन्धकीय सहभागिता– आधारभूत पाठ्यक्रम के दौरान किये जाने वाले सभी आयोजनों में प्रशिक्षु अधिकारियों को निकट रूप से जोड़ा जाता है, जैसे– कक्षा में आने वाले अतिथि वक्ताओं का परिचय देना, धन्यवाद देना, विभिन्न समूहों का संचालन करना, छात्रावास के प्रबन्ध में हिस्सा बंटाना तथा अन्य क्षेत्र आदि।

पाठ्यक्रम

राज्य सेवाओं के आधारभूत पाठ्यक्रम की अवधि समय-समय पर परिवर्तित होती रही है किन्तु वर्तमान में यह अवधि 15 सप्ताह की है। कक्षा में अध्ययन से विभिन्न गतिविधियों के अनवरत प्रवाह के कारण यह अवधि छोटी प्रतीत होती है, किन्तु इस स्थिति का लाभ यह भी है कि पूरे 15 सप्ताह रचनात्मक गतिविधियों से परिपूर्ण रहते हैं।

पाठ्यक्रम विवरण– इस आधारभूत पाठ्यक्रम में सात विषय हैं तथा प्रत्येक विषय के लिए 100 अंकों का एक प्रश्न-पत्र होता है जिसमें कि एक परीक्षा ली जाती है। ये विषय इस प्रकार हैं:

1. प्रशासनिक पर्यावरण
2. आर्थिक पर्यावरण एवं नियोजन
3. प्रबन्ध तथा सांगठनिक व्यावहारिक सिद्धान्त
4. विकास एवं कल्याण प्रशासन
5. कार्यालय प्रबन्धन
6. वित्त प्रबन्ध
7. कम्प्यूटर अभिमुखीकरण

1. प्रशासनिक पर्यावरण– इस खण्ड के मुख्य विषय इस प्रकार हैं– भारतीय संविधान की विशेषता, केन्द्र-राज्य सम्बन्ध, शासन के अंग, कार्यपालिका व उत्तरदायित्व, संसदीय नियंत्रण, राजस्थान में राजनैतिक-तंत्र का विकास, राजस्थान की भौगोलिक विशेषताएँ, राजस्थान की कला एवं संस्कृति, अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष प्रावधान, न्यायिक प्रशासन, प्रचार-प्रसार तंत्र की भूमिका, उपभोक्ता, श्रम एवं भवन कानून, सरकार की संरचना, प्रशासन के सिद्धान्त, अधिकारी तन्त्र की भूमिका, प्रशासनिक निकटता, नैतिकता, मानवीय अधिकार एवं लोक आयुक्त।

2. आर्थिक पर्यावरण एवं नियोजन– इस खण्ड में भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास एवं उसकी विशेषताएँ, आर्थिक विकास का अर्थ, विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषता, सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों का संतुलन, भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन के कारण, अर्थव्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त, आर्थिक दर व मौद्रिक एवं साख नीति, गरीबी उन्मूलन, राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय नियोजन प्रक्रिया, राजस्थान का आर्थिक विकास तथा जनसंख्या नियंत्रण जैसे विषय शामिल हैं।

3. प्रबन्ध एवं सांगठनिक व्यवहार– इस खण्ड में मुख्य विषय हैं– प्रबन्ध के सिद्धान्त, निर्णय प्रक्रिया, प्रबन्ध-योजना सिद्धान्त, सामग्री प्रबन्धन, नवाचार, मानवीय सम्बन्धों का विकास तथा पूर्ण गुणात्मक प्रबन्ध, सांगठनिक व्यवहार, सम्प्रेषण की प्रक्रिया, नेतृत्व, पर्यवेक्षण, समय प्रबन्धन आदि।

4. विकास एवं कल्याण प्रशासन– इस खण्ड में विकास प्रशासन, ग्रामीण विकास, प्रशासनिक संस्थाओं की निगरानी, विकास कार्यक्रम, महिला एवं बाल विकास, समेकित सहभागिता, गैर-सरकारी संस्थाएँ, जिला नियोजन, पंचायती राज, संवेदनशील प्रशासन, जन-अभियोग निराकरण आदि विषय सम्मिलित हैं।

5. कार्यालय प्रबन्ध– इस खण्ड में सांगठनिक विश्लेषण, कार्यालय प्रणाली, बैठकें तथा उनका प्रबन्ध, आचरण नियम, सेवा नियम, कार्मिक प्रशासन, अभिलेख प्रबन्धन, कार्यालय पर्यवेक्षण, शिष्टाचार आदि विषय सम्मिलित हैं।

6. वित्तीय प्रबन्धन– इस खण्ड में वित्तीय प्रबन्ध की संरचना, सामान्य वित्तीय एवं लेखा नियम, भण्डार प्रबन्धन, लेखा अंकेक्षण, यात्रा भत्ता, चिकित्सा परिचर्या नियम, राज्य बीमा, बजट प्रशासन, कोषालय प्रशासन, आयकर, निवेश, नियोजन आदि के बारे में विवरण दिया जाता है।

7. **कम्प्यूटर अभिमुखीकरण–** इस पत्र में कम्प्यूटर परिचालन से सम्बन्धित आवश्यक ज्ञान, कम्प्यूटर की रचना, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, वर्ड प्रोसेसिंग, डेटा बेस, प्रबन्ध प्रणाली, भौगोलिक सूचना प्रणाली आदि के बारे में प्रशिक्षण दिया जाता है।

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को इस प्रकार से आयोजित किया जाता है जिससे कि एक-एक पत्र का पाठ्यक्रम डेढ़-डेढ़, दो-दो सप्ताह में समाप्त होता चला जाये तथा उस पत्र में परीक्षा आयोजित कर ली जाए। इससे सभी पत्रों की परीक्षाएँ एक साथ नहीं देनी पड़ती हैं। प्रत्येक पत्र में उत्तीर्ण होने के लिए 45 प्रतिशत अंक आवश्यक हैं, तथा जो विद्यार्थी किसी पत्र में सफल नहीं होते उनको अगले पाठ्यक्रम की परीक्षा के साथ उस विषय में पुनः परीक्षा देनी पड़ती है।

संकाय

पाठ्यक्रम में संस्थान के संकाय सदस्य तो सत्र लेते ही हैं, किन्तु बहुत बड़ी मात्रा में अनुभवी प्रशासकों एवं विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के अध्यापकों को भी विभिन्न अकादमिक सत्रों में भाषण देने अथवा विचार-विमर्श हेतु बुलाया जाता है। उदाहरणार्थ, 29 सितम्बर से 16 मार्च, 1998 तक चलने वाले आधारभूत पाठ्यक्रम में 61 संकाय सदस्यों को संस्थान के बाहर से बुलाया गया, जबकि संकाय के 17 सदस्यों ने पाठ्यक्रम में अध्यापक की भूमिका निभाई।

मूल्यांकन

प्रत्येक पाठ्यक्रम के अन्त में प्रशिक्षुओं को सभी सत्रों का मूल्यांकन करने के लिए एक फार्म दिया जाता है जिसमें वे प्रत्येक सत्र के बारे में अपना मत देते हैं कि वह "श्रेष्ठ", "बहुत अच्छा", "अच्छा" अथवा "मध्यम" स्तर का था। साथ ही प्रत्येक प्रशिक्षु पाठ्यक्रम के संचालन, अवधि-परियोजना, कार्य कम्प्यूटर सुविधा, क्रीड़ा, भ्रमण, छात्रावास आदि के बारे में अपना मत व्यक्त करते हैं। मिलने वाले इस "फीड-बैक" से पाठ्यक्रम को सुधारने में सहायता प्राप्त होती है।

आधारभूत पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण होने के पश्चात् राजस्थान पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अपने संस्थागत प्रशिक्षण हेतु राजस्थान पुलिस अकादमी चले जाते हैं तथा राजस्थान प्रशासनिक सेवा तथा राजस्थान लेखा सेवा के प्रशिक्षणार्थी अपना संस्थागत पाठ्यक्रम रीपा में ही पूर्ण करते हैं।

राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का सांस्थानिक एवं फील्ड प्रशिक्षण

राजस्थान प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षु अधिकारियों की प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण की अवधि 52 सप्ताह की होती है। इसका मुख्य उद्देश्य इन प्रशिक्षुओं को उन सभी उत्तरदायित्वों के लिए तैयार करना है जो कि राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को भविष्य में वहन करना होता है। इस प्रशिक्षण का विवरण इस प्रकार है:

राजस्थान प्रशासनिक सेवा का प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण

क्रमांक	विवरण	अवधि
1	आधारभूत पाठ्यक्रम	15 सप्ताह
2	सांस्थानिक पाठ्यक्रम	8 सप्ताह
3	क्षेत्रीय प्रशिक्षण प्रथम चरण	11 सप्ताह
4	मध्यावधि समीक्षा	1 सप्ताह
5	क्षेत्रीय प्रशिक्षण द्वितीय चरण	14 सप्ताह
6	समीक्षा द्वितीय चरण एवं परीक्षा	3 सप्ताह
	कुल समयावधि	52 सप्ताह

सांस्थानिक पाठ्यक्रम एवं फील्ड प्रशिक्षण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है:

1. राजस्व में दीवानी, फौजदारी तथा वैकासिक कानूनों के विषयात्मक एवं प्रक्रियात्मक पहलुओं के बारे में ज्ञान प्रदान करना।
2. निम्नलिखित भूमिकाओं के निर्वाह हेतु कौशल विकसित करना:
   - (क) दीवानी कानून विशेषतया भू-राजस्व तथा बंदोबस्त से सम्बन्धित राजस्व कानूनों का प्रशासन;
   - (ख) कानून व व्यवस्था विशेषतः मजिस्ट्रेट के कार्य;
   - (ग) विकास कार्यक्रम व गतिविधियाँ विशेषतः ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का प्रशासन; तथा
   - (घ) विभिन्न सम्भावित दायित्वों का दक्षता से निर्वाह करना।
3. प्रशासकों में संवेदनशील दृष्टिकोण उत्पन्न करना तथा इन अधिकारियों में जनता तथा अधीनस्थों के प्रति निष्पक्ष एवं शालीन व्यवहार की भावना विकसित करना।

संस्थागत प्रशिक्षण तथा जिला प्रशिक्षण/संस्थागत प्रशिक्षण के दो चरण होते हैं:

प्रथम चरण सांस्थानिक पाठ्यक्रम

हरिश्चन्द्र माथुर लोक प्रशासन संस्थान (रीपा) में आयोजित होने वाले आठ सप्ताह के सांस्थानिक प्रशिक्षण में निम्नलिखित पाँच माड्यूल (पाठ्यक्रम-अंश) के अनुसार प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है:

मॉड्यूल 1 : वित्तीय एव राजस्व अधिनियम

केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम एवं नियम, राजस्थान विक्रय कर अधिनियम व नियम, राजस्थान भूमि व भवन कर अधिनियम, राजस्थान मोटर कराधान अधिनियम, राजस्थान स्टाम्प अधिनियम तथा अन्य कानून जो कि वित्त एवं राजस्व क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं।

मॉड्यूल 2 : नियामकीय एवं सामान्य कानून

इस मॉड्यूल में विधि-शास्त्र, निरोधक, नजरबन्दी कानून, भारतीय संविदा अधिनियम, सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम, भारतीय पंजीकरण अधिनियम, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, दीवानी प्रक्रिया

संहिता, परीक्षण प्रक्रिया संहिता, जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, निर्वाचन संचालन नियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम, भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, राजस्थान अकाल संहिता तथा हथियार, पुलिस, जेल, सरकारी गोपनीयता आदि से सम्बन्धित कानूनों के बारे में प्रशिक्षण दिया जाता है।

मॉड्यूल 3 : प्रगतिशील एवं वैकासिक अधिनियम

इस मॉड्यूल में मानवीय अधिकारों की रक्षा से सम्बन्धित कानून जैसे मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निरोध अधिनियम तथा नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम पर बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त न्यायिक सक्रियता, लोक-हित मुकदमे, कानूनी सहायता, पंचायती राज अधिनियम, नगरपालिका अधिनियम, नगरीय भूमि अधिनियम, नगर सुधार अधिनियम, जयपुर विकास प्राधिकरण, राजस्थान सहकारी समिति अधिनियम, औद्योगिक विवाद अधिनियम तथा पर्यावरण संरक्षण, उपभोक्ता संरक्षण आदि से सम्बन्धित कानूनों का विवेचन किया जाता है।

प्रशिक्षणार्थी उपरोक्त अधिनियमों के मूल पाठों के बारे में तो ज्ञान प्राप्त करता ही है, उनकी विवेचना एवं उनके व्यावहारिक पहलुओं का भी अध्ययन करता है। इस हेतु ''केस विधि'' का भी उपयोग किया जाता है। कुछ ऐसे भी कानून हैं जिनके बारे में अध्ययन कक्षा में नहीं होता किन्तु प्रशिक्षणार्थियों से यह आशा की जाती है कि वे उसका अध्ययन स्वयं करें। इनमें से कतिपय कानून हैं– विस्फोटक अधिनियम, पैट्रोलियम अधिनियम, धार्मिक भवन तथा स्थान अधिनियम, गुण्डा नियंत्रण अधिनियम, सिनेमा (नियमन) अधिनियम आदि। इन अधिनियमों के बारे में भी परीक्षा में प्रश्न पूछा जा सकता है।

मॉड्यूल 4 : कम्प्यूटर उपयोग

इस मॉड्यूल में कम्प्यूटर का परिचय, इतिहास, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर, व्यक्तिगत कम्प्यूटर, प्रबन्ध सूचना तंत्र, सूचना आधारित प्रबन्ध-तन्त्र, सूचना पुनः प्राप्ति (Retrieval), क्रमोन्नतिकरण तथा वर्ड प्रोसेसिंग सम्मिलित है:

मॉड्यूल 5 : शोध ग्रन्थ

इस मॉड्यूल में किसी एक विभाग पर लघु शोध-ग्रन्थ प्रत्येक प्रशिक्षु के लिए अनिवार्य किया गया है। यह शोध-ग्रन्थ एक अकादमिक निदेशक तथा एक उस विभाग से सम्बन्धित अधिकारी के संयुक्त निर्देशन में लिखा जाता है। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि प्रशिक्षु स्वयं इस शोध-ग्रन्थ को कम्प्यूटर पर वर्ड प्रोसेसिंग से तैयार करेंगे।

क्षेत्रीय प्रशिक्षण

संस्थान में आठ सप्ताह के सांस्थानिक प्रशिक्षण के उपरान्त राजस्थान प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षु अधिकारी 25 सप्ताह के फील्ड प्रशिक्षण हेतु विभिन्न जिलों को प्रस्थान करते हैं। सबसे पहले वे दो सप्ताह के सर्वेक्षण एवं बन्दोबस्त में क्षेत्रीय प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् क्षेत्रीय प्रशिक्षण की रूप-रेखा इस प्रकार होती है:

1. तहसील स्तर	4 सप्ताह
2. खण्ड स्तर	4 सप्ताह
3. जिलाधीश कार्यालय के साथ सम्बद्धता	6 सप्ताह
4. अन्य विभागों के साथ सम्बद्धता	4 सप्ताह
5. प्रशिक्षु मजिस्ट्रेट के रूप में न्यायिक कार्य	6 सप्ताह
कुल	24 सप्ताह

इस प्रशिक्षण के बारे में कतिपय मुख्य बिन्दु इस प्रकार हैं:

1. तहसील प्रशिक्षण– राजस्थान प्रशासनिक सेवा के परिवीक्षाधीन अधिकारी को 15 दिनों तक एक पटवारी, एक भू-अभिलेख निरीक्षक तथा नायब तहसीलदार के साथ सम्बद्ध किया जाता है। इस दौरान एक सप्ताह तक एक प्रशिक्षु अधिकारी पटवार मुख्यालय पर रहता है, पटवारी द्वारा रखे गये अभिलेखों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है तथा खसरों का व्यवसायिक मापन करता है, गिरदावरी तथा नामान्तरकरण (म्यूटेशन) फार्म भरता है एवं भू-अभिलेख निरीक्षक (आई.एल.आर.) क्षेत्रों से कम से कम 10 अतिक्रमण हटाता है। शेष 15 दिनों में एक प्रशिक्षु अधिकारी तहसीलदार के साथ सम्बद्ध रहता है। वह तहसीलदार के साथ उसके दौरे में जाता है। इस दौरान एक तहसीलदार एक पटवारी क्षेत्र तथा एक आई.एल.आर. क्षेत्र का निरीक्षण करता है जिसे निकटता से देखने का अवसर प्रशिक्षु को मिलता है। प्रशिक्षु तहसीलदार के साथ उस समय बैठता है जबकि राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम की धारा 91 तथा अतिक्रमण से सम्बन्धित मामलों का निपटारा किया जाता है। इस प्रकार जब तहसीलदार राजस्व की वसूली के लिए दौरे करता है तब भी प्रशिक्षु उसके साथ जाता है। इस प्रशिक्षण के दौरान तहसीलदार के साथ निकट रूप से कार्य करने से राजस्व प्रशासन की बारीकियाँ प्रशिक्षु अधिकारी समझ सकते हैं।

2. खण्ड स्तरीय प्रशिक्षण– एक प्रशिक्षु अधिकारी को 15 दिनों तक ग्राम सेवक, शिक्षा प्रसार अधिकारी, कृषि विस्तार अधिकारी तथा पशुपालन अधिकारी के साथ सम्बद्ध किया जाता है। एक सप्ताह तक वह पंचायत मुख्यालय पर रहता है तथा विभिन्न विकास कार्यक्रमों के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। वह ऋण वितरण शिविरों में पशुपालन विस्तार अधिकारी के साथ भाग लेता है, शिक्षा प्रसार अधिकारी के साथ प्राथमिक पाठशाला का निरीक्षण करता है एवं बैंक अधिकार एवं लाभग्राहियों के साथ विचार-विमर्श करता है।

अगले 15 दिन प्रशिक्षु विकास अधिकारी के साथ सम्बद्ध रहता है। वह इस अधिकारी वे साथ दौरे पर जाता है। इस दौरान विकास अधिकारी प्रशिक्षु अधिकारियों की उपस्थिति में एव पाठशाला का तथा ग्राम पंचायत का निरीक्षण करता है। विभिन्न विकास अधिकारियों द्वारा जि बैठकों में भाग लेना होता है उनके बारे में प्रशिक्षु अधिकारियों को सूचना प्रदान की जाती है। संभ हो तो प्रशिक्षु अधिकारी स्वयं भी कतिपय बैठकों में भाग लेता है। इसके अतिरिक्त वे उन सभ तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं जिन्हें विकास अधिकारी द्वारा अपने क्षेत्र की प्रगति के ब में उच्चतर स्तर पर भेजना होता है।

3. जिलाधीश कार्यालय के साथ सम्बद्धता– प्रशिक्षु अधिकारी जिला अधिकार जिलाधीश कार्यालय के अन्य अधिकारियों– अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, जिला नगर मजिस्ट्रेट, य कोई हो, जिला परिषद् के मुख्य कार्यकारी अधिकारी, उप-जिला मजिस्ट्रेट आदि के साथ सम्ब रहता है। यह प्रशिक्षु विभिन्न अधिकारियों के साथ उनके दौरों के दौरान यह देखने का प्रयत्न कर

है कि विभिन्न अधिकारी अपने क्षेत्र एवं विषयों की समस्याएँ किस प्रकार हल करते हैं। प्रतिदिन अपरान्ह में प्रशिक्षु अधिकारी जिलाधीश कार्यालय के विभिन्न अनुभागों में जाकर उनकी कार्य प्रणाली समझने का प्रयत्न करता है जिससे कि वह यह जान सके कि पत्रावलियाँ किस प्रकार निपटायी जाती हैं एवं किस प्रकार निर्णय लिये जाते हैं? उप-जिला अधिकारी प्रशिक्षुओं की उपस्थिति में एक तहसील और एक पुलिस स्टेशन का निरीक्षण करता है जिससे कि इस सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्रशिक्षु अधिकारियों को प्राप्त हो सके। इसी प्रकार राजस्थान प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षु अधिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सहायक कलेक्टर तथा मजिस्ट्रेट, उप-जिला मजिस्ट्रेट तथा अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट के न्यायालयों में होने वाली कार्यवाही को समझें। इस प्रकार यदि उप-जिला मजिस्ट्रेट तहकीकात प्रक्रिया हेतु यदि किसी स्थान पर जाता है तो प्रशिक्षु अधिकारी उसके साथ रहता है। साथ ही जब भी अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट उप-जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय में भू-लेखों का निरीक्षण करता है तथा जिला परिषद् का मुख्य कार्यकारी अधिकारी पंचायत समिति का निरीक्षण करता है तो प्रशिक्षु अधिकारी इन निरीक्षणों के दौरान सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने की चेष्टा करता है। इसके अतिरिक्त एक प्रशिक्षु अधिकारी से यह आशा की जाती है कि वह जाँच प्रक्रिया को भली प्रकार समझे, कुछ प्रमुख जाँच स्वयं करे और कतिपय आरोप-पत्र स्वयं तैयार करे, यदि संभव हो तो इस अधिकारी को कुछ जाँच करने के लिए उत्तरदायी बना देना चाहिए।

4. विभिन्न विभागों के साथ सम्बद्धता– चूँकि राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को राज्य प्रशासन के लगभग सभी पहलुओं के बारे में जानकारी रखनी चाहिए, अतः उनके लिए वांछनीय है कि वह सरकार के विभिन्न विभागों की प्रक्रिया को समझने की चेष्टा करे। क्षेत्रीय प्रशिक्षण के दौरान यद्यपि सभी प्रमुख विभागों और संस्थाओं का दौरा करना असंभव है, किन्तु कुछ ऐसी संस्थाएँ एवं कार्यक्रम हैं जिनके बारे में जानकारी प्राप्त करना परमावश्यक माना जाता है। अतः इस प्रशिक्षण के दौरान जिन विभागों अथवा संस्थाओं के साथ प्रशिक्षु अधिकारियों की सम्बद्धता होती है, वे इस प्रकार हैं:

विभाग	*दिवस*
1. जिला परिवहन अधिकारी	2
2. जिला आबकारी अधिकारी	2
3. महिला एवं बाल विकास विभाग	2
4. वाणिज्य कर विभाग	1
5. वन विभाग	1
6. कृषि अधिकारी	1
7. जिला उद्योग केन्द्र	1
8. सहायक रजिस्ट्रार, सहकारिता	1
9. रोज़गार कार्यालय	1
10. स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विभाग	1
11. नगरपालिका/नगर विकास न्यास	2
12. सिविल तथा दीवानी न्यायालय	3

13. जिला ग्रामीण विकास अभिकरण	4
14. जिला परिषद्	2
कुल	24 दिवस

5. प्रशिक्षु मजिस्ट्रेट के रूप में न्यायिक कार्य– छः सप्ताह के इस काल के दौरान प्रशिक्षु अधिकारियों की भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत धारा 107, 109 तथा 110 के अधीन मामलों की छानबीन के लिए एक पुलिस स्टेशन (थाना) में सम्बद्धता दी जाती है।

प्रशिक्षु अधिकारी को तहसील के राजस्व के मामले भी सौंपें जाते हैं। इस दौरान उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह कम से कम 10 राजस्व मुकदमे तथा 30 राजस्व प्रार्थनापत्रों का निपटारा करे। उसे दलीलें सुननी चाहिए तथा अपने ही हाथों से निर्णय भी लिखना चाहिए। उसे द्वारा दिये गये प्रत्येक निर्णय को विश्लेषण के लिए रीपा भेजा जाता है।

कार्य मूल्यांकन एवं परीक्षा

उल्लेखनीय है कि अपने क्षेत्रीय प्रशिक्षण (Field training) के दौरान प्रत्येक प्रशिक्षु अधिकारी से यह आशा की जाती है कि वह हर सप्ताह क्षेत्र में किये गये कार्यों का विस्तृत प्रतिवेदन रीपा में पाठ्यक्रम निदेशक को सम्प्रेषित करे।

प्रत्येक प्रशिक्षु अधिकारी के कार्यों का मूल्यांकन उन पर्यवेक्षक अधिकारियों द्वारा भी किया जाता है जिनके निर्देशन में प्रशिक्षु अधिकारी प्रशिक्षण ले रहा है। यह पर्यवेक्षण अधिकारी भी अपना प्रतिवेदन नियमित रूप से रीपा को भेजता है। उपरोक्त प्रतिवेदनों तथा प्रशिक्षु अधिकारियों की सम्पूर्ण निष्पत्ति एवं कक्षा में व्यवहार के आधार पर रीपा का निदेशक प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी के कार्यों का मूल्यांकन करता है।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है, 11 सप्ताह के क्षेत्रीय प्रशिक्षण के पश्चात् प्रशिक्षु अधिकारी एक सप्ताह के लिए समीक्षा हेतु हरिश्चन्द्र माथुर राजकीय लोक प्रशासन संस्थान में आते हैं तथा प्रास्त प्रशिक्षण के सम्बन्ध में पारस्परिक रूप से विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् वे पुनः जिलाधीश कार्यालय लौट जाते हैं।

द्वितीय चरण (तीन सप्ताह)

क्षेत्रीय प्रशिक्षण प्रा‍ त करने के पश्चात् प्रशिक्षु अधिकारी पुनः रीपा में आते हैं जहाँ एक सप्ताह तक सभी अधिकारियों में उनके अनुभव के आधार पर विचारों का आदान-प्रदान होता है तथा संकाय सदस्यों की उपस्थिति में वे अपने अनुभवों की व्याख्या करते हैं। इस दौरान यह स्पष्ट होता है कि अकादमिक अध्ययन एवं कक्षा में प्राप्त ज्ञान का अपना महत्त्व है किन्तु यह ज्ञान अधूरा ही रहता है, जब तक कि इसे व्यावहारिक प्रशासनिक चुनौतियों में प्राप्त अनुभवों से न जोड़ा जाए।

एक सप्ताह तक इस विचार-विमर्श के पश्चात् इन प्रशिक्षु अधिकारियों को पाठ्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् परीक्षा के तीन प्रश्न-पत्र देने पड़ते हैं जो कि 100-100 अंकों के होते हैं। यह तीनों प्रश्न-पत्र उपरोक्त लिखित प्रथम तीन मॉड्यूलों से सम्बन्धित होते हैं। इन प्रश्न-पत्रों में 45 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाला ही उसमें सफल माना जाता है।

उल्लेखनीय है कि 1999 से राजस्थान प्रशासनिक सेवा का संस्थागत एवं क्षेत्रीय प्रशिक्षण

37 सप्ताह का हो गया है। इससे पूर्व यह प्रशिक्षण 41 सप्ताह का था। अतः प्रवेशोपरान्त प्रशिक्षण का कुल काल अब एक वर्ष है। (आधारभूत पाठ्यक्रम 15 सप्ताह तथा संस्थागत एवं क्षेत्रीय प्रशिक्षण 37 सप्ताह)।

इस सम्पूर्ण प्रशिक्षण को समाप्त करने के पश्चात् राजस्थान सरकार के कार्मिक विभाग द्वारा उनका पदस्थापन कर दिया जाता है। एक वर्ष तक और ये अधिकारी परिवीक्षाधीन रहते हैं। संतोषजनक कार्य करने के उपरान्त इन्हें राजस्थान प्रशासनिक सेवा में स्थायी कर दिया जाता है।

राजस्थान प्रशासनिक सेवा अधिकारियों का सेवाकालीन प्रशिक्षण

राजस्थान प्रशासनिक सेवा अधिकारी अपने लम्बे सेवा काल के दौरान प्रशासन के सभी पहलुओं पर समय-समय पर राष्ट्रीय, राज्य स्तरीय एवं कभी-कभी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भी प्रशिक्षण प्राप्त करते रहते हैं। हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान, जयपुर; भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली; लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी; विभिन्न राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संस्थान एवं विशिष्ट क्षेत्रों की प्रशिक्षण संस्थाओं मे आयोजित किये जाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों में राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों का नामांकन राज्य सरकार करती रहती है। जिन विषयों से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों में राजस्थान प्रशासनिक सेवा के अधिकारी भाग लेते हैं उनमें से कुछ हैं– प्रशासनिक नवाचार, समय प्रबन्धन, सम्प्रेषण, प्रशासनिक नैतिकता, प्रशासनिक सुधार, जन-सम्पर्क, समाज कल्याण, सांख्यिकी व्यवस्था, सूचना-तंत्र, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय प्रबन्धन, कम्प्यूटर उपयोग, संवेदनशील प्रशासन, आर्थिक सुधार, अभिलेखन प्रबन्धन, राजस्व प्रशासन, कृषि विकास, शिक्षा प्रशासन, महिला विकास, बाल कल्याण, मानवीय सम्बन्ध, व्यय प्रशासन, प्रशासनिक कानून, परियोजना प्रशासन, सहभागिता, पर्यटन, नगरीय विकास, ग्रामीण विकास, पंचायती राज, श्रम कल्याण, उपभोक्ता संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण, भू-जल संग्रहण आदि।

राजस्थान पुलिस सेवा

राजस्थान पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अधिकारियों का संस्थागत प्रशिक्षण

हरिश्चन्द्र माथुर राजकीय लोक प्रशासन संस्थान में 15 सप्ताह का आधारभूत प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् राजस्थान पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अधिकारी संस्थागत प्रशिक्षण हेतु जयपुर स्थित राजस्थान पुलिस अकादमी में प्रवेश करते हैं। यह संस्थागत प्रशिक्षण एक वर्ष तथा डेढ़ सप्ताह (साढ़े तिरेपन सप्ताह) का होता है। इस प्रशिक्षण के दो अंग हैं– एक अन्तरंग (इनडोर) तथा दूसरा बहिर्द्वारी (आउटडोर)।

अन्तरंग प्रशिक्षण– इस प्रशिक्षण में 10 विषयों का विस्तृत अध्ययन होता है। ये विषय इस प्रकार हैं:

1. भारतीय दण्ड संहिता
2. अपराध प्रक्रिया संहिता
3. भारतीय साक्ष्य अधिनियम
4. भारतीय संविधान, केन्द्रीय तथा राजस्थान के अधिनियम एवं नियम।

केन्द्रीय अधिनियमों में मुख्यतः शस्त्र अधिनियम, दहेज निरोध अधिनियम, भारतीय विस्फोटक अधिनियम, आवश्यक वस्तु अधिनियम, विदेशी अधिनियम, राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, पासपोर्ट अधिनियम, पुलिस अधिनियम (1861, 1888, 1922 1949), भ्रष्टाचार निरोध अधिनियम, भारतीय पोस्ट ऑफिस अधिनियम, कस्टम अधिनियम, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, मोटर वाहन अधिनियम आदि शामिल हैं। कुल 43 केन्द्रीय अधिनियमों का अध्ययन इस खण्ड में कराया जाता है।

राजस्थान के जिन 31 अधिनियमों का अध्ययन इस पत्र में किया जाता है, उनमें से कुछ हैं– राजस्थान सशस्त्र कांस्टेब्युलरी अधिनियम, राजस्थान गुण्डा नियंत्रण अधिनियम, राजस्थान भोजन-मिलावट निरोध अधिनियम, राजस्थान कैदी अधिनियम, राजस्थान पंचायत अधिनियम, राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, काश्तकारी अधिनियम, राजस्थान वन अधिनियम आदि।

5. **न्यायिक विज्ञान एवं मैडिकल विधिशास्त्र**– न्यायिक विज्ञान का इतिहास, पुलिस कार्य में इसका उपयोग, जाँच, प्रमाण एवं विधियाँ आदि तथा औषधिशास्त्र के कानूनी पहलुओं का अध्ययन इस विषय में विस्तार से किया जाता है।

6. **राजस्थान पुलिस सेवा नियम एवं लेखा नियम**– राजस्थान पुलिस सेवा नियम तथा राजस्थान पुलिस अधीनस्थ सेवा, आचरण नियम, वित्त एवं लेखा नियम तथा अन्य सम्बन्धित नियमों का इस खण्ड में अध्ययन किया जाता है। पुलिस कम्प्यूटर का ज्ञान भी इसी खण्ड में सम्मिलित है।

7. **पुलिस प्रशासन एवं प्रबन्ध**– इस खण्ड में आधुनिक भारत में पुलिस की भूमिका, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुलिस प्रशासन, पुलिस प्रबन्धन के मुख्य आयाम, मानवीय व्यवहार तथा व्यक्तिगत विकास, प्रबन्ध-तकनीकें आदि का अध्ययन किया जाता है।

8. **सुरक्षा एवं सार्वजनिक व्यवस्था**– भीड़ नियंत्रण, आतंककारी गतिविधियों पर नियंत्रण, निर्वाचन के दौरान शांति स्थापना, यातायात (ट्रैफिक) नियंत्रण, आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था तथा अभियोजन के विषय इस खण्ड में सम्मिलित किए जाते हैं।

9. **अपराध शास्त्र**– अपराध के कारण, अपराधी का व्यवहार, सामूहिक अपराध, दण्ड-व्यवस्था, जेल प्रशासन आदि विषय इस खण्ड में पढ़ाये जाते हैं।

10. **व्यावहारिक पुलिस कार्य, जाँच, अपराध का निरोध एवं अभियोजन**– जाँच के नियम, प्रक्रिया, आसूचना, गवाहों का परीक्षण, रिमांड, समन्वय, गंभीर अपराध, अपराध-नियंत्रण, अपराध-रिकार्ड आदि विषयों के बारे में जानकारी इस खण्ड में दी जाती है।

उपरोक्त 10 विषयों में से संख्या 1, 2, 4, 5, 6, 7 एवं 10 के 100-100 अंक के परीक्षा प्रश्न-पत्र होते हैं, जबकि शेष तीन (3, 8, 9) के 50-50 अंक के पत्र होते हैं।

इनके अतिरिक्त तीन अन्य विषय होते हैं जिनमें 50-50 अंक की परीक्षा होती है। ये विषय हैं:

1. नक्शों का अध्ययन, ड्राइंग तथा पुलिस वायरलैस।
2. व्यावहारिक पुलिस कार्य जैसे उंगलियों के निशान, पैरों के निशान तथा प्रयोगशाल तक प्रमाण भेजना।
3. अकादमिक पत्र अथवा लघु शोध-ग्रन्थ का लिखना।

बहिर्द्वारी (आउट डोर) प्रशिक्षण– इस प्रशिक्षण में निम्नलिखित विषय होते हैं:

1. शारीरिक प्रशिक्षण एवं निरस्त्र द्वन्द्व	(100 अंक)
2. ड्रिल-शस्त्रों के साथ तथा बिना शस्त्रों के	(100 अंक)
3. शस्त्र प्रशिक्षण तथा छोटे शस्त्रों के सिद्धान्त	(100 अंक)
4. पुलिस विषय	(50 अंक)
5. फील्ड क्राफ्ट तथा एक्सटेंडेड ऑर्डर ड्रिल	(50 अंक)
6. घुड़सवारी	(50 अंक)
7. बंदूक चलाना	(200 अंक)
8. चांदमारी	(200 अंक)

अन्य विषय जिनमें प्रशिक्षु अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है, वे हैं वाहन चलाना तथा वाहन-यांत्रिकी, तैरना, अग्नि-शमन, प्राथमिक उपचार तथा एम्बुलेंस परिचालन, दस्यु-निरोधी तथा आतंककारी-विरोधी कार्यवाही, निदर्शन तथा क्षेत्रीय अभ्यास।

प्रशिक्षण के दौरान एक मध्य-सत्रीय परीक्षा होती है जिसमें प्रत्येक विषय के 25 प्रतिशत अंक आवंटित होते हैं। समस्त प्रशिक्षण समाप्त होने के पश्चात् प्रशिक्षु अधिकारियों की अंतरंग तथा बहिर्द्वारी विषयों में अंतिम परीक्षा होती है जिनमें शेष 75 प्रतिशत अंक आवंटित होते हैं। यह अंतिम परीक्षा एक मंडल द्वारा ली जाती है जिसका अध्यक्ष– एक पुलिस महानिरीक्षक, सदस्य– दो (उप-महानिरीक्षक तथा सदस्य सचिव) राजस्थान पुलिस अकादमी के उपनिदेशक होते हैं। यह परीक्षा 10 'इंडोर' विषयों (पुलिस व्यावहारिक कार्य को छोड़कर) तथा 8 बहिर्द्वारी विषयों पर आयोजित की जाती है।

प्रत्येक विषय में कम से कम 45 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले तथा कुल 50 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले प्रशिक्षु को ही परीक्षा में सफल माना जाता है। उल्लेखनीय है कि समस्त स्थानीय परीक्षाओं को भी यदि शामिल कर लिया जाए तो एक प्रशिक्षु अधिकारी को सफल होने हेतु कुल प्राप्त अंकों का 55 प्रतिशत प्राप्त करना आवश्यक है। सामान्यतः सभी प्रशिक्षणार्थी अपने परिश्रम एवं ज्ञान के आधार पर इतने अंक तो प्राप्त कर ही लेते हैं।

अकादमी में प्रशिक्षण समाप्त होने के पश्चात् प्रशिक्षु अधिकारियों की एक "पासिंग आउट परेड" होती है तथा फिर डेढ़ सप्ताह के लिए उन्हें "राजस्थान दर्शन" एवं अध्ययन-भ्रमण हेतु भेज दिया जाता है।

ज़िला-स्तरीय प्रशिक्षण

राजस्थान पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अधिकारियों के प्रवेशोत्तर प्रशिक्षण का तीसरा चरण जिला-स्तरीय प्रशिक्षण के रूप में होता है। इसका विवरण इस प्रकार है:

1. रिजर्व पुलिस लाइन से सम्बद्धता	3 सप्ताह
2. ग्रामीण पुलिस स्टेशन से सम्बद्धता	8 सप्ताह
3. नगरीय पुलिस स्टेशन से सम्बद्धता	8 सप्ताह
4. कलेक्टर कार्यालय से सम्बद्धता	12 सप्ताह

5. पुलिस अधीक्षक कार्यालय, ट्रैफिक शाखा, कार्य प्रणाली शाखा व जिला विशेष शाखा से सम्बद्धता	3 सप्ताह
6. राजस्थान शस्त्र रक्षादि से सम्बद्धता	3 1/2 सप्ताह
7. पुलिस मुख्यालय, अपराध शाखा (अपराध शाखा) तथा आसूचना शाखा से सम्बद्धता	2 सप्ताह
कुल	39 1/2 सप्ताह

इस 39 1/2 सप्ताह के प्रशिक्षण के पश्चात् प्रशिक्षु अधिकारी पुनः राजस्थान पुलिस अकादमी आते हैं जहाँ उनकी दो परीक्षाएँ होती हैं:

1. क्षेत्रीय (जिला) प्रशिक्षण के दौरान उनके रखे अभिलेखों का विश्लेषण, मूल्यांकन एवं परीक्षण (200 अंक)।
2. सहभागितापूर्ण साक्षात्कार जिसमें उनके सम्पूर्ण परीक्षण काल के दौरान अर्जित ज्ञान पर प्रश्न किये जाते हैं।

दोनों परीक्षाएँ 200-200 अंकों की होती हैं (कुल 400 अंक)। सामान्यतः सभी प्रशिक्षु अधिकारी इस अंतिम परीक्षा में सफल हो जाते हैं। इसी परीक्षा के आधार पर उनका परिवीक्षा काल समाप्त होता है तथा वे राजस्थान पुलिस सेवा में स्थायी रूप से नियुक्त होने योग्य बनते हैं। उनके स्थायीकरण के आदेश राजस्थान सरकार द्वारा जारी होते हैं। इसके साथ ही उनकी पद-स्थापना भी हो जाती है।

सेवाकालीन प्रशिक्षण

राजस्थान पुलिस सेवा के अधिकारियों को अपने लम्बे काल में अपने ज्ञान एवं दक्षता की अभिवृद्धि हेतु तथा मानव व्यवहार को अधिक भली प्रकार समझने हेतु कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग लेने के यदा-कदा अवसर मिलते ही रहते हैं। यह प्रशिक्षण राजस्थान पुलिस अकादमी; हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान; भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली; राष्ट्रीय पुलिस अकादमी (हैदराबाद); केन्द्रीय गुप्तचर प्रशिक्षण संस्थान तथा पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो द्वारा आयोजित कई कार्यक्रमों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। अपराध-जाँच, मानव अधिकार, महिलाओं के साथ व्यवहार, पुलिस-जनता सम्बन्ध, आतंकवाद, ट्रैफिक नियंत्रण, विधिशास्त्र, सामान्य प्रबन्ध, वित्तीय प्रबन्ध, मानव विकास आदि विषय पर राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय प्रशिक्षण कार्यक्रम, संगोष्ठियाँ, कार्यशालाएँ समय-समय पर आयोजित होती रहती हैं जिनमें राजस्थान पुलिस सेवा के अधिकारी यदा-कदा भाग लेते रहते हैं। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य इन अधिकारियों की जागरुकता एवं कुशलता को बढ़ाना है। कई बार अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी राजस्थान पुलिस सेवा के अधिकारियों को भाग लेने का अवसर मिलता है।

समीक्षा

यद्यपि राजस्थान पुलिस सेवा के प्रशिक्षु अधिकारियों को दो वर्ष का गहन प्रशिक्षण उनकी सेवा प्रवेश करने के तुरन्त उपरान्त दिया जाता है, लेकिन इस प्रशिक्षण में प्रशिक्षु अधिकारियों पर पड़ वाला भार असामान्य रूप से अधिक है। संस्थागत प्रशिक्षण में सैंकड़ों कानूनों, नियमों एवं पुलि

प्रशासन की बारीक तकनीकों का अध्ययन (कक्षा में व उसके बाहर) से कराया ही जाता है, काफी बड़ी मात्रा में अधिनियम तथा नियम प्रशिक्षणार्थियों के स्वाध्याय के लिए भी अंकित होते हैं। प्रातः चार बजे उठकर कठिन श्रम, व्यायाम तथा शस्त्र-चालन से लेकर रात्रि तक इन अधिकारियों को व्यस्त रखा जाता है। इससे शारीरिक व मानसिक थकान से दबे इन अधिकारियों की क्षमता का ह्रास हो जाता है तथा वे प्रतिबद्धता व उत्साह से नवीन ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाते और ऊपर से परीक्षाओं की कतार। यह आश्चर्य ही है कि एक वर्ष के दौरान राजस्थान पुलिस अकादमी में इन प्रशिक्षणार्थियों को 27 परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि अकादमिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण का उपयुक्त समायोजन इस प्रकार से किया जाए कि प्रशिक्षणार्थियों की ग्राह्य-क्षमता के अनुसार उन्हें ज्ञान प्रदान किया जाये। सहभागितापूर्ण प्रशिक्षण पद्धतियों का अधिकतर उपयोग कर प्रशिक्षण को अधिक रचनात्मक बनाये जाने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

सेवाकालीन प्रशिक्षण को अधिक व्यवस्थित किया जा सकता है। इस हेतु आवश्यक है कि राजस्थान पुलिस सेवा के समस्त अधिकारियों का प्रशिक्षण हेतु एक रोस्टर बने जिसके अनुसार क्रमबद्ध रूप से सभी अधिकारियों को विभिन्न विषयों में, उनकी योग्यता, अनुभव एवं रुचि के आधार पर उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भेजा जा सके। ऐसा देखा गया है कि कतिपय दक्ष अधिकारियों को उनके उच्च अधिकारी प्रशिक्षण में इसलिए नहीं भेजते क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में उनके कार्य में विघ्न पड़ेगा। इस प्रकार का दृष्टिकोण एक पुलिस अधिकारी के विकास में बाधक बनता है। प्रशिक्षण की आवश्यकता सभी को होती है तथा इस कारण यह प्रयत्न किया जाना चाहिए कि हर पाँच वर्षों में कम से कम एक बार प्रत्येक राज्य पुलिस सेवा अधिकारी किसी विशिष्ट विषय अथवा प्रबन्धकीय एवं मानवीय व्यवहार से सम्बद्ध विषय क्षेत्र में लघुकालीन प्रशिक्षण अवश्य प्राप्त करे। विशिष्ट क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त करने से इन पुलिस अधिकारियों में कतिपय तकनीकी पक्ष में विशिष्टता हासिल हो सकती है जो उनके जीवन, पदोन्नति, राज्य के पुलिस प्रशासन की दक्षता में लाभदायक सिद्ध हो सकती है। यह नहीं भूलना चाहिए कि राज्य पुलिस सेवा अधिकारियों में से काफी अधिकारी भारतीय पुलिस सेवा में पदोन्नति के माध्यम से प्रवेश करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन राज्य स्तरीय अधिकारियों को प्रशिक्षण इस प्रकार से दिया जाए कि जिससे फिर जब कभी उन्हें उच्चतर उत्तरदायित्व हेतु चयन किया जाए तो वे उन्हें वहन करने में खरे उतरें। इस कारण उन्हें प्रशासन, प्रबन्धकीय, तकनीकी एवं मानव व्यवहार से सम्बन्धित प्रशिक्षण राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं में भी प्राप्त करने हेतु राज्य सरकार द्वारा नामांकित किया जाना चाहिए।

एक महत्त्वपूर्ण पहलू प्रशिक्षण के उपरान्त उसके व्यावहारिक कार्य में उपयोगिता से सम्बन्धित है। ऐसा कई बार देखा गया है कि जिन विशिष्ट क्षेत्रों में किसी अधिकारी ने प्रशिक्षण प्राप्त किया है, उस क्षेत्र में उसे कार्य करने का अवसर नहीं मिलता। यह आवश्यक है कि पुलिस जैसे तकनीकी विभाग में अपने अधिकारियों की योग्यता व उनके अनुभवों का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

राजस्थान लेखा सेवा का संस्थागत प्रशिक्षण

राजस्थान लेखा सेवा के प्रशिक्षणाधीन अधिकारियों के लिए 37 सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण होता है जिसका विवरण इस प्रकार है:

1. रीपा में संस्थागत प्रशिक्षण	8 सप्ताह
2. व्यावहारिक प्रशिक्षण, सम्बद्धता एवं मध्याविधि समीक्षा	25 सप्ताह
3. पुनरावलोकन एवं समीक्षा	3 सप्ताह
4. परीक्षा	1 सप्ताह
कुल	37 सप्ताह

1. रीपा में संस्थागत प्रशिक्षण– व्यवसायिक प्रशिक्षण के इस दौर में रीपा में कक्षाओं के माध्यम से प्रशिक्षणार्थीयों को 6 विषयों में विस्तृत अध्ययन करना पड़ता है।

प्रश्न-पत्र एक : सेवा नियम– इस पत्र में सेवा की सामान्य शर्तें, राज्य बीमा, वेतन-भत्ते, नियुक्ति, सेवा अवधि, अवकाश, पेंशन, यात्रा भत्ता नियम, वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील तथा आचरण नियम का अध्ययन किया जाता है।

प्रश्न-पत्र दो : वित्तीय एवं लेखा नियम– इस पत्र में वित्तीय प्रशासन के सामान्य नियम, वित्त अधिकारियों की भूमिका, राजस्व प्राप्तियाँ, आकस्मिक व्यय, स्टोर लेखन, वेतन बिलों का निरीक्षण, बजट निर्माण प्रक्रिया, निष्पादित बजट, शून्य आधारित बजट, शासकीय लेखा नियम, 1990 राजस्थान पंचायत तथा जिला परिषद् लेखा तथा बजट नियम तथा राजस्थान स्थानीय निधि अंकेक्षण अधिनियम एवं नियम का अध्ययन किया जाता है।

प्रश्न-पत्र तीन : कोषालय नियमावली– कोषालय से सम्बद्ध नियमों (1992), कोषालय प्रबन्धन, कोषालय अधिकारी के दायित्व, निरीक्षण, स्थानीय कोष, पेंशन भुगतान आदि से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन किया जाता है।

प्रश्न-पत्र चार : व्यापारिक एवं विशिष्ट विभागीय लेखे– इस पत्र में लेखों के सिद्धान्त, पूँजीगत एवं राजस्व लेखे, कटौती, लाभ तथा हानि लेखा, संतुलन पत्र, आय एवं भुगतान लेखे, कम्पनी लेखे आदि का विवेचन किया जाता है।

प्रश्न-पत्र पाँच : सार्वजनिक कार्य– इस पत्र में सार्वजनिक कार्यों से सम्बद्ध लेखे, विशेषतया स्टोर लेखा नियम, संविदा शर्तें तथा वन खाते से सम्बन्धित अग्रिम भुगतान, निर्माण कार्य, स्टोर लेखे आदि पहलुओं पर संकेन्द्रण किया जाता है।

प्रश्न-पत्र छः : वित्तीय प्रबन्धन– इस पत्र में वित्तीय प्रबन्धन के सिद्धान्त, प्रबन्धीय लेखन, बजट नियंत्रण, आंतरिक अंकेक्षण एवं नियंत्रण, संस्थागत कर तथा सार्वजनिक वित्त, केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्ध, राष्ट्रीय आय व बैंकिंग संस्थान तथा संस्थागत वित्त आदि से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है।

2. व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं सम्बद्धता– इस चरण में प्रशिक्षणार्थियों को अतिरिक्त कोषालय अधिकारी तथा अतिरिक्त लेखाधिकारी के रूप में विभिन्न कोषालय अथवा कोषालयों में छः सप्ताह तक नियुक्त किया जाता है। इस दौरान वे कोषालयों से सम्बन्धित सभी कार्यों क बारीकी से अध्ययन करने के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्राप्त करते हैं।

निर्माण लेखे से सम्बन्धित कार्य भी 7 सप्ताह तक सम्पन्न किया जाता है। इस दौरान वे सार्वजनिक नियम, विभागीय जन-स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग (जलदाय) तथा सिंचाई विभाग के लेखों पर अधिकारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं।

व्यावहारिक प्रशिक्षण के प्रथम चरण के पश्चात् राजस्थान लेखा सेवा के प्रशिक्षु अधिकारी एक सप्ताह के लिए रीपा आते हैं वहाँ वे पारस्परिक अनुभवों का आदान-प्रदान करते हैं।

11 सप्ताह तक प्रशिक्षणार्थी अन्य विभागों के साथ सम्बद्ध रहते हैं, तथा उनसे सम्बन्धित वित्तीय एवं प्रशासनिक कार्य प्रत्यक्ष रूप से करते हैं। सामान्यतः ये प्रशिक्षणार्थी मुख्य लेखाधिकारी तथा वरिष्ठ लेखाधिकारी के सानिध्य में कार्य करते हैं। इस दौरान प्रशिक्षणार्थी राजस्व अर्जित करने वाले विभाग जैसे वाणिज्य कर, खान, एवं भू-गर्भ, एवं आबकारी विभागों में भी कार्य करते हैं तथा शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा तथा पुलिस जैसे व्यय करने वाले विभागों में भी अनुभव प्राप्त करते हैं।

स्थानीय कोष अंकेक्षण में ये अधिकारी उस विभाग के निदेशक अथवा अन्य उच्च अधिकारियों के अधीन कार्य करते हैं।

यह अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी अपने द्वारा किये गये कार्यों का निरन्तर दैनन्दिनी में विवरण लिखेगा तथा जिन विभागीय अधिकारियों के अधीन यह प्रशिक्षणार्थी प्रतिदिन कार्य करता है, उन विभागों के बारे में आवश्यक सूचना भेजता रहेगा। प्रशिक्षण के दौरान कोषालय अधिकारियों तथा लेखाधिकारियों का यह उत्तरदायित्व है कि प्रशिक्षण गहराई से दें तथा प्रत्येक विभाग प्रशिक्षणार्थी में व्यक्तिगत रुचि ले।

11 सप्ताह तक अनय विभागों में कार्य करने के पश्चात् ये प्रशिक्षणार्थी रीपा में पुनः आते हैं जहाँ उनके द्वारा अर्जित अनुभव की समीक्षा की जाती है।

यह समीक्षा तीन सप्ताह की होती है, जिसकी समाप्ति पर निम्नलिखित छः पत्रों में परीक्षा आयोजित होती है:

1. **प्रश्न-पत्र 1** – साधारण नियम
2. **प्रश्न-पत्र 2** – वित्तीय लेखा नियम
3. **प्रश्न-पत्र 3** – कोषालय नियमावली
4. **प्रश्न-पत्र 4** – व्यापारिक तथा विशेष विभागीय लेखे
5. **प्रश्न-पत्र 5** – सार्वजनिक निर्माण लेखे
6. **प्रश्न-पत्र 6** – वित्तीय प्रबन्ध

सभी प्रश्न-पत्र 100-100 अंकों के होते हैं जिनमें कम से कम 45 प्रतिशत अंक प्राप्त करना सफलता के लिए अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त रीपा के निदेशक के द्वारा भी मूल्यांकन होता है जिनके अंक भी अंतिम परिणाम में जोड़ दिये जाते हैं।

राजस्थान लेखा सेवा के परिवीक्षाधीन अधिकारियों को उनके प्रशिक्षण के दौरान उन सभी तकनीकी एवं प्रशासनिक उत्तरदायित्वों से सम्बद्ध जानकारी दी जाती है तथा व्यावहारिक कार्य कराये जाते हैं जो कि उन्हें आगे जाकर अपने लम्बे सेवाकाल में निभाने होंगे।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान लेखा सेवा के अधिकारियों का भारतीय प्रशासनिक सेवा में भी चयन किया जा सकता है। यद्यपि ऐसे पदोन्नत अधिकारियों की संख्या काफी सीमित होती है। अतः सामान्य प्रशासनिक दक्षता जो कि वे अपने सेवा काल के दौरान अर्जित करते हैं, इस प्रकार के उच्चतर उत्तरदायित्वों के निस्तारण में सहयोग देती है।

सेवाकालीन प्रशिक्षण

राजस्थान लेखा सेवा के अधिकारी अपने लम्बे सेवा काल में राष्ट्रीय तथा राज्य स्तरीय प्रशिक्षण संस्थाओं में कई प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सहभागी के रूप में भाग लेते हैं। यह कार्यक्रम निवेश नियोजन, परियोजना प्रशासन, निष्पत्ति एवं शून्य आधारित बजट, प्रबन्धकीय लेखन, वित्तीय प्रशासन, आय कर, सामान्य वित्तीय एवं लेखा नियम, निविदा प्रक्रिया, कार्य-अंकेक्षण जैसे वित्तीय प्रबन्ध के विषयों के अतिरिक्त मानवीय व्यवहार, सांगठनिक क्षमता, नेतृत्व, अभिप्रेरणा, वैकासिक कार्यक्रम आदि विषयों से भी सम्बन्धित होते हैं। इन दिनों में कम्प्यूटर उपयोग के बारे में बहुत बड़ी मात्रा में कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं जिनमें कम्प्यूटर के माध्यम से बजट निरूपण, प्रबोधन, नियोजन, लेखांकन आदि की विधियों से सम्बन्धित दक्षता प्रदान की जाती है। इन कार्यक्रमों में राजस्थान लेखा सेवा के अधिकारी तथा अन्य सेवा के अधिकारी भी भाग लेते हैं।

निष्कर्ष

राजस्थान भारत के उन राज्यों में से एक है जहाँ लोक-सेवाओं के प्रशिक्षण के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई है। आज देश की समस्त राज्य-स्तरीय प्रशिक्षण संस्थाओं में हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान एक अग्रणी संस्थान है तथा राजस्थान पुलिस अकादमी भी अब प्रगतिशील विकास के चरण से गुजर रहा है। तथापि, प्रशिक्षण के क्षेत्र में और अधिक आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। यहाँ कुछ ऐसे पहलुओं के बारे में चर्चा की जा रही है जिन पर निरन्तर विचार किये जाने की वांछनीयता है।

आधारभूत पाठ्यक्रम

राजस्थान प्रशासनिक सेवा, राजस्थान पुलिस सेवा, राजस्थान लेखा सेवा के नव-नियुक्त परिवीक्षाधीन प्रशिक्षु अधिकारियों के लिए एक सामान्य आधारभूत प्रशिक्षण कार्यक्रम होता है जो 11 सप्ताह का है। इस कार्यक्रम में कुछ ऐसे विषय, जिनकी जानकारी सामान्यतः प्रशिक्षुओं को राज्य-स्तरीय प्रतियोगी परीक्षाओं के अध्ययन के दौरान हो जाती है, पर कम बल दिया जा कर उन विषयों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है जिनका महत्त्व हाल में अधिक उभर रहा है जैसे कम्प्यूटर-उपयोग, परियोजना-प्रशासन, संसाधन विकास, प्रबन्धकीय सूचना तंत्र, पूर्ण गुणात्मक प्रबन्धन प्रबोधन, अनिश्चय की स्थिति में निर्णय प्रक्रिया, नीति विश्लेषण आदि। वर्तमान उदारीकरण के पर्यावरण में व्यापारिक दृष्टिकोण से निर्णय लेने की दक्षता भी उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए इनके अतिरिक्त उन विषयों पर अधिक संकेन्द्रण की आवश्यकता है जो राजस्थान की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति से अधिक सम्बन्धित हैं जैसे पेय-जल समस्या, पर्यावरण संरक्षण, सिंचाई उपनिवेशन, मरुस्थलीय विकास, जनजातीय क्षेत्र विकास, पहाड़ी क्षेत्र विकास, सीमा-सुरक्षा प्राथमिक शिक्षा, साक्षरता, प्राथमिक चिकित्सा आदि। जनता, अधीनस्थों, राजनीतिक नेताओं

प्रैस आदि के साथ व्यवहार-कुशलता एवं प्रशासनिक नैतिकता, सूचना का अधिकार, पारदर्शिता, जन-सहभागिता एवं संवेदनशीलता पर अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

संस्थागत पाठ्यक्रम

तीनों प्रमुख राज्य सेवाओं के संस्थागत पाठ्यक्रम में विधानों व नियमों के बारे में जानकारी पर बल है। किन्तु अल्प समय में इन कानूनों व नियमों के बारे में केवल सतही जानकारी ही प्राप्त की जा सकती है। ऐसा देखा गया है कि जिन अधिनियमों की जानकारी स्वाध्याय के माध्यम से प्राप्त करने की अपेक्षा प्रशिक्षुओं से की जाती है, समयाभाव के कारण उन पर अपर्याप्त ध्यान ही दिया जाता है। ''केस'' प्रणाली एवं विस्तृत विमर्श के अभाव में इन कानूनों व नियमों की जानकारी अधूरी-सी रह जाती है। संस्थागत प्रशिक्षण हेतु लगभग दो मास का समय आवश्यकता से कम है। इसे बढ़ाने की सम्भावना वर्तमान में कम है क्योंकि राज्य सरकार को विभिन्न पदों को भरने हेतु अधिकारियों की आवश्यकता बनी रहती है। अतः उचित यह रहेगा कि सभी महत्त्वपूर्ण अधिनियमों एवं नियमों पर लघु पुस्तिकाएँ प्रकाशित कर प्रशिक्षु अधिकारियों को वितरित कर दी जाएं तथा कक्षाओं में इनके प्रावधानों के व्यावहारिक पहलुओं पर संकेन्द्रण किया जाए।

राजस्थान पुलिस सेवा प्रशिक्षुओं के संस्थागत प्रशिक्षण के दौरान जो बहिर्द्वारी (आउट-डोर) प्रशिक्षण दिया जाता है, वह शारीरिक दृष्टि से थकाने वाला होता है। प्रातः चार बजे से व्यस्त रहने, शारीरिक श्रम एवं व्यायाम करने एवं निरन्तर कक्षाओं में अध्ययन करने के साथ-साथ 27 परीक्षाएँ एक वर्ष में देने का भार असहनीय हो जाता है। इसका प्रभाव एक प्रशिक्षु की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता पर पड़ता है। अतः इस सम्बन्ध में एक अधिक संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिससे प्रशिक्षुओं का कार्यभार विवेकपूर्ण हो सके।

क्षेत्रीय प्रशिक्षण

क्षेत्रीय प्रशिक्षण कई बार औपचारिक बनकर रह जाता है। कई प्रशिक्षु व्यावहारिक प्रशिक्षण गंभीरता से नहीं लेते व कुछ ऐसे भी जिला-स्तरीय अधिकारी होते हैं जो गहराई से प्रशिक्षण समयाभाव के कारण प्रदान नहीं कर पाते हैं। उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रता से पूर्व प्रशासकों को दिये जाने वाला क्षेत्रीय प्रशिक्षण गहन होता था तथा प्रशिक्षक अपने प्रशिक्षुओं के ज्ञान-संवर्द्धन एवं दृष्टिकोण-निर्माण पर इतना ध्यान देते थे कि एक प्रशिक्षु इस प्रशिक्षण से तप कर तथा मंज कर निकलता था। किन्तु आज स्थिति पूर्णतया भिन्न है। क्षेत्रीय प्रशिक्षण लोक सेवा के निर्माण की आधारशिला है तथा इस पर समुचित ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

प्रत्येक प्रशिक्षु क्षेत्रीय प्रशिक्षण के दौरान नियमित रूप से दैनिकी (डायरी) लिखे, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षु अधिकारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह साप्ताहिक प्रतिवेदन अपने पाठ्यक्रम निदेशक को नियमित रूप से भेजे। इन प्रतिवेदनों पर पाठ्यक्रम निदेशक द्वारा की गई टिप्पणियाँ प्रशिक्षुओं को सम्प्रेषित की जाती हैं। पाठ्यक्रम निदेशक का भी दायित्व है कि वह क्षेत्रों में जाकर स्वयं यह देखे कि प्रशिक्षण किस प्रकार प्राप्त किया जा रहा है।

सेवाकालीन प्रशिक्षण

यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें सुधार की असीम सम्भावनाएँ हैं। निम्नलिखित उपायों से इस ओर लक्ष्योन्मुख प्रगति हो सकती है:

(i) राज्य में एक सुविकसित एवं समग्र प्रशिक्षण नीति का निरूपण हो।

(ii) विभिन्न सरकारी व अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत कार्मिकों की प्रशिक्षण-आवश्यकताओं की समीक्षा निरन्तर होती रहे तथा प्रशिक्षण संस्थाओं में पाठयक्रमों का आयोजन इन्हीं आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

(iii) कार्मिकों को विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों में उनकी आवश्यकता, रुझान, इच्छा एवं विशिष्टता के अनुसार ही नामांकित किया जाये।

(iv) प्रत्येक कार्मिक के लिए यह आवश्यक बना दिया जाये कि वह प्राप्त प्रशिक्षण के बारे में लिखित तथा जहाँ संभव हों, विस्तृत रूप से अपने विभाग में प्रतिवेदन प्रस्तुत करे।

(v) वर्ष के दौरान प्राप्त प्रशिक्षण तथा वांछनीय प्रशिक्षण का ब्यौरा वार्षिक मूल्यांकन प्रतिवेदन में भी हो।

(vi) प्रशिक्षण प्राप्त अधिकारी की पद-स्थापना, जहाँ तक संभव बने, उसके विशिष्ट अनुभव एवं रुझान के क्षेत्र में हो।

(vii) प्रत्येक संस्थान का एक वार्षिक प्रशिक्षण कैलेण्डर बने जिसके अनुसार कार्मिक को प्रशिक्षण कार्यक्रमों हेतु भेजा जाये।

(viii) ऐसा प्रयत्न किया जाना चाहिए कि प्रत्येक कार्मिक पाँच वर्ष में कम से कम एक बार एक उपयोगी प्रशिक्षण कार्यक्रम में अवश्य भाग ले।

(ix) प्रशासनिक सुधारों की आवश्यकता एवं नवीन तकनीकी परिवर्तनों को ध्यान में रखकर नवीन विषयों पर प्रशिक्षण निरन्तर आयोजित हों व जहाँ तक हो सके, सभी सम्बन्धित कार्मिक इन क्षेत्रों में प्रशिक्षण के माध्यम से प्रवीण बनें।

(x) प्रशिक्षण संस्थाओं में सरकारी अधिकारियों का प्रशिक्षक के रूप में चुनाव सोच-समझ कर हो। कुशले, प्रतिष्ठित एवं अभिप्रेरित बौद्धिक रुझान के लिए अच्छे वक्ता-अधिकारियों को इन पदों पर लगाना चाहिए तथा उनका कार्यकाल कम से कम तीन वर्ष का होना चाहिए।

(xi) मानवीय व्यवहार, संवेदनशीलता, परानुभूति, व्यक्तित्व विकास एवं प्रशासनिव नैतिकता से सम्बन्धित विषयों पर उपयुक्त विधियों से प्रशिक्षण प्रदान किया जाये।

उपरोकत कुछ उपाय हैं जिन्हें प्रशिक्षण व्यवस्था में उतार कर राज्य में लोक सेवा प्रशिक्ष को अधिक प्रासंगिक एवं उपयोगी बनाया जा सकता है।

□□

अध्याय 19

ज़िलाधीश

ज़िला प्रशासन का प्रमुश ज़िलाधिकारी होता है। इसे ज़िलाधिकारी अथवा उप-आयुक्त के नाम से भी जाना जाता है। जिला स्तर पर यह अधिकारी राज्य सरकार की आँख,कान तथा बाँहों की भाँति काम करता है।[1] अन्य शब्दों में, वह राज्य सरकार का ज़िला स्तर पर प्रतिनिधित्व करता है। ज़िले के सभी शासकीय अधिकारी उसके नेतृत्व में कार्य करते हैं तथा अपनी समस्याओं के सन्दर्भ में उससे दिशा-निर्देश प्राप्त करते हैं। जहाँ तक जनसाधारण का प्रश्न है, उसके लिए ज़िलाधीश ही सरकार है तथा सरकारी विभागों एवं अधिकारियों के विरुद्ध शिकायत जनता उसी से करती है। इस प्रकार ज़िलाधीश राज्य ज़िला प्रशासन तथा जनता के मध्य कड़ी का कार्य करता है।

पद का विकास

ज़िला प्रशासन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि प्रशासन की इकाई के रूप में ज़िला सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है।[2] चाणक्य ने *अर्थशास्त्र* के जनपद (प्रान्त) के शासन को चार भागों में विभक्त किया गया था– स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक एवं संग्रहण। ये क्रमशः 800, 400, 200 एवं 100 गाँवों के प्रशासन के मुख्यालय थे। ज़िले के लिए 'अहारा' शब्द का प्रयोग किया जाता था। ज़िले का प्रमुख अधिकारी 'स्थानिक' कहलाता था जिसे राजस्व तथा सामान्य जनोपयोगी कार्य देखने होते थे। गुप्तकाल तथा हर्ष के समय जिले को 'विषय' कहा जाता था तथा ज़िलाधिकारी विषयपति के नाम से जाना जाता था।

मुगलकालीन शासन में भारतीय परम्परागत व्यवस्था में अधिक उलटफेर नहीं किया गया, यद्यपि इकाइयों एवं पदों के नाम में परिवर्तन दृष्टिगत होता है। मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में जिले को 'सरकार' कहा गया तथा इसके प्रमुख अधिकारी को 'अमिल' या 'अमालगुजार' के नाम से सम्वोधित किया गया। इसका मुख्य कार्य लगान वसूल करना था। इस अधिकारी को न तो प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे न न्यायिक। न्यायिक तथा प्रशासनिक अधिकार क्रमशः काजी तथा फौजदार में निहित थे। इस ज़िला प्रशासनिक व्यवस्था में राजस्व अधिकारी का स्थान प्रमुख नहीं था। अन्य अधिकारी फौजदार के अधीन कार्य करते थे जो पूरे जिला प्रशासन का अध्यक्ष होता था।

अंग्रेजी शासन काल में ज़िला प्रशासनिक ढाँचे को निश्चित आधार तथा दिशा प्रदान करने का श्रेय वारेन हेस्टिंग्ज तथा कॉर्नवालिस को जाता है। 1765 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बंगाल व

बिहार का प्रशासन सम्भाला, उस समय पूर्ववर्ती अधिकारियों का कार्य राजस्व वसूल करना रह गया था। वारेन हेस्टिंग्ज ने इन अधिकारियों को राजस्व वसूल करने के साथ कुछ अधिशासी अधिकार भी सौंपे तथा इन्हें कुछ न्यायिक अधिकार भी दिये गये। इस प्रकार ज़िला कलक्टर का पद प्रयोगों के कई दौरों से गुजरा। 1786-87 में बंगाल सरकार द्वारा कलक्टर (ज़िलाधीश) को राजस्व अधिकारी तथा दण्डनायक के रूप में स्वीकार किया गया। कलक्टर का यह स्वरूप मुगल पद्धति से भिन्न था। 1788 में फिर कुछ परिवर्तन किये गये जिसके अनुसार ज़िलाधीश को मजिस्ट्रेट तथा सिविल जज के अधिकार सौंप दिये गये। फलस्वरूप कलक्टर की स्थिति अत्यधिक शक्तिशाली हो गई। 1831-32 में प्रशासनिक ढाँचे में एकरूपता लाने के उद्देश्य से फिर कुछ प्रयोग तथा परिवर्तन किये गये। वस्तुतः कलक्टर के पद को संयोजक कड़ी के रूप में विकसित करना उद्देश्य था। होल्ट मैकेंजी द्वारा सुझाये गये प्रस्तावों का लक्ष्य था कि कलेक्टर अपने ज़िले का प्रशासन विभिन्न विभागों की सहायता से करे। ये विभाग अपने विशिष्ट मामलों में स्वतंत्र हों, पर उन पर कलेक्टर का नियंत्रण हो, ताकि प्रशासन में एकरूपता स्थापित की जा सके।

1857 में भारत का शासन सीधे अंग्रेजी संसद के अधिकार में आ गया, लेकिन कलक्टर की स्थिति महत्त्वपूर्ण बनी रही। साइमन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार हर ज़िले का प्रमुख 'कलक्टर' या 'डिप्टी कमिश्नर' होता था जो जनता की निगाह में वास्तविक सरकार था।[3] यद्यपि जिले मे विभिन्न विभागाध्यक्ष होते थे, जैसे सार्जन्ट जनरल, चीफ कन्जरवेटर ऑफ फारेस्ट, चीफ इन्जीनियर आदि, लेकिन नियमित कार्यों को छोड़कर सभी विभागों को अपनी गतिविधियों के बारे में कलक्टर को सूचित करना आवश्यक था। जिले का अधिकारी प्रमुख भूमिकाएँ निभाता था। कलक्टर के रूप में वह राजसव संगठन का अध्यक्ष होता था तथा मजिस्ट्रेट के रूप में अधीनस्थ न्यायालयों का पर्यवेक्षण करता था।[4] ज़िले की शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के अतिरिक्त पुलिस एवं कारागार का प्रबन्ध भी इसी अधिकारी के पास था। भारी दण्ड से सम्बन्धित मुकदमे शासन न्यायालय में जाते थे, तथा अन्य मुकंदमों के बारे में अन्तिम अधिकार कलैक्टर का ही था। वह दो वर्ष तक के कारावास का दण्ड दे सकता था तथा 1,000 रुपये का जुर्माना कर सकता था।[5]

वस्तुतः ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाना तथा अपने शासन का दबदबा बनाये रखना था। उनकी शासन पद्धति तथा प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति का प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण माध्यम ज़िला कलक्टर था। अतः उसे पर्याप्त अधिकार प्रदान कर सशक्त बनाना ब्रिटिश शासन के लिए आवश्यक था। अधिकारों एवं शक्तियों के सन्दर्भ में ब्रिटिशकालीन कलक्टर किसी भी अन्य देश के समकक्ष अधिकारी से अधिक प्रभावशाली था। भारत जैसे बड़े देश को संचालित/शासित करने के लिए कलक्टर को छोटा नेपोलियन बना दिया गया जो हर कार्य कर सकता था।[6] परिणामतः कलक्टर का पद अत्यधिक कार्यभार से दब गया।

1919 के अधिनियम के माध्यम से भारत में द्वैध शासन प्रारम्भ हुआ। इस अधिनियम की धाराओं के अनुरूप कलक्टर की स्थिति में कुछ परिवर्तन आया। स्वविवेक के प्रयोग की उसकी शक्तियों पर अंकुश लगाया गया तथापि ज़िला प्रशासन के मामले में उसकी सत्ता एवं प्रभाव में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। 1935 के अधिनियम के अनुसार एक नई प्रवृत्ति उभरी। अब अंग्रेजी कलक्टरों को भारतीय मंत्रियों के अधीन कार्य करने के लिए विवश होना पड़ा। इसी कारण अंग्रेज

प्रशासनिक अधिकारियों के हितों की रक्षा और अवांछित स्थिति में आ जाने पर समय-पूर्व अवकाश प्राप्ति की व्यवस्था का प्रावधान अधिनियम में कर दिया गया था।

यद्यपि, जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, अंग्रेजी शासन में ज़िलाधीशों का मुख्य कार्य प्रशासनिक व्यवस्था को बनाये रखना, राजस्व वसूल करना तथा सर्वोपरि ब्रिटिश शासन के हितों की रक्षा करना था, फिर भी उल्लेखनीय है कि ज़िलाधीशों के व्यक्तित्व ने इस पद के स्वरूप को भिन्नता भी प्रदान की। ब्रिटिश शासन काल में ऐसे भी ज़िलाधीश हुए जिन्होंने हैजा जैसी महामारी फैलने से लाशों को अपने हाथ से जलाने में लोगों की सहायता की तथा कुछ अधिकारियों ने बीमारों के साथ भोजन करके उन्हें व्यक्तिगत सहयोग, सहायता, आश्वासन तथा मानसिक सुरक्षा की भावना दी। अस्पताल बनवाये तथा सड़कों पर पेड़ लगवाने का दायित्व भी कुछ ज़िलाधीशों ने निभाया। यद्यपि ऐसे ज़िलाधीशों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं थी, परन्तु यह सत्य इस बात का द्योतक है कि ब्रिटिश काल में कई ज़िलाधीश अंग्रेजी शासन की शोषक प्रवृत्ति के अपवाद थे।[7]

स्वतन्त्र भारत में ज़िलाधीश

स्वाधीन भारत में जनतांत्रिक परिवेश एवं राज्य की विस्तारशील वैकासिक भूमिका के विन्यास में ज़िलाधीश की भूमिका में मूलभूत परिवर्तन आया है। जन अपेक्षाओं की अप्रत्याशित अभिवृद्धि का भार ज़िलाधीश के पद पर पड़ा है। पारम्परिक कर्तव्यों के निर्वाह के साथ-साथ उस पर अब ढेरों नये उत्तरदायित्व आ पड़े हैं।

ज़िलाधीश की स्थिति

वर्तमान भारत में ज़िलाधीश जिसे ज़िलाधिकारी तथा जिला मजिस्ट्रेट भी कहा जाता है, भारतीय प्रशासनिक सेवा का सदस्य होता है। आयु एवं अनुभव के आधार पर यह अधिकारी दो वर्गों के होते हैं। एक तो सीधी भर्ती वाले भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी जो 5-6 वर्ष की सेवा पश्चात् ही ज़िलाधीश नियुक्त हो जाते हैं तथा इस पद पर अलग-अलग ज़िलों में लगभग 4-5 वर्ष तक कार्य करते हैं। यह युवा ज़िलाधीश अपने प्रशासनिक जीवन में बहुआयामीय नवीन चुनौतियों का सामना इस पद से आरम्भ करते हैं। साथ ही इस पद पर वे अधिकारी भी नियुक्त होते हैं जो राज्य प्रशासनिक सेवा से भारतीय प्रशासनिक सेवा में पदोन्नत होते हैं। ये ज़िलाधीश अपनी सेवा काल का लम्बा समय व्यतीत कर चुके होते हैं तथा ज़िलाधीश पद पर स्थापित होने के समय प्रौढ़ावस्था में होते हैं।

ब्रिटिशकालीन ज़िलाधीश तथा स्वतन्त्र भारत के ज़िलाधीश में मुख्य अंतर इस अधिकारी की भूमिका एवं दृष्टिकोण का है। ब्रिटिशकालीन ज़िलाधीश को अपने साम्राज्य के हितों की रक्षा करनी होती थी। सामान्यतया इसे स्थानीय लोगों से किसी प्रकार का भावात्मक लगाव नहीं था, न वह किसी प्रकार उनके विकास कार्यक्रमों के लिए प्रतिबद्ध था। उसका मुख्य दायित्व था यथास्थिति बनाये रखना ताकि अंग्रेजी शासन को अपना कार्य करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।

स्वतन्त्र भारत के ज़िलाधीश के सामने एक आदर्श है तथा स्थानीय जनता से उसका भावनात्मक लगाव होना स्वाभाविक है। एक अच्छा ज़िलाधीश जनता का सहायक, साथी एवं सहयोगी है। अधिकारियों की सामाजिक तथा आर्थिक पृष्ठभूमि में परिवर्तन के फलस्वरूप ज़िलाधीश

के पद के चारों ओर से लौह आवरण धीरे-धीरे हटने लगा है। विकेन्द्रीकृत ग्रामीण तथा शहरी स्थानीय संस्थाओं के विकास के कारण भी ज़िलाधीशों के अधिकारों में पर्याप्त लोचशीलता आयी है।

सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवेश के पर्यावरण में जब परिवर्तन आ रहा है तो ज़िलाधीश इस परिवर्तन की हवा से अछूता नहीं बच सकता है। फिर भी यह निर्विवाद तथ्य है कि ज़िले में ज़िलाधीश अपनी पूर्ववर्ती स्थिति को काफी सीमा तक बनाये हुए है। साथ ही नई चुनौतियाँ, नये दायित्व भी उसमें जुड़ गये हैं। ऐसे में ज़िलाधीश के पद का महत्त्व बढ़ा ही है।

भूमिका

वर्तमान में ज़िलाधीश जिन भूमिकाओं का निर्वाह करता है उनका निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन किया जा सकता है:

1. राजस्व वसूली कार्य
2. न्यायिक अधिकारी के रूप में
3. समन्वयक के रूप में
4. संकटकालीन प्रशासन की भूमिका
5. विकास अधिकारी का दायित्व
6. विविध भूमिकाएँ

राजस्व वसूली कार्य

ज़िलाधीश की प्रमुख भूमिका आज भी संग्रहकर्ता (समाहर्ता) की है, जैसी की पूर्व में हुआ करती थी। राजस्व तथा अन्य कर जमा करना उसका मुख्य दायित्व है। वस्तुतः ''कलक्टर'' शब्द का निहितार्थ ही है– जमाकर्ता। राजस्व प्रशासन का प्रधान होने के नाते भूमि राजस्व का मूल्यांकन तथा संग्रहण उसी का दायित्व है। साथ ही बकाया राशि की समय रहते वसूली भी आवश्यक है। यदि समय में ढिलाई बरती जाये तो फिर वसूली अत्यधिक कठिन हो जाती है। सरकारी ऋण कई प्रकार के होते हैं जिनकी वसूली का दायित्व ज़िलाधीश का है। कतिपय ऋण हैं– सिंचाई ऋण, कृषि ऋण, नहर ऋण, तकवी ऋण इत्यादि। सिंचाई विभाग बकाया राशि वसूली के लिए सूची तैयार करता है तथा ज़िलाधीश को भेजता है ताकि ज़िलाधीश द्वारा उस राशि की वसूली की जा सके। आयकर यद्यपि केन्द्रीय सरकार का दायित्व है तथापि पिछले बकाया (एरियर्स) की वसूली का कार्य ज़िलाधीश को सौंपा जा सकता है। बिक्री कर के एरियर्स का संग्रह करना भी उसका काम है। विभिन्न न्यायिक प्रक्रियाओं में न्यायिक दस्तावेजों पर लगने वाले रेवेन्यू स्टाम्प के रूप में शुल्क भी उसी के क्षेत्राधिकार में आता है। इस प्रकार ज़िला उत्पाद अधिकारी द्वारा पैट्रोल, शराब, नशीले पदार्थों आदि पर कर लगाये जाते हैं। यह उत्पाद अधिकारी ज़िलाधीश के अधीन ही कार्य करता है। खेती के कार्यों में सहायता के लिए तकवी ऋण दिये जाते हैं जिनकी वसूली ज़िलाधीश का क्षेत्राधिकार है। कृषि सम्बन्धी नुकसान का अनुमान लगाना तथा मदद की राशि तय करना आवश्यक है। अन्य अधिकारियों के साथ ज़िलाधीश भी इस कार्य से जुड़ा होता है। ऊपर जिन ऋणों की चर्चा की गई है वे ऋण कई बार परिस्थितिजन्य कारणों से वसूल नहीं हो पाते। ऐसे में उन ऋणों में छूट के सम्बन्ध में राज्य

सरकार से सलाह मशवरा करना उसका दायित्व है। वस्तुतः ग्रामीण विकास के कार्यों को क्रियान्वित करने में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तकवी ऋणों को भुगतान, किसानों को बीज बाँटना, पशुओं तथा खेतिहर उपकरणों को मुहैय्या करना, दुर्भिक्ष जैसी आपात स्थिति में सहायता प्रदान करना सभी ज़िलाधीश के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। इन सभी कार्यों के सम्पादन में उसकी दक्षता, उसके व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण का परीक्षण हो जाता है।

ज़िलाधीश का एक और महत्त्वपूर्ण कार्य भूमि अधिग्रहण का है। कई विकास कार्य, यथा गृह निर्माण, सड़क निर्माण, रेल पटरियाँ बिछाने आदि के लिए भूमि अधिग्रहण की आवश्यकता होती है। इण्डियन ट्रेजर ट्रोव एक्ट के अन्तर्गत ज़िलाधीश इन कार्यों के लिए भूमि अधिग्रहण के लिए अधिकृत है। ज़िला कोषागार उसी के अधिकार क्षेत्र में आता है तथा कोषाधिकारी उसके अधीन कार्य करता है। ज़िलाधीश समय-समय पर इनका निरीक्षण करता है तथा एक महालेखापाल को उसकी सूचना देता है। उसी के आधार पर कोषाधिकारी द्वारा दी गई विस्तृत सूचनाओं का मिलान किया जाता है।

भूमि अभिलेखों को तैयार करना तथा आगे के लिए सुरक्षित रखना ज़िलाधीश के महत्त्वपूर्ण दायित्वों में से एक है। भूमि परिमापन, भूमि विवादों का निपटारा तथा भूमि सुधार कानूनों को लागू करना तथा नज़ल भूमि का प्रशासन उसके दायित्व क्षेत्र में आते हैं। वह न केवल भूमि सम्बन्धी अभिलेखों तथा सूचनाओं को सुरक्षित रखता है अपितु समय-समय पर उनका पुनरीक्षण करता है। उल्लेखनीय है कि भूमि विवादों को निपटाने के लिए भूमि सम्बन्धी सभी अभिलेखों का निरीक्षण करना आवश्यक होता है। ज़िलाधीश ज़िले में भू-सम्पत्ति, जंगल तथा जल संसाधनों का प्रबन्धक है। निचले न्यायालयों से आये राजस्व मामलों के निर्णयों के विरुद्ध सुनवाई का दायित्व भी ज़िलाधीश का है।

चूँकि राजस्व का कार्य अति विस्तृत है, अतः ज़िलाधीश की सहायता हेतु बड़ी संख्या में अधिकारियों तथा कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। सामान्यतया यह कार्मिक उप-सम्भागीय अधिकारी, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी, कानूनगो तथा गिरदावर होते हैं। इस सम्बन्ध में सभी राज्यों में एकरूपता नहीं होती। उदाहरणार्थ आन्ध्र प्रदेश में ज़िलाधीश की सहायता के लिए ज़िला राजस्व अधिकारी भी होते हैं जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते हैं। सिक्किम में उप-ज़िलाधीश एवं राजस्व अधिकारी तथा दो राजस्व निरीक्षक होते हैं जो ज़िलाधीश को राजस्व सम्बन्धी दायित्वों के निर्वहन में मदद करते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में जनता ज़िलाधीश को ''माई-बाप'' के रूप में देखती है, और उससे हर प्रकार की सहायता की अपेक्षा करती है। अतः ज़िलाधीश की प्रतिमा एक कल्याणकारी अधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। कीड़ों से खेती को हानि हो, अतिवृष्टि से फसल खराब हो, दुर्भिक्ष हो या महामारी अथवा अन्य कोई संकट हो तो ज़िलाधीश को संकटमोचन की भूमिका निभानी पड़ती है। इस दृष्टि से ग्रामीण जनता के लिए ज़िलाधीश एक मसीहा है जो दुख-दर्द में उनका साथ देने वाला अभिभावक एवं संरक्षक है। इन समस्त दायित्वों का निर्वहन करते समय ज़िलाधीश राष्ट्रीय एवं सरकारी हितों की सुरक्षा का भी पूर्ण ध्यान रखता है।

न्यायिक अधिकारी के रूप में

ज़िले के न्यायिक अधिकारी के रूप में ज़िलाधीश की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। शांति व व्यवस्था बनाये रखना ज़िलाधीश का एक प्रमुख दायित्व है। आज के माहौल में जहाँ आतंकवाद, धार्मिक द्वन्द्व, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, अनास्था, अविश्वास, राजनीतिक अवसरवादिता जैसी समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं, ज़िलाधीश का दायित्व गम्भीर भी हो जाता है तथा महत्त्वपूर्ण भी। इस दृष्टि से तीन विभागों या क्षेत्रों का नियंत्रण आवश्यक है– पुलिस, न्यायिक तथा जेल।

जहाँ तक **पुलिस विभाग** का सम्बन्ध है उसका अपना एक संरचनात्क स्वरूप है। पुलिस अधीक्षक ज़िले में पुलिस प्रशासन के लिए उत्तरदायी है, जो कि अपने कार्यों के लिए रेंज के पुलिस उप-महानिरीक्षक के प्रति उत्तरदायी है, लेकिन कुछ प्रतिबन्धों को छोड़ कर पुलिस अधीक्षक के ऊपर कार्यात्मक नियंत्रण ज़िला मजिस्ट्रेट का भी रहता है।[8] व्यवहार में ज़िला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस अधीक्षक दोनों परस्पर सहयोग एवं समन्वय से कार्य करते हैं। उनकी टीम भावना पर ही ज़िला प्रशासन की प्रभावशीलता निर्भर करती है। किन्तु यह स्वीकार करना होगा कि संकटपूर्ण अथवा आपातस्थितियों में पुलिस को ज़िला मजिस्ट्रेट के आदेश पर कार्य करना पड़ता है।[9] पुलिस अधिनियम की धारा 254 के अन्तर्गत ज़िला पुलिस प्रशासन पुलिस अधीक्षक का दायित्व है तथापि ज़िला मजिस्ट्रेट पुलिस डायरी, पुलिस कर्मचारियों तथा पुलिस स्टेशन का निरीक्षण कर सकता है।[10] पुलिस प्रशासन का वार्षिक प्रतिवेदन, जो कि पुलिस अधीक्षक के द्वारा तैयार किया जाता है, भी ज़िला मजिस्ट्रेट के माध्यम से भेजा जाता है। किन्तु यह व्यवस्था अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न है। राजस्थान में पुलिस अधीक्षक के वार्षिक निष्पत्ति प्रतिवेदन पर अपनी टिप्पणी देने से पूर्व, मुख्य सचिव सम्बन्धित ज़िला कलक्टर तथा मजिस्ट्रेट से सम्मति मंगवा लेता है।

ज़िला मजिस्ट्रेट तथा पुलिस अधीक्षक के सम्बन्ध कैसे हों, यह विवाद का विषय रहा है। यह विवाद नया नहीं है बल्कि इसकी जड़ें बहुत पुरानी हैं। यह विवाद का प्रश्न तब उठा जब उन्नीसवीं सदी के अन्त में ज़िला मजिस्ट्रेट के पद का प्रभाव अपने चरमोत्कर्ष पर था तथा पुलिस अधीक्षक को उसका सहायक मात्र माना जाता था। भारतीय पुलिस आयोग (1902-05) ने इस नियंत्रण में थोड़ी ढिलाई की, अनुशंसा की तथा सुझाव दिया कि ज़िला मजिस्ट्रेट को पुलिस के दैनिक विभागीय प्रबन्ध तथा अनुशासन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।[11]

यह स्वीकार किया जाता है कि ज़िला मजिस्ट्रेट की स्थिति एक नियंत्रक की है। उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशन के अनुसार ज़िला मजिस्ट्रेट ज़िला फौजदारी प्रशासन का प्रमुख है और उस हैसियत से पुलिस के कार्यों को निर्देश देता है तथा नियंत्रित करता है।[12] पुलिस अधीक्षक ज़िला मजिस्ट्रेट को गम्भीर अपराधों के बारे में सूचित करता रहता है तथा ज़िले के अपराधों की सूचना समय-समय पर भेजता है। इस सम्बन्ध में ज़िला मजिस्ट्रेट पुलिस प्रशासन को समय-समय पर आदेश जारी करता है। त्यौहारों तथा जुलूसों के सम्बन्ध में भी वह पुलिस प्रशासन को आदेश जारी करता है। ज़िला मजिस्ट्रेट स्थानीय स्थितियों का जायजा लेता है, तद्नुकूल कार्य योजना तथा कार्यनीति तैयार करता है। वह पुलिस अधिकारियों तथा कर्मचारियों के विरुद्ध लगाये गये आरोपों की जानकारी प्राप्त करता है तथा पुलिस द्वारा किये गये ''अमानवीय'' व्यवहारों की भी जाँच करता है।

उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के अतिरिक्त अन्य राज्यों में ज़िला मजिस्ट्रेट पुलिस का वार्षि

गोपनीय प्रतिवेदन लिखते हैं तथा अन्य राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के गोपनीय प्रतिवेदन पर टिप्पणी लिखते हैं। कुछ राज्यों में यह भी व्यवस्था है कि पुलिस अधीक्षक यदि अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करता है तो वहाँ भी कुछ मामलों में ज़िला मजिस्ट्रेट हस्तक्षेप कर सकता है। कुछ पुलिस अधिकारियों के पदोन्नति के समय उनकी अनुशंसा का ध्यान रखा जाता है।

जब ज़िला पुलिस कानून व्यवस्था बनाये रखने में असमर्थ होती है तब ज़िला मजिस्ट्रेट स्पेशल आर्म्ड पुलिस फोर्स की सहायता की माँग करता है। यदि स्थिति ज्यादा विकट हो तो वह सैनिक सहायता की भी माँग कर सकता है।

ज़िला मजिस्ट्रेट के विस्तृत अधिकारों को देखते हुए यह आशंका बनी रहती है कि कहीं वह पुलिस प्रशासन में अनावश्यक हस्तक्षेप न करे। कई बार उसके नियंत्रणकारी कार्यों को हस्तक्षेप का नाम दे दिया जाता है। कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई तथा दिल्ली जैसे महानगरों में कानून तथा व्यवस्था का दायित्व पुलिस आयुक्त का है न कि ज़िला मजिस्ट्रेट का। 1961 में बिहार पुलिस आयोग में भी ऐसा ही एक विवाद उठा था लेकिन आयोग ने उस विवाद को ''व्यक्तियों का विवाद'' करार दिया न कि व्यवस्था का।[13]

वस्तुतः ज़िला मजिस्ट्रेट के रूप में ज़िलाधीश के अधिकारों तथा प्रभावों में कमी आई है। संविधान के अनुच्छेद 50 के तहत राज्य के नीति निदेशक तत्त्वों के अन्तर्गत न्यायपालिका तथा कार्यपालिका को पृथक् कर दिया गया है। ऐसे में दीवानी तथा फौजदारी सभी मामले न्यायालयों द्वारा सुलझाये जाते हैं। ये न्यायालय उच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं। इस प्रक्रिया को अपनाने के पीछे कानून की सर्वोच्चता[14] की भावना रही है। बिहार में मजिस्ट्रेट तथा मुंसिफ मजिस्ट्रेट जो कि फौजदारी मामले की सुनवाई करते हैं, सत्र न्यायालय के मार्फत उच्च न्यायालय के अधीन कार्य करते हैं। एक बार मामला यदि मुंसिफ या न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास स्थानान्तरित हो गया तो फिर उसके बाद ज़िलाधीश का उसमें कुछ भी हस्तक्षेप नहीं रहता है। सत्र न्यायाधीश ही न्यायिक क्षेत्र के मजिस्ट्रेटों के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन लिखता है। उच्च न्यायालय ही मजिस्ट्रेटों के पद स्थापन तथा स्थानान्तरण के लिए उत्तरदायी है।

ज़िला मजिस्ट्रेट का एक उत्तरदायित्व जेलों के प्रशासन का निरीक्षण भी है। वह यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न करता है कि जेल के मामलों का निस्तारण यथाशीघ्र हो तथा कैदियों को बेहतर सुविधाएँ दी जाए। कैदियों को पैरोल पर छोड़ने आदि से सम्बन्धित मामलों में ज़िला मजिस्ट्रेट का हस्तक्षेप रहता है। जब किसी कैदी को फाँसी की सजा दी जा रही हो तब वहां उसकी अथवा उसके द्वारा मनोनित किसी मजिस्ट्रेट की उपस्थिति आवश्यक है। फाँसी के पश्चात् कार्यवाही हो जाने सम्बन्धी प्रमाण-पत्र पर ज़िला मजिस्ट्रेट के हस्ताक्ष होते हैं।

अनुसूचित जातियों के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों की जाँच के लिए बनी ज़िला स्तरीय समिति का अध्यक्ष ज़िला मजिस्ट्रेट होता है। इस समिति में पुलिस अधीक्षक भी स्थायी सदस्य होता है।

समन्वयक के रूप में

इस अध्याय के प्रारम्भ में यह स्पष्ट किया गया था कि ज़िलाधीश पूर्व में सम्पूर्ण जिले का सर्वे-सर्वा हुआ करता था तथा जनता के समक्ष वही शासन का प्रतीक था। स्वतन्त्रता के बाद स्थिति में अन्तर

आया। प्रत्येक ज़िले में कई नियामकीय एवं वैकासिक विभागों की इकाइयाँ होती हैं। इनमें से अधिकांश इकाइयों के प्रमुख विशेषज्ञ होते हैं। ज़िले में जिन विभागों की इकाइयाँ होती हैं, उनमें से कुछ हैं– जन-स्वास्थ्य, कृषि, पशुपालन, सिंचाई, शिक्षा, उद्योग, जन-स्वास्थ्य अभियांत्रिकी, सार्वजनिक निर्माण आदि। इन विभागों को विभिन्न विकास कार्यक्रमों को लागू करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाता है। तकनीकी दृष्टि से इन विभागों के ज़िला अधिकारी अपने उच्चतर क्षेत्रीय एवं राज्य-स्तरीय अधिकारियों के अधीन कार्य करते हैं। किन्तु प्रशासनिक दृष्टि से समन्वय हेतु ये ज़िला कलक्टर के कार्य क्षेत्र में आते हैं। ज़िले के सर्वांगीण विकास हेतु विभिन्न विभागों का समन्वित रूप से कार्य करना आवश्यक है। स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री ने अक्टूबर, 1965 में कहा था कि ज़िले में सम्पूर्ण टीम को उसी तरह काम करना चाहिए जैसे कि जंग के मैदान में सिपाही काम करते हैं। इस प्रकार ज़िला अधिकारी को एक कमान्डर की भूमिका निभानी पड़ती है।[15]

समन्वय के लिए आवश्यक है कि ज़िलाधीश सभी ज़िला विभागाध्यक्षों की बैठक समय-समय पर आयोजित करे। प्रत्येक संस्था एवं कार्यक्रम को उचित समय पर महत्त्व देना आवश्यक है। समन्वय की प्रक्रिया को सुलभ बनाने के लिए ज़िला स्तर पर अलग-अलग कार्यक्रमों एवं विषय की समन्वय समितियाँ हैं जिनकी अध्यक्षता सामान्यतया ज़िला कलक्टर करता है। लगभग 80 समितियों की अध्यक्षता करने का दायित्व निभाना कलक्टर के लिए समय-प्रबन्ध की दृष्टि से कठिन भी हो जाता है।

संकटकालीन प्रशासन

जिन विपदाओं का ज़िला कलक्टर को सामना करना पड़ता है, वे दो प्रकार की होती हैं:

1. प्राकृतिक विपदाएँ
2. मानव द्वारा निर्मित विपदाएँ

दोनों ही प्रकार की स्थितियों में ज़िलाधीश की चैतन्यता, निर्णय क्षमता, मानवीय व्यवहार एवं प्रबन्धकीय योग्यता का परीक्षण होता है। वुडरफ एक रोचक प्रसंग द्वारा स्वतन्त्रता के पूर्व जिलाधीश की संकटकालीन प्रशासक की भूमिका का वर्णन करते हैं। एक ग्रामीण व्यक्ति कचहरी में काम कर रहे एक ज़िला मजिस्ट्रेट के पास रोता हुआ आया कि उसके बच्चे को चीता उठा ले गया है। वह ज़िला मजिस्ट्रेट कचहरी छोड़ कर अपनी बन्दूक उठा कर चीते को मारने उस व्यक्ति के साथ चल दिया।[16] आपात स्थिति में ज़िलाधीश की भूमिका मसीहा की हो जाती है। प्राकृतिक आपदा यथा– बाढ़, महामारी, दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्घटनाएँ, भूकम्प आदि में घायलों के उपचार की, मृतकों को परिजनों को सौंपने की, विस्थापितों के खाने, रहने, मुआवजे की राशि देना, उनके पुर्नस्थापित करने आदि की व्यवस्थाएँ ज़िलाधीश के दायित्व क्षेत्र में आती हैं।

मानव-निर्मित आपदा में ज़िलाधीश की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। हिंसा, लूटमार, हत्या, घृणा के वातावरण में शांति स्थापना तथा मानवीय मूल्यों के पुनर्स्थापन का कार्य अत्यधिक कठिन कार्य है, जो कि एक विवेकशील, संवेदनशील प्रशासनिक नेता ही कर सकता है। इन स्थितियों से निपटने के लिए कई बार केन्द्रीय सुरक्षा बलों एवं सेना की भी मदद लेनी पड़ती है। बाह्य आक्रमण के समय ज़िला प्रशासन को समुचित रूप से चलाने के लिए भारत सुरक्षा नियमों के अन्तर्गत उसे कई अधिकार प्राप्त हैं। नागरिक सुरक्षा प्रावधानों को लागू करना तथा जनता के मध्य

असुरक्षा की भावना को दूर करना उसका दायित्व हो जाता है। टी.एन. चतुर्वेदी[17] का मत है कि संकटकाल में उसे प्रतिफल या हर्जाना देने की भावना से नहीं बल्कि कर्तव्य की भावना से काम करना चाहिए। इन दायित्वों के निर्वहन में ज़िलाधीश को कई बार लिखित नियम कानून की सीमा के परे जा कर काम करना होता है। सिर्फ नियमों की व्याख्या नहीं अपितु आकस्मिक घटना का निस्तारण आवश्यक है, जिसमें तुरन्त निर्णय लेना आवश्यक है। एकरूपता अथवा नियमों की कठोरता संकटकालीन प्रशासन में हमेशा सकारात्मक गुण नहीं है। ओ. मोले भी ''नेतृत्व के गुण'' के आधार पर संकटकालीन स्थिति से निपटने की सलाह देते हैं।[18]

विकास अधिकारी

भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रम की विविध एवं बहु-आयामीय योजनाएँ प्रारम्भ की गई हैं। ये योजनाएँ स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, महिला, बालक एवं युवाओं आदि विषयों से सम्बन्धित हैं। इन योजनाओं एवं कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण जीवन को बेहतर बनाना, अशिक्षा तथा गरीबी को दूर करना है।

इन सभी कार्यक्रमों की क्रियान्विति में ज़िलाधीश की भूमिका सलाहकार या दर्शक की नहीं रह सकती। आर्थिक-सामाजिक विकास की इन योजनाओं को लागू करने में पहल एवं नेतृत्व की आवश्यकता है।

भारत के सभी राज्यों में ज़िलाधीश की विकास अधिकारी के रूप में भूमिका समान नहीं है। महाराष्ट्र तथा गुजरात में सभी विकास कार्यक्रम ज़िला विकास अधिकारी को सौंपे गये हैं। यह विकास अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। यहाँ ज़िलाधीश की भूमिका विकास प्रशासन में प्रत्यक्ष नहीं होती। ऐसी प्रशासनिक द्विभागिता ज़िला स्तर पर भारत के अधिकांश राज्यों में नहीं है।

राजस्थान पंचायत समिति एवं ज़िला परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 59 के अन्तर्गत ज़िलाधीश से ज़िला विकास अधिकारी के रूप में जो कुछ अपेक्षाएँ की गई हैं, वे इस प्रकार हैं:

(i) योजनाओं की क्रियान्विति की प्रक्रिया का निर्धारण तथा ज़िले में चल रही विभिन्न योजनाओं की प्रगति की समीक्षा करना। साथ ही ज़िला परिषद् के निर्णयों की क्रियान्विति एवं योजनाओं के स्वरूप में सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

(ii) ज़िला स्तर पर राज्य के विभिन्न विकास विभागों के कार्यों में सहायता व उनके मध्य सामञ्जस्य स्थापित करना।

(iii) पंचायत समितियों को उपलब्ध धन राशि के सदुपयोग का निर्धारण करना, साथ ही यह भी देखना कि विकास अधिकारी अपने उत्तरदायित्वों का समुचित निर्वाह कर रहे हैं या नहीं।

(iv) इसी अधिनियम की धारा 84 के अन्तर्गत सौंपे गये अन्य उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना। पंचायत समितियों को कुछ कार्यों को करने के लिए ज़िलाधीश की स्वीकृति लेनी पड़ती है अथवा ज़िलाधीश की सिफारिश के साथ राज्य सरकार की स्वीकृति के लिए भेजना पड़ता है। शहरी क्षेत्र में यही व्यवस्था नगरपालिकाओं तथा नगर परिषदों के लिए है।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में 1999 से ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरण का अध्यक्ष ज़िला प्रमुख को बनाया गया था। इससे पूर्व इस संस्था का अध्यक्ष ज़िलाधीश ही था। अब ज़िला ग्रामीण विकास प्राधिकरण से ज़िलाधीश का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। ज़िला ग्रामीण विकास अभिकरण (डी.आर.डी.ए.) एक पंजीकृत सोसायटी है जो कि भारतीय सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत है। इसका कार्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को समन्वित करना है। इस सोसायटी द्वारा एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कई प्रकार के कार्यक्रम लागू किये जाते हैं जिन्हें विभिन्न श्रेणियों में रखा जा सकता है:

(i) क्षेत्र आधारित कार्यक्रम, यथा रेगिस्तान विकास कार्यक्रम तथा सूखा क्षेत्र विकास कार्यक्रम।

(ii) व्यक्ति आधारित कार्यक्रम, जिसका उद्देश्य सबसे निचले तबके के गरीब लोगों को लाभ पहुँचाना है, जैसे ट्राइसम (स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं का प्रशिक्षण) एवं राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम।

(iii) ग्रामीण महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम।

(iv) कुछ मिश्रित कार्यक्रम हैं यथा– जनजाति विकास कार्यक्रम तथा समग्र ग्राम विकास कार्यक्रम।

इन सभी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए ज़िला स्तर के अधिकारी के साथ ज़िलाधीश भी उत्तरदायी है। ज़िला उद्योग केन्द्र के प्रमुख तथा ज़िला स्तरीय बैंक समन्वय समिति के अध्यक्ष की हैसियत से भी वह विकास प्रशासक की भूमिका निभाता है। 20-सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए ज़िलाधीश उत्तरदायी है। भूमि एवं राजस्व विवादों के निपटारे के लिए चलाये जाने वाले अभियानों का दक्षतापूर्ण नेतृत्व भी ज़िलाधीश के उत्तरदायित्वों में आता है।

वस्तुतः ग्रामीण तथा ज़िला स्तरीय विकास प्रशासन के लागू करने में ज़िलाधीश की भूमिका को उसके ज़िला परिषद् के साथ सम्बन्धों के सन्दर्भ में देखना चाहिए। 1959 में बलवन्त राय मेहता समिति की अनुशंसा पर सभी राज्यों में पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई। यह एक त्रिस्तरीय व्यवस्था है जिसमें उच्च स्तर पर ज़िला परिषद् है, फिर पंचायत समिति, निचले स्तर पर ग्राम पंचायतें हैं। बलवन्त राय मेहता समिति की अनुशंसा को सभी राज्यों ने समान रूप में स्वीकार नहीं किया। कुछ राज्यों में ज़िलाधीश ज़िला परिषद् का अध्यक्ष तथा सदस्य बना तो कुछ राज्यों में वह ज़िला परिषद् का तथा अन्य समितियों का अध्यक्ष बना।[19] राजस्थान में वह ज़िला परिषद् का तथा कई समितियों का अध्यक्ष बनाया गया। पर उसे मत देने का अधिकार नहीं था। महाराष्ट्र तथा प. बंगाल जैसे कुछ राज्यों में जिलाधीश का ज़िला परिषद् में स्थान नहीं था, उसे सिर्फ कुछ सामान्य नियन्त्रणकारी तथा पर्यवेक्षणीय अधिकार प्रदान किये गये।

वे समीक्षक, जो ज़िलाधीश को ज़िला परिषद् में सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं हैं, निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं:

(i) ज़िला परिषद् एक चुनी हुए गैर-सरकारी संस्था है। यदि ज़िलाधीश तथा ज़िला परिषद् के सदस्यों में मतभेद होता है तो निर्णय प्रक्रिया में कठिनाई होगी।

(ii) यदि ज़िला परिषद् तथा राज्य सरकार असहमत होते हैं तो ज़िलाधीश की स्थिति असमंजस की हो जायेगी तथा उसे अपना पक्ष निर्धारण करने में कठिनाई होगी।

(iii) यदि ज़िलाधीश, ज़िला परिषद् के साथ अधिक जुड़ता है तो वह अपने मौलिक दायित्व– कानून व व्यवस्था बनाये रखने में सक्षम नहीं होगा और यदि वह उस कार्य में अधिक व्यस्त रहेगा तो ज़िला परिषद् के साथ न्याय नहीं कर सकेगा।

कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो ज़िलाधीश को ज़िला परिषद् के साथ जोड़ने के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत करते हैं:

(i) अपनी महत्त्वपूर्ण पद स्थिति के कारण वह ज़िला परिषद् के सदस्यों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभा सकता है तथा सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने में योगदान दे सकता है।

(ii) यदि वह ज़िला परिषद् से दूर रहता है इसका अर्थ है कि वह ज़िले के विकास प्रशासन से दूर हो सकता है तथा इससे जन-सामान्य की समस्याओं को भी निकट से नहीं समझ सकेगा।

(iii) यह विकास कार्यों के निरूपण एवं निष्पादन में समन्वयक की भूमिका अधिक भली प्रकार निभा सकता है।

(iv) ज़िलाधीश को जिले के सर्वस्व या कर्ताधर्ता के रूप में देखने की ग्रामीणों में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति रही है। वे अपने चुने हुए प्रतिनिधि से भी ज्यादा उस पर विश्वास रखते हैं।

रिचार्ड पार्क[20] का मानना है कि स्थानीय लोग अभी भी शक्तिशाली ज़िला मुख्यालय के पक्षधर हैं।

वस्तुतः एक मध्यमार्ग अपनाने की आवश्यकता है। यदि ज़िलाधीश ज़िला परिषद् का सदस्य न भी हो तब भी अध्यक्ष को चाहिए कि वह उसे विचार-विमर्श हेतु आमन्त्रित करे तथा उससे सलाह-मशवरा करे। वह सरकार की ‘‘आँख तथा कान’’ एवं ज़िला-स्तरीय संस्थाओं का दोस्त एवं दार्शनिक बन सकता है।

व्यावहारिक रूप से भी ज़िलाधीश को जिला-परिषद् से बिल्कुल असम्बद्ध रखना उचित नहीं होगा। बिहार में इस प्रकार का प्रयोग किया गया कि ज़िलाधीश को विकास कार्यों से असम्बद्ध रखा गया, लेकिन कुछ समय बाद ही सरकार को अपनी भूल सुधारनी पड़ी तथा ज़िलाधीश की भूमिकाओं की पुर्नव्याख्या करनी पड़ी।[21] 1973 में इस स्थिति में परिवर्तन आया। मई, 1973 में ज़िला विकास आयुक्त को ज़िला परिषद् का मुख्य कार्यकारी अधिकारी बनाया गया। वह ज़िलाधीश के समकक्ष अधिकारी था और यह कहा गया कि योजना, विकास तथा कल्याण के सभी कार्यक्रम उसके उत्तरदायित्व होंगे। लेकिन 1975-77 में आपातकाल के समय फिर स्थिति में परिवर्तन आया और ज़िलाधीश को ससम्मान पुरानी स्थिति में सत्ता प्रदान की गई। वस्तुतः आपात स्थिति में मजबूत प्रशासनिक तंत्र की आवश्यकता थी तथा ज़िलाधीश को 20-सूत्री कार्यक्रम लागू करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया।

1977 में पंचायती राज पर अशोक मेहता समिति गठित की गई। इस समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को दृढ़ बनाने की अनुशंसा की तथा जिलाधीश के पद को इस व्यवस्था में अप्रासंगिक सा कर दिया। किन्तु अशोक मेहता समिति की द्वि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था का निष्पादन कर्नाटक तक सीमित रह गया।

1980 में कांग्रेस सरकार के वापस सत्ता में आने पर ज़िलाधीश के पद को फिर शक्तिशाली बनाया गया। कई महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम घोषित किये गये, जिनके क्रियान्वयन का दायित्व ज़िलाधीश को सौंपा गया। बिहार में बीस-सूत्री कार्यक्रम में से 14 कार्यक्रमों का दायित्व ज़िलाधीश को सौंपा गया यथा– एकीकृत ग्रामीण विकास योजना, सिंचाई, पेयजल की आपूर्ति, परिवार कल्याण आदि।

1985 से 1988 के बीच राजीव गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में ज़िलाधीश की भूमिका अत्यधिक बढ़ गई। स्वयं प्रधानमंत्री ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर ज़िलाधीश के साथ बैठकें की तथा ‘‘संवेदनशील प्रशासन’’ के प्रत्यय को साकार रूप प्रदान करने हेतु इन अधिकारियों का मार्गदर्शन किया। केन्द्र सरकार तथा ज़िला प्रशासन के बीच ऐसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्वतंत्रता के पश्चात् पहली बार देखने को मिले। विरोधी दलों की राज्य सरकारों को यह अखरा कि इस प्रकार व्यवस्था में राज्य सरकारों का महत्त्व कम कर दिया गया। किन्तु यह आशंका सही नहीं थी क्योंकि राजीव गांधी का उद्देश्य राज्य सरकारों को निर्बल करना नहीं था। फिर भी जो ज़िलाधीश के पद से सम्बन्धित सजग सक्रियता की लहर राजीव गांधी के समय आई वह उनके साथ ही चली गई।

राजीव गांधी का एक और प्रयास जो पंचायती राज संस्थाओं को सशक्त करने का था, वह उनकी मृत्यु के पश्चात् संविधान के 73वें संशोधन के रूप में प्रतिफलित हुआ। इस संशोधन का पूर्णरूपेण शासकीय एवं प्रशासकीय स्वरूप निष्पादित नहीं हो पाया, अतः अभी भी भारतीय पंचायती राज व्यवस्था संक्रमणकाल में ही है। यदि यह संशोधन पूर्णतया लागू हो जाता तो निश्चित रूप से ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में ज़िलाधीशों का वर्चस्व नहीं रहता। ज़िला परिषद् से उसके औपचारिक सम्बन्ध टूट जाने के पश्चात् उसका सम्पर्क इस संस्था से अनौपचारिक रहेगा। चूँकि वह जिले में राज्य सरकार का मुख्य प्रतिनिधि है अतः उसके अस्तित्व एवं प्रभाव को कदापि नहीं नकारा जा सकता।

वर्तमान में राजस्थान में ज़िला परिषदों की बैठकों में ज़िलाधीश को आमन्त्रित करने के बारे में किसी परम्परा का विकास नहीं हो पाया है। कभी तो उसे बैठकों में बुला लिया जाता है, तो कभी नहीं। ऐसा देखा गया है कि जब-जब उसे बैठकों में बुलाया जाता है, बैठकें अधिक लक्ष्योन्मुख एवं व्यवस्थित होती है।

वैसे अपनी वैकासिक भूमिका का निर्वाह ज़िलाधीश विभिन्न जिला-स्तरीय अधिकारियों की बैठकें बुलाकर करता आया है। यह परम्परा अभी अटूट है।

राजस्थान में 73वें संवैधानिक संशोधन के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के वास्तविक अधिकारों में बढ़ोतरी की जा रही है। तथापि राजस्थान विधान सभा द्वारा इन संस्थाओं के अतिरिक्त कार्यक्षेत्र एवं अधिकारों के बारे में कोई विशिष्ट अधिनियम नहीं बनाया गया है, न ही इन संस्थाओं को विस्तृत वित्तीय शक्तियाँ एवं साधन प्रदान किये गये हैं। परिणामस्वरूप, वैकल्पिक प्रशासन के क्षेत्र में जो स्थिति 73वें संवैधानिक संशोधन से पूर्व थी, उसमें परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ तो हो चुकी है, किन्तु फिर भी धीमी है। इसी कारण विकास प्रशासन के क्षेत्र में ज़िलाधीश की भूमिका आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी पूर्व में थी।

ज़िलाधीश के विविध कार्य

ज़िलाधीश बहुकार्यात्मक अधिकारी है। इसके विविध कार्यों की सूची इस अधिकारी के ज़िला प्रशासनिक तन्त्र में केन्द्रीय स्थान को दर्शाती है:

(i) प्रत्येक दस वर्ष के अन्तराल में जनगणना कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए वह जिला जनगणना अधिकारी का कार्य करता है।
(ii) संसदीय तथा राज्य विधान सभा के चुनावों के लिए जिले का मुख्य चुनाव अधिकारी होता है।
(iii) ज़िले में समारोहों व कार्यक्रमों में सरकार का अधिकारिक प्रतिनिधित्व करता है।
(iv) विशिष्ट अतिथियों के आगमन पर वह कूटनीतिक शिष्ट नीति का निर्वहन करता है।
(v) ज़िले में नगरपालिकाओं का पर्यवेक्षण करता है।
(vi) आवश्यक वस्तुओं तथा खाद्य पदार्थों की आपूर्ति सुनिश्चित करता है।
(vii) ज़िले में सैनिक अधिकारियों के साथ नियमित सम्पर्क बनाये रखता है।
(viii) विभिन्न श्रेणी के सरकारी प्रशिक्षणार्थियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करवाता है।
(ix) ज़िले का वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है।
(x) ज़िले के कर्मचारियों के कार्मिक मामले देखता है।
(xi) ज़िले का नियमित दौरा करता है, सुदूर गाँवों में लोगों से मिलता है, उनकी शिकायतें सुनता है तथा सरकार व जन-सामान्य के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाता है।

ज़िलाधीश को जन-सामान्य के साथ सहानुभूतिपूर्ण सम्बन्ध बनाना आवश्यक है, ताकि उनकी समस्याओं का उचित समाधान प्रदान किया जा सके। महाराष्ट्र के ज़िलाधीश से अपेक्षा की जाती है कि वह वर्ष में 120 दिन तथा 70 रातों का दौरा करे। एक राजस्व वर्ष में उसे 50 से 60 तक सामान्य निरीक्षण करने चाहिए, 20 गाँवों के विशेष निरीक्षण करने चाहिए तथा एक उप-खण्ड दफ्तर का निरीक्षण करना चाहिए।[22] इन्हीं जन-सम्पर्कों की आवश्यकता को देख कर यह कहा गया है कि "कलम" से "तम्बू" ज्यादा शक्तिशाली है।[23]

निष्कर्ष

यह निर्विवाद तथ्य है कि ज़िलाधीश जिले के विभिन्न विभागों के दल का कप्तान है। ज़िलाधीश का पद भारत में कई अर्थों में विशिष्ट है, इसमें "संस्थागत करिश्मा" है जिसकी आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में समता नहीं है।[24] लेकिन ज़िलाधीश के पद और दायित्वों का मूल्यांकन करते समय नवीन परिस्थितियों का ध्यान भी रखना आवश्यक है। उसके ऊपर जितने दायित्व रखे गये हैं तथा जो उससे अपेक्षाएँ की गई हैं, वह एक मानव की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं की सीमाओं में सम्भव नहीं है। स्वतन्त्रता के पूर्व ज़िलाधीश के अधिकार व सत्ता ज्यादा थे, पर कार्य समित थे। आज कई कारणों से अधिकार तथा सत्ता में कमी आई है, पर दायित्वों में बढ़ोतरी हुई है। एक युवा भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी सम्पूर्ण ज़िले का नेतृत्व करता है। अपने से उम्र व अनुभव में बड़े ज़िला पुलिस अधीक्षक पर भी अधिकारों का प्रयोग करता है लेकिन उसका सम्मान प्राप्त नहीं कर पाता।[25]

ज़िलाधीश से अपेक्षा की जाती है कि वह दौरे करके जनता से निकट सम्पर्क बनाने का प्रयास करे। पहले घोड़े पर सवारी व तम्बू गाड़ कर ज़िलाधीश यह दायित्व निभाते थे। पी.आर. दुभाषी का मानना है कि अब ज़िलाधीश ऐसे कैम्प्स ज्यादा करने में विश्वास नहीं रखते। वे जनता के प्रतिनिधियों के साथ कुछ बैठकें कर लेते हैं तथा यह मान लेते हैं कि अब ग्रामीण जनता के साथ सीधे सम्पर्क की आवश्यकता नहीं है।[26]

एक विकास अधिकारी के रूप में ज़िलाधीश से जो अपेक्षाएँ की गई हैं वे भी व्यावहारिक पक्ष को नजर अन्दाज करती हैं। एक विकास अधिकारी के लिए सारी बैठकों में भाग लेना सम्भव नहीं है।[27] हर अंचल की अपनी विशिष्ट समस्याएँ होती हैं। पूरी प्रशासनिक व्यवस्था किए बिना ज़िलाधीश को अत्यधिक कार्यभार से दबाया गया है। इसलिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम वांछित गति प्राप्त नहीं कर पाये हैं।[28]

शक्ति के विकेन्द्रीकरण की भावना से ज़िले के कार्यों के लिए विभिन्न अधिकारियों की व्यवस्था की गई है, जिन्हें उद्देश्य की एकता के लिए एक टीम के रूप में काम करना चाहिए।[29]

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने 1969 में यह माना था कि एक व्यक्ति (ज़िलाधीश) इतने सारे दायित्वों का निर्वहन नहीं कर सकता। अतः वर्तमान दायित्वों को दो भागों में विभाजित कर देना चाहिए– नियामकीय कार्य तथा विकास कार्य। नियामकीय कार्य का दायित्व ज़िलाधीश का होना चाहिए तथा दूसरा दायित्व पंचायती राज संस्थाओं को निभाना चाहिए।[30]

ज़िलाधीश के पद पर अनुभवी तथा अधिक सेवाकाल के अधिकारियों की नियुक्ति की आवश्यकता है। युवा अधिकारी एक तो अपने से अधिक उम्र के ज़िला अधिकारियों का सम्मान प्राप्त नहीं कर पाते, न ही वे एक अच्छे समन्वयक की भूमिका निभा पाते हैं। अपवाद अवश्य हैं इस क्षेत्र में।

ज़िलों के आकार को छोटा करना भी आवश्यक है, ताकि ज़िले का प्रशासन कुशलता से किया जा सके। अशोक मित्रा समिति, जो कि पश्चिम बंगाल सरकार द्वारा नियुक्त की गई थी, की अनुशंसा है कि 15 से 20 लाख से ज्यादा जनसंख्या का जिला नहीं होना चाहिए।[31]

अधिक दायित्वों के कारण ज़िलाधीश का जनता से सम्पर्क कट-सा गया है। उसके अन्य दायित्वों में कमी भले ही की जाए पर जनता से सम्पर्क करना आवश्यक है। दौरे तथा जनता से साक्षात्कार के माध्यम से ज़िलाधीश लोगों की ज्यादा से ज्यादा समस्याएँ समझ सकता है तथा तद्नुसार निर्णय ले कर कार्यवाही कर सकता है।

ज़िलाधीश को माह में एक बार प्रेस कान्फ्रेन्स करनी अपेक्षित है। इसके दो लाभ हो सकते हैं– एक तो सरकारी कल्याण कार्यक्रमों को जनता की जानकारी के लिए प्रचारित व प्रसारित किया जा सकता है, दूसरे जनता को अपनी कठिनाइयों को सुलझाने का मौका भी मिलता है। साथ ही इन पत्रकार सम्मेलनों से जनता तथा सरकार के बीच गलत धारणाओं को दूर करने का भी मौका मिलता है।[32]

ज़िलाधीश के कार्यों को मानव क्षमता को ध्यान में रखकर सीमित करने की आवश्यकता है लेकिन ज़िले का एकछत्र के अन्दर एक इकाई के रूप में काम करना भी आवश्यक है। ज़िलाधीश के पद को परम्परा में जो सम्मान व गरिमा प्राप्त है उसे देखते हुए, ज़िले के मुखिया के रूप में उसकी

स्थिति आवश्यक है, अन्यथा विभिन्न विभागों के विपरीत, विवादास्पद प्रतिवेदन यदि सरकार के पास जायेंगे तो सरकार के लिए निर्णय करना कठिन होगा। उसे नेता, प्रेरक तथा जनता के हमदर्द की भूमिका निभानी ही है।"

सन्दर्भ

1. एम.आर. माहेश्वरी, *स्टेट एटमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया* (नई दिल्ली: मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, 1987), पृ. 95.
2. ऐतिहासिक एवं अन्य पृष्ठभूमि के लिए देखें, रमेश के. अरोड़ा तथा रजनी गोयल, *इण्डियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशनः इंस्टिट्यूशन एण्ड इश्यूस* (नई देहलीः न्यू एज, 1996), पृ. 243-258.
3. जे.डी. शुक्ला, *स्टेट एण्ड डिस्ट्रिक्स एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया* (नई दिल्ली: नेशनल, 1976), पृ. 126.
4. *वही*, पृ. 127.
5. फिलिप वुडरफ, *द गार्जियन्स* (लन्दनः जोनाथन केप, 1959), पृ. 58.
6. एल.एस.एस.ओ. मोले, *द इण्डियन सिविल सर्विस, 1601-1930* (लन्दनः जॉन मुरे, 1934), पृ. 111.
7. शुक्ला, *उपरोक्त*, पृ. 133.
8. माहेश्वरी, *उपरोक्त*, पृ. 100.
9. एस.एस. खेरा, *डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया* (मुम्बईः एशिया, 1964), पृ. 33.
10. माहेश्वरी, *उपरोक्त*, पृ. 100.
11. एन.सी. राय, *द सिविल सर्विस इन इण्डिया* (कोलकाताः फर्मा के.एल. मुखोपाध्याय, 1960), पृ. 27.
12. शुक्ला, *उपरोक्त*, पृ. 137.
13. हरिद्वार राय, " डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट एण्ड पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट इन इण्डिया : द कन्ट्रोवर्सी ऑफ डुअल कन्ट्रोल," *जर्नल ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ओवरसीज*, VI (जुलाई, 1967), पृ. 192-99.
14. खेरा, *उपरोक्त*, पृ. 31.
15. पी.के. दवे, "द कलैक्टर : टुडे एण्ड टुमारो", टी.एन. चतुर्वेदी तथा आर.के. जैन, *डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन* (नई दिल्लीः इण्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1982), पृ. 39.
16. वुडरफ, *उपरोक्त*, पृ. 178.
17. टी.एन. चतुर्वेदी, "क्राइसस एडमिनिस्ट्रेशन", चतुर्वेदी तथा जैन, *उपरोक्त*, पृ. 93.
18. ओ. मोले, *उपरोक्त*, पृ. 164.
19. पी.आर. दुभाषी, *रुरल डेवलपमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया* (मुम्बईः पापुलर, 1970), पृ. 251-55.

20. हरिद्वार राय तथा एस.पी. सिंह, *करेन्ट आइडियाज एण्ड इश्यूज इन इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन* (दिल्ली: उत्पल, 1979), पृ. 154.
21. एडविन ईम्स तथा परमात्मा शरण, *डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया*, पृ. 184-196.
22. वी.एस. मूर्ति "महाराष्ट्र", ए.के. पाधी, सं. *स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया* (दिल्ली: उत्पल, 1988), पृ. 314.
23. बी.बी.एल. शर्मा तथा ए.डी. त्रिपाटी "डिस्ट्रिक्ट कलैक्टर एण्ड डिसेन्ट्रलाइज्ड हेल्थ प्लानिंग," *इण्डियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन* (अक्टूबर-दिसम्बर, 1989), पृ. 889.
24. रजनी कोठारी, *पॉलिटिक्स इन इण्डिया* (नई दिल्ली: ओरियन्ट लोंगमेन, 1970), पृ. 130-131.
25. नारायण हजारी, "डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया," *एडमिनिस्ट्रेटिव चेन्ज*, XV (जनवरी-जून, 1988), पृ. 178.
26. पी.आर. दुभाषी, "मैन ऑन द स्पॉट : फेलियर ऑफ डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन", द स्टेट्मैन, 15 अप्रैल, 1963, पृ. 8.
27. अभिमन्यु सिंह "चेंजिंग रोल ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफिसर", द इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, XXXII (अप्रैल-जून, 1986), पृ. 256.
28. तुषार कान्ति दास, "द डिस्ट्रिक्ट रुलर", द स्टेट्समेन, 15 अक्टूबर, 1983, पृ. 8.
29. पी.आर. दुभाषी, *एसेज ऑन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन* (नई दिल्लीः एन.बी.ओ. पब्लिशर्स, 1985), पृ. 54.
30. नारायण हजारी, *डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया*, पृ. 81.
31. *वही*.
32. अभिमन्यु सिंह, *उपरोक्त*, पृ. 263.
33. *वही*, पृ. 265.

❑❑❑

अध्याय 20

ज़िला प्रशासन

पिछले अध्याय में ज़िलाधीश के कार्य एवं शक्तियों के बारे में विवेचन किया गया है, किन्तु यह जान लेना आवश्यक है कि ज़िला प्रशासन इतना अधिक विस्तृत है कि इसके संचालन के लिए ज़िलाधीश के अतिरिक्त अन्य भी बहुत से अधिकारी व कार्मिकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इस अध्याय में ज़िला प्रशासन में ज़िलाधीश के नीचे के स्तर पर संकेन्द्रण है। किन्तु, इससे पूर्व संक्षेप में राजस्थान में सम्भागीय व्यवस्था के बारे में दृष्टिपात करना प्रासंगिक होगा।

संभागीय व्यवस्था

1962 से पूर्व भू-राजस्व तथा विकास प्रशासन के कार्यों को क्षेत्रीय स्तर पर समन्वित करने के लिए राजस्थान को पाँच संभागों में बाँटा गया था। प्रत्येक संभाग एक संभागीय आयुक्त के अधीन कार्य करता था। संभागीय आयुक्त ही अपने क्षेत्र के ज़िलाधीश के राजस्व एवं विकास प्रशासन से सम्बन्धित कार्यों का समन्वय करता था, किन्तु 1962 में संभागीय आयुक्त का पद समाप्त कर दिया गया तथा उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों को ज़िलाधीश एवं राजस्व मण्डल में विभक्त कर दिया गया। इस पद की समाप्ति का मुख्य कारण राजस्थान विधानसभा में की जाने वाली मांग थी जिसके अंतर्गत यह मत व्यक्त किया जा रहा था कि संभागीय आयुक्त महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक मामलों में विलम्ब का कारण बनते हैं।

25 वर्ष तक संभागीय आयुक्त का पद समाप्त रहा। 25 वर्षों के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि जिला स्तर पर बढ़ते हुए कार्यों तथा अन्तर-ज़िला प्रशासनिक समन्वय की आवश्यकता को देखते हुए संभागीय आयुक्त के पद की पुनर्स्थापना आवश्यक है। अतः 1987 में छः संभागीय आयुक्तों की स्थापना की गई जो जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, अजमेर तथा कोटा संभागों के प्रशासनिक प्रमुख नियुक्त किये गये। आज भारतीय प्रशासनिक सेवा की सुपर-टाइम वेतन शृंखला का यह अधिकारी प्रशासनिक समन्वय का एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु है।

राजस्थान में संभागों की रचना

राजस्थान के छः संभागों में क्रमशः ज़िले इस प्रकार हैं:

संभाग		ज़िला
जयपुर	—	जयपुर, भरतपुर, अलवर, सीकर, झुंझनूं, धौलपुर एवं दौसा

अजमेर	—	अजमेर, नागौर, भीलवाड़ा तथा टोंक
जोधपुर	—	जोधपुर, पाली, जैसलमेर, बाड़मेर, जालौर तथा सिरोही
बीकानेर	—	बीकानेर, श्रीगंगानगर, चूरू एवं हनुमानगढ़
उदयपुर	—	उदयपुर, चित्तौड़गढ़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा राजसमंद
कोटा	—	कोटा, बूँदी, सवाई माधोपुर, बारां, झालावाड़ एवं करौली

संभागीय आयुक्तों को यह अधिकार है कि वे ज़िलाधीशों से उनके कार्य निष्पादन के सम्बन्ध में वार्षिक व अर्द्धवार्षिक प्रतिवेदन प्राप्त कर सकते हैं तथा उपखण्ड कार्यालयों तथा तहसीलों से राजस्व मामलों, भूमि सीलिंग कानून के निष्पादन, भूमि आवंटन तथा कर, कृषि कार्यों के लिए कृषि भूमि के रूपान्तरण से सम्बन्धित प्रतिवेदन माँग सकते हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान भूमि तथा भवन अधिनियम, राजस्थान शहरी भूमि सीलिंग अधिनियम, राजस्थान वन अधिनियम आदि से सम्बन्धित मामले अब राजस्व मण्डल के स्थान पर संभागीय आयुक्त निपटाते हैं। संभागीय आयुक्त तहसीलदार, नायब तहसीलदार, भू-अभिलेख निरीक्षक, पटवारियों को अपने क्षेत्र में स्थानान्तरित कर सकते हैं।

संभागीय आयुक्तों से अपेक्षा की जाती है कि वे समय-समय पर उच्च पुलिस अधिकारियों, उप-पुलिस महानिरीक्षक, ज़िलाधीश तथा पुलिस अधीक्षक की बैठकें समय-समय पर बुलाएँ तथा नियोजन तथा विकास से सम्बन्धित कार्यों का प्रबोधन एवं समन्वय निर्धारित करें।

उल्लेखनीय है कि वर्तमान व्यवस्था में उदयपुर के संभागीय आयुक्त पदेन जनजातीय क्षेत्रीय विकास आयुक्त हैं, तथा जोधपुर के संभागीय आयुक्त पदेन मरु विकास आयुक्त हैं। इसी प्रकार कोटा के संभागीय आयुक्त पदेन चम्बल कमाण्ड क्षेत्रीय विकास आयुक्त हैं तथा बीकानेर के संभागीय आयुक्त इंदिरा गांधी नहर कमाण्ड क्षेत्रीय विकास के पदेन आयुक्त हैं।

जिन-जिन विकास विभागों के क्षेत्रीय अधिकारी संभागीय स्तर पर कार्य करते हैं उन सब के कार्यों का समन्वय का उत्तरदायित्व भी संभागीय आयुक्त का है।

ज़िला स्तरीय प्रशासनिक अधिकारी

उल्लेखनीय है कि लगभग सभी विकास विभागों के अधिकारी ज़िला स्तर पर कार्य करते हैं। उदाहरणस्वरूप इसमें से कुछ अधिकारी इस प्रकार हैं–

(1) ज़िला उद्योग अधिकारी (खाद्य)
(2) ज़िला शिक्षा अधिकारी (छात्रा)
(3) ज़िला शिक्षा अधिकारी प्राथमिक (छात्रा)
(4) ज़िला शिक्षा अधिकारी (छात्र)
(5) ज़िला शिक्षा अधिकारी (अनौपचारिक)
(6) ज़िला पशुपालन अधिकारी
(7) ज़िला राहत अधिकारी
(8) ज़िला नियोजन अधिकारी
(9) ज़िला परिवहन अधिकारी
(10) मुख्य चिकित्सा एवं स्वास्थ्य अधिकारी

क्षेत्रीय प्रशासनिक अधिकारी

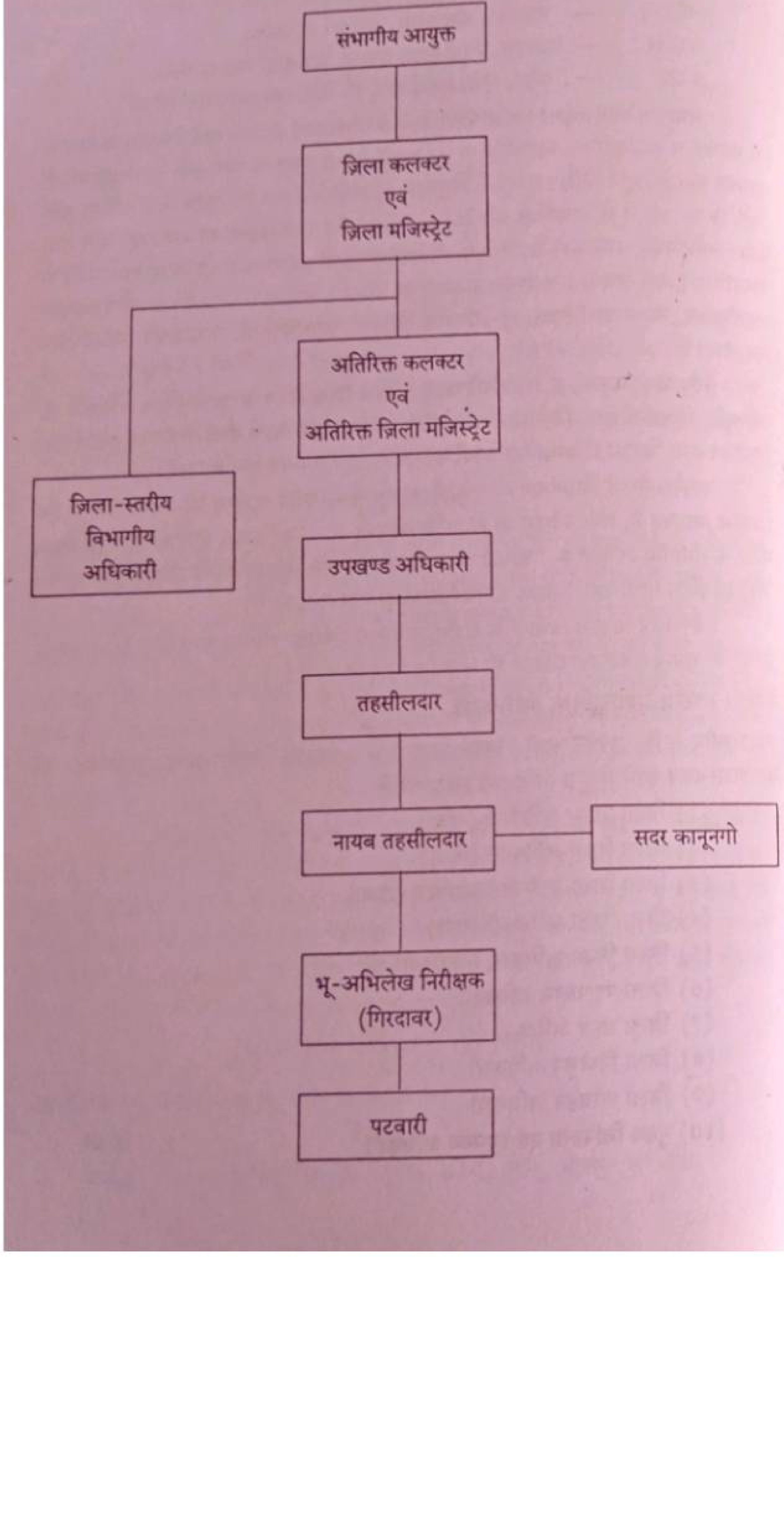

(11) ज़िला मत्स्य पालन अधिकारी

(12) ज़िला भेड़ पालन अधिकारी

(13) ज़िला अल्प बचत अधिकारी

इसी प्रकार विभिन्न परियोजनाओं के अधिकारी भी ज़िला स्तर पर कार्यरत हैं जैसे परियोजना अधिकारी, महिला एवं बाल विकास अभिकरण (जो सन् 2000 से एकीकृत बाल विकास परियोजनाओं की उपनिदेशक भी है), परियोजना अधिकारी; हैंडलूम; परियोजना अधिकारी; रेशम कीट पालन आदि। इन सभी ज़िला स्तरीय अधिकारियों पर प्रशासनिक नियंत्रण ज़िलाधीश का होता है तथा तकनीकी नियंत्रण उनके विभागों का होता है। ज़िलाधीश की सहायता के लिए अतिरिक्त ज़िलाधीश कार्य करते हैं जो कि राज्य प्रशासनिक सेवा के अधिकारी होते हैं। एक बड़े ज़िले में चार अथवा पाँच अतिरिक्त ज़िलाधीश कार्य करते हैं। मुख्यतया, इनकी भूमिका इस प्रकार होती है:

(1) अतिरिक्त ज़िलाधीश, प्रशासन जिसके अधीन उपखंड अधिकारी तथा सहायक ज़िलाधीश एवं मजिस्ट्रेट एवं कोषाधिकारी कार्य करते हैं।

(2) अतिरिक्त ज़िलाधीश, नगर जिसके अधीन मूल्यांकन अधिकारी, सांख्यिकी अधिकारी एवं ज़िला परिवहन अधिकारी कार्य करते हैं। कुछ ऐसे भी ज़िले हैं जिनमें यह पद पृथक् रूप से नहीं होते।

(3) अतिरिक्त ज़िलाधीश, सीलिंग जो कि भूमि सीलिंग से सम्बन्धित मामलों को देखते हैं। कई बार एक अन्य अतिरिक्त ज़िलाधीश भू-रूपान्तरण के लिए भी होते हैं।

(4) अतिरिक्त ज़िलाधीश, विकास जो ज़िला-स्तरीय वैकासिक विभागों के प्रतिनिधियों से समन्वय रखने के लिए साथ-साथ परियोजना निदेशक का कार्य भी करते हैं। इनके अधीन परियोजना अधिकारी एवं परियोजना प्रबन्धक कार्य करते हैं।

उपखण्ड प्रशासन

राजस्थान के समस्त ज़िलों को उपखण्डों में विभाजित किया गया है। कुछ ज़िले ऐसे हैं जहाँ पर 5-5 उपखण्ड हैं जैसे अलवर, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़; कुछ ज़िलों में 4-4 उपखण्ड हैं जैसे जयपुर, अजमेर, श्रीगंगानगर, नागौर, पाली तथा उदयपुर; तथा बाकी ज़िलों मे 2 अथवा 3 उपखण्ड हैं।

प्रत्येक उपखण्ड, एक उपखण्ड अधिकारी के अधीन होता हैं। उपखण्ड अधिकारी अपने क्षेत्र के प्रशासन से सम्बन्धित लगभग सभी महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन ज़िलाधीश के निर्देशन में करते हैं। इस अधिकारी के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं:

(1) भू-राजस्व प्रबन्धन

उपखण्ड अधिकारी अपने उपखण्ड का राजस्व अधिकारी होता है। भू-अभिलेख तैयार करना, राजस्व प्रशासन के निम्न-स्तरीय अधिकारी जैसे, पटवारी, कानूनगो तथा भू-अभिलेख निरीक्षक पर नियंत्रण रखना, कानूनगो तथा तहसीलदार के कार्यों का निरीक्षण करना, उपखण्ड के कृषि उत्पादन का आकलन, सरकारी भूमि पर अतिक्रमण रोकना, राजस्व वसूली के सम्बन्ध में नीचे के अधिकारियों को निर्देशन प्रदान करना तथा अपने उपखण्ड में भू-राजस्व से सम्बन्धित कानूनों की निष्पत्ति पर निगरानी रखना इस अधिकारी का दायित्व है।

(2) भू-राजस्व संग्रहण का निर्देशन

भू-राजस्व संग्रहण का उत्तरदायित्व तहसीलदार का है। इस कार्य हेतु यह अधिकारी अपने क्षेत्र के उपखण्ड अधिकारियों के निर्देशन में कार्य करता है। भू-राजस्व से एकत्रित राशि पिछले कुछ वर्षों में काफी कम हुई है। अतः उपखण्ड अधिकारी एवं तहसीलदार दोनों ही की दक्षता इस क्षेत्र में हुई प्रगति से आँकी जाती है।

(3) न्यायिक अधिकारी के रूप में

उपखण्ड अधिकारी के अधीन कुछ प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार हैं तथा कुछ अपीलीय क्षेत्राधिकार हैं। इनके अतिरिक्त पुनरीक्षण तथा पुनरावलोकन का भी इन्हें अधिकार है। जिन मामलों में यह न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्य करते हैं तथा जिन विषयों से सम्बन्धित प्रमुख विवाद निपटाते हैं, वे हैं– भूमि, सीमा, चारागाह, भू-अभिलेख तथा पंजीयन, भू-राजस्व, सम्पत्ति विभाजन, भूमि सम्बन्धित मुआवजे आदि।

(4) दण्डनायक के रूप में

जब उपखण्ड अधिकारी दण्डनायक के रूप में कार्य करते हैं तब उसे 'एस.डी.एम.' (Sub Divisional Magistrate) कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि जो दण्डनायकीय शक्तियाँ ज़िलाधीश को ज़िला स्तर पर प्रदान की गई हैं लगभग वही शक्तियाँ उपखण्ड स्तर पर एस.डी.एम. को दी गई हैं। अपने क्षेत्र में शान्ति व्यवस्था स्थापित करने, फौजदारी प्रशासन का संचालन, पुलिस थानों एवं चौकियों का निरीक्षण, किसी अपराधी को पुलिस के रिमाण्ड में रखने एवं धारा 144 लागू करने का अधिकार एस.डी.एम. को प्राप्त है।

(5) प्रशासनिक अधिकारी के रूप में

उपरोक्त चार भूमिकाओं के अतिरिक्त एस.डी.एम. को कई विविध प्रशासनिक कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं जैसे कि– जनता की आवश्यक उपभोग की वस्तुओं का उचित मूल्यों पर वितरण, निरीक्षण प्रबन्धन, राजस्व अभियान संचालन, जन-अभियोग निराकरण आदि। देखा जाये तो गाँवों में आर्थिक व सामाजिक न्याय तथा विकास कार्यक्रमों को विविध रूप से संचालित करने का उत्तरदायित्व उपखण्ड अधिकारी का है। पिछले कुछ वर्षों में इस अधिकारी के उत्तरदायित्व इतने अधिक बढ़ गये हैं कि वह जनता की सभी मूलभूत माँगों व आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न दिशाओं से आने वाले राजनीतिक दबावों से अपने आपको अधिकतम सम्भव बचाते हुए एक उपखण्ड अधिकारी अपने जनोमुखी प्रशासनिक कार्यों को वस्तुनिष्ठा से करे।

तहसील स्तर

मुगल काल से ही राजस्व प्रशासन में तहसील का एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारत के अधिकांश राज्यों में राजस्व प्रशासन की मुख्य इकाई तहसील है। तहसील को कुछ अन्य राज्यों में दूसरे नामों से जाना जाता है जैसे, तमिलनाडु में इसे 'तालुक' एवं महाराष्ट्र में 'तालुका' कहा जाता है।

उपखण्ड स्तर के नीचे राजस्व प्रशासन हेतु राज्य को तहसीलों में बांटा गया है। राजस्थान में 229 तहसीलें हैं तथा इनकी संख्या को बढ़ाने के बारे में राज्य सरकार का निर्णय लिया जा चुका है। एक उपखण्ड में सामान्यतया दो अथवा तीन तहसीलें होती हैं। यद्यपि कुछ ऐसे भी उपखण्ड हैं जैसे

कि जयपुर, डीग, तिजारा एवं बाड़मेर जहाँ चार अथवा पाँच तहसीलें हैं। एक ज़िले में प्रायः तहसीलों की संख्या उसकी आय एवं जनसंख्या के अनुसार कम अथवा अधिक होती है। उदाहरणार्थ– जैसलमेर ज़िले में 3 ही तहसीलें हैं जबकि जयपुर ज़िले में 13 तहसीलें हैं।

तहसीलों का प्रमुख अधिकारी तहसीलदार होता है। जिसके अधिकार व कर्तव्य राजस्थान भू-राजस्व तथा तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार के कर्तव्य तथा नियम 1958 में उल्लिखित हैं। तहसीलदार के पद पर नायब तहसीलदार ही पदोन्नत होकर नियुक्त होते हैं। नायब तहसीलदार के पद पर 66 प्रतिशत नियुक्ति राजस्थान राज्य एवं अधीनस्थ सेवाओं की परीक्षा के माध्यम से चयनित अधिकारियों की होती हैं। तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार की नियुक्ति राजस्व मण्डल के द्वारा की जाती है। ये अधिकारी राजस्थान तहसीलदार सेवा के सदस्य होते हैं।

उल्लेखनीय है कि अधीनस्थ सेवा के अधिकारी होते हुए भी तहसीलदार एक राजपत्रित अधिकारी होता है। यह व्यवस्था इसलिए की गई है क्योंकि तहसीलदार के अधिकार व शक्तियाँ भू-राजस्व, प्रशासन व न्यायिक क्षेत्र में विस्तृत होती हैं तथा इसे अन्य क्षेत्र में भी पर्याप्त अधिकार उपलब्ध हैं।

तहसीलदार की भूमिका इस प्रकार है:

(1) भू-राजस्व से सम्बन्धित कार्य

तहसीलदार अपने तहसील क्षेत्र के भू-अभिलेख के निरूपण, उनके संरक्षण, पटवारी, कानूनगो, भूमि निरीक्षकों के कार्यों का निरीक्षण तथा इन अधिकारियों के कार्य निष्पादन एवं नियंत्रण, भू-राजस्व के संकलन पर निगरानी तथा इस सम्बन्ध में नियमों व कानूनों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करने से सम्बन्धित उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हैं। वसूली कार्यक्रम को लागू करने हेतु तहसीलदार पटवारी को विशेष बैठकों में निर्देश देते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर वे स्वयं भी दौरे पर जाकर वास्तविक स्थिति का अध्ययन करते हैं।

(2) न्यायिक कार्य

काश्तकारी, चारागाह की भूमि, वन-उपज, वन-भूमि, कृषि-भूमि सीमा, उत्तराधिकार नामांतरकरण, भू-सम्पत्ति के विभाजन, भूमि मुआवजे, सरकारी भूमि पर अतिक्रमण आदि से सम्बन्धित मामलों में तहसीलदार को सुनवाई की शक्तियाँ प्राप्त हैं। तहसील में राजकीय पत्रों की तामीली कार्य भी तहसीलदार का ही है।

तहसील प्रशासन में तहसीलदार, ज़िलाधीश व उप-ज़िलाधीश के निर्देशन में द्वितीय श्रेणी के कार्यपालक दण्डनायक के रूप में कार्य करते हैं। इस सम्बन्ध में वे दोषी व्यक्तियों को छः माह की सजा तथा 200 रुपये तक जुर्माना कर सकते हैं। उल्लेखनीय है कि तहसील में कानून व्यवस्था की जिम्मेदारी तहसीलदार की है।

(3) विविध प्रशासनिक कार्य

उपरोक्त प्रमुख कार्यों के अतिरिक्त तहसीलदार विविध प्रशासनिक कार्य सम्पन्न करते हैं जैसे, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत सस्ते मूल्यों की दुकानों का संधारण, जन्म-मृत्यु का पंजीयन तथा अभिलेख, उप-कोषालयों का संचालन, राहत कार्यों में भुगतान-अधिकारी के रूप में कार्य

करना, अपने क्षेत्र में निरीक्षण अधिकारी के रूप में कार्य करना, जन-गणना अधिकारी की भूमिका निभाना, कृषि कानून अधिकारी का उत्तरदायित्व वहन करना, तहसील क्षेत्र में रसद कार्य सम्पन्न करना, शिष्टाचार (प्रोटोकोल) के उत्तरदायित्व निभाना तथा तहसील क्षेत्र में निवास करने वाली जनता की शिकायतों को दूर करने का प्रयत्न करना आदि।

तहसीलदार सामान्यतया वर्ष में चार माह अपने क्षेत्र का दौरा करते हैं तथा जनता के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध बनाने का निरन्तर यत्न करते हैं। यद्यपि तहसीलदार सामान्यतया राजस्व अधिकारी माना जाता है किन्तु व्यवहार में इसे वैकासिक कार्यक्रमों व परियोजनाओं के संचालन हेतु कई उत्तरदायित्व ज़िलाधीश एवं उप-ज़िलाधीश द्वारा दिये जाते हैं। अपने उत्तरदायित्व, शक्तियों एवं प्रभुत्व के कारण तहसीलदार अपनी तहसील का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है।

तहसील के अधीन कई उप-तहसीलें भी कार्यरत हैं। राजस्थान में 91 उप-तहसीलें हैं, जिनकी संख्या अब बढ़ायी जा रही है। एक उप-तहसील का कार्य क्षेत्र बढ़ने से उसे तहसील में भी रूपान्तरित किया जा सकता है।

तहसीलदार की सहायता के लिए नायब तहसीलदार की नियुक्ति की जाती है। ऐसी स्थिति में तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार के बीच में कार्य विभाजन का उत्तरदायित्व तहसीलदार का ही होता है। कुछ तहसीलों में प्रशासनिक प्रमुख के रूप में नायब तहसीलदार काफी कार्य करते हैं, यद्यपि वह अपने कार्यों के लिए तहसीलदार के प्रति ही उत्तरदायी होते हैं। इस प्रकार स्वायत्तता एवं नियंत्रण का समन्वय इस स्थिति में देखने को मिलता है।

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में 460 पद तहसीलदारों के तथा 417 पद नायब तहसीलदारों के स्वीकृत हैं। विद्यार्थियों के मस्तिष्क में यह प्रश्न उठ सकता है कि जब तहसीलें 237 ही हैं तो तहसीलदार 460 क्यों? इस प्रकार उप-तहसीलें जब 91 हैं तो नायब तहसीलदार 417 क्यों? इसका उत्तर यह है कि तहसीलदार व नायब तहसीलदार केवल तहसीलों में ही कार्य नहीं करते। वे भू-अभिलेख एवं भू-अवाप्ति के कार्य अन्य संस्थाओं में भी सम्पादित करते हैं। इसी प्रकार तहसीलदार एवं नायब तहसीलदार जयपुर विकास प्राधिकरण, विभिन्न नगर सुधार न्यास, नगर परिषदों आदि में कार्य करते हैं, तथा बहुत बड़ी संख्या में भू-पंजीकरण के उप-पंजीयक के रूप में तहसीलदार एवं नायब तहसीलदार कार्य करते हैं।

उल्लेखनीय है कि 1956 तक राजस्थान तहसीलदार सेवा पर नियंत्रण राज्य सरकार का हुआ करता था। 1956 में इसे राजस्थान राजस्व मण्डल को सौंप दिया गया। तहसीलदार की सहायता के लिए क्षेत्रीय स्तर पर नायब तहसीलदार तो होते ही हैं, प्रत्येक तहसील के मुख्यालय पर सरकारी कामकाज को सम्पन्न करने के लिए तहसीलदार की सहायता के लिए कानूनगो की नियुक्ति होती है। ये कानूनगो तहसील कार्यालय का समस्त कार्य तहसीलदार के निर्देशन में सम्पादित करते हैं।

उल्लेखनीय है कि ये कानूनगो क्षेत्र स्तर पर भू-राजस्व निरीक्षक अथवा गिरदावर के रूप में कार्य करते हैं। अन्य शब्दों में भू-राजस्व निरीक्षक, गिरदावर तथा कानूनगो पर्यायवाची हैं।

दस पटवार क्षेत्र के ऊपर एक भू-राजस्व निरीक्षक होता है तथा 20 पटवार क्षेत्र की एक नायब तहसील होती है जिसका प्रशासनिक अधिकारी नायब तहसीलदार होता है। जहाँ तक कार्य

की प्रकृति का प्रश्न है उसमें इन विभिन्न स्तरों पर सम्पन्न किये जाने वाले कर्तव्यों में कोई विशेष अन्तर नहीं होता, केवल स्तर के अनुरूप शक्तियाँ कम अथवा अधिक होती हैं।

तहसील प्रशासन की शक्ति की आधारशिला एक पटवार क्षेत्र होता है। जिसका प्रमुख पटवारी होता है।

पटवारी

प्रत्येक तहसील विभिन्न पटवार क्षेत्रों में विभाजित होती है। लगभग 30-60 पटवार क्षेत्र तहसील में आते हैं। प्रत्येक पटवार क्षेत्र का प्रमुख अधिकारी पटवारी होता है जिसका मुख्यालय उसके कार्य क्षेत्र के एक बड़े आकार के गाँव में होता है। परम्परा के अनुसार वह उसी गाँव में निवास करता है जिसमें कि उसका मुख्यालय है। उल्लेखनीय है कि पटवारी का पद मुगल काल से ही चल रहा है। ग्रामीण जनता के निकटतम यदि कोई एक अधिकारी रहा है तो वह पटवारी ही है। सन् 1873 के राजस्व अधिनियम के अन्तर्गत पटवारी को राजस्व प्रशासन के सम्बन्ध में सरकारी कर्मचारी बनाया गया। पटवारी के समकक्ष राजस्व कर्मचारी को तमिल में ''कारनाम,'' महाराष्ट्र में ''तलैटी,'' व उत्तर प्रदेश में ''लेखपाल'' कहा जाता है। वर्तमान में राजस्थान में 10,000 से भी अधिक पटवारी कार्य कर रहे हैं। पटवारी का चयन राजस्व मण्डल द्वारा किया जाता है तथा इसका प्रशिक्षण पटवार प्रशिक्षण केन्द्र, जो राजस्थान में विभिन्न स्थानों पर कार्यरत हैं, में किया जाता है। यह प्रशिक्षण केन्द्र भीलवाड़ा, टोंक, श्रीगंगानगर व भरतपुर में स्थित हैं।

एक पटवारी के प्रमुख उत्तरदायित्व इस प्रकार हैं:

(1) भू-अभिलेख सम्बन्धी कार्य

एक पटवारी के पास लगभग 2,000 काश्तकारों के अभिलेख रखे जाते हैं। अपने पटवार क्षेत्र में भूमि से सम्बन्धित दस्तावेज, नक्शे तथा अन्य अभिलेख स्रोतों को भली प्रकार से रखने की जिम्मेदारी पटवारी की होती है। इन अभिलेखों में गाँवों के क्षेत्रफल, भूमि की प्रकृति, स्वामित्व, फसल की स्थिति, सिंचाई के साधन, भू-राजस्व आदि से सम्बन्धित विवरण होता है। पटवार-घर में पटवारी की डिक्री, गिरदावरी रिपोर्ट, जमाबंदी अभिलेख, वसूली पत्र, भू-नक्शा, संरक्षण चिन्हों की सूची, मूल्यांकन खसरा आदि अभिलेख सुरक्षित ढंग से रखे जाते हैं जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर भूमि सम्बन्धी विवाद का निपटारा किया जा सके।

उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में कम्प्यूटर के उपयोग की अधिकतर संभावनाओं को देखते हुए यह विचार प्रशासनिक क्षेत्र में व्यक्त किये जा रहे हैं कि शनैः-शनैः पटवार क्षेत्र के सभी अभिलेखों का कम्प्यूटरीकरण कर दिया जाये जिससे कि इन अभिलेखों को अधिक व्यवस्थित व दोष रहित बनाया जा सके।

(2) राजस्व संग्रहण से सम्बन्धित कार्य

राजस्व एकत्रित करने का मुख्य उत्तरदायित्व पटवारी का है। पटवारी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह भू-राजस्व के निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति करे। संग्रहण सीमा पार करे एवं एकत्रित भू-राजस्व के बारे में पूर्ण सूचना उच्चतर अधिकारियों को प्रदान करे। यद्यपि हाल ही में भू-राजस्व से प्राप्त होने वाली आय कम हुई है, किन्तु फिर भी यह उत्तरदायित्व अपना महत्त्व लिए हुए है।

चूँकि पटवारी ही पटवार क्षेत्र का एक मुख्य अधिकारी है, अतः अन्य वसूली भी इसके माध्यम से एकत्रित की जाती हैं। इस प्रकार की कुछ वसूलियाँ हैं– सिंचाई कर की वसूली, तकावी की वसूली तथा पंचायत समितियों द्वारा दिये गये ऋणों की वसूली तथा विभिन्न मामलों में किये गये जुर्मानों की वसूली।

जब कभी प्राकृतिक विपदा आती है तो पटवारी की सिफारिश पर ही यह वसूली स्थगित कर दी जाती है।

(3) राजस्व अभियान का संचालन

उल्लेखनीय है कि राजस्थान में कई अन्य राज्यों की भाँति राजस्व अभियान समय-समय पर संचालित किये जाते रहे हैं। पिछले लगभग 45 वर्षों में अलग-अलग समय पर संचालित इन राजस्व अभियानों में भू-अभिलेख को अद्यतन (अप-टू-डेट) करने के साथ-साथ ग्रामीण जनता की विभिन्न समस्याओं का समग्र रूप से समाधान करने की चेष्टा की जाती रही है। कृषि जोत, पास-बुक विवरण, 20-सूत्री कार्यक्रम, चकबन्दी अभिलेख तथा भू-अभिलेखों के आधुनिकीकरण से सम्बन्धित चलाये गये विभिन्न अभियानों के संचालन में पटवारी की भूमिका केन्द्रीय रही है।

(4) भूमि सुधार

जमींदार, जागीरदार तथा मध्यस्थों के महत्त्व को कम करने, बंधुआ कृषकों को मुक्त करने से सम्बन्धित कार्यों को प्रभावी ढंग से संचालित करने हेतु पटवारी का महत्त्व प्रभावशाली रहता है। राजस्थान में भूमि सुधार की प्रक्रिया बहुत धीमी गति से चल रही है किन्तु फिर भी यह प्रशंसनीय है कि पारम्परिक पिछड़े प्रदेश में भूमि सुधार जैसी प्रगतिशील प्रक्रिया ने अपनी जड़ें गहराई से बनाई हैं। इस हेतु जिस अधिकारी का सर्वाधिक सहयोग रहा है वह पटवारी ही है।

(5) समग्र ग्रामीण विकास

यद्यपि पटवारी राजस्व अधिकारी है तथा विकास कार्यों का उत्तरदायित्व ग्राम सेवकों का होता है किन्तु वास्तव में जनता पर ग्राम सेवकों की तुलना में पटवारी का प्रभाव अधिक रहा है। आज भी पटवारी के जनता से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है तथा विभिन्न विकास कार्यक्रमों में वह जनता के साथ जुड़ा है। एकीकृत ग्रामीण विकास, अन्त्योदय योजना, काम के बदले अनाज योजना, 20-सूत्री कार्यक्रम, इंदिरा आवास योजना, ग्रामीण युवा स्वास्थ्य एवं रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम आदि के संचालन में पटवारी की भूमिका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से महत्त्वपूर्ण है। गाँव के प्रत्येक सदस्य के साथ पटवारी का निरन्तर सम्पर्क एवं सम्बन्ध उसकी भूमिका को प्रभावशाली बनाता है।

(6) आपातकालीन सहायता

बाढ़, सूखा, अकाल, ओलावृष्टि, तूफान, अतिवृष्टि, अग्निकाण्ड, महामारी, टिड्डी दल आक्रमण द्वारा फसलों की क्षति आदि विपत्तियों के समय गाँव की जनता को राहत पहुँचाने का कार्य पटवारी का ही है। जब भी ऐसी कोई विपत्ति आती है तो गाँव में वन तथा पशु हानि तथा फसलों को हुए नुकसान के बारे में सम्पूर्ण विवरण उच्चतर अधिकारियों को पटवारी ही पहुँचाता है तथा इसी आधार पर राज्य सरकार द्वारा दी जाने वाली सहायता एवं ज़िलाधीश द्वारा किये जाने वाले अपेक्षित उपायों का निर्धारण होता है।

वास्तव में विपत्तियों व आपदा की स्थिति में हुई क्षति एवं हानि का आंकलन अत्यधिक जटिल कार्य है। यह केवल एक आर्थिक कार्य ही नहीं है, कई प्रकार के राजनीतिक दबाव भी पटवारियों पर पड़ते हैं कि वह इस आकलन/क्षति को बढ़ा-चढ़ाकर बताये जिससे कि उस क्षेत्र में राज्य सरकार की अधिक सहायता मिल सके। ऐसी स्थिति में पटवारी को काफी सूझ-बूझ व विवेक से कार्य करना पड़ता है।

(7) ग्रामीण सांख्यिकी

पटवारी अपने पटवार क्षेत्र के सभी ग्रामों की भू-राजस्व, फसल, पशुधन, सिंचाई आदि से सम्बन्धित सांख्यिकी का एकत्रण कर उन्हें ज़िलाधीश के माध्यम से राजस्व मण्डल को सम्प्रेषित करता है। इन सांख्यिकी को एकत्रित करने के लिए पटवारी को निरन्तर दौरे करने पड़ते हैं तथा विभिन्न स्रोतों से सूचनाओं को अद्यतन करना पड़ता है। यह काफी कठिन कार्य है किन्तु इस कार्य में प्रदर्शित कुशलता के माध्यम से ही विकेन्द्रीकृत योजनाओं का निर्माण भली प्रकार हो सकता है।

(7) विविध कार्य

पटवारी द्वारा सम्पादित अन्य कार्य इस प्रकार हैं:

(1) जन-गणना से सम्बन्धित कार्य
(2) जन-गणना कार्यों के आंकड़े, जन्म-मृत्यु के आंकड़ों का अभिलेख रखना
(3) भू-स्वामित्व से सम्बन्धित दस्तावेज प्रमाणित कराना
(4) नामांतरण (Mutation) से सम्बन्धित कार्य जो कि किन्हीं भी चार स्रोतों से सम्बन्धित हों:
    (क) विरासत, (ख) गिरवी, रहन, (ग) भू-रूपान्तरण, (घ) न्यायालय आदेश
(5) अभिलेखों की नकल तैयार करना
(6) उचित परामर्श हेतु प्रमाण-पत्र देना
(7) अल्प-बचत, लक्ष्य आपूर्ति में योगदान देना
(8) मतदाता सूची तैयार करने में सहयोग देना, आदि।

अतः स्पष्ट है कि पटवारी सम्पूर्ण ग्रामीण प्रशासन में एक आधारभूत भूमिका का निर्वाह करता है। उसकी कुशलता एवं निष्ठा पर ग्रामीण प्रशासन के राजस्व एवं वैकासिक आयामों की सफलता निर्भर करती है। सत्य तो यह है कि पटवारी की व्यवहार-कुशलता और ईमानदारी पर ही पूरा ग्रामीण प्रशासन टिका हुआ है। उसके द्वारा जाने-अनजाने में की गई गलतियाँ सम्पूर्ण प्रशासन के लिए भार बन सकती हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पिछली कई शताब्दियों से रूपान्तरित होने वाला राजस्व प्रशासन स्वतंत्रता के बाद विकास प्रशासन के साथ अन्तरगुंथित हो गया है। पटवारी से लेकर ज़िलाधीश तक सभी अधिकारी राजस्व प्रशासन के साथ-साथ अपने क्षेत्र में होने वाले वैकासिक परिवर्तन को भी दिशा प्रदान करते हैं। गाँवों की जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ सम्पूर्ण ग्राम, तहसील, उपखण्ड एवं ज़िला प्रशासन नई चुनौतियों का सामना कर रहा है। न केवल कार्यक्रमों की विविधता में वृद्धि

हुई है किन्तु उनके संचालन में आवश्यक प्रबोधन एवं नियंत्रण की प्रक्रिया एवं तकनीक भी अधिक जटिल हो गई है। कार्यभार से दबे हुए विभिन्न अधिकारी कई बार अपने उत्तरदायित्वों का पूरी तरह से वहन नहीं कर पाते।

सम्पूर्ण ग्रामीण प्रशासन को अब एकीकृत स्वरूप देने की आवश्यकता है। असंख्य परियोजनाओं को यदि एकीकृत किया जाये तो प्रशासन समन्वित ढंग से कार्य कर सकता है। ग्रामीण प्रशासन को समग्र दृष्टिकोण से समझा जाये तो इक्कीसवीं शताब्दी में भारतीय ग्रामीण विकास की उभरने वाली समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से पूर्वानुमान कर प्रशासनिक-तंत्र को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

□□□

अध्याय 21

राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण : संगठन एवं कार्य

राज्य कर्मचारियों को उनकी सेवा से सम्बन्धित कई शिकायतें समय-समय पर रहती हैं, जिनका समाधान, विधानानुसार एवं नियमानुसार होना आवश्यक है। कई शिकायतों का निपटारा तो प्रशासनिक स्तर पर ही हो जाता है, किन्तु कई ऐसे मामले हैं जिनका न्यायालय के माध्यम से ही हल संभव है। किन्तु यह भी विचारणीय है कि यदि सभी प्रशासनिक मामले न्यायालय के समक्ष लाये जाते हैं तो न्यायालयों का कार्यभार अतिरेक रूप से बढ़ जाता है। अतः इस सम्बन्ध में एक विवेकपूर्ण उपाय यह है कि अधिकांश प्रशासनिक विवादों का निपटारा प्रशासनिक न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत किया जाये।

भारत में प्रशासनिक न्याय की परम्परा अधिक पुरानी नहीं है। किन्तु पिछले तीन दशकों में इस ओर अधिक जागरुकता दिखाई दे रही है। न केवल केन्द्र सरकार के क्षेत्राधिकार में आने वाली सेवाओं से सम्बन्धित केन्द्रीय सिविल सेवा प्रशासनिक अधिकरणों की स्थापना हुई है, किन्तु राज्य सरकारों द्वारा भी इस प्रकार की अर्द्ध-न्यायिक संस्थाओं का निर्माण किया गया है।

स्थापना

राजस्थान सिविल सेवा (सेवा मामलों के लिए अपील अधिकरण) अधिनियम, 1976 के अन्तर्गत राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण की स्थापना 1 जुलाई, 1976 को की गई थी। पिछले 28 वर्षों से यह संस्था निरन्तर कार्य कर रही है तथा इनका प्रभाव राज्य प्रशासन पर स्पष्ट रूप से पड़ा है।

क्षेत्राधिकार

राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण का क्षेत्राधिकार सम्पूर्ण राजस्थान है। इसके क्षेत्राधिकार में वे सभी लोक सेवाएँ आती हैं, जिन्हें राजस्थान सरकार के राजपत्र में समय-समय पर अधिसूचित किया जाता है। किन्तु, निम्नलिखित संस्थाओं एवं सेवाओं के कर्मचारियों को इस अधिकरण के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया है:

(1) राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा
(2) राजस्थान न्यायिक सेवा
(3) राजस्थान उच्च न्यायालय
(4) राजस्थान विधान-सभा

(5) राजस्थान लोक सेवा आयोग

(6) राजस्थान लोकायुक्त कार्यालय

(7) राजस्थान सरकार के निगम एवं मंडल, स्वायत्तशाषी संस्थान तथा अर्द्ध-सरकारी कार्यालय।

राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण की अधिकारिता

1976 के राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण अधिनियम के अन्तर्गत अधिकरण को किसी राज्य सरकार के अधिकारी अथवा सक्षम अधिकारी द्वारा किसी राज्य कर्मचारी की वैयक्तिक हैसियत को प्रभावित करने वाले आदेश के विरुद्ध निम्नलिखित मामलों में अपील सुनने का अधिकार है:

(1) वरिष्ठता

(2) पदोन्नति

(3) पुष्टिकरण

(4) वेतन स्थिरीकरण

(5) किसी सरकारी कर्मचारी के वेतन, भत्ते, पेंशन तथा अन्य शर्तों से सम्बन्धित आदेश जो उसके अहित में हो

(6) उच्च सेवा, श्रेणी अथवा पद पर कार्य करते हुए किसी सरकारी कर्मचारी के निम्न स्तर की सेवा, श्रेणी अथवा पद पर पदावनति

(7) पेंशन रोकने अथवा पेंशन की मात्रा को कम करना

(8) किसी स्थान अथवा पद पर स्थानान्तरण

उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य मामले जो राज्य सरकार की राय में इस अधिकरण के क्षेत्राधिकार में आने चाहिए, वे इसके कार्य-क्षेत्र में सम्मिलित किए जा सकते हैं।

उल्लेखनीय है कि इसके समक्ष आए हुए अपील के सभी मामलों पर अधिकरण को यह अधिकार है कि वह सरकारी आदेशों को पुष्टि कर सकता है, उनमें परिवर्तन कर सकता है, उन्हें प्रत्यावर्त कर सकता है अथवा नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामलों को प्रतिप्रेषित कर सकता है। अधिकरण द्वारा पारित आदेश बाध्यकारी हैं तथा उनके विरुद्ध किसी भी न्यायालय में अपील नहीं की जा सकती, तथापि उच्च न्यायालय में इसके निर्णयों के विरुद्ध याचिका दायर की जा सकती है।

शक्तियाँ

राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण को अपनी प्रक्रिया के सम्बन्ध में ठीक वही शक्तियाँ प्राप्त हैं जो किसी सिविल न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अन्तर्गत किसी वाद पर विचार करते समय होती है। किसी व्यक्ति को सम्मन करने तथा उसकी उपस्थिति कराने, किसी दस्तावेज को प्रस्तुत करने तथा साक्षियों व दस्तावेजों के परीक्षण से सम्बन्धित यह शक्तियाँ इस अधिकरण को अपना कार्य सम्पन्न करने में सहायक होती हैं। जिस व्यक्ति का साक्ष्य यदि किसी छानबीन किये जाने वाले मामले में आवश्यक हो तो अधिकरण उसका साक्ष्य अभिलिखित कर सकता है।

अधिकरण की सम्मन प्रक्रियाएँ भारतीय दण्ड संहिता, 1960 की धारा 193 के अर्थों में न्यायिक प्रक्रियाएँ समझी जाती हैं। इसी प्रकार न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के प्रयोजनार्थ अधिकरण को एक सिविल न्यायालय के अधिकार हैं। तदनुसार अधिकरण निर्णयों को युक्तियुक्त समय के भीतर लागू करने का उत्तरदायित्व सरकार पर दें।

उल्लेखनीय है कि किसी सरकारी आदेश की तिथि से 60 दिवस के अन्दर-अन्दर राज्य कर्मचारी राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण में अपील कर सकता है। किन्तु यदि एक अपीलार्थी यह सिद्ध कर देता है कि वह पर्याप्त कारणों से इस नियत अवधि में अपील नहीं कर सकता तो इस कालावधि के पश्चात् भी अधिकरण अपील स्वीकार कर सकता है।

संगठन

राजस्थान सिविल सेवा (सेवा मामलों के लिए अपील अधिकरण) अधिनियम, 1976 की धारा 3 के अनुसार अधिकरण का अध्यक्ष भारतीय प्रशासनिक सेवा का अतिवरिष्ठ अधिकारी होता है।

अध्यक्ष के अतिरिक्त अधिकरण में दो अन्य सदस्य होते हैं, एक तो राजस्थान उच्च न्यायिक सेवा का अधिकारी तथा दूसरा राज्य सरकार का सेवारत अथवा सेवानिवृत अधिकारी।

अध्यक्ष एवं सदस्यों का सेवा काल सामान्यता तीन वर्ष का होता है, किन्तु राज्यपाल किसी विशेष कारणवश यदि चाहें तो अध्यक्ष अथवा किसी सदस्य की कालावधि के सम्पन्न होने से पूर्व भी प्रत्यावर्तित कर सकते हैं। किन्तु ऐसा देखा गया है कि इस अवधि से पूर्व ही सदस्यों का स्थानान्तरण हो जाता है। इसी कारण अधिकरण के कार्यों में निरन्तरता का अभाव रहा है।

अधिकरण का रजिस्ट्रार, राजस्थान प्रशासनिक सेवा का सुपर-टाइम वेतन शृंखला का अधिकारी होता है। रजिस्ट्रार के अधीन प्रशासनिक एवं मंत्रालयिक स्तर के कर्मचारी होते हैं। अधिकरण में एक सहायक रजिस्ट्रार, एक पुस्तकालयाध्यक्ष, दो कार्यालय सहायक तथा कनिष्ठ लेखाकार, शीघ्र लिपिक, वरिष्ठ एवं कनिष्ठ लेखाकार आदि कर्मचारी कार्यरत हैं। अधिकरण का संगठन इस प्रकार है :

राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण

संगठन एवं संरचना

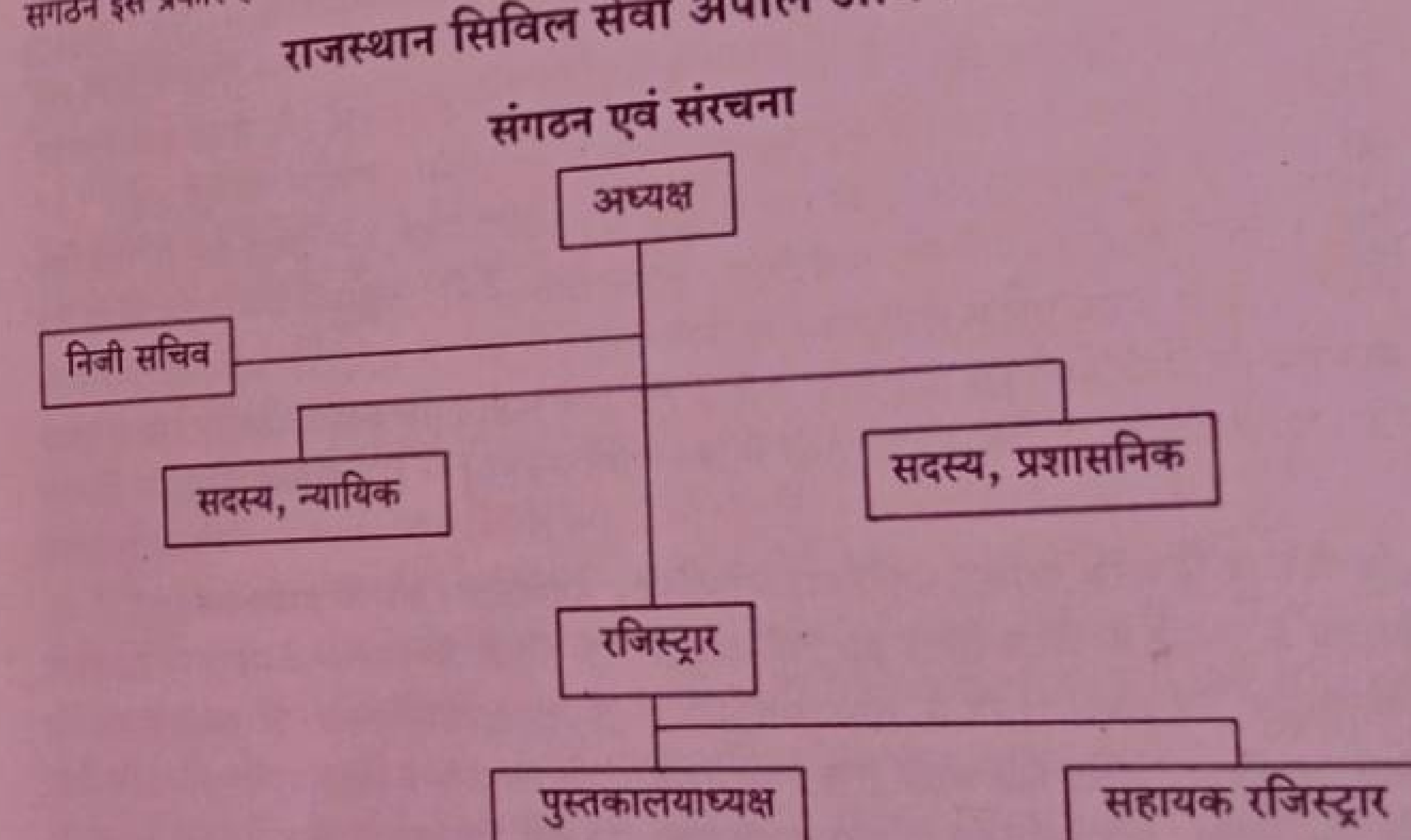

कार्य प्रणाली

अधिकरण की बैठकें एक "बैंच" के रूप में होती हैं जिनमें तीन में से दो सदस्यों (अध्यक्ष सहित) का एक साथ सुनवाई करना आवश्यक है। अधिकरण की बैठकें सप्ताह में 5 दिन (शनिवार के अतिरिक्त) नित्य प्रति होती हैं। अधिकरण की चल-पीठ जोधपुर, जिसकी स्थापना 30 अक्टूबर, 1996 को की गई, की प्रति माह दो दिवस के लिए नियमित बैठकें होती हैं।

स्थापना के वर्ष से 1998 तक अधिकरण का कार्य सामान्य गति से चला व इस दौरान काफी मामले बकाया हो गये। 1998 में श्री पशुपतिनाथ भण्डारी के अध्यक्ष बनने के पश्चात् मामलों का निपटारा द्रुत गति से हुआ। परिणामस्वरूप, 1999 के अन्त तक आते-आते काफी पिछले मामलों पर निर्णय ले लिया गया। यही द्रुत गति 1999 के अन्त में अधिकरण के नये अध्यक्ष श्री इन्द्रसिंह कावड़िया के कार्यकाल में रही। नवम्बर, 2000 तक 1998 तक के लगभग समस्त पिछले मामलों पर निर्णय लिया जा चुका था। साथ ही अधिकांश नये मामलों को भी निपटाया गया। पिछले पाँच वर्षों में अधिकरण ने नियमानुसार एवं दक्षतापूर्वक कार्य किया है। फिर भी प्रयत्न यह होना चाहिए कि मामलों की सुनवाई व निपटारे में अधिक विलम्ब न हो।

अधिकरण ने पिछले कुछ वर्षों में काफी साहसिक निर्णय भी लिये तथा स्थानान्तरण के मामलों में भी, जहाँ उन्हें अनुचित पाया, हस्तक्षेप किया। अपनी कुशलता एवं निष्पक्षता के फलस्वरूप अधिकरण की प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि हुई है तथा आशा है कि इसकी भूमिका अधिकाधिक सक्रिय होगी।

□□□

अध्याय 22

लोकायुक्त

जनकल्याणकारी शासन-प्रशासन व्यवस्था के लिए उसका स्वच्छ, पारदर्शी तथा भ्रष्टाचारमुक्त होना आवश्यक है। लेकिन भारत सहित विश्व के लगभग सभी देशों में कमोवेश किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार व्याप्त है। यह आज की समस्या नहीं है। यह मानवीय कमज़ोरी सदियों से व्याप्त है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट कहा गया है कि चाहे कितने भी सचेष्ट प्रयास क्यों न किये जायें राज्य शासन-प्रशासन में कुछ भ्रष्ट व्यक्ति अवश्य नियुक्त हो जाते हैं। उनको ढूँढ निकालना बहुत कठिन है बिल्कुल उसी तरह जिस तरह समुद्र में मछली को पानी पीते हुए देखना कठिन है।[1] कौटिल्य के अनुसार प्रभावशाली जासूसी व्यवस्था में इस समस्या का निराकरण कुछ सीमा तक सम्भव है। वे ऐसे व्यक्ति को कठोर दण्ड का उदाहरण जनता के सामने रखना चाहते हैं। सम्राट अशोक ने कौटिल्य द्वारा प्रतिपादित शासन के नियमों को लागू किया व कार्य के शीघ्र निस्तारण पर बल दिया।[2] मुगल काल में बख्शीश की प्रथा थी जिसके अनुसार दैनिक कार्य के लिए भी इसकी आवश्यकता पड़ती थी। अकबर के बाद के समय में लोक सेवा में काफी भ्रष्टाचार बढ़ गया था।[3]

ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भ्रष्टाचार की विरासत मुगल साम्राज्य से प्राप्त हुई। कम्पनी अधिकारियों को प्राप्त न्यून वेतन इसका एक बड़ा कारण था। ब्रिटिश-भारत में कहते हैं कि वायसराय तथा गर्वनर सेवामुक्त होने के पहले अपनी-अपनी रियासतों में जाया करते थे ताकि वहाँ से उपहार प्राप्त कर सकें। ऐसे में नीचे के अधिकारियों व कर्मचारियों में भ्रष्ट आचरण पाया जाना सामान्य था। पुलिस, राजस्व जैसे विभाग भ्रष्टाचार के लिए जाने जाते थे। निम्न श्रेणी की न्यायिक संस्थाएँ भी इससे अछूती नहीं थीं। द्वितीय विश्व युद्ध में वस्तुओं की कमी ने ऐसे वातावरण को बढ़ाने में मदद की।

स्वतंत्रत भारत के समक्ष सामाजिक पुनर्निमाण व राजनैतिक स्थिरता की बड़ी चुनौती थी, विशेषकर विभाजन के पश्चात् की स्थिति से निपटने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति व ईमानदार प्रयासों की आवश्यकता थी लेकिन स्वतंत्रता पश्चात् के प्रारम्भिक समय में ही भ्रष्टाचार की जड़ें पनपने लगी थीं। धीरे-धीरे घोटालों व भ्रष्टाचार की घटनाओं का एक न खत्म होने वाला सिलसिला शुरू हो गया। राजननीति व अपराध की निकटता, चुनावी भ्रष्टाचार, भूमि माफिया, काले धन की समस्या आदि ने राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था को अपने शिकंजे में जकड़ लिया। आज स्थिति यह है कि भ्रष्टाचार की कोई घटना यदि प्रकाश में आती है तो उस पर आश्चर्य नहीं होता। पंचायती

राज संस्थाओं, नगर निगमों तथा ग्रामीण विकास अभिकरणों के माध्यम में भ्रष्टाचार का विकेन्द्रीकरण हो गया है।[5]

शासन-प्रशासन में भ्रष्टाचार की समस्या से निपटने के लिए समय-समय पर प्रयास किये जाते रहे हैं। केन्द्रीय सरकार के स्तर पर केन्द्रीय सर्तकता आयोग इस प्रकार की संस्था है जिसे संथानम समिति की अनुशंसा पर प्रारम्भ किया गया था। राज्य स्तर पर राज्य सर्तकता आयोग गठित किये गये हैं। सभी राज्यों में सर्तकता आयोग नहीं हैं, कुछ राज्यों में भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो हैं जो लोक सेवकों से सम्बन्धित भ्रष्टाचार के मामलों की जाँच-पड़ताल करते हैं। राजस्थान में राजस्थान राज्य निरीक्षण ब्यूरो कार्यरत है जिसका प्रमुख अतिरिक्त महानिदेशक अथवा महानिदेशक होता है।

भारतीय दण्ड संहिता, भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, केन्द्र व राज्य स्तरीय सर्तकता तंत्र के अतिरिक्त कई प्रकार के सरकारी नियम, आचार-व्यवहार नियम तथा आदेश हैं जो भ्रष्टाचार पर नियंत्रण का कार्य करते हैं। सभी प्रकार के प्रयासों के बावजूद भ्रष्टाचार की जटिल समस्या को सुलझाना सम्भव नहीं हो पाया है।

लोक आयुक्त

भ्रष्टाचार की विकराल समस्या से निबटने के लिए राज्य स्तर पर लोक आयुक्त संस्था की स्थापना भारत में सर्वप्रथम उड़ीसा में 1970 में हुई। महाराष्ट्र में 1972, राजस्थान में 1973, बिहार में 1974, उत्तर प्रदेश में 1975, कर्नाटक में 1979, मध्य प्रदेश में 1981, आन्ध्र प्रदेश में 1983, गुजरात में 1986 तथा पंजाब में 1995 में लोक आयुक्त की स्थापना हुई। उड़ीसा व पंजाब में इस पद को लोकपाल के नाम से जाना जाता है। कुछ प्रदेशों में लोक आयुक्त के साथ उप-लोक आयुक्त के पद की भी व्यवस्था है जिसमें राजस्थान भी एक है। कुछ राज्यों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है तथा वे भ्रष्टाचार निवारण के परम्परागत तरीके से ही सन्तुष्ट हैं।

राजस्थान में लोक आयुक्त

राजस्थान-प्रशासनिक सुधार समिति (1963) ने अपने प्रतिवेदन में औमबुड्समैन जैसी कानूनी संस्था के गठन की सिफारिश की जिसका कार्य सरकार की कार्यपालिक कार्यवाहियों पर नज़र रखना तथा ऐसे मामलों, जिनमें सरकार की किसी एजेन्सी द्वारा की गई कार्यवाही या तो अवैध है या अन्यायपूर्ण, मनमानी अथवा विद्यमान नियमों या स्थापित पूर्वोदाहरणों की अति उल्लंघनकारी तथा उन मामलों, जिनमें भ्रष्टाचार का भ्रष्ट अभिकरण सम्मिहित हो, में अन्वेषण करना हो।[6] केन्द्रीय स्तर पर भी प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा ऐसी संस्था की स्थापना की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। राजस्थान में 3 फरवरी, 1973 को लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त के पद की स्थापना की गई। 28 अगस्त, 1973 को सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत न्यायाधीश श्री आई. डी. दुआ को प्रथम लोकायुक्त की शपथ दिलाई गई। उसके पूर्व 5 जून, 1973 को श्री के. पी. यू. मेनन को उप-लोकायुक्त के पद पर नियुक्त किया गया।

योग्यता

राजस्थान सहित देश के कुछ राज्यों जैसे महाराष्ट्र तथा बिहार में लोकायुक्त पद पर नियुक्ति के लिए विशेष योग्यता निर्धारित नहीं की गई है। इस दृष्टि से यहाँ फ्रौंस, इंग्लैण्ड तथा कनाडा के प्रान्तों जैसी

व्यवस्था अपनाई गई है जहाँ औमबड्समैन के लिए कोई न्यायिक योग्यता निर्धारित नहीं है, पर व्यवहार में सेवानिवृत न्यायाधीशों को नियुक्त करने की परम्परा है।

नियुक्ति तथा कार्यकाल

अधिकतर राज्यों में लोकायुक्त का कार्यकाल पाँच वर्ष या 65 वर्ष की आयु प्राप्त होने तक का है। पुनः पदस्थापना की कोई व्यवस्था नहीं है। राजस्थान सहित कुछ अन्य राज्यों जैसे महाराष्ट्र, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा असम में लोकायुक्त की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाती है। राज्यपाल नियुक्ति के पूर्व राज्य के मुख्यमंत्री, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तथा राज्य विधानसभा में विरोधी दल के नेता से सलाह करने के पश्चात् करता है। कुछ राज्यों में विरोधी दल के नेता की राय लेने की आवश्यकता नहीं है, जैसे आन्ध्र प्रदेश।

पदमुक्ति

लोकायुक्त तथा उप-लोकायुक्त को दुर्व्यवहार तथा अक्षमता के कारण ही पद से मुक्त किया जा सकता है। वह राज्यपाल को स्वयं भी त्यागपत्र सौंप सकता है।

अधिकार क्षेत्र

राजस्थान लोकायुक्त, उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 की धारा 7 के अनुसार निम्नलिखित मामलों में अन्वेषण लोकायुक्त या उप-लोकायुक्त द्वारा किया जा सकता है:

(i) मंत्री : राजस्थान राज्य की मंत्री-परिषद् का कोई सदस्य अर्थात् मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री। इसमें मुख्यमंत्री शामिल नहीं है।

(ii) राजस्थान राज्य के कार्यकलापों के सम्बन्ध में लोक सेवा में लोकपद पर नियुक्त कोई व्यक्ति।

(iii) (क) जिला परिषद् का प्रत्येक प्रमुख, उप-प्रमुख, पंचायत समिति का प्रधान, उप-प्रधान तथा राजस्थान पंचायत समिति तथा जिला परिषद् अधिनियम, 1959 के अधीन या उनके द्वारा गठित किसी भी स्थायी समिति का अध्यक्ष।

(ख) नगरपालिका, परिषद् का अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, नगरपालिका बोर्ड का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा राजस्थान नगरपालिका अधिनियम, 1959 के अधीन गठित किसी समिति का अध्यक्ष।

(iv) निम्नलिखित सेवा का प्रत्येक व्यक्तिः

(क) राजस्थान राज्य में कोई स्थायी प्राधिकरण;

(ख) राज्य अधिनियम के अधीन या द्वारा स्थापित कोई निगम;

(ग) सरकारी कम्पनियाँ;

(घ) राजस्थान सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1958 के अधीन रजिस्ट्रीकृत सोसाइटी।

(v) राजस्थान सरकार के सचिव, विशेष सचिव, अपर सचिव, संयुक्त सचिव आदि।

राजस्थान सहित कुछ राज्यों जैसे उड़ीसा, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में राज्य के मुख्यमंत्री को लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार के बाहर रखा गया है, जबकि मध्य प्रदेश, गुजरात, हिमाचल

प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री भी लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में शामिल हैं। उपरोक्त अधिकारियों के अतिरिक्त लोक सेवकों के विरुद्ध शिकायत सुनने का अधिकार भी लोकायुक्त को है। इस संस्थान की भूमिका सिफारिशी व परामर्शदात्री है।

संगठन

राजस्थान लोकायुक्त सचिवालय के संगठन में निम्नलिखित अधिकारी व कर्मचारी शामिल हैं:

पद नाम	कार्यरत संख्या	रिक्त पदों की संख्या
1. लोकायुक्त	1	
2. सचिव	1	—
3. उपसचिव	1	—
4. सहायक सचिव	1	—
5. निजी सचिव	1	1
6. अनुभाग अधिकारी	2	—
7. वरिष्ठ निजी सहायक	1	—
8. निजी सहायक	1	—
9. आशुलिपिक	1	—
10. सहायक	1	—
11. कनिष्ठ लेखाकार	1	—
12. वरिष्ठ लिपिक	3	—
13. सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष	1	—
14. कनिष्ठ लिपिक	6	1
15. जमादार	2	—
16. चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी	12	—
17. तामील कुनिन्दा	2	—

(*स्रोत : लोकायुक्त, राजस्थान के 30 वर्ष 1973-2003*, पृ. 61.)

राजस्थान में अब तक लोकायुक्त के पद पर दस व्यक्तियों की नियुक्ति हो चुकी है। 2004 के अन्त तक श्री मिलाप चन्द जैन, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय इस पद पर कार्यरत थे। उप-लोकायुक्त के पद पर सर्वप्रथम 5-6-1973 को श्री के. पी. यू. मेनन की नियुक्ति हुई थी। 25-6-1974 को उनके त्याग-पत्र दे देने के पश्चात् से यह पद रिक्त है।

कार्य-पद्धति

सिफारिश करना
लोकायुक्त सचिवालय का मुख्य दायित्व एक ओर दोषी लोक सेवक को दण्ड की
निर्वहन करता
है तो दूसरी ओर निर्दोष को संरक्षण प्रदान करना है। इस प्रकार यह दोहरी भूमिका का
द्वारा उक्त
है। अतः किसी लोक सेवक के विरुद्ध कोई शिकायत प्राप्त होने पर इस सचिवालय
यदि प्रारम्भिक जाँच
मामले में गहन जाँच करके सच्चाई की तह तक जाने का प्रयास किया जाता है।

के दौरान मामला प्रथम दृष्ट्या प्रमाणित नहीं हो पाता तो जाँच को बन्द कर दिया जाता है। इसके
विपरीत यदि प्रारम्भिक जाँच में आरोप प्रथम दृष्ट्या सही पाये जाते हैं तो राजस्थान लोकायुक्त तथा
उप-लोकायुक्त अधिनियम, 1973 की धारा 10 के अन्तर्गत उसके विरुद्ध अन्वेषण प्रारम्भ करने
के आदेश प्रदान किये जाते हैं। सम्बन्धित लोक सेवक को नोटिस भेजा जाता है ताकि वह अपने
बचाव में जवाब, स्पष्टीकरण– मौखिक या दस्तावेजी-साक्ष्य प्रस्तुत कर सके। इस प्रकार लोक
सेवक को अपना पक्ष रखने का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है। यदि आरोप आंशिक या पूर्णत
सिद्ध हो जाए तो सक्षम प्राधिकारी को अन्वेषण-प्रतिवेदन भेज दिया जाता है। लोक सेवक द्वारा
दण्डित अपराध किये जाने की स्थिति में अनुयशासनात्मक कार्यवाही की सिफारिश की जाती है।
यदि व्यवस्था में कमी के कारण भ्रष्टाचार का अवसर प्राप्त होने क सम्भावना प्रमाणित होती है तो
उस प्रक्रियाचलन में समुचित परिवर्तन के संशोधन या परिवर्तन का सुझाव दिया जाता है। यदि
शिकायत पूर्णतया मिथ्या एवं आधारहीन हो तो लोक सेवक की शिकायतकर्ता को अभियोजित
करने की अनुमति दी जाती है।[7]

राजस्थान सहित किसी भी राज्य में लोकायुक्त राज्य विधायिका के प्रति उत्तरदायी होता है।
इसका वार्षिक प्रतिवेदन विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता है तथा सामान्यतया इसकी अनुशंसाएँ
स्वीकार कर ली जाती हैं। यदि अनुशंसाओं की अनुपालना न हो तो लोकायुक्त द्वारा विधानसभा में
विशेष प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है। सामान्यतया लोकायुक्त को अंतरिम सिफारिश, सिफारिश,
विशेष प्रतिवेदन एवं वार्षिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार है।

जैसा कि पिछले पृष्ठों में स्पष्ट किया गया है इन दायित्वों के निर्वहन के लिए लोकायुक्त
सचिवालय की व्यवस्था है ताकि जाँच का कार्य उचित तरीके से पूरा किया जा सके। उन्हें यह
अधिकार है कि वे राज्य सरकार में आवश्यक फाइलें या प्रपत्र की माँग कर सकें। लोकायुक्त को
जाँच के लिए सम्बन्धित संगठनों व विभागों में निरीक्षण के लिए जाने का अधिकार प्राप्त है।
हिमाचल प्रदेश, असम व उत्तर प्रदेश को छोडकर अन्य राज्यों में लोकायुक्त को स्यू मोटू यानि जाँच
प्रारम्भ करने का अधिकार है।

महाराष्ट्र, बिहार, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक तथा असम में लोकायुक्त को शिकायत व आरोप दोनों के सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त है, जबकि राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात व हिमाचल प्रदेश में आरोप के सम्बन्ध में शिकायत की ही जाँच का अधिकार प्राप्त है। राजस्थान में शिकायतकर्ता को एक एफिडेविट प्रस्तुत करना होता है तभी उसकी शिकायत पर विचार हो सकता है, जबकि अन्य कुछ राज्यों में सिक्योरिटी मनी का प्रावधान है।

विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त

देश के विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त की व्यवस्था है पर सभी जगह अधिकार, क्षेत्र तथा कार्य विधि में विभिन्नता है।

राजस्थान में जन-सेवकों में मुख्यमंत्री, अन्य मंत्री, विधायक आदि को एक विशिष्ट अधिसूचना के तहत ही लोकायुक्त के क्षेत्राधिकार में लाया जा सकता है, जबकि अन्य राज्यों सामान्यतया उपरोक्त श्रेणी के व्यक्तियों को लोक सेवकों की सूची में शामिल किया गया है। कु राज्यों में विश्वविद्यालय के कुलपतियों व रजिस्ट्रार को भी लोक सेवकों की श्रेणी में रखा गया है

राजस्थान के लोकायुक्त द्वारा की जाने वाली जाँच व अन्वेषण कार्यवाही गोपनीय होती है, जबकि अन्य कुछ राज्यों जैसे दिल्ली, हिमाचल प्रदेश व मध्यप्रदेश के लोकायुक्त अधिनियमों में यह प्रावधान नहीं है। कुछ राज्यों में लोकायुक्तों को सम्पत्ति तथा अभिलेख की तलाशी तथा जब्ती का वारंट जारी करने का अधिकार है, जबकि राजस्थान में ऐसा नहीं है।

जहाँ तक लोकायुक्तों के कार्य सम्पादन की बात है यह पूरे देश में एक जैसा नहीं है। राजनैतिक नेतृत्व के सहयोग से कुछ राज्यों में लोकायुक्त अपने दायित्व का दक्षतापूर्वक निर्वहन कर पाये जबकि अन्य राज्यों में राज्य सरकार के असहयोगात्मक व्यवहार के कारण ऐसा सम्भव नहीं हुआ। आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल कुमुदबेन जोशी व मुख्यमंत्री एन.टी. रामाराव के मतभेद के कारण कुछ समय के लिए यह संस्था बन्द करनी पड़ी। उड़ीसा में भी जे.बी. पटनायक के मुख्यमंत्री काल में कई साल तक इस पर नियुक्ति नहीं की जा सकी। महाराष्ट्र में जब लोकायुक्त द्वारा दो मंत्रियों को गैर-कानूनी गतिविधियों में लिप्त पाया गया तो उस प्रतिवेदन को राजनीति से प्रेरित करार दे दिया गया।

ऐसा नहीं है कि लोकायुक्तों की अभी तक भूमिका में सकारात्मक कुछ भी नहीं रहा है। कुछ लोकायुक्तों ने उत्साहपूर्वक काम किया है। राजस्थान में 2002-03 में कुल प्राप्त परिवार 3425 थे जिसमें से 2341 को निपटाया गया तथा 110 परिवेदनाओं का निस्तारण किया गया। पर लोकायुक्त– राजस्थान के 30 वर्ष में कुल मिला कर यह अनुभव व्यक्त किया गया है कि वार्षिक प्रतिवेदनों को गम्भीरता से नहीं लिया जाता। संस्थान द्वारा जो सुझाव दिए जाते हैं उन्हें भी गम्भीरता से नहीं लिया जाता।

विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त के प्रतिवेदनों में स्पष्ट है कि अधिकतर शिकायतें लोक निर्माण, स्वास्थ्य, सिंचाई, नागरिक आपूर्ति, नगरपालिकाओं तथा सहकारी समितियों से सम्बन्धित रही हैं। कुछ कारणों में इन शिकायतों को स्वीकार नहीं किया गया।

लोकायुक्त संस्थानों की यह शिकायत है कि उन्हें पूरा सरकारी सहयोग प्राप्त नहीं होता। बिहार में एक मंत्री के आचरण से सम्बन्धित सूचनाएँ राज्य सरकार में आठ साल तक प्राप्त नहीं हो पाईं। अन्ततः मामले को बन्द कर देना पड़ा। जाँच के दौरान कई बार शिकायतकर्ता का ही पूरा सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता है। लोकायुक्त संस्थान की भूमिका बहुत उत्साहपूर्ण चित्र प्रस्तुत नहीं करती। कई राज्यों में तो इस संस्थान को प्रारम्भ ही नही किया गया, जबकि अन्य राज्यों में इन संस्थानों को अपनी वास्तविक स्थिति व क्षमता का ज्ञान नहीं है।

वस्तुत विभिन्न राज्यों में लोकायुक्त की भूमिका में विविधता ही उचित नहीं है। पूरे देश के सभी राज्यों में इस दिशा में एकरूपता की आवश्यकता है। लेकिन किसी राज्य के मुख्यमंत्री की पहल की आवश्यकता होगी जबकि वह अपने राजनीतिक दल के उद्देश्यों को सामने रखकर ही कार्य करेगा। इस दिशा में केन्द्र सरकार द्वारा पहल से समस्या का निदान हो सकता है। लोकायुक्त संस्था को अधिक सशक्त व अर्थपूर्ण बनाने के लिए विभिन्न सुझाव दिये गये हैं।

लोकायुक्त का सशक्तिकरण : कुछ सुझाव

1. लोकायुक्त के अधिकार क्षेत्र में मुख्यमंत्री को भी आवश्यक रूप से आना चाहिए।
2. पूर्व मंत्री व पूर्व लोकसेवकों को भी इसके दायरे में रखा जाना चाहिए।

3. लोकायुक्त को स्वयं जाँच प्रारम्भ करने का अधिकार होना चाहिए।
4. लोकायुक्त के पास अपनी स्वयं की जाँच करने की व्यवस्था होनी चाहिए। अगर यह दायित्व किसी और संस्था को दिया जाए तो कार्य शीघ्र गति से होना चाहिए।
5. सरकार को लोकायुक्त द्वारा जो अनुशंसाएँ भेजी जाती हैं उन पर सरकारी अधिकारियों द्वारा प्राथमिकता से विचार होना चाहिए। जो अधिकारी जान-बूझकर सूचनाएँ देने में विलम्ब करते हैं उन्हें कानून के तहत दण्डित किया जाना चाहिए।
6. लोकायुक्त द्वारा दी गई अनुशंसाओं की अनुपालना ठीक से हुई या नहीं इसके लिए एक विधायी समिति गठित की जानी चाहिए।
7. लोकायुक्त की अनुशंसा पर जो मामले उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किये जाएँ उनका शीघ्र निवारण न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए।[1]

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण-विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें काफी गहरी पहुँच चुकी हैं जिनमें सुधार के लिए गम्भीर व ईमानदार प्रयास की आवश्यकता है। ट्रान्सपरेन्सी इन्टरनेशनल करप्शन परसेप्शन इनडेक्स, 2000 के अनुसार भ्रष्टाचार की दृष्टि से भारत की स्थिति चिन्ताजनक है।

वस्तुतः लोकायुक्त जैसी व्यवस्था का प्रारम्भ ही समस्या का समाधान नहीं है अपितु जिस शासकीय व प्रशासनिक व्यवस्था में उसे कार्य करना है पहले उसमें सुधार की आवश्यकता है। भारत जैसे ग्राम-बहुल देश में जहाँ आबादी का बड़ा हिस्सा अभी भी अशिक्षित है व गाँवों में रह रहा है वहाँ प्रशासनिक नियमों, कानूनों आदि का सरलीकरण अत्यन्त आवश्यक है ताकि वे व्यवस्था को समझ सकें और उसके द्वारा हो रहे किसी अन्याय के विरुद्ध आवाज उठा सकें।

प्रशासन में कार्यरत अधिकारियों व कर्मचारियों को नवीन व परिवर्तित दृष्टिकोण के लिए शिक्षित, प्रशिक्षित करना आवश्यक है। राजनीतिक नेताओं, मंत्रियों, सांसदों व विधायकों के लिए आचार संहिता के वास्तविक क्रियान्वयन की आवश्यकता है। भूमण्डलीकरण के युग में यदि कोई देश बाहरी बड़ी कम्पनियों को निवेश के लिए आमंत्रित करना चाहता है तो उसे अपने देश में भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासनिकतंत्र प्रदान करना होगा।

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है– सम्पूर्ण समाज में एक अनुशासनबद्ध व्यवहार की। कार्य के प्रति समर्पण, समाज व राष्ट्र के प्रति उदार दायित्व का वातावरण तभी बनेगा जब शुरुआत हो सकेगी। हमारे देश में कुछ प्रशासनिक अधिकारियों ने अपने कार्य, आचरण व पद्धति में अनुसरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं– किरण बेदी, टी. एन. शेषन, जी. आर. खेरनार जैसे प्रशासनिक अधिकारियों ने उम्मीद की लौ जगाई है। सम्पूर्ण वातावरण में जब सकारात्मक परिवर्तन होगा तभी लोकायुक्त जैसी संस्थाएँ अपनी वांछित भूमिका निभा पायेंगी।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. *कौटिल्य अर्थशास्त्र*, अनुवादक आर. शामाशास्त्री (मैसूर : मैसूर प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिं 1967), पृ. 676.

भारत में राज्य प्रशासन

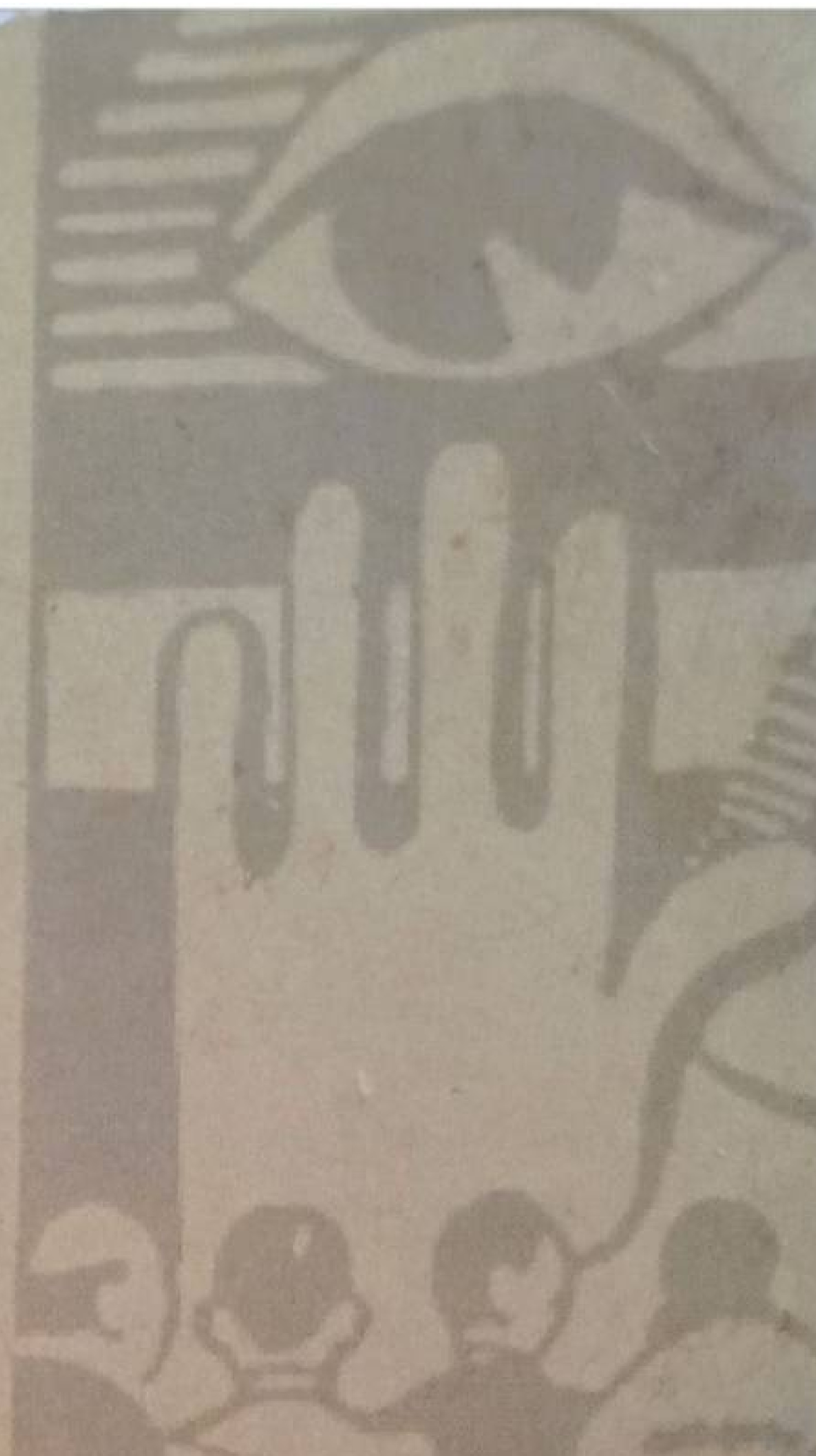

STATE ADMINISTRATION IN INDIA

रमेश अरोड़ा
गीता चतुर्वेदी

विषय-सूची

क्र. सं.	अध्याय	पृ. सं.
1.	भारतीय राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में 'राज्य' का स्थान	1
2.	राज्यपाल– पद, शक्तियाँ एवं भूमिका	23
3.	राज्य मंत्री-परिषद्	45
4.	मुख्यमंत्री	58
5.	राज्य शासन सचिवालय	73
6.	मुख्य सचिव	84
7.	राजस्थान सरकार का गृह विभाग	97
8.	वित्त विभाग	107
9.	कृषि विभाग (सचिवालय स्तर)	118
10.	राजस्व मण्डल	127
11.	राजस्थान राज्य विद्युत मण्डल का पुनर्गठन	136
12.	कृषि निदेशालय	147
13.	कॉलेज शिक्षा निदेशालय	158
14.	लोक सेवाओं की भूमिका	168
15.	राजस्थान लोक सेवा आयोग	174
16.	लोक सेवा में भर्ती	185
17.	प्रशिक्षण संस्थान : संगठन तथा कार्य	196
18.	राज्य सेवाओं में प्रशिक्षण	210
19.	ज़िलाधीश	230
20.	ज़िला प्रशासन	246
21.	राजस्थान सिविल सेवा अपील अधिकरण : संगठन एवं कार्य	257
22.	लोकायुक्त	261
23.	अभ्यासार्थ प्रश्न	269

❑❑❑

अध्याय 1

भारतीय राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में 'राज्य' का स्थान

पराधीन भारत देशी रियासतों तथा ब्रिटिश प्रान्तों में बँटा हुआ था। संवैधानिक विकास के विभिन्न चरणों में तथा स्वतंत्रता आन्दोलन के अन्तर्गत राजनैतिक सुधारों के माध्यम से प्रान्तों ने भी इकाइयों के रूप में पहचान बनानी प्रारम्भ कर दी तथा अधिकाधिक स्वायत्तता की ओर बढ़ने लगे। 1861 के भारत सरकार अधिनियम से ही इस व्यवस्था का उदय हुआ, जिसे प्रो. एम.वी. पायली ''बीसवीं सदी की भारतीय व्यवस्थापिकाओं का प्रारंभिक राजपत्र''[1] मानते हैं। 1892 के अधिनियम के द्वारा बंगाल, बम्बई, मद्रास तथा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की विधायी परिषदों का विस्तार हुआ। लेकिन प्रान्तों के सम्मानपूर्ण अस्तित्व प्राप्त करने की दिशा में 1909 के भारत सरकार अधिनियम को महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। तब न केवल प्रान्तीय विधायी परिषदों के आकार में वृद्धि की गई बल्कि अधिकारों को भी विस्तृत किया गया। प्रान्तीय परिषदों में गैर-सरकारी बहुमत की व्यवस्था की गई, यद्यपि ''गैर सरकारी बहुमत'' का तात्पर्य ''निर्वाचित बहुमत'' से नहीं था।[2]

इन परिषदों में भारतीयों का सम्मिलित होना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। प्रान्तों के सम्मानजनक अस्तित्व की दिशा में 1919 के भारत सरकार अधिनियम को दूसरा महत्त्वपूर्ण मोड़ माना जा सकता है। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय सरकारों को आंशिक उत्तरदायी शासन सौंपा गया था। साथ ही प्रान्तीय विधान परिषदों के आकार में वृद्धि भी की गई तथा निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि करके शासन को अधिक लोकतांत्रिक बनाया गया। पहली बार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के बीच शक्ति का विभाजन किया गया, अर्थात् आधुनिक स्वायत्त राज्यों की शुरुआत इसी प्रावधान के फलस्वरूप हुई। प्रान्तों को कुछ क्षेत्रों में स्वायत्तता व अधिकार प्रदान किये गये। केन्द्र के पास विदेश से सम्बन्धित विषय, सेना, डाक-तार आदि विषय थे तो प्रान्तों के पास शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि जैसे स्थानीय महत्त्व के विषय रखे गये, किन्तु प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई, यानि कुछ विषय ही लोकप्रिय मंत्रियों के पास थे, शेष शक्तियाँ गवर्नर व उसकी कार्यकारिणी के पास रहीं। भारत के प्रान्तों बंगाल, बिहार, मध्य प्रान्त, मद्रास, बम्बई, संयुक्त प्रान्त तथा उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में इस पद्धति को लागू किया गया। प्रान्तीय सरकारों को शक्तियाँ प्रत्यायोजित शक्तियों के रूप में मिलीं, इससे सरकार का स्वरूप एकात्मक ही रहा।

मुख्यमंत्री दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक दायित्वों से यदि अपने को मुक्त रखे तो वह शासन पर नियंत्रण एवं उसकी मोनिटरिंग अधिक कुशलता से कर सकता है। किन्तु तदोपरान्त यह अनुभव किया गया कि कतिपय अति महत्त्वपूर्ण नीतियों, नियुक्तियों, प्रशासनिक नियंत्रण, वित्तीय स्वीकृतियों आदि के मामले मुख्यमंत्री के पास अनुमोदन हेतु आने आवश्यक हैं। अतः 1 अप्रैल, 1999 को राजस्थान के राज्यपाल ने इस सिलसिले में संविधान के अनुच्छेद 166 की धारा 2 व 3 के तहत प्रदत्त अधिकारों के उपयोग के साथ कार्य संचालन नियमों में संशोधन किए हैं।

इस संशोधन के अनुसार अखिल भारतीय सेवाओं और राज्य-स्तरीय सेवाओं के अधिकारियों की नियुक्ति, स्थायीकरण और पदस्थापन के मामले प्रभारी मंत्री के पास जाने के साथ मुख्य सचिव के मार्फत मुख्यमंत्री की स्वीकृति के लिए भेजने आवश्यक थे। इस स्तर के अधिकारियों की बर्खास्तगी, हटाना या अनिवार्य सेवानिवृत्ति के मामले भी मुख्यमंत्री के पास स्वीकृति के लिए जाते थे। राज्य के सचिव, विशिष्ट सचिव, अतिरिक्त सचिव, विभागों के प्रमुखों की नियुक्ति एवं स्थायीकरण सम्बन्धी आदेश जारी किये जाने से पहले मुख्यमंत्री की स्वीकृति लेना आवश्यक था।

राज्य लोकसेवा आयोग के अध्यक्ष, सदस्य, सचिव एवं उप-सचिव की नियुक्ति के प्रस्ताव, विधान सभा भंग करने एवं चुनाव तिथि तय करने सम्बन्धी मामलों के आदेश भी मुख्यमंत्री की मंजूरी के बाद ही जारी होते थे। सरकारी विमान एवं हैलीकॉप्टर का संचालन, राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री की यात्रा, एक करोड़ रुपये से अधिक की सरकारी सम्पत्ति बेचने, स्थानीय निकाय, सहकारिता तथा पंचायती राज सहित सभी चुनी गई संस्थाओं को भंग करने, जनप्रतिनिधियों के खिलाफ कार्यवाही तथा विभिन्न विभागों, स्थानीय निकायों में सलाहकार समिति बनाने तथा किसी भी अन्य मानद नियुक्ति के मामले पर भी मुख्यमंत्री का निर्णय जरूरी था। लोक सेवक के पद पर रहते हुए सरकारी सम्पत्ति के नुकसान की भरपाई करने, विधायिका में सचिव, उपसचिव, सहायक सचिव की नियुक्ति और नीति सम्बन्धी मामलों में आदेश देने से पहले भी मुख्यमंत्री की स्वीकृति लेना आवश्यक था। राजभवन तथा राज्यपाल सम्बन्धी मामले, महाधिवक्ता, अतिरिक्त महाधिवक्ता और सरकारी वकीलों की नियुक्ति तथा वेतन सम्बन्धी मामलों के आदेश भी मुख्यमंत्री की जानकारी बिना नहीं किये जा सकते थे।

राज्य की शांति व्यवस्था को प्रभावित करने तथा साम्प्रदायिक तनाव एवं अशांति फैलाने वाले आंदोलन व राजनीतिक स्थिति के बारे में परोक्ष तथा विशेष रिपोर्ट भी मुख्यमंत्री की स्वीकृति के बाद ही जारी की जा सकती थी। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़ी जाति के हितों सम्बन्धी मामलों के आदेश भी मुख्यमंत्री की जानकारी के बाद ही जारी होते थे।

अतः श्री अशोक गहलोत के मुख्यमंत्रित्वकाल में मुख्यमंत्री की भूमिका में आधारभूत परिवर्तन हुआ। विभिन्न विभागों के दिन-प्रति-दिन के कार्यों से मुक्त होकर, वे सरकार के सभी विभागों की नीतियों एवं उनके निष्पादन पर पर्यवेक्षण कर सके। यह अनुभव अच्छा रहा। तथापि, कतिपय विशेषज्ञों का मत है कि मुख्यमंत्री को कुछ महत्त्वपूर्ण विभागों को अपने प्रत्यक्ष अधीन रखना ही चाहिए। इससे उन विभागों का राजनीतिक एवं प्रशासनिक महत्त्व तो बढ़ता ही है, मुख्यमंत्री को भी ह अवसर मिलता है कि वह विभागीय प्रक्रिया की पेचिदगियों से परिचित हो जिससे प्रशासनिक धार की आवश्यकताओं को वह और बारीकी से समझ सके।

सम्भवतः इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए श्रीमती वसुन्धरा राजे ने दिसम्बर, 2003 में मुख्यमंत्री का पद संभालते ही निश्चय किया कि कतिपय विभाग अपने प्रत्यक्ष अधीन रखेंगी। इसी कारण वित्त आयोजना, कार्मिक, प्रशासनिक सुधार, सूचना-प्रौद्योगिकी एवं संचार, पर्यटन आदि विभाग उन्होंने अपने अधीन रखे। यह सर्वमान्य व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत यह अवधारणा है कि 'मुख्यमंत्री' को 'मंत्री' भी बनना चाहिए।

श्रीमती वसुन्धरा राजे की कार्यशैली की एक विशेषता के बारे में जानना प्रासंगिक होगा। यह शैली आन्ध्र प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री चंद्रबाबू नायडू की भी थी। इस शैली के अन्तर्गत मुख्यमंत्री की प्रशासनिक भूमिका अति महत्त्वपूर्ण बन जाती है। वह राज्य सरकार की सभी संस्थाओं एवं कार्यक्रमों की प्रगति पर पूर्ण निगरानी निरन्तर रूप से रखता है जिससे यदि कहीं कोई निर्बलता हो तो उस पर तुरन्त काबू पाया जा सके। इस प्रकार मुख्यमंत्री अनवरत मोनिटरिंग के माध्यम से प्रशासन पर अपनी पकड़ प्रभावी ढंग से रख पाता है तथा प्रशासनिक कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।

इस प्रकार की मोनिटरिंग दो प्रकार की होती है। एक तो विभाग-बार होती है जिसमें मुख्यमंत्री एक-एक विभाग की प्रगति की जायज़ा समय-समय पर लेता है। दूसरी मोनिटरिंग सम्बान्धित विषयों के विभागों की समन्वित प्रगति से होती है। जैसे कृषि, सिंचाई, पशुपालन विभाग के विभागों के अधिकारियों से एक-साथ विचार-विमर्श करना। इस प्रकार की मोनिटरिंग बैठकों में सम्बन्धित विभागों में समन्वय स्थापित करने में सहायता मिलती है।

श्रीमती वसुन्धरा राजे ने अपने पद सम्भालते ही प्रथम 100 दिवस की कार्य-योजना बनाई। इस योजना के अन्तर्गत राज्य सरकार के प्रत्येक विभाग एवं स्वायत्त संस्था ने 100 दिनों में प्राप्त होने वाले लक्ष्यों को निर्धारित किया, जिसे उच्च-स्तर पर मंजूरी दी गई तथा जिसके क्रियान्वयन पर मुख्यमंत्री सचिवालय द्वारा निगरानी रखी गई। इसी प्रकार मुख्यमंत्री ने 17 मुख्य विभागों के लक्ष्य भी स्वीकृत किये। इस प्रकार के प्रयासों से सरकारी कामकाज में दक्षता एवं गुणात्मकता को बल मिलता है।

मुख्यमंत्री द्वारा विभागों का वितरण एवं फेरबदल अपने दल के लोगों को पुरस्कृत करने एवं योग्यता एवं अनुभव के आधार पर विषय आवंटित करने के उद्देश्य से किया जाता है। महत्त्वपूर्ण विभागों का प्रभारी बनाकर दल के वरिष्ठ सदस्य को महत्त्व व सम्मान दिया जाता है। इसके ठीक विपरीत महत्त्वपूर्ण विभाग से हटाना किसी मंत्री के प्रभाव को कम करने का सशक्त माध्यम हो सकता है।[12] मुख्यमंत्री सुखाड़िया के समय मथुरादास माथुर को वित्त मंत्रालय से हटाना ऐसा ही एक कदम था। शिवचरण माथुर ने चन्दनमल वैद से वित्त विभाग स्वयं ले लिया था और उन्हें राजस्थान नहर परियोजना विभाग सौंप दिया था। राजनीतिक दृष्टि से अतिरेक महत्त्व पाने वाले मंत्री का राजनीतिक कद विभाग परिवर्तन द्वारा छोटा किया जा सकता है। इस प्रकार मंत्री-परिषद् में विषयों का बंटवारा राजनीतिक एवं प्रशासनिक आधार दोनों पर किया जाता है।

प्रशासन की सफलता के लिए आवश्यक है कि मुख्यमंत्री, अन्य मंत्रियों एवं लोक सेवकों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हो। ऐसा वातावरण बनाने में मुख्यमंत्री महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। संवैधानिक दृष्टि से देखें तो राज्य में नीति-निर्माण का कार्य मुख्यमंत्री व अन्य मंत्री करते हैं किन्तु व्यावहारिक रूप से इस क्षेत्र में लोक सेवकों की भूमिका के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

नीति-निर्माण के लिए आवश्यक सूचना व आँकड़े लोक सेवकों द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। इस प्रकार वे नीति-निर्माण का आधार बनाते हैं। इसके अतिरिक्त मुख्यमंत्री व उनके सहयोगियों द्वारा बनाई नीति तभी सफल हो सकती है जब कि लोक सेवक उन्हें उसी भावना के अनुरूप कार्य रूप में परिणत करें। ऐसे में मुख्यमंत्री का अपने विभाग के मंत्रियों तथा लोक सेवकों के साथ परस्पर सम्बन्धों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है।

राजस्थान में मुख्यमंत्रियों का राज्य के लोक सेवकों के साथ आस्था एवं विश्वास का सम्बन्ध रहा है। विभिन्न विभागों के सचिव, लोक उपक्रमों के मुख्य कार्यपालक विभागाध्यक्ष, पुलिस महानिदेशक, जिला कलक्टर आदि अधिकारी आवश्यकता पड़ने पर मुख्यमंत्री को आवश्यक सूचनाएं देने के अतिरिक्त उससे निर्देश एवं परामर्श भी प्राप्त करते रहते हैं। ऐसे अनौपचारिक सम्बन्ध राजस्थान की प्रशासनिक संस्कृति की विशेषता रही है।

मुख्यमंत्री का सचिवालय

मुख्यमंत्री पद के बढ़ते दायित्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि उसकी सहायता के लिए योग्य व कुशल प्रशासकों का समूह हो। राजस्थान में मुख्यमंत्री सचिवालय की स्थापना 1951 में हुई थी। इस सचिवालय का मुख्य कार्य, मुख्यमंत्री द्वारा दिये गए निर्देशों का पालन राज्य सम्भाग व जिला प्रशासन द्वारा सही तरीके से हो रहा है या नहीं, यह देखना है। यह अपने कर्तव्यों के लिए मुख्यमंत्री के प्रति ही उत्तरदायी है। यह मुख्यमंत्री की यात्राओं व पत्राचार से सम्बन्धित मामलों के लिए जिम्मेदार है। लोगों की शिकायतों को दूर करना, मुख्यमंत्री कोष का प्रयोग, मुख्यमंत्री के आश्वासनों की अनुपालना आदि महत्वपूर्ण कार्यों को देखना इस सचिवालय का दायित्व है।

मुख्यमंत्री सचिवालय राज्य शासन का एक महत्वपूर्ण अंग है। पिछले तीन दशकों से इसका महत्त्व निरन्तर बढ़ रहा है। जिस प्रकार केन्द्र में प्रधानमंत्री कार्यालय की भूमिका एवं महत्त्व में निरन्तर अभिवृद्धि हुई है, उसी प्रकार राज्यों में भी मुख्यमंत्री सचिवालय का महत्त्व बढ़ रहा है। मुख्यमंत्री सचिवालय मुख्यमंत्री को राजनीतिक एवं प्रशासनिक दोनों प्रकार की सहायता प्रदान करता है। कुछ अधिकारियों की नियुक्ति विशेष रूप से राजनीतिक कार्यों के निष्पादन एवं समन्वय स्थापित करने के लिए होती है तो कुछ का कार्य-क्षेत्र मुख्य रूप से प्रशासनिक होता है।

मुख्यमंत्री सचिवालय का प्रशासनिक प्रमुख मुख्यमंत्री का सचिव होता है। सामान्यतया इस पद पर भारतीय प्रशासनिक सेवा का एक वरिष्ठ अधिकारी नियुक्त होता है, किन्तु गत कुछ वर्षों में इस सांगठनिक ढांचे में कतिपय परिवर्तन होते आ रहे हैं। दिसम्बर, 1998 से पूर्व मुख्यमंत्री सचिवालय में एक ही सचिव होता था। श्री अशोक गहलोत ने जब दिसम्बर, 1998 में मुख्यमंत्री का पद सम्भाला तो उन्होंने इस सचिवालय में दो सचिव नियुक्त किये। एक सचिव को 36 विषयों का कार्यभार सौंपा गया तथा दूसरे को 38 विषयों का। जो भी पत्रावली मुख्यमंत्री के पास निर्णय के लिए आती उसकी समीक्षा सम्बन्धित मुख्यमंत्री का सचिव करता तथा अपनी टिप्पणी के साथ मुख्यमंत्री को भेजता। इस राय के आधार पर ही मुख्यमंत्री द्वारा अधिकांश निर्णय लिये जाते थे। कई बार अनौपचारिक विमर्श के माध्यम से भी मुख्यमंत्री का सचिव अपनी राय मुख्यमंत्री को प्रदान करता है।

इसी बीच मुख्यमंत्री के प्रधान सचिव का पद सृजित किया गया। इस प्रकार मुख्यमंत्री कार्यालय में तीन वरिष्ठ अधिकारियों की नियुक्ति हो गई। यह व्यवस्था वर्ष 1999 से 2000 तक लगभग एक वर्ष रही। तत्पश्चात् यह पद दो रह गये। घट कर यह पद एक रह गया जिसे गहलोत काल में पुनः दो में रूपांतरित कर दिया। गहलोत सरकार के अंतिम तीन वर्षों में सामान्यतया मुख्यमंत्री के दो सचिव रहे।

दिसम्बर 2003 में जब श्रीमती वसुन्धरा राजे ने मुख्यमंत्री का पद सम्भाला तो एक ही मुख्यमंत्री के सचिव (श्री गोविन्द मोहन) की नियुक्ति हुई। सितम्बर 2004 में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किया गया। एक अतिरिक्त मुख्य सचिव स्तर के वरिष्ठ अधिकारी (श्री डी.सी. सामन्त) की नियुक्ति मुख्यमंत्री सचिवालय में की गई तथा इस प्रकार वहाँ दो उच्च-अधिकारी प्रतिष्ठित हुए।

अतिरिक्त मुख्य सचिव अन्तरविभागीय समन्वय, प्रमुख योजनाओं, परियोजनाओं व कार्यक्रम की मोनिटरिंग तथा विभिन्न विभागों की नीतियों सम्बन्धी कामकाज देखते हैं तथा वे महत्त्वपूर्ण एवं नीतिगत मामलों की फाइलों को भी देखते हैं। मुख्यमंत्री के सचिव के पास सभी विभागों की फाइलें जाती हैं। साथ ही वे जनप्रतिनिधियों के अभाव अभियोग, मुख्यमंत्री के यात्रा कार्यक्रम, बैठकों, प्रेजेन्टेशन, भाषण तथा मुख्यमंत्री की मुलाकातों के समय निर्धारण का कार्य देखते हैं। उल्लेखनीय है कि मुख्यमंत्री के सचिव ही जनसम्पर्क विभाग के सचिव हैं तथा मुख्यमंत्री स्वयं जनसम्पर्क मंत्री हैं।

मुख्यमंत्री सचिवालय में अधिकारियों की सूची इस प्रकार है:

1. अतिरिक्त मुख्य सचिव, मुख्यमंत्री
2. सचिव, मुख्यमंत्री
3. उपसचिव– 4
4. अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक (सुरक्षा)
5. अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक (सतर्कता)
6. विशेषाधिकारी (राजनीतिक कार्य)– 2
7. विशेषाधिकारी (प्रशासनिक कार्य)– 3
8. उपनिदेशक
9. संयुक्त निदेशक, जन-सम्पर्क
10. जनसम्पर्क अधिकारी– 2
11. प्रैस एटेची
12. निजी सचिव
13. लेखा अधिकारी
14. निजी सहायक (कुछ निवास एवं कुछ कार्यालय में)

उल्लेखनीय है कि मुख्यमंत्री कार्यालय के अधिकारियों से राजनीतिज्ञ भी निरन्तर सम्पर्क रखते हैं। पंच, सरपंच, प्रधान, जिला प्रमुख, नगर पार्षद, विधायक, सांसद आदि सभी श्रेणियों के राजनीतिज्ञ अपने क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याएं लेकर मुख्यमंत्री से सम्पर्क करना चाहते हैं। एक मुख्यमंत्री का सभी मामलों में प्रत्यक्ष दखल सम्भव नहीं होता। अतः अधिकांशतया मुख्यमंत्री का सचिवालय ही इन सभी मामलों का निबटारा मुख्यमंत्री के निदेशन में करता है। कई बार देखने में

अशोक शर्मा

1935 में संवैधानिक सुधार

दोषपूर्ण नीति व अव्यावहारिक क्रियान्वयन के कारण यह पद्धति सफल नहीं हुई। 1935 के संवैधानिक सुधारों के माध्यम से अखिल भारतीय संघ बनाया गया जिसमें 11 ब्रिटिश प्रान्त व छः चीफ कमिश्नर के क्षेत्र थे जो देशी रियासतों को मिलकर बने थे, अर्थात पहली बार देश का स्वरूप एकात्मक से संघात्मक स्वीकार किया गया। इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देते हुए प्रान्तों को अधिक शक्तिशाली व उत्तरदायी बनाया गया तथा द्वैध शासन समाप्त करके प्रान्तों को स्वशासित संवैधानिक आधार प्रदान किया गया।

शासन को लोकप्रिय मंत्रियों के नियंत्रण में किया जाना उत्तरदायी प्रशासन का आरंभिक रूप ही कहा जा सकता है। गवर्नर से अपेक्षा की गई थी कि वह मंत्रियों की सलाह पर शासन करेंगे। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत ही केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के क्षेत्रों को स्पष्ट किया गया तथा तीन सूचियों की व्यवस्था की गई– केन्द्रीय, प्रान्तीय तथा समवर्ती सूची। उल्लेखनीय है कि यही व्यवस्था आगे चलकर भारतीय संघात्मक व्यवस्था का आधार बनी। अखिल भारतीय महत्व के 59 विषय यथा– सेना, विदेश, डाक-तार आदि संघीय सूची में रखे गये जिन पर कानून बनाने का अधिकार संघीय व्यवस्थापिका का था। स्थानीय महत्त्व के 54 विषय यथा– शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, शांति जैसे विषय प्रान्तीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में थे, अर्थात् इन विषयों पर विधान बनाने के लिए प्रान्तीय व्यवस्थापिकायें स्वतंत्र थीं। समवर्ती सूची में 36 विषय थे [illegible]न पर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों व्यवस्थापिकाएँ कानून बना सकती थीं, लेकिन टकराव की स्थिति में संघीय व्यवस्थापिका का कानून ही मान्य होता। अवशिष्ट शक्तियाँ गवर्नर जनरल को प्रदान की गईं। प्रभावी क्रियान्वयन के अभाव में 1935 के अधिनियम की मूल भावना व्यवहार में परिणित नहीं हो पाई।

स्वाधीन भारत में राज्य का स्थान

स्वतंत्र भारत में शासन के स्वरूप पर विचार करते समय संविधान निर्माताओं के समक्ष स्पष्ट था कि राजनीतिक विरासत, आर्थिक स्थिति तथा सामाजिक-सांस्कृतिक वैविध्यपूर्ण देश के लिए संघात्मक व्यवस्था ही उचित होगी। अतः विविधता को एकता के सूत्र में बांधने का एक स्तुत्य प्रयास किया गया। स्वतंत्रता के तुरन्त पश्चात् तत्कालीन गृहमंत्री एवं उप-प्रधानमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा उनके गृह सचिव श्री वी.पी. मेनन ने संघात्मक पुनर्रचना का अति महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया। उनके भागीरथ प्रयासों के परिणामस्वरूप चार श्रेणी के राज्य अस्तित्व में आये।

स्वतंत्र भारत में प्रान्तों के स्थान पर ''राज्य'' शब्द का प्रयोग किया गया। प्रथम श्रेणी (ए सूची) में असम, बिहार, बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, संयुक्त प्रान्त, पश्चिम बंगाल व पंजाब सम्मिलित किये गये। कुछ समय बाद इस सूची में आन्ध्र प्रदेश को भी जोड़ दिया गया। ''बी'' श्रणी के अन्तर्गत हैदराबाद, जम्मू व कश्मीर, मध्य भारत, मैसूर, पटियाला तथा पूर्वी पंजाब राज्य संघ, राजस्थान, सौराष्ट्र, विन्ध्य प्रदेश तथा ट्रावनकोर-कोचीन राज्यों को शामिल किया गया। ऐतिहासिक कारणों से जम्मू व कश्मीर को इस श्रेणी में होते हुए भी विशिष्ट राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। ''सी'' श्रेणी में अजमेर, भोपाल, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, मणिपुर, त्रिपुरा को रखा गया तथा ''डी'' श्रेणी में अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह आये। इस प्रकार

एकीकरण योजना के द्वारा भारत के भौगोलिक, राजनैतिक व आर्थिक एकता के वांछित स्वप्न को साकार किया गया।[3] इसे एक रक्तहीन क्रांति की संज्ञा दी गई।[4]

शनैः-शनै यह अनुभव किया गया कि राज्यों के स्वरूप में परिवर्तन एवं पुनर्गठन की आवश्यकता है। अतः दिसम्बर 1953 में भारत सरकार द्वारा राज्य पुनर्गठन आयोग की, श्री फज़ल अली की अध्यक्षता में, स्थापना की गई। आयोग के अन्य दो सदस्य थे– श्री के. एम. पन्निकर तथा पं. हृदयनाथ कुंजरू। आयोग द्वारा 1955 में दिये गये प्रतिवेदन ने राज्यों को समान दर्जा देने तथा राजप्रमुख के पद को समाप्त करने का सुझाव दिया। तत्कालीन 27 राज्यों के स्थान पर 16 राज्यों व तीन केन्द्र-शासित सीमा क्षेत्रों की स्थापना का सुझाव दिया गया। जुलाई 1956 में आयोग के प्रतिवेदन में कतिपय संशोधन करके राज्य पुनर्गठन अधिनियम भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया, जिसके अन्तर्गत 14 राज्यों व 5 केन्द्र शासित प्रदेश बनाये गये। 1953 में आन्ध्र राज्य का गठन किया गया, जिसका नाम 1956 में आन्ध्र प्रदेश कर दिया गया। 1956 में केरल और मैसूर राज्यों का गठन किया गया। मैसूर राज्य का नाम 1973 में बदल कर कर्नाटक किया गया। 1960 में बम्बई राज्य का विभाजन कर महाराष्ट्र व गुजरात राज्य स्थापित किये गये। 1966 में नागालैण्ड को अलग राज्य का दर्जा दिया गया। 1966 में ही पंजाब के पंजाबी व हिन्दी भाषा के आधार पर दो भाग किये गये – पंजाब एवं हरियाणा। हिमाचल प्रदेश को राज्य का दर्जा 1971 में दिया गया। साथ ही 1971 में मणिपुर व त्रिपुरा को भी राज्य का दर्जा दिया गया। 1975 में सिक्किम, 1986 में मिजोरम व अरूणाचल प्रदेश को अलग राज्य का दर्जा दिया गया। 1987 में गोवा को भारत के पच्चीसवें राज्य का गौरव प्राप्त हुआ। 1991 में संविधान के 69वें संशोधन के द्वारा दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का विशेष दर्जा दिया गया था। नवम्बर 2000 में तीन नये राज्यों का निर्माण हुआ– छत्तीसगढ़, झारखंड एवं उत्तरांचल। अब भारत में 28 राज्य व 6 केन्द्र शासित क्षेत्र हैं। इन इकाइयों की सूची इस प्रकार है :

राज्य

1. अरुणाचल प्रदेश	11. तमिलनाडु	21. राजस्थान
2. आन्ध्रप्रदेश	12. नागालैण्ड	22. हरियाणा
3. असम	13. पंजाब	23. हिमाचल प्रदेश
4. उत्तर प्रदेश	14. पश्चिम बंगाल	24. सिक्किम
5. उड़ीसा	15. बिहार	25. त्रिपुरा
6. कर्नाटक	16. महाराष्ट्र	26. छत्तीसगढ़
7. केरल	17. मणिपुर	27. झारखंड
8. गुजरात	18. मध्य प्रदेश	28. उत्तरांचल
9. गोवा	19. मिज़ोरम	
10. जम्मू व कश्मीर	20. मेघालय	

-केन्द्र शासित प्रदेश

1. अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह	3. दमन व दीव	5. लक्षद्वीप
2. चण्डीगढ़	4. दादरा व नागर हवेली	6. पाण्डिचेरी

विशेष दर्जा (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)

दिल्ली

स्वतंत्र भारत में राजस्थान की स्थिति

राज्यों के वर्तमान स्वरूप में आने की विकास-यात्रा पर दृष्टि डालकर यह जानना उचित होगा कि स्वतंत्र भारत में राजस्थान ने अपना वर्तमान स्वरूप कैसे ग्रहण किया। राजस्थान में लम्बे समय तक देशी राजाओं का राज्य रहा। ब्रिटिश भारत में भी ये राज्य अंग्रेजी सरकार से अधिकार प्राप्त करते रहे। स्ववंत्र भारत में राजस्थान को वर्तमान स्वरूप में आने में कई चरणों की यात्रा करनी पड़ी, तब कहीं जाकर 1956 में राजस्थान वर्तमान आकार को ग्रहण कर पाया।

27 फरवरी, 1948 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली का विलय किया गया जिसे कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की सलाह पर ''मत्स्य संघ'' कहा गया। दूसरा चरण 25 मार्च, 1948 को पूरा हुआ जिसके अन्तर्गत कोटा, बूंदी, झालावाड़, बाँसवाड़ा, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, किशनगढ़, टोंक और शाहपुरा की रियासतों को मिलाकर ''राजस्थान संघ'' बनाया गया।

तृतीय चरण में उदयपुर रियासत का विलय किया गया, जिसके फलस्वरूप 18 अप्रैल, 1948 को ''संयुक्त राजस्थान'' का निर्माण हुआ। लेकिन जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर और सिरोही पाँच रियासतें ऐसी थीं जो अभी तक अपना अलग अस्तित्व बनाये हुए थीं। विलीनीकरण के अगले चरण में ''वृहद् राजस्थान'' में जयपुर, बीकानेर और जैसलमेर की रियासतें सम्मिलित की गईं। 30 मार्च, 1949 को जयपुर के ऐतिहासिक दरबार में आयोजित समारोह में सरदार पटेल ने राजस्थान राज्य का उद्घाटन किया।

मत्स्य संघ अलग अस्तित्व में तो आ गया था, पर अब तक स्वतंत्र था तथा ''वृहद् राजस्थान'' का अंग नहीं बना था। धौलपुर तथा भरतपुर के सामने अनिश्चितता की स्थिति थी कि वे उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में से किसके साथ सम्मिलित हों। काफी प्रयासों के पश्चात् 15 मई, 1949 को मत्स्य संघ राजस्थान का अंग बन गया। यह विलीनीकरण प्रक्रिया का पंचम चरण था।

सिरोही के विलय के प्रश्न पर भी मतभेद था। राजस्थानी तथा गुजराती नेता निर्णायक स्थिति में नहीं पहुंच पा रहे थे। अंततः सिरोही का विभाजन किया गया। आबू तथा दिलवाड़ा को बम्बई प्रान्त को सौंपा गया, शेष भाग का राजस्थान के साथ 7 फरवरी, 1950 को विलय कर दिया गया। इस निर्णय के विरुद्ध राजस्थान वासियों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई, फलतः छह वर्ष बाद 1956 में जब राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो ये हिस्से फिर राजस्थान में मिला दिये गये। एकीकरण के अंतिम चरण में 1 नवम्बर, 1956 को अजमेर का, जो तब तक ''सी'' श्रेणी का राज्य था, राजस्थान में विलय कर दिया गया तथा राजस्थान ने अपना वर्तमान आकार ग्रहण किया। 19 देशी रियासतों व 3 चीफशिप के क्षेत्रों ने एकतंत्र से मुक्त होकर लोकतंत्र के स्वतंत्र वातावरण में स्वच्छन्दता की खुली साँस ली। इस प्रकार राजस्थान भारत के संघ की अन्य राज्य इकाइयों की भाँति एक इकाई बन गया।[5]

भारतीय संघ में राज्यों की स्थिति

भारतीय संघ में राज्यों की स्थिति विशिष्ट है। विश्व में संघीय व्यवस्था के विभिन्न प्रतिमानों से यह किसी न किसी रूप में भिन्न है। भारतीय संघ विभिन्न राज्यों के मध्य समझौते का परिणाम नहीं है। यहाँ राज्य या राज्य के समूहों को यह अधिकार नहीं है कि संघ से अलग हो सके, न ही राज्य अपनी इच्छा से अपनी सीमाओं में परिवर्तन ही कर सकते हैं। इस प्रकार यह अमरीकी संघीय व्यवस्था से

भिन्न है। संघ निर्माण का दूसरा माध्यम केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनी इकाइयों को अधिकतम स्वायत्तता देना है। इस व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्यों में स्पष्ट शक्तियों का बंटवारा होता है। केन्द्र सूची के विषय केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में तथा राज्य सूची के विषय राज्य के अधिकार क्षेत्र में होते हैं। शेष विषय केन्द्र के अधीन होते हैं। यह व्यवस्था कनाडा में भी है। भारतीय संघ में स्थिति कुछ इसी प्रकार की है, पर जो व्यवस्था इसे विशिष्ट बनाती है वह है समवर्ती सूची की व्यवस्था। ये वे विषय हैं जिन पर केन्द्र तथा राज्य दोनों ही कानून बना सकते हैं। डा. बी. आर. अम्बेडकर ने भारतीय संघवाद को स्पष्ट करते हुए कहा था– ''यह केन्द्र में केन्द्रीय तथा राज्य में राज्य सरकार की स्थापना कर शासन के दो स्तर स्थापित करता है, जिनमें से प्रत्येक अपने क्षेत्र में संविधान द्वारा नियत सर्वोच्च शक्ति का उपभोग करते हैं।''[6]

इसी विशिष्ट व्यवस्था के कारण कुछ विद्वान भारतीय व्यवस्था को संघात्मक, कुछ अर्द्ध-संघात्मक तथा कुछ एकात्मक मानते हैं। डा. अम्बेडकर ने इसे संघीय संविधान के रूप में देखा[7] जिसमें केन्द्र में संघीय सरकार तथा उसके चारों ओर परिधि में राज्य सरकारें हैं। प्रसिद्ध सांसद एवं संविधानविद् श्री के. सन्थानम् ने भी संविधान को संघात्मक माना जिसकी संघात्मकता न्यायपालिका द्वारा सुरक्षित है, जिसे संवैधानिक संशोधनों के बिना भंग नहीं किया जा सकता है।[8]

प्रो. पॉल एच. एपलबी ने भारतीय संघ को अत्यधिक संघात्मक माना है।[9] प्रो. एलेक्ज़ेन्ड्रोविच भी इसे ऐसा संघ मानते हैं जिसमें सम्प्रभुता शक्ति में केन्द्र तथा राज्य सरकारें साझेदार होती हैं।[10]

उपर्युक्त अवधारणा के विपरीत कुछ भारतीय तथा विदेशी दोनों ही प्रकार के विद्वान इसे एकात्मक अथवा एकात्मक की ओर झुका हुआ संवधिान मानते हैं। प्रो. पी.टी. चाको, प्रो. के.सी व्हेयर तथा सर आइवर जेनिंग्स ऐसे ही विद्वान हैं। पी.टी. चाको इसे ऐसी संघीय एकात्मक व्यवस्था मानते हैं जिसमें घटक इकाइयाँ सदैव केन्द्र पर आश्रित रहेंगी।[11]

के.सी. व्हेयर भारतीय संघ में एकात्मकता के लक्षण देखते हुए मानते हैं कि इसमें गौण रूप से कुछ लक्षण संघात्मक व्यवस्था के हैं।[12] आइवर जेनिंग्स भारतीय संघ का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट करते हैं कि इसमें केन्द्रीयकरण की तीव्र प्रवृत्ति पायी जाती है।[13]

जब तक एक ही राजनैतिक दल (कांग्रेस) का केन्द्र एवं राज्यों में वर्चस्व रहा तब तक संघात्मक व्यवस्था की विकृतियों के बारे में विवाद नहीं छिड़ा। किन्तु 1967 के आम चुनाव के बाद राजनीतिक व्यवस्था में एक दलीय आधिपत्य की समाप्ति के पश्चात् राज्यों को अधिक अधिकार देने की माँग जोर पकड़ने लगी। 1971 में कुछ मुख्यमंत्रियों ने राज्यों को और अधिक स्वायत्तता देने के लिए संविधान में संशोधन की मांग की,[14] अन्यथा बांग्ला देश की घटना की पुनरावृत्ति की आशंका तक व्यक्त की गई।[15] इस सम्बन्ध में उठे विवाद की व्याख्या से पूर्व ये वांछनीय होगा कि भारत में केन्द्र व राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के प्रमुख आयामों का संक्षिप्त विवेचन किया जाए।

केन्द्र व राज्य में विधायी सम्बन्ध

संघीय व्यवस्था की आवश्यकता के अनुरूप भारत में स्पष्ट रूप से केन्द्रीय व राज्य सूची के विषयों को श्रेणीबद्ध किया गया है। इन विषयों पर दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में कानून बनाने के लिए स्वतंत्र हैं। समवर्ती सूची के विषयों पर केन्द्र तथा राज्य दोनों कानून बना सकते हैं। टकराव की स्थिति में केन्द्र को प्राथमिकता देने की व्यवस्था की गई है।[16] संविधान के भाग 11 के प्रथम अध्याय में

अनुच्छेद 245 से 255 तक संघ व केन्द्र के विधायी सम्बन्धों का उल्लेख है। संघीय सूची में मूल रूप से राष्ट्रीय महत्त्व के 97 विषय सम्मिलित किये गये थे,[17] यथा– देश की सुरक्षा, युद्ध व शांति, विदेशी मामले, डाक-तार, रेल, मुद्रा, बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, जनगणना, विदेशी ऋण इत्यादि। संविधान के 42वें संशोधन के बाद अब संघीय सूची में एक नया भाग 2 ए जोड़ा गया है जिसके अनुसार संघ के किसी सशस्त्र बल को किसी राज्य में असैनिक शासन की सहायता के लिए लगाना व उसकी शक्तियाँ निश्चित करना है। इस सूची के विषय संख्यात्मक व गुणत्मक दोनों ही दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

राज्य सूची में 66 विषय स्थानीय महत्त्व के हैं।[18] इस सूची का उद्देश्य राज्यों को स्थानीय विषयों में अधिकाधिक स्वायत्तता प्रदान करना है। इस सूची के कुछ विषय हैं– शिक्षा, स्वास्थ्य, पुलिस, जेल, पशुपालन, सिंचाई, राज्य के अन्दर व्यापार व वाणिज्य इत्यादि। संविधान के 42वें संशोधन के बाद राज्य सूची के कुछ विषय समवर्ती सूची में शामिल कर लिये गये हैं। अब राज्य सूची में **61 विषय** हैं। शिक्षा भी समवर्ती सूची में शामिल की गई है।

समवर्ती सूची में वे विषय शामिल थे,[19] जिनका स्थानीय महत्त्व तो है ही पर राष्ट्रीय स्तर पर भी इन विषयों पर समान कानून की आवश्यकता समझी जाती है। इनमें से कतिपय विषय हैं– विवाह, तलाक, श्रमिक समस्याएँ, कारखाने, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक व सामाजिक नियोजन, समाचार-पत्र इत्यादि। संविधान के 42वें संशोधन द्वारा पाँच विषय– शिक्षा, वन, वन्य पशुओं और पक्षियों की रक्षा, बांट और माप व न्यायिक प्रबन्ध को समवर्ती सूची में शामिल कर लिया गया है। अब इस सूची में **52 विषय** हैं।

केन्द्र को तुलनात्मक रूप से अधिक महत्त्व व शक्ति प्रदान करने की दृष्टि से अवशिष्ट शक्तियों के सम्बन्ध में अधिकार संघीय संसद को प्रदान किये गये हैं।[20] संयुक्त राज्य अमेरिका तथा स्विट्जरलैण्ड में ये शक्तियाँ संघ की इकाइयों के पास हैं। अमेरिका में किसी भी स्थिति में केन्द्रीय कांग्रेस (संसद) राज्यों के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकती। कनाडा में संसद न्यायालयों द्वारा निर्धारित राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों में केन्द्रीय सरकार प्रान्तों के क्षेत्र में प्रवेश कर सकती है। भारत में भी कुछ विशेष परिस्थितियों में केन्द्रीय संसद राज्य सूची में दिये गये विषयों पर कानून बना सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 249 के अनुसार राज्यसभा यदि दो-तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि एक विशिष्ट विषय राष्ट्रीय महत्त्व का हो गया है, तो संसद को यह अधिकार मिल जाता है कि राज्य सूची में अन्तर्निहित उस विषय पर कानून बना सके। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस व्यवस्था के लिए आपात स्थिति की घोषणा की आवश्यकता नहीं है। सम्बन्धित विषय के लिए "राष्ट्रीय महत्त्व" का होना ही पर्याप्त है। संसद द्वारा पारित ऐसा कानून एक वर्ष तक प्रभावी रहता है, राज्यसभा प्रस्ताव पारित करके उसकी अवधि एक वर्ष और बढ़ा सकती है। प्रस्ताव की अवधि समाप्त होने के छः माह बाद कानून निष्प्रभावी हो जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि दो या दो से अधिक राज्यों के विधान-मण्डल प्रस्ताव पारित करके राज्य सूची में वर्णित किसी विषय पर संसद से कानून बनाने का अनुरोध कर सकते हैं।[21] संसद द्वारा बनाया गया ऐसा कानून उन्हीं राज्यों में लागू होगा जिन्होंने ऐसी प्रार्थना की है।

अन्य राज्य भी अपनी विधान मंडलों में प्रस्ताव पारित करके उसे स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकार के कानून को संसद ही संशोधित या समाप्त कर सकती है।

कुछ विशेष विषयों से सम्बन्धित विधेयक राज्य विधान मंडल में तभी प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जब उन पर राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति प्राप्त कर ली जाय।[22] इसी कड़ी में संविधान द्वारा यह व्यवस्था भी की गई है कि कुछ विधेयक राज्य विधान मंडल द्वारा पारित कर दिये जायें, तब भी उन्हें लागू तभी किया जा सकेगा जब उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो जाए। राज्यों के राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख लें।[23] संसद के पास राज्य-सूची के विषयों में हस्तक्षेप करने के और भी तरीके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संधियों तथा समझौतों को लागू करने व उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए संसद किसी विषय पर कानून बना सकती है, भले ही वे विषय राज्य सूची के अन्तर्गत आते हों।[24] अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों व संस्थाओं द्वारा लिये गये निर्णयों को लागू करने के लिए भी संसद सम्पूर्ण देश या उसके भाग विशेष के लिए कानून बना सकती है।

संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रीय आपात की स्थिति में संविधान परिवर्तन संशोधन किये बिना ही देश का शासन एकात्मक हो जाता है।[25] ऐसे में संसद राज्य सूची में निहित विषयों पर कानून बना सकती है। राष्ट्रीय आपात के अतिरिक्त क्षेत्रीय आपात यानि राज्यों में संवैधानिक विफलता की स्थिति में भी राज्य विधान मंडल की शक्तियाँ संसद को प्राप्त हो जाती हैं। राज्य के राज्यपाल के प्रतिवेदन पर राष्ट्रपति उस राज्य में आपातकाल घोषित कर सकता है।[26]

इन सब प्रस्तावों के अतिरिक्त अन्य व्यवस्थाओं द्वारा संघ को प्राथमिकता प्रदान की गई है। कोई विषय यदि संघ व राज्य दोनों ही सूचियों में उल्लिखित है, तथा दोनों में किसी प्रकार का विरोध है तो संघ सूची को प्राथमिकता दी जायेगी।

केन्द्र व राज्य में प्रशासनिक सम्बन्ध

संघीय व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि संघ की इकाइयों में परस्पर सहयोग, समन्वय, समायोजन व सह-अस्तित्व की भावना भी होनी चाहिए। ऐसी भावना यदि स्वतः स्फूर्त एवं स्वेच्छा से उत्पन्न हो तो यह श्रेष्ठ स्थिति है। लेकिन किसी भी स्तर पर यदि ऐसी व्यवस्था बनाने में कठिनाई आये तो उस स्थिति से निपटने के लिए संवैधानिक प्रावधान होने श्रेयस्कर हैं। भारतीय संविधान के 11वें भाग के अध्याय 2 में अनुच्छेद 256 से 263 तक संघ व राज्य के मध्य प्रशासनिक सम्बन्धों की विवेचना की गई है। संविधान की आधारभूत प्रकृति के अनुरूप संघ को प्राथमिक तथा बेहतर स्थिति देने का प्रयास किया गया है। फलतः राज्यों के ऊपर संघीय नियंत्रण के कतिपय उपकरणों की व्याख्या संविधान में दी गई है। इसमें से कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रावधानों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है:

राज्यपालों की नियुक्ति व विमुक्ति

राज्यपाल राज्य में राष्ट्रपति का प्रतिनिधि होता है। राज्यपाल की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाती है। सिद्धांत रूप में राज्यपाल राज्य सरकार का नाममात्र का प्रधान है, पर वर्षों के अनुभव से पता चलता है कि वह केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। संविधान द्वारा प्रदत्त विवेकाधिकार उसकी स्थिति को मजबूत बनाते हैं व राज्य में अधिकार प्रयोग के अवसर प्रदान करते

हैं। राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल की वास्तविक शक्तियाँ पर्याप्त रूप से बढ़ जाती हैं। इस सम्बन्ध मे सविस्तार विवेचन आगे किया जायेगा।

केन्द्र द्वारा राज्यों को निर्देश देने की व्यवस्था

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 256 में यह उल्लेख किया गया है कि राज्य सरकारें कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करें कि जिससे संसदीय कानूनों की अनुपालना हो एवं केन्द्र की कार्यपालिका शक्ति के मार्ग में विरोध न हो। इस प्रावधान की अनुपालना हेतु केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को निर्देश दे सकती है। अनुसूचित जाति व जनजातियों के कल्याण सम्बन्धी योजनाओं की कार्यान्विति, प्राथमिकता स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने, सामान्य संकट, संवैधानिक संकट व वित्तीय संकट आदि कुछ ऐसे विषय हैं जिनके सम्बन्ध में केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को निर्देश दे सकती है। संविधान के अनुच्छेद 257 के अनुसार राष्ट्रीय व सैनिक महत्त्व के संचार साधनों के निर्माण व रखरखाव के लिए तथा राज्य की सीमा के रेल पथ की सुरक्षा उपाय करने के लिए संघ राज्यों को निर्देश दे सकता है।

केन्द्र द्वारा राज्यों के कार्यों को सीधे ग्रहण करना

कुछ परिस्थितियों में संघ सरकार राज्य के कार्यों को सीधे ग्रहण कर सकती है, यथा– किसी राज्य में संविधान के असफल होने पर राष्ट्रपति राज्य प्रशासन अपने हाथ में ले सकता है तथा संसद को राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने के निर्देश दे सकता है। इसके अतिरिक्त केन्द्र सरकार को यदि विश्वास हो जाए कि कोई राज्य सरकार संघीय निर्देशों के अनुकूल कार्य नहीं कर रही है तो राष्ट्रपति उचित कार्यवाही कर सकता है।[27] विदेशी सरकारों के साथ किये गये समझौतों के क्रियान्वयन के लिए भी संघ राज्य के कुछ कार्यों को ग्रहण कर सकता है।

संघीय कार्य राज्यों को सौंपना

संघीय कार्यों को राज्यों को सशर्त अथवा बिना शर्त सौंपने का प्रावधान भी संविधान द्वारा किया गया है।[28] ऐसी स्थिति में संघ द्वारा सौंपे गये कार्य का अतिरिक्त व्यय संघ को ही वहन करना होता है। इसी भाँति राज्य कार्यों को सशर्त या बिना शर्त संघ को सौंपा जा सकता है।[29]

संविधान का अनुच्छेद 261 संघ तथा प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक कार्यों, अभिलेखों और न्यायिक कार्यों को सारे देश में मान्यता प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में शर्तें संसदीय कानून द्वारा निर्धारित की जाती हैं।

यद्यपि राज्य में सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने तथा पुलिस बल गठित करने का दायित्व राज्य सरकार का है, लेकिन संघ का भी दायित्व है कि वह प्रत्येक राज्य की बाह्य आक्रमण व आंतरिक उपद्रव की स्थिति में उसे सुरक्षा प्रदान करे।[30] इस संवैधानिक व्यवस्था का प्रयोग करते हुए केन्द्र ने कई बार राज्यों से सलाह किये बिना केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को राज्यों में तैनात किया है। इस सम्बन्ध में संविधान के 42वें संशोधन द्वारा केन्द्र ने यह अधिकार प्राप्त कर लिया है कि ऐसा कदम उठाते समय राज्य की सलाह लेना आवश्यक नहीं। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद 257 में अतिरिक्त प्रावधान अनुच्छेद 257-ए के रूप में किया गया। साथ ही संघ सूची में प्रविष्टि 2-ए जोड़ी गई। संविधान के 44वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 257-ए को निरस्त कर दिया गया है। संघ द्वारा राज्यों को

बाह्य आक्रमण से सुरक्षा का प्रावधान अमरीकी संविधान में भी किया गया है। (अनुच्छेद 4, धारा 4) लेकिन संघ ऐसा कदम राज्य की प्रार्थना पर ही उठाता है जबकि भारत में संविधान के अनुच्छेद 355 के अनुसार केन्द्र राज्य की इच्छा के विरुद्ध भी ऐसा कदम उठा सकता है।

अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाएँ

अखिल भारतीय सेवाएँ भारत में ब्रिटिश शासन की विरासत हैं। भारतीय संविधान में अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय सेवाओं एवं राज्यीय सेवाओं सभी का प्रावधान है। अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य संघ, राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के उच्च प्रशासनिक पदों का उत्तरदायित्व संभालते हैं। भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं भारतीय पुलिस सेवा को अखिल भारतीय सेवाओं का दर्जा संवधिान के अस्तित्व में आने के साथ ही मिल गया था। भविष्य में भी संघीय वर्चस्व को बनाये रखने के उद्देश्य से यह व्यवस्था की गई थी कि यदि राज्यसभा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से यह प्रस्तव पारित कर देती है कि राष्ट्रीय हित में अखिल भारतीय सेवाओं के निर्माण में अन्य सेवा श्रेणियों की आवश्यकता है तो संसदीय कानून के द्वारा अन्य सेवा श्रेणियों की रचना की जा सकती है।[31] राज्यसभा ने इस प्रकार के प्रस्ताव दो बार 1961 तथा 1965 में पारित किये, जिनके अनुसार भारतीय अभियांत्रिकी सेवा, भारतीय वन सेवा एवं भारतीय चिकित्सा व स्वास्थ्य सेवा की रचना का प्रावधान किया गया। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 312 के अन्तर्गत अखिल भारतीय सेवाओं का गठन किया जा सका है– भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा।

अखिल भारतीय सेवाओं के गठन से निम्नलिखित सुप्रभाव हैं:

1. अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों की भर्ती, नियुक्ति, अनुशासन, सेवा की शर्तें, पद-विमुक्ति आदि की शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार के पास होने के कारण राज्यों में कार्य कर रहे इन सेवाओं के अधिकारियों पर राज्य सरकारें अनुचित दवाब नहीं डाल सकतीं। अतः ये अधिकारी अपने कर्तव्यों का निर्वाह निष्पक्षता से कर सकते हैं।
2. अखिल भारतीय आधार पर खुली प्रतियोगिता के माध्यम से चयनित इन सेवाओं के सदस्यों की योग्यता उच्च कोटि की होती है।
3. इन सेवाओं के सदस्य यद्यपि राज्यों में कार्यरत होते हैं, किन्तु इनमें से अधिकांश को केन्द्र सरकार में भी कुछ वर्ष कार्य करने का अवसर प्राप्त होता है। केन्द्र सरकार में कार्य करते समय इनका दृष्टिकोण विस्तृत एवं व्यापक बनता है। इस अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य का लाभ राज्य सरकारों को भी प्राप्त होता है।
4. इन सेवाओं के सदस्यों में विकसित अखिल भारतीय दृष्टिकोण सारे भारत में प्रशासनिक तंत्र के परिपेक्ष्य में वृहत् समरूपता लाने में सहायक होता है।
5. राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता स्थापित करने में भी ये सेवायें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
6. इन सेवाओं के माध्यम से केन्द्र-राज्य एवं अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों को बल मिलता है क्यों कि केन्द्र एवं राज्य सरकारों में कार्यरत अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्य पारस्परिक समझ एवं अन्तर्क्रिया से सहयोगात्मक वातावरण बनाने में सहायक होते हैं।

यह भी सत्य है कि इन अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से राज्य सरकारों पर केन्द्र सरकार का नियंत्रण परोक्ष रूप से बढ़ जाता है। यही कारण है कि इन सेवाओं की दक्षतापूर्ण उपलब्धि के बावजूद राज्य सरकारें इनका विस्तार नहीं चाहतीं।

अन्तर्राज्यीय परिषद्

राज्यों के मध्य समन्वय, विचार-विनिमय, परस्पर विवादों के निपटारे आदि के लिए अन्तर्राज्यीय परिषदों की स्थापना की गई है।[32] ये परिषदें राष्ट्रीय एकता तथा राज्यों के मध्य समन्वय व सहयोग स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं।

केन्द्रीय विकास कार्यक्रम एवं अनुदान

समय-समय पर केन्द्रीय सरकार विभिन्न वर्गों, विशेषतया निर्बल वर्गों के कल्याण के लिए कल्याणकारी योजनाएँ निरूपित एवं घोषित करती रहती है। इन योजनाओं में व्यय होने वाली राशि पूर्णतया अथवा अंशतः केन्द्र सरकार ही प्रदान करती है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन के मापदण्ड केन्द्र सरकार द्वारा ही निर्धारित होते हैं। जिन योजनाओं में केन्द्र सरकार की वित्तीय भागीदारी रहती है उनमें केन्द्र सरकार द्वारा निरूपित मानदण्डों एवं मानकों का पालन करना राज्य सरकारों के लिए आवश्यक होता है। इस प्रकार से कल्याणकारी योजनाएं केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को एक सहयोगात्मक रूप प्रदान करती हैं।

निर्वाचन आयोग

संविधान द्वारा निर्मित निर्वाचन आयोग केन्द्रीय संस्था है किन्तु इसका दायित्व राष्ट्रीय है। राष्ट्रीय संसद एवं राज्यीय विधान मंडलों एवं विधान परिषदों के चुनावों को कराने का उत्तरदायित्व चुनाव आयोग का होता है। चुनावों के दौरान राज्यों के चुनाव तंत्र, समस्त जिलाधीश सहित, चुनाव आयोग के निर्देशन में ही कार्य करते हैं। केन्द्र-राज्य सहयोग का यह एक उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

केन्द्र व राज्य में वित्तीय सम्बन्ध

भारतीय संविधान केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय स्रोतों के बारे में स्पष्ट निर्देश देता है, तथा राजस्व वितरण की व्यवस्था करता है। मुख्य आय करों तथा शुल्कों से होती है। इस दिशा में संघ तथा राज्य दोनों को पृथक्-पृथक् अधिकार दिये गये हैं।

संघ सरकार को उन विषयों पर कर लगाने का अधिकार है जिन्हें संघ सूची में कराधान के लिए स्वीकृत किया गया है, यथा– कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर, सीमा शुल्क व निर्यात शुल्क, तम्बाकू तथा भारत में निर्मित एवं उत्पादित वस्तुओं पर कर, निगम कर, कृषि योग्य भूमि को छोड़कर अन्य सम्पत्ति व उत्तराधिकार पर कर, विदेशी ऋण, लाटरियाँ आदि। इसी प्रकार राज्य सरकार को राज्य सूची के अन्तर्गत कराधान के लिए स्वीकृत विषयों पर कर लगाने का अधिकार है जैसे– भूमि कर, कृषि आय पर कर, कृषि योग्य भूमि के उत्तराधिकार पर शुल्क तथा कृषि योग्य भूमि पर सम्पत्ति शुल्क, वाहन चुंगी कर, विलासिता की वस्तुओं पर कर आदि।

उपर्युक्त व्यवस्था से यह प्रतीत होता है कि केन्द्र व राज्य में राजस्व का स्पष्ट विभाजन है तथा दोनों अपने-अपने क्षेत्र में हुई आय का उपयोग करने को स्वतंत्र हैं। राज्य में कर योग्य विषयों के बंटवारे को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि राज्यों के आय स्रोत काफी सीमित हैं तथा उन्हें अपने

अस्तित्व व विकास कार्यों के क्रियान्वयन के लिए काफी सीमा तक केन्द्र द्वारा प्रदत्त अनुदानों व ऋणों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः संविधान इस बात की भी व्यवस्था करता है कि संघ सरकार द्वारा लगाये जाने वाले करों और शुल्कों से प्राप्त होने वाली आय को कुछ मात्रा में राज्यों को भी दिया जाए। यह व्यवस्था कई प्रकार से की गई है:

- कुछ कर संघ द्वारा लगाये जाते हैं पर जिन्हें राज्य एकत्रित करते हैं तथा विनियोजित करते हैं, जैसे– औषधियों तथा प्रशासन पर शुल्क।
- संघ द्वारा लगाये जाने वाले तथा वसूल किये जाने वाले कुछ शुल्क हैं जिन्हें राज्यों को दे दिया जाता है, यथा– रेल, समुद्र या वायु द्वारा जाने वाली वस्तुओं पर सीमा शुल्क।
- संघ द्वारा लगाये व वसूल किये जाने वाले शुल्क जिन्हें संघ व राज्य में बाँट दिया जाता है, यथा– कृषि आय को छोड़कर अन्य आय कर।
- उत्पादन शुल्क (औषधि व प्रसाधन सामग्री के कुछ भाग के अतिरिक्त) से होने वाली आय संघ सरकार राज्य सरकार को दे सकती है। इन सभी राजस्व वितरण के सिद्धान्त को तय करने का अधिकार संसद को है।
- संघ की संचित निधि से राज्यों को अनुदान देने की भी व्यवस्था की गई है। यह राशि संसद द्वारा निर्धारित की जाती है। केन्द्र के अनुमोदन पर राज्यों द्वारा निष्पादित विकास कार्यों के लिए यह राशि प्रदान की जाती है।[33] यह राशि विभिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकती है।

संविधान द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि संघीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संसद अनुच्छेद 269 तथा 270 में उल्लिखित शुल्कों पर अधिभार लगा सकती है।[34] यह आय भारत की संचित निधि में जमा होती है। राज्यों को इसमें से हिस्सा प्राप्त नहीं होता।

इसी संचित निधि की सुरक्षा के आधार पर संघ सरकार विदेशों से तथा देश में ऋण ले सकती है।[35] इसी प्रकार की व्यवस्था राज्य सरकारों के लिए भी की गई है।[36] वे अपनी संचित निधि की सुरक्षा के आधार पर देश में ऋण ले सकती है, जिसकी सीमा मर्यादित है। राज्य सरकारों को विदेशों से ऋण लेने का अधिकार नहीं है।

संघ व राज्य के मध्य सहज वित्तीय सम्बन्धों को अंजाम देने के लिए संविधान वित्त आयोग की स्थापना की व्यवस्था करता है।[37] राष्ट्रपति प्रति पाँच वर्ष पश्चात् वित्त आयोग की स्थापना करता है जिसमें अध्यक्ष सहित चार सदस्य होते हैं। इन सभी की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। यह आयोग समय-समय पर संघ व राज्य के मध्य करों से होने वाली आय का विभाजन, भारत की संचित राशि में से दिये जाने वाले अनुदान के सम्बन्ध में सिद्धान्त निर्माण तथा वित्तीय व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए परामर्श देता है जिसे सामान्यतया संघ सरकार स्वीकार कर लेती है।

वित्तीय आपात स्थिति में राष्ट्रपति राज्यों की वित्तीय स्वतंत्रता को सीमित कर सकता है। राज्य विधान मंडलों द्वारा पारित वित्त विधेयक को विचारार्थ अपने पास मँगवा सकता है। इन प्रावधानों द्वारा निश्चित रूप से संघ राज्यों के वित्त पर पर्याप्त नियंत्रण रखता है।

नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के माध्यम से सारे देश के वित्त प्रशासन पर निगाह रखी जाती है। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राज्य के लेखा परीक्षक इसी अधिकारी के प्रतिनिधि होते हैं।

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध तथा नियोजन

भारत में नियोजन का आधार राष्ट्रीय है। सम्पूर्ण राष्ट्र को इकाई मानते हुए समन्वित विकास का लक्ष्य रखा गया है। यह कार्य योजना आयोग द्वारा किया जाता है। योजना आयोग की स्थापना तथा संगठन पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि यहाँ भी संघीय वर्चस्व को बनाये रखने की व्यवस्था की गई है। इसे संविधानेतर तथा वैधानिक संस्था के रूप में स्थापित किया गया। आशा की गई थी कि यह परामर्शदात्री तथा समन्वयकारी संस्था के रूप में काम करेगी। पर लम्बे समय की योजना आयोग की कार्य पद्धति ने सिद्ध किया है कि यह महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली इकाई के रूप में काम कर रही है। योजना आयोग का पदेन अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। केन्द्रीय सरकार के वित्त, रक्षा तथा कतिपय अन्य मंत्री एवं विशेषज्ञ इसके सदस्य होते हैं। योजना आयोग एक प्रारूप तैयार करता है जिसके आधार पर ही राज्य अपनी योजनाएं बनाते हैं, तथा योजना आयोग के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करते हैं। निर्णय लेने के पहले आयोग राज्यों के सम्बन्धित विभागों से परामर्श करता है। स्थानीय विकास के लिए भी योजना आयोग सिद्धान्त निर्माण करता है। उल्लेखनीय है कि राज्यों में स्थापित नियोजन मंडल लगभग निष्क्रिय हैं। वैसे भी राज्य सरकारों के स्वयं के संसाधनों के अभाव में वे अपनी स्वायत्त योजनाएं नहीं बना पाते हैं। अतः योजना आयोग के समक्ष राज्यों की ''सौदेबाजी'' की शक्ति कम हो जाती है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के माध्यम से भी संघीय अभिकरणों को पर्याप्त शक्ति प्राप्त हो गई है। कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जो राज्य सूची में हैं। पर राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए संघीय अभिकरण राज्य अभिकरणों को आवश्यक निर्देश देते हैं तथा अपने अधिकारियों द्वारा कार्यक्रमों की समय-समय पर जाँच व समीक्षा कराते हैं। यह व्यवस्था केन्द्रीकरण को बढ़ावा देती है।

नियोजन के अनुरूप विकास कार्यक्रमों को कार्यरूप में परिणित करने के लिए धन की आवश्यकता होती है। राज्यों के वित्तीय साधन सीमित होते हैं। अतः उन्हें अपने विकास कार्यक्रमों हेतु केन्द्रीय सरकार पर निर्भर रहना पड़ता है। संघ राज्यों को अपने अनुकूल योजनायें स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। राज्य भी अधिक अनुदान की उम्मीद से केन्द्र के अनुरूप चलने को बाध्य होते हैं। अनुदान भी दो प्रकार के होते हैं– प्रथम, कानूनी अनुदान जो बिना आयोग की सिफारिश पर दिये जाते हैं, दूसरे, विवेकाधीन अनुदान जो योजना आयोग की सिफारिशों पर दिये जाते हैं, इनकी मात्रा भी अधिक होती है। विवेकाधीन अनुदान सशर्त होते हैं, तथा राज्यों की बड़ी वैकासिक योजनायें इन्हीं अनुदानों से पूरी होती हैं। इस व्यवस्था से निश्चित रूप से केन्द्र का हस्तक्षेप बढ़ जाता है।

योजना आयोग के महत्त्व व निर्णायक भूमिका के कारण ही उसे भारतीय संघ की सर्वोच्च केबिनेट कहा गया है।[38] यद्यपि भारत के पहले प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू इसे परामर्शदात्री निकाय मानते थे। उनके अनुसार ''राज्यों के संदर्भ में इसके द्वारा कही गई प्रत्येक बात सोच-विचार

कर तथा राज्य के साथ हुए समझौते का परिणाम है।''[39] पर अशोक चंदा इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार केन्द्रीय कार्यपालिका के प्रोत्साहन व समर्थन से यह इतना महत्त्वपूर्ण निकाय बन गया है कि उसने संवैधानिक वित्त आयोग की सत्ता को अस्वीकार कर दिया।[40] यह भी कि योजना आयोग ने भारत में प्रजातंत्र व संघवाद दोनों को मात दे दी है। के. सन्थानम का मानना है कि नियोजन ने संघात्मक व्यवस्था को प्रतिस्थापित कर दिया है तथा हमारा राष्ट्र बहुत से मामलों में लगभग एकात्मक व्यवस्था की भाँति ही कार्य कर रहा है।[41]

वस्तुतः यह एक-पक्षीय मत है। योजना अयोग राज्यों पर अपने मत लादने का प्रयास नहीं करता बल्कि केन्द्र व राज्य सरकार के लिए संयुक्त रूप से काम करता है। यह भी उल्लेखनीय है कि पिछले दो-तीन वर्षों से योजना आयोग अधिक सक्रिय नहीं है। उदारीकरण के नवीन संदर्भ में योजना आयोग का महत्त्व कुछ कम हुआ प्रतीत होता है।

दूसरी ओर राष्ट्रीय विकास परिषद्, जिसमें केन्द्रीय मंत्रीमंडल के कतिपय सदस्य, योजना आयोग के सदस्य एवं राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल हैं, अपनी संघीय प्रकृति से केन्द्र-राज्य सम्बन्धों में संतुलन स्थापित कर सकती है, किन्तु इसकी बैठकें भी नियमित नहीं होतीं। कुल मिलाकर योजना व्यवस्था ने केन्द्र की शक्तियों को बढ़ाने में सहायता ही की है।

केन्द्र व राज्य के मध्य न्यायिक सम्बन्ध

भारत में एकीकृत न्यायिक व्यवस्था को अपनाया गया है जो भारत को इस क्षेत्र में विशिष्टता प्रदान करती है। राज्य के उच्च न्यायालय अपने क्षेत्र में सर्वोच्च हैं, किन्तु साथ ही उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने और उन्हें निर्देश देने का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को है। अन्य संघीय व्यवस्थाओं तथा अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में सर्वोच्च न्यायालय राज्यों के न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णयों के विरुद्ध अपील नहीं सुनते। वहाँ राज्य न्यायालय भी अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वायत्त रूप में करते हैं जिस पर संघ का नियंत्रण नहीं होता। इन देशों में संघीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार संविधान के प्रावधानों, राज्यों के मध्य उत्पन्न विवादों तथा संघीय संसद द्वारा बनाये कानूनों तक सीमित है।

भारतीय एकीकृत न्यायिक व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय किसी राज्य विधान मंडल द्वारा बनाई विधि की वैधता का परीक्षण कर सकता है। राज्य के उच्च न्यायालय भी संसद द्वारा बनाई गई विधि का परीक्षण कर सकते हैं। ऐसी व्यवस्था न्यायिक व्यवस्था को एकरूपता देने के लिए की गई है। सर्वोच्च न्यायालय अपील का उच्चतम न्यायालय है।

राज्य में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह पर उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को दूसरे राज्यों में स्थानान्तरण भी किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक ही उच्च न्यायालय की स्थापना संसद द्वारा की जा सकती है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की विमुक्ति में भी राज्य के राज्यपाल का हस्तक्षेप नहीं है। उन्हें हटाने का अधिकार राष्ट्रपति को है। संसद के दोनों सदनों में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करने के पश्चात् उन्हें अपने पद से राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है।

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध : संविधान संशोधन के संदर्भ में

संविधान संशोधन के लिए विभिन्न व्यवस्थाओं में भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं। संघात्मक व्यवस्था में राज्यों का स्थान महत्त्वपूर्ण होने के कारण उन्हें भी इस प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार होता है। अमेरिका में राज्यों को संविधान संशोधन के लिए पहल करने का अधिकार है।[42]

भारत में राज्यों की स्थिति अधीनस्थ जैसी है। केन्द्र को तुलनात्मक रूप से अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया गया है। संविधान संशोधन के क्षेत्र में भी इसी सिद्धान्त के अनुरूप व्यवस्था की गई है। यहाँ संविधान संशोधन के लिए राज्यों को पहल करने का अधिकार नहीं है। सामान्यतया संसद के दोनों सदनों के एक-तिहाई बहुमत से संविधान संशोधन विधेयक पारित किया जा सकता है। तत्पश्चात् राष्ट्रपति की स्वीकृति लेनी आवश्यक है तभी संशोधन मान्य होता है। कुछ क्षेत्र ऐसे होते हैं जहाँ आधे से अधिक राज्यों के समर्थन के पश्चात् ही संशोधन प्रभावी हो सकता है, यथा– संघ तथा राज्य की कार्यपालिका शक्ति का क्षेत्र, राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया, संघीय न्यायपालिका व राज्यों के न्यायालयों से सम्बन्धित प्रावधान आदि। यह विषय सूची स्पष्ट करती है कि राज्यों की सहमति उन्हीं संविधान संशोधनों तक आवश्यक है जहाँ संशोधन से वे प्रभावित होते हैं।

केन्द्र-राज्य सम्बन्ध : टकराव के मुद्दे

राजनीति के क्षेत्र में सत्ता का केन्द्रीकरण व अधिकाधिक ग्राह्यता सदैव संघर्ष का कारण रहा है। स्वतंत्रता के तुरन्त बाद केन्द्र व राज्य में विवाद के मुद्दे अधिक नहीं उठे थे। केन्द्र व राज्य में समान सिद्धान्तों वाले एक ही दल का शासन था, अतः थोड़े बहुत मतभेद उठते भी थे तो आपसी सहमति से शान्त हो जाते थे। 1967 के बाद केन्द्र में तो कांग्रेस ही शासक दल रही लेकिन राज्यों मे दूसरे राजनैतिक दल सत्ता में आये जिन्होंने स्वतंत्र या गठबन्धन सरकारें बनाईं। फलतः सैद्धान्तिक मतभेद तो स्पष्ट था ही, जो तनाव के बिन्दु थोड़े थे या दबे हुए थे वे स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आ गये। पिछले तीन दशकों में केन्द्र-राज्य सम्बन्धों को कई उतार-चढ़ावों का सामना करना पड़ा है।

राज्यों को शिकायत है कि **राज्यपाल** जो कि राज्य में केन्द्र का प्रतिनिधि है तथा राज्य को अपने अनुभव का लाभ देने के लिए उत्तरदायी है, का दुरुपयोग केन्द्र ने अपने स्वार्थी हितों के लिए बार-बार किया है। 1967 में पश्चिम बंगाल के राज्यपाल धर्मवीर ने विधान सभा में भाषण के दो पैराग्राफ नहीं पढ़े। भाषण अजय मुखर्जी के मंत्रीमंडल द्वारा तैयार किया गया था। सामान्यतया राज्यपाल उसे यथावत् ही पढ़ता है। इसी प्रकार उन्होंने कुछ प्रशासनिक क्षेत्रों में भी हस्तक्षेप किया जो अपरम्परागत था।[43] 1973 में बिहार के राज्यपाल आर. डी. भण्डारे के राज्य राजनीति व प्रशासन में अनाधिकार हस्तक्षेप के कारण बिहार काँग्रेस विधान दल के महासचिव ने उन्हें केन्द्र वापिस बुलाये जाने की माँग की क्योंकि उनकी उपस्थिति प्रशासन में न केवल बाधा उत्पन्न कर रही थी बल्कि राज्य के लोगों के हितों का भी हनन कर रही थी।[44]

वस्तुतः राज्यपाल की नियुक्ति ही मनमानीपूर्ण रही है। राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से सलाह लेने की परम्परा का निर्वाह अधिकांशतः नहीं किया जाता। राज्यपाल ने यदि केन्द्र के निर्देशानुसार काम नहीं किया तो समय पूर्व हटा दिया गया। राज्यपालों का प्रयोग

राज्य में विपक्ष की सरकारों को अलोकतांत्रिक तरीके से गिराने के लिए किया गया। राज्यपालों को इसलिए कतिपय सूत्रों में केन्द्र का 'एजेन्ट' कहा गया है। माना कि सभी राज्यपालों के सम्बन्ध में यह आक्षेप उचित नहीं है, किन्तु फिर भी यह स्पष्ट है कि कई बार राज्यपालों ने केन्द्र के राजनीतिक दबावों में जो निर्णय लिये उससे उनके पद की गरिमा पर आँच पहुँची है।

राज्यों में केन्द्र द्वारा **अर्द्ध-सैनिक बलों का प्रयोग** व उसकी पद्धति भी शिकायत का बड़ा कारण रही है। सामान्यतः अर्द्ध-सैनिक बलों का प्रयोग राज्य की प्रार्थना पर राज्य में शांति बहाल करने के लिए किया जाता है लेकिन व्यवहारतः इसका प्रयोग केन्द्र ने मनमाने तौर पर किया। 1968 में केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के हड़ताल पर जाने पर केन्द्रीय सुरक्षा बलों को केरल में तैनात किया गया जिसका वहाँ के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री ई.एम.एस. नम्बूद्रीपाद ने विरोध किया। 1968 में पश्चिमी बंगाल के गृहमंत्री श्री ज्योति बसु ने भी बिना आवश्यकता के तथा प्रार्थना के केन्द्रीय सुरक्षा बलों की तैनाती पर आक्रोश जाहिर किया था।[45] इन शिकायतों से बचने के लिए कानून व व्यवस्था को समवर्ती सूची में शामिल करने के बारे में गंभीरता से विचार होने लगा। आपातकाल में 42वें संविधान संशोधन द्वारा केन्द्र को अधिकार प्रांप्त हो गया था कि वह केन्द्रीय सुरक्षा बल तथा सीमा सुरक्षा बलों को देश में कहीं भी तैनात कर सकता है। यद्यपि केन्द्रीय सरकार इस अधिकार का प्रयोग सामान्यतया सम्बन्धित राज्य सरकार से विचार-विमर्श के पश्चात् ही करती है।

संघ द्वारा अनुच्छेद 356 का यानि राज्यों में **राष्ट्रपति शासन** लागू करने के अधिकार का प्रयोग मनमाने व असंवैधानिक तरीके से किया गया है। वस्तुतः राज्यों की विरोधी दलों की सरकारों को गिराने के लिए इस संवैधानिक प्रावधान का दुरुपयोग किया गया।[46] अब तक एक सौ से भी अधिक बार राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा चुका है। राजस्थान में अब तक चार बार राष्ट्रपति शासन लागू किया जा चुका है। 1984 में आन्ध्र प्रदेश में रामाराव सरकार, 1987 में पंजाब में सुरजीत सिंह बरनाला सरकार, 1991 में तमिलनाडु में करुणानिधि सरकार को बर्खास्त करके राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। दिसम्बर, 1992 में इकट्ठे राजस्थान, मध्य प्रदेश व हिमाचल प्रदेश की सरकारों को गिराना अपने आप में इतिहास है। यद्यपि ऐसा नहीं है कि अनुच्छेद 356 का उपयोग हर समय गलत ढंग से ही किया गया हो। पंजाब तथा कश्मीर में इसका उपयोग सुरक्षा आवश्यकताओं व राजनीतिक स्थिरता के लिए किया गया है। किन्तु एक प्रावधान का कई बार दुरुपयोग उसके प्रति शंका पैदा कर देता है। इसी कारण 1998 के संसदीय चुनावों के पश्चात् इस बात पर बल दिया जा रहा है कि अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग बंद कर दिया जाए चाहे इस हेतु संविधान का संशोधन ही क्यों न करना पड़े। 1999 के आरम्भ में बिहार में कानून एवं व्यवस्था की समस्या को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति शासन की घोषण की गई, किन्तु राज्यसभा में इस प्रस्ताव के समर्थन हेतु बहुमत न मिलने की संभावनाओं को देखते हुए, इस घोषणा को कुछ ही सप्ताह में निरस्त कर दिया गया।

राज्य सरकारों को यह भी शिकायत है कि **वित्तीय साधनों पर नियंत्रण** तथा **योजना आयोग** के माध्यम से केन्द्र सरकार राज्यों पर निरन्तर दबाव बनाये रखती है तथा इन माध्यमों से राज्यों की हैसियत अधीनस्थों जैसी हो गई है। सिद्धान्त रूप में केन्द्र व राज्य में आय स्रोतों की पृथक् व्यवस्था है पर व्यवहारिक रूप में वित्तीय संतुलन केन्द्र की ओर झुका हुआ है। समय के अन्तराल में नियमों व कानूनों में परिवर्तन संशोधन करके आय के स्रोतों पर धीरे-धीरे केन्द्र ने कब्जा जमा

लिया है। अनुदान का बंटवारा भी न्यायोचित व राज्यों की आवश्यकतानुसार न होकर शीर्ष में सत्ताधिकारियों की इच्छा पर ज्यादा निर्भर है। जहाँ तक योजना आयोग की कार्यशैली का प्रश्न है, पिछले पृष्ठों में यह स्पष्ट हो चुका है। योजना आयोग इतना शक्तिशाली हो चुका है कि इसने वित्त मंत्रालय को भी पृष्ठभूमि में कर दिया है। योजना आयोग के अध्यक्ष स्वयं प्रधानमंत्री होते हैं। अन्य सदस्य भी उनकी इच्छानुसार उनके सुझाव पर नियुक्त किये जाते हैं। अतः राज्यों को योजना बनाते हुए केन्द्र के रुझानों एवं प्राथमिकताओं का ध्यान रखना पड़ता है।

संघ व राज्य के मध्य उठने वाले विवादों को सुलझाने के लिए लम्बे समय तक कोई **अन्तर्राज्यीय परिषद्** की स्थापना नहीं की गई, जबकि संविधान के अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत ऐसे संगठन की स्थापना की व्यवस्था की गई है। ऐसे संगठन वस्तुतः समाशोधन मंच (Clearing House) की तरह कार्य कर सकते हैं जहाँ विभिन्न विवादों को आपसी सहमति से सुलझाया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों से यद्यपि यह संस्था कार्य कर रही है, किन्तु इसका प्रभाव अभी स्पष्ट नहीं हो सका है।

संघ द्वारा **प्रसार माध्यमों के पक्षपातपूर्ण उपयोग** की भी राज्यों को शिकायत है। ऐसा माना जाता है कि आकाशवाणी व दूरदर्शन का प्रयोग केन्द्र अपने हितों के लिए करता है जबकि उसे तटस्थ विवेचक की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। इसी वजह से इन माध्यमों को अधिकाधिक स्वायत्तता प्रदान किये जाने की माँग बार-बार उठती है।

अखिल भारतीय सेवाओं को स्वतंत्रता के बाद भी बनाये रखने के पीछे राष्ट्रीय एकता की भावना को महत्त्व देना रहा था। बंगाल का व्यक्ति अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से राजस्थान प्रदेश में पदस्थापित होकर वहाँ भी उसी भावना से काम करे जैसे वह अपने जन्म स्थान में करे और इस प्रकार भावात्मक एकता का वातावरण तैयार हो सके यही भावना थी। लेकिन राज्यों का मानना है कि व्यावहारिक रूप में इसका भी उपयोग केन्द्र के पक्ष में ही हुआ। अखिल भारतीय सेवायें केन्द्र द्वारा संगठित होती हैं उन्हीं के द्वारा नियंत्रित होती हैं। सेवा की शर्तें भी केन्द्रीय सरकार अथवा संघ लोक सेवा आयोग द्वारा निर्धारित होती हैं। अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारी राज्य सेवाओं में उच्च स्थानों पर पदस्थापित होकर उन्हें प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं। राज्य सरकारों की शिकायत है कि ये अधिकारी कई बार प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से केन्द्र से संकेत व निर्देश प्राप्त करते हैं और उसी के अनुसार काम करते हैं, चाहे वे निर्देश स्थानीय भावना के विपरीत ही क्यों न हों। यदि ऐसी स्थिति आ जाती है तो निश्चित रूप से प्रशासन के सुचारू संचालन में बाधा पड़ती है। एक अतिरंजित मत यह भी व्यक्त किया जाता है कि अखिल भारतीय सेवायें राष्ट्रीय एकता का प्रतीक नहीं वरन् उपनिवेशी संस्कृति की विरासत हैं जो स्वतंत्रता के बाद भी बनी हुई हैं। इन सेवाओं के कारण राज्य के उच्च पद स्थानीय लोगों की पहुँच से बाहर हो जाते हैं जबकि स्थानीय प्रशासनिक अधिकारी अपने लम्बे सेवा अनुभव तथा स्थानीय समस्याओं के प्रति स्वाभाविक संवेदनशीलता के कारण उच्च पदों पर पदस्थापित होकर बेहतर सेवायें प्रदान कर सकते हैं।

राज्यों का यह भी मानना है कि जो **विधेयक राष्ट्रपति के विचारार्थ** सुरक्षित रखे जाते हैं उन पर स्वीकृति देने में केन्द्र भेदभावपूर्ण नीति अपनाता है। अनावश्यक विलम्ब कामकाज में बाधा उत्पन्न करता है। राज्यों को शिकायत है कि विरोधी दलीय सरकारों के साथ यह व्यवहार बार-बार होता है।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में संघात्मक शासन प्रणाली कई तनावों का सामना कर रही है। समय-समय पर उठने वाले विवादों का सम्मानजनक हल निकाला भी गया है, तथापि इस क्षेत्र में नई सोच की आवश्यकता स्पष्ट है।

संघ-राज्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार व सरकारिया आयोग

संघ-राज्य सम्बन्धों में समन्वय व सामन्जस्य की आवश्यकता व उसके महत्त्व को स्वीकार करते हुए कई बार स्थिति पर पुनर्विचार किया गया है ताकि तनाव के क्षेत्रों को कम किया जा सके। अप्रैल, 1967 में बार काउन्सिल ऑफ इण्डिया द्वारा एम.सी. सीतलवाड़ की अध्यक्षता में एक संगोष्ठी का आयोजन किया जिसने मुख्य रूप से ये सुझाव दिये– राष्ट्रपति व राज्यपाल के राज्य सरकार को विस्थापित करके केन्द्रीय शासन लागू करने के अधिकार का विस्तृत विश्लेषण होना चाहिए; योजना आयोग को स्वतंत्र स्वायत्त निकाय बना देना चाहिये, तथा वित्त आयोग को स्थायी निकाय बना देना चाहिये।

जनता पार्टी के शासन काल में प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने स्वीकार किया कि कमजोर राज्यों वाला शक्तिशाली केन्द्र अधिनायकत्व को बढ़ावा देने वाला हो सकता है।[47] लेकिन इस दिशा में उनकी सद्भावना तथा सहमति होने के बावजूद कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा सका। समय-समय पर न्यायविद्, विद्वान, नेता इस दिशा में सार्थक प्रसास के लिए निर्णायक कदम उठाने पर जोर देते रहे। विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय स्वायत्तता की माँग जोर पकड़ रही थी। अकाली दल पंजाब की स्वायत्तता तथा तेलगूदेशम् दल आंध्र की स्वायत्तता के लिए संघर्ष कर रहे थे।

ऐसे वातावरण में 9 जून, 1983 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने न्यायमूर्ति रणजीत सिंह सरकारिया की अध्यक्षता में केन्द्र व राज्य के बीच अधिकारों के बंटवारे एवं पारस्परिक सम्बन्धों के अन्य मुद्दों पर पुनर्विचार के लिए एक सदस्यीय आयोग का गठन किया। जुलाई, 1983 में इस आयोग में दो सदस्य बी. शिवरमन एवं एस.आर. सेन को और शामिल कर दिया गया। चार वर्षों के लम्बे समय तथा कठिन परिश्रम से तीन खण्डों में विभक्त 4,900 पृष्ठीय प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया जिसमें कुल 247 सिफारिशें सुझाई गईं। ये सिफारिशें मुख्यतः संघ राज्य व्यवस्था के कार्यात्मक पक्ष में बदलाव पर केन्द्रित थीं, यथा– राज्यपाल की भूमिका, राष्ट्रपति कि विचारार्थ राज्य विधेयकों को सुरक्षित रखना, संविधान के अनुच्छेदों 256, 257 व 356 के प्रयोग पर सीमा, स्थायी अन्तर्राज्यीय परिषदों की स्थापना, राज्यों को ऋण तथा अनुदान इत्यादि। प्रतिवेदन में केन्द्र द्वारा अपनाये गये राज्यों के प्रति रवैये की आलोचना तो की गई है लेकिन सबल केन्द्र की आवश्यकता पर बल दिया तथा राज्यों विशेषकर गैर कांग्रेसी राज्यों के अधिक स्वायत्त राज्य के सुझाव को अस्वीकार कर दिया। प्रतिवेदन 30 जनवरी, 1988 को जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

राज्यपाल की नियुक्ति के सम्बन्ध में आयोग का सुझाव है कि सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से विचार-विमर्श करना चाहिये। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 155 मे आवश्यकतानुसार संशोधन किया जा सकता है। राज्यपाल के पद पर चुने जाने वाला व्यक्ति सार्वजनिक जीवन के किसी क्षेत्र में जाना माना होना चाहिए तथा सम्बन्धित राज्य से बाहर का व्यक्ति होना चाहिए। निर्लिप्त व्यक्ति, जो राज्य की राजनीति से अन्तरंगता से जुड़ा न हो तथा जिसकी हाल ही में राजनीति में सक्रिय भागीदारी न रही हो, को राज्यपाल नियुक्त किया जाना चाहिए। केन्द्र के सत्ताधारी

दल के व्यक्ति को उस राज्य का राज्यपाल नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए जिसमें विपक्ष या अन्य किसी दल की सरकार हो। सामान्यतया कार्यकाल के दौरान उसे अन्य राज्य में स्थानान्तरित नहीं किया जाना चाहिए, यदि ऐसा करना आवश्यक हो जाए या राज्यपाल त्यागपत्र दे दे तो सरकार को चाहिए कि वह संसद में इस आशय का स्पष्टीकरण दे तथा राज्यपाल के स्पष्टीकरण को संसद के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। राज्यपाल की सेवामुक्ति के पश्चात् किसी और लाभ के पद पर नियुक्ति नहीं की जानी चाहिए न उसे सक्रिय राजनीति में वापिस आना चाहिए। अध्यादेश जारी करने का अधिकार का सीमित प्रयोग किया जाना चाहिए।

आयोग का सुझाव है कि **मुख्यमंत्री बहुमत दल के नेता** को बनाना चाहिए। बहुमत के विभिन्न दावों का निर्णय विधान सभा में होना चाहिए। अस्पष्ट बहुमत की स्थिति में जिसे मुख्यमंत्री बनाया जाये उसे चाहिए कि वह 30 दिन के भीतर अपना बहुमत विधान सभा में सिद्ध करे।

अनुच्छेद 356 यानि राष्ट्रपति शासन लागू करने के अधिकार का प्रयोग बहुत कम यानि अंतिम विकल्प के रूप में किया जाना चाहिये, जबकि संवैधानिक तंत्र की विफलता को रोकने की सभी उम्मीदें समाप्त हो जायें। अनुच्छेद 356 के प्रयोग के पहले राज्य स्तर पर सभी संभावित उपाय कर लिये जाने चाहिये। आयोग ने 1977 में जनता सरकार द्वारा 9 राज्यों की विधान सभाओं को एक साथ भंग करने तथा 1980 में कांग्रेस (आई) द्वारा 9 विधान सभाओं के विघटन की पुनरावृत्ति को अनुचित माना तथा इसे अनुच्छेद 356 का सरासर दुरुपयोग बताया। यदि राष्ट्रपति शासन लागू करना अवश्यम्भावी हो जाये तो राज्यपाल के तत्सम्बन्धी प्रतिवेदन में समस्त तथ्यों का विवरण होना चाहिये तथा संसद के अनुमोदन के बाद ही विधान सभा भंग की जानी चाहिये। राष्ट्रपति शासन को लागू करने के औचित्य के कारण उद्घोषणा में समाहित होने चाहिये, इसके लिए अनुच्छेद 356 में संशोधन का सुझाव भी दिया गया है तथा यह सुझाया गया है कि राज्यपाल के प्रतिवेदन का व्यापक प्रसार होना चाहिये।

वर्तमान स्थितियों में आयोग ने **सुदृढ़ संघ** को बनाये रखने की सिफारिश की है। संविधान निर्माताओं का यही निर्णय था, अतः "संघीय सिद्धांतों के अनुकूल संघ व राज्य में सत्ता के वितरण व विकेन्द्रीकरण" के संविधान सभा के निर्देश को व्यावहारिक रूप प्रदान करना आवश्यक है।

इसी भावना के अनुकूल विधायी क्षेत्र में **संसद की सर्वोच्चता** के बनाये रखने की सिफारिश सरकारिया आयोग ने की है, पर साथ ही संविधान में कुछ ऐसे संशोधनों का सुझाव दिया है जिससे राज्यों को ज्यादा अधिकार मिल सकें। राज्य सूची के विषयों पर बनाये गये संसदीय कानून में राष्ट्रपति की सहमति से राज्यों को संशोधन का अधिकार होना चाहिए। इसके लिए अनुच्छेद 252 में आवश्यक संशोधन किया जा सकता है। साथ ही संघ सूची की प्रविष्टि 97 में संशोधन का भी सुझाव दिया है जिसके अनुसार कर-निर्धारण के अतिरिक्त अन्य सभी शक्तियों को संघ सूची से निकाल कर समवर्ती सूची में रख देना चाहिए। यह भी सुझाया गया है कि अवशिष्ट शक्तियों पर संघ व राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होना चाहिये।

सरकारिया आयोग प्रतिवेदन में राज्यपाल के राष्ट्रपति को राज्य विधेयक विचारार्थ भेजने के अधिकार के बारे में भी परिवर्तन सुझाये गये हैं। विधेयक की मंजूरी में समय-सीमा निर्धारण होनी चाहिए तथा विधेयक को मंजूरी न देने की स्थिति में केन्द्र को चाहिये कि वह राज्य सरकार को इसका कारण बताये।

आयोग **अखिल भारतीय सेवाओं** को यथावत् बनाये रखने के पक्ष में है। इन सेवाओं ने संविधान की भावनाओं के अनुकूल अपनी भूमिका सक्रियता से निभाई है। इनके महत्त्व को कम करने या राज्यों को इन्हें विकल्प के रूप में स्वीकार करने का अधिकार देना राष्ट्रीय एकता पर विपरीत असर डाल सकता है। अतः इन सेवाओं को और सबल बनाना आवश्यक है। कुछ और अखिल भारतीय सेवाओं के गठन के सम्बन्ध में राज्य सरकारों से सम्वाद होना चाहिए। वर्तमान में सामन्यज्ञ (जर्नलिस्ट) प्रशासनिक संस्कृति में परिवर्तन कर विशेषज्ञों को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिये।

सरकारिया आयोग का मत है कि संवैधानिक प्रावधानों (अनुच्छेद 263) के अन्तर्गत संगठित होने वाली **अन्तर्राज्यीय परिषदों** को अन्तर-सरकारी परिषद् के नाम से पुकारा जाना चाहिये। इस परिषद् को केन्द्र व राज्य के मध्य उठने वाले विवादों-समस्याओं को सुलझाने की भूमिका निभानी होगी। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में इस समिति में केन्द्रीय केबिनेट के मंत्री तथा राज्यों के मुख्यमंत्री शामिल होने चाहिए। एक छोटी स्थायी समिति जिसमें प्रधानमंत्री, छः केन्द्रीय मंत्रीमंडल के मंत्री तथा छः मुख्यमंत्री हों, का भी गठन किया जाना चाहिये। मुख्य परिषद् की वर्ष में एक बार तथा स्थायी लघु परिषद् की वर्ष में चार बार बैठकें आयोजित की जानी चाहियें। इस परिषद् में अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत आने वाले सभी राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों पर विचार-विमर्श होना चाहिये।

क्षेत्रीय परिषदें अभी तक अपनी भूमिका सफलतापूर्वक नहीं निभा पाई हैं। उन्हें पुनः सक्रिय व पुनर्गठित करना आवश्यक है। इन परिषदों का अध्यक्ष गृहमंत्री नहीं अपितु बारी-बारी से निर्वाचित मुख्यमंत्री होना चाहिये।

केन्द्र को राज्य में **सुरक्षा बलों को तैनात** करने का अधिकार है, पर जहाँ तक संभव हो राज्यों की सलाह ली जानी चाहिये। इसी प्रकार किसी राज्य को उपद्रवग्रस्त घोषित करने के पहले भी राज्य सरकार से सलाह मशविरा कर लेना चाहिए।

अन्तर्राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय नदी जल विवाद के सम्बन्ध में जैसे ही किसी राज्य से तत्सम्बन्धी शिकायत प्राप्त होती है, वैसे ही संघ सरकार को एक वर्ष के लिए न्यायाधिकरण गठित कर देना चाहिये जिसके निर्णय को मान्यता प्राप्त हो तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उसे बाध्यकारी माना जाए।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के सम्बन्ध में अनुच्छेद 217 में संशोधन किया जाना चाहिये। न्यायाधीशों की नियुक्ति समय सीमा के अन्तर्गत कर दी जानी चाहिये। एक उच्च न्यायालय से दूसरे में जब न्यायाधीश का स्थानान्तरण करना हो तो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश से सलाह मशविरा करने की स्वस्थ परम्परा का विकास करना चाहिये।

सरकारिया आयोग का सुझाव है कि **राष्ट्रीय विकास परिषद्** का नाम परिवर्तित कर राष्ट्रीय आर्थिक और विकास परिषद् करते हुए उसे संवैधानिक दर्जा प्रदान करना चाहिये। इसकी बैठक साल में दो बार बुलाई जानी चाहिये।

योजना आयोग की कार्यप्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिसमें राज्य की भूमिका याचक की न रह जाये। योजनाओं के निर्माण व क्रियान्वयन में राज्यों की सहमति व समन्वय आवश्यक होना

चाहिये। इसका अध्यक्ष ऐसा विशेषज्ञ हो जिसकी योग्यता सर्वविदित हो तथा जो अपने व्यक्तित्व व गुणों से केन्द्र व राज्य दोनों का विश्वास व सम्मान प्राप्त कर सके।

वित्तीय विषयों पर सरकारिया आयोग ने व्यापक तथा कुछ संवैधानिक संशोधनों के सुझाव दिये हैं, यथा– संसद को निगम कर के बंटवारे की क्षमता हो, तत्सम्बन्धी संविधान संशोधन होना चाहिये, अनुच्छेद 269 के तहत आकाशवाणी में विज्ञापनों के प्रसारण से होने वाली आय में से राज्यों को भी हिस्सा मिलना चाहिये, व्यवसाय व व्यापार पर कर की सीमा बढ़ाई जाये, आय कर पर अधिभार विशेष उद्देश्यों और सीमित अवधि के लिए लगाया जाना चाहिए, वित्त आयोग की सिफारिश के अनुकूल रेल्वे शुल्क के बदले राज्यों को अनुदान मिलना चाहिए, खनिज की रायल्टी दर पर हर दो वर्ष बाद पुनर्विचार होना चाहिये, 'कर रहित म्यूनिसिपल बोन्डस की व्यवस्था,' प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में राहत कोष को स्वविवेक के अनुसार प्रयोग का अधिकार, कोष के दुरुपयोग पर कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव है कि आर्थिक नीतियों में समन्वय लाने के लिए अधिकारियों की एक समिति का गठन किया जाए तथा केन्द्र व राज्य द्वारा वित्तीय साधन जुटाने तथा तत्सम्बन्धी सुधारों पर विचार-विमर्श के लिए विशेषज्ञों का दल गठित करना चाहिए।

भाषा के सम्बन्ध में सरकारिया आयोग का सुझाव है कि संसदीय राजभाषा समिति, राजभाषा विभाग तथा संघीय निदेशालय से हिन्दी शब्द निकाल कर उसकी जगह राजभाषा, अनुसूचित भाषाएं तथा त्रिभाषीय कार्यक्रम शब्द रख देने चाहिए। सरकारी नौकरी की भर्ती के लिए किसी भाषा विशेष की शर्त नहीं रखी जानी चाहिये।

सरकारिया आयोग के अनुसार सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए **पंचायती राज** तथा **स्थानीय संस्थाओं** को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है।

आयोग ने केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की पुनर्व्याख्या की, यह अपने आप में महत्त्वपूर्ण कदम है। केन्द्र की शक्ति को कमजोर न करते हुए केन्द्र द्वारा शक्ति के तर्करहित केन्द्रीकरण की आलोचना की है।[48]

वस्तुतः केन्द्र-राज्य सम्बन्धों से सम्बन्धित संविधान की व्यवस्थाओं में व्यापक तथा क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता आपसी समझबूझ, समन्वय तथा एक-दूसरे के अस्तित्व के सम्मान की भावना की व्यापक ग्राह्यता की है। इन भावनाओं के अभाव में मात्र संरचनात्मक परिवर्तन एक खोखला प्रसास होगा।

1996 तथा 1998 की बहुदलीय केन्द्रीय सरकार के निर्माण के साथ ही राज्यों का महत्व यकायक बढ़ गया है। क्षेत्रीय दलों द्वारा संचालित राज्य सरकारें अब राष्ट्रीय राजनीति में गौण स्थान स्वीकार करने को तत्पर नहीं है। वे राष्ट्रीय शासन व प्रशासन में पूर्ण भागीदारी की माँग कर रही हैं। अतः आगे आने वाले वर्षों में राज्य सरकारों के क्षेत्राधिकार, उत्तरदायित्व एवं प्रभाव में वृद्धि होने की पूर्ण संभावना है। इसके फलस्वरूप राज्यों की शासनिक तथा प्रशासनिक व्यवस्था के समक्ष नई चुनौतियाँ आयेंगी तथा राज्यों की सरकारें अपनी दक्षता अभिवृद्धि हेतु भरकस प्रयास करने को बाध्य होंगी। वर्ष 2004 के आम चुनावों के पश्चात् निर्मित केन्द्र की वामपंथी दलों द्वारा समर्थित बहुदलीय सरकार भी केन्द्र-राज्य सम्बन्धों के संतुलन को बनाए रखेगी ऐसी आशा है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. एम.वी. पायली, *द कॉन्सटीट्यूशनल गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया* (नई दिल्लीः एशिया, 1966), पृ. 64.
2. के.वी. पुन्नइया, *द कॉन्सटीट्यूशनल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया*, पृ. 129.
3. वी.पी. मेनन, *द स्टोरी ऑफ इन्टीग्रेशन ऑफ इण्डियन स्टेटस*, (नई दिल्लीः ऑरियंट लोंगमैन), पृ. 490.
4. माइलेक ब्रेश्ट, *नेहरू : द पॉलिटिकल बायोग्राफी*, (मुम्बईः ऑक्सफोर्ड, 1962), पृ. 403.
5. विवरण हेतु देखें, *राजस्थान वार्षिकी, 1997*, (जयपुरः पंचगंगा प्रकाशन, 1997), खण्ड 2.
6. एम.वी. पायली, *इंडियाज कॉन्सटीट्यूशन*, (नई दिल्लीः एशिया), पृ. 303.
7. देखें, *संविधान सभा के वाद-विवाद*, खण्ड 7, पृ. 31.
8. *वही*, खण्ड 11, पृ. 718.
9. पॉल एच. एपलबी, *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डियाः रिपोर्ट ऑव ए सर्वे*, (नई दिल्लीः 1953).
10. एलेक्सेन्डरोविच, *कॉन्सटीट्यूशनल डवलपमेन्ट इन इण्डिया*, (लन्दनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957), पृ. 169.
11. पी.टी. चाको, *संविधान सभा का वाद-विवाद*, खण्ड 11, पृ. 745.
12. के.सी. व्हेयर, *फेडरल गवर्नमेन्ट* (लन्दनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1964), पृ. 24.
13. आइवर जेनिंग्स, *सम करेक्टरिस्टिक्स ऑफ इंडियन कॉन्सटीट्यूशन* (लन्दनः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1953), पृ. 1.
14. *द हिन्दुस्तान टाइम्स*, 27 अप्रैल, 1971, पृ. 6.
15. *वही*, 20 अप्रैल, 1971, पृ. 5.
16. *भारत का संविधान*, अनु. 254 (1).
17. *वही*, अनुच्छेद 246 (1).
18. *वही*, अनु. 246.(2).
19. *वही*.
20. *वही*, अनु. 248.(1)
21. *वही*, अनु. 252.
22. *वही*, अनु. 304. (ब)
23. *वही*, अनु. 200.
24. *वही*, अनु. 253.
25. *वही*, अनु. 353.
26. *वही*, अनु. 356.
27. *वही*, अनु. 365.

28. वही, अनु. 258.
29. वही.
30. वही, अनु. 355.
31. वही, अनु. 312.
32. वही, अनु. 263.
33. वही, अनु. 275.
34. वही, अनु. 271.
35. वही, अनु. 292.
36. वही, अनु. 293.
37. वही, अनु. 280.
38. के. सन्थानम्, *यूनियन स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया* (मुम्बई : एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1960), पृ. 44.
39. *लोकसभा वाद विवाद, थर्ड सीरिज*, खण्ड 23, संख्या 18, बुधवार, दिसम्बर 11, 1963.
40. अशोक चन्दा, *फेडरलिज्म इन इण्डिया* (लन्दन : एलन एण्ड अनविन).
41. के. सन्थानम्, उपरोक्त, पृ. 54.
42. *संयुक्त राज्य अमेरिका का संविधान*, अनुच्छेद 5.
43. द स्टेट्मेन (कोलकाता), 25 जून, 1967.
44. *नागपुर टाइम्स*, 17 अक्टूबर, 1973.
45. *नवभारत टाइम्स* (नई दिल्ली), 27 मार्च, 1969.
46. इस विषय पर देखें, *अनुच्छेद 356* (जयपुर : आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, 1994).
47. *हिन्दुस्तान टाइम्स*, 1 अगस्त, 1977.
48. सुमित चक्रवर्ती, *सरकारिया कमीशन रिपोर्ट : ए क्रिटिक मेनस्ट्रीम*, 28 फरवरी, 1988, पृ. 9-14.

❑❑❑

अध्याय 2

राज्यपाल–पद, शक्तियाँ एवं भूमिका

भारत में राज्य का संवैधानिक प्रमुख राज्यपाल होता है।[1] भारतीय संविधान के अनुच्छेद 153 के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में एक राज्यपाल की व्यवस्था की गई है। संविधान के सातवें संशोधन (1956) के द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि एक ही व्यक्ति दो से अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है।

नियुक्ति

संविधान के अनुच्छेद 155 के अनुसार राज्य के राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। अनुच्छेद 156 में यह स्पष्ट उल्लेख है कि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर बना रह सकता है। राष्ट्रपति ही राज्यपाल को पदमुक्त कर सकता है, उसे समय से पूर्व वापस बुला सकता है, तथा एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानान्तरण कर सकता है। सामान्यतया राज्यपाल का कार्यकाल पाँच वर्ष का है, पर अपने कार्यकाल समाप्त होने के बाद भी वह अपने पद पर तब तक बना रह सकता है, जब तक किसी अन्य व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त न कर दिया जाये। वह समय से पूर्व भी राष्ट्रपति को सम्बोधित करके त्यागपत्र देकर पद विमुक्त हो सकता है। चूंकि राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर रहता है, अतः उसे हटाने के लिए महाभियोग या अन्य कोई ऐसी व्यवस्था संविधान द्वारा नहीं की गई है।

राज्यपाल की नियुक्ति की उपरोक्त विधि अपनाने के पीछे राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाये रखने की भावना रही है। राज्यपाल की नियुक्ति या विमुक्ति दोनों में ही देश की या राज्य की जनता की कोई भागीदारी नहीं होती। संघीय व्यवस्था अपनाने वाले देश संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्य इकाइयों के राज्यपालों की नियुक्ति राज्य की जनता निर्वाचन पद्धति अपना कर करती है। जनता ही राज्यपाल को महाभियोग द्वारा पदच्युत भी करती है। पर भारत में ऐसी व्यवस्था नहीं है।

उल्लेखनीय है कि भारत में एक राज्य का राज्यपाल राज्य का प्रमुख है न कि सरकार का, किन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका में वह राज्य एवं सरकार दोनों का ही प्रमुख है।

योग्यताएँ

राज्यपाल के पद के लिए उम्मीदवार व्यक्ति के लिए आवश्यक है कि वह 35 वर्ष का हो तथा वह केन्द्र या राज्य विधायिका का सदस्य न हो (यदि वह सदस्य है तो राज्यपाल का पद ग्रहण करते ही उसका पद रिक्त माना जायेगा); वह किसी लाभ के पद पर नियुक्त न हो तथा वह भारत का नागरिक हो।

राज्यपाल की नियुक्ति के समय सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से सलाह लेने की परम्परा है। पर कई बार इस परम्परा का पालन नहीं किया गया, यथा 1969 में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी के विरोध के बाद भी धर्मवीर वहाँ के राज्यपाल बने रहे। वस्तुतः राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व सम्बन्धित राज्य के मुख्यमंत्री से सलाह लेना एक परम्परा है, संवैधानिक आवश्यकता नहीं। राष्ट्रीय एकता के भाव को मद्देनजर रखते हुए यह भी परम्परा है कि राज्यपाल उस राज्य का निवासी न हो, यथा एक राजस्थान के निवासी को राजस्थान का राज्यपाल न नियुक्त किया जाये। इस व्यवस्था के द्वारा राज्यपाल को उस राज्य की राजनैतिक दलबन्दी से दूर रखने का उद्देश्य भी है। परन्तु इस परम्परा के भी अपवाद रहे हैं यथा– श्री एच.सी. मुखर्जी तथा सुश्री पद्मजा नायडू को बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया गया।

राज्यपाल के विरुद्ध कोई फौजदारी कार्यवाही नहीं की जा सकती, उसे गिरफ्तार नहीं किया जा सकता तथा न बन्दी बनाया जा सकता है। अपने कार्यों को करने और शक्तियों के प्रयोग के लिए वह न्यायालयों के प्रति उत्तरदायी नहीं है।

शपथ

राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश राज्यपाल को पद की शपथ दिलाते हैं। उच्च न्यायाधीश की अनुपस्थिति में अन्य वरिष्ठ न्यायाधीश की सहायता से यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। राज्यपाल को निष्पक्ष, न्यायप्रिय, उदार व व्यापक दृष्टिकोण रखने वाला एवं राष्ट्रीय एकता के संरक्षक की भूमिका निभाने वाला होना चाहिए। अतः राज्यपाल संविधान की रक्षा करने तथा जनता के कल्याण तथा सेवा की शपथ लेता है।

वेतन व अन्य भत्ते

राज्यपाल की गरिमा के अनुरूप उसे वेतन, अन्य भत्ते तथा सुविधाएं मिलती हैं जिनका निर्धारण संसद में बनाये गये कानून द्वारा होता है। वर्तमान में राज्यपाल का मासिक वेतन 36,000 रुपये है। राज्यपाल के कार्यकाल के दौरान उसके वेतन, भत्तों तथा अन्य सुविधाओं को घटाया नहीं जा सकता।

शक्तियाँ

संविधान में इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि राज्यपाल के कार्यों के निष्पादन में "सहायता व सलाह देने के लिए एक मंत्री-परिषद् होगी।" ऐसी ही व्यवस्था केन्द्र में राष्ट्रपति के लिए भी की गई है। पर राज्यपाल की स्थिति राष्ट्रपति से इस अर्थ में विशिष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 163 (1) में राज्यपाल को विवेकाधकार की शक्तियाँ भी प्रदान की गई हैं। इसी प्रावधान को दृष्टिगत रखते हुए राज्यपाल की शक्तियों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है:

(i) वे शक्तियाँ जिनका प्रयोग वह मुख्यमंत्री (अथवा मंत्री-परिषद्) की सलाह व सहायता से करता है,

(ii) वे शक्तियाँ जिनका प्रयोग स्वविवेक के आधार पर करता है।

मुख्यमंत्री व उसके मंत्री-परिषद् की सलाह व सहायता से प्रयुक्त शक्तियाँ

कार्यकारी शक्तियाँ

राज्य की कार्यकारी शक्तियों को राज्यपाल में निहित करने की व्यवस्था संविधान के अनुच्छेद 154 द्वारा की गई है। वह राज्य सरकार की कार्यपालिका का प्रधान है। राज्य का सारा कार्य राज्यपाल के नाम पर चलाया जाता है। वह अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा कर सकता है। "अधीनस्थ" शब्द के अन्तर्गत मुख्यमंत्री व मंत्री-परिषद् के सभी मंत्री आ जाते हैं। चूंकि वे राज्यपाल के अधीनस्थ हैं, तभी उसमें निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकते हैं।[2] राज्यपाल मुख्यमंत्री व उसकी सलाह से मंत्री-परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति करता है। वह राज्य के महाधिवक्ता एवं लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष व अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है। राष्ट्रपति राज्य के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के समय राज्यपाल से परामर्श लेता है। राज्यपाल मंत्री-परिषद् के कार्य संचालन के नियमों का निर्माण करता है। मुख्यमंत्री की सलाह से वह मंत्रियों के विभागों का वितरण करता है। मुख्यमंत्री व मंत्री-परिषद् को पद और उसकी गोपनीयता की शपथ दिलाता है, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें पदच्युत करता है। उनके त्याग-पत्र स्वीकार करता है। वह समयानुसार मंत्रियों को चेतावनी, मंत्रणा व प्रोत्साहन दे सकता है। मुख्यमंत्री का यह दायित्व है कि वह मंत्री-परिषद् की नीतियों व निर्णयों की सूचना राज्यपाल को निरन्तर दे। साथ ही राज्यपाल स्वयं भी मुख्यमंत्री से सूचनाएँ व जानकारी प्राप्त कर सकता है।

राज्य में संवैधानिक संकट की स्थिति में राज्यपाल इस स्थिति की सूचना राष्ट्रपति को देता है तथा संकट-काल घोषित होने पर वह संघ के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है।

राज्यपाल विश्वविद्यालययों का पदेन कुलाधिपति होता है तथा विश्वविद्यालय के कुलपति की नियुक्ति करता है। नियुक्ति के बारे में पृथक्-पृथक् विश्वविद्यालय अधिनियमों में पृथक्-पृथक् प्रावधान हैं। उदाहरणतया, पंजाब विश्वविद्यालय में कुलपति की नियुक्ति के बारे में केवल यह प्रावधान है कि कुलपति की नियुक्ति कुलाधिपति करेगा। इस सम्बन्ध में किसी विस्तृत प्रक्रिया का उल्लेख नहीं है। वैसे सामान्तया, कुलपति की नियुक्ति के लिए नाम सुझाने हेतु एक समिति बनती है। राजस्थान में इस समिति के तीन सदस्य होते हैं:

(i) राज्यपाल का एक मनोनीत प्रतिनिधि, जो समिति का अध्यक्ष होता है,

(ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष का मनोनीत प्रतिनिधि,

(iii) विश्वविद्यालय सिंडिकेट द्वारा चुना गया एक प्रतिनिधि।

यह समिति कुलपति के लिए योग्य अभ्यार्थियों का पैनल बनाती है जिसमें सामान्यतया तीन नाम होते हैं। राज्यपाल इन नामों में से एक को चुनता है तथा यही व्यक्ति कुलपति के रूप में नियुक्त होता है।[3]

विश्वविद्यालय की चयन-समितियों में राज्यपाल अपने प्रतिनिधि नियुक्त करता है। आवश्यकता पड़ने पर वह विश्वविद्यालयों तथा उनके कुलपतियों के कार्यकलापों के बारे में जाँच भी करा सकता है। इन अधिकारों का प्रयोग करते समय उसे मुख्यमंत्री की सलाह लेनी चाहिए, किन्तु इस परम्परा का निर्वाह सर्वदा नहीं होता।[4] कुलाधिपति के रूप में राज्यपाल की शक्तियाँ संविधान द्वारा सुनिश्चित नहीं की गई हैं न ही राज्यों की विधायिका के द्वारा निश्चित की जाती हैं। अतः

3. अनुच्छेद 356 (1) राज्यपाल को राज्य में संवैधानिक तन्त्र की विफलता की सूचना देने का अधिकार प्रदान करता है।
4. संघ राज्य-क्षेत्र के प्रशासक के रूप में राज्यपाल अनुच्छेद 239 (2) के अन्तर्गत कुछ कार्यों को स्वतन्त्र रूप से करने का अधिकार प्राप्त करता है। यही अनुच्छेद उसे कुछ नियम बनाने का भी अधिकार प्रदान करता है।
5. छठी अनुसूची असम के राज्यपाल को दो विवेकाधिकार प्रदान करती है– असम सरकार तथा स्वायत्त जनजातीय जिला परिषद् के मध्य खानों के लीज से होने वाली आय के बंटवारे को लेकर यदि संघर्ष हो तो राज्यपाल स्वविवेक के अधिकार का प्रयोग करता है, द्वितीय जनजातीय व सीमान्त क्षेत्र के प्रशासन के लिए विशिष्ट प्रशासनिक प्रावधान का अधिकार भी राज्यपाल को प्राप्त है।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति यदि अनुच्छेद 371 (2), 371 अ (1) 371 ब, 371 (स) के अन्तर्गत निर्देश देता है कि राज्यपाल उन विशिष्ट दायित्वों को पूरा करता है। इस संदर्भ में उसे मुख्यमंत्री या उसके मंत्रीमंडल से सलाह लेना आवश्यक नहीं है।[7]

यद्यपि विवेकाधिकार शब्द का प्रयोग संविधान में किया गया है लेकिन उसके वास्तविक प्रयोग के सम्बन्ध में स्पष्टता का अभाव है। प्रसिद्ध विद्वान प्रो. के. वी. राव इसका मुख्य कारण राज्य विधायिका के सम्बन्ध में विचार तथा वाद-विवाद के समय संविधान सभा द्वारा पर्याप्त समय न देना है। उनके अनुसार 20 के करीब राज्य सरकार से सम्बन्धित अनुच्छेद एक दिन में पारित किये गये, सम्पूर्ण संविधान की संरचना इस प्रकार से की गई थी जैसे तत्कालीन कांग्रेस सदा के लिए सत्ता में रहेगी।[7] विवेकाधिकार शक्तियों के क्षेत्र में भी राज्यपाल के अधिकार असीमित नहीं हैं। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं या राज्य राजनीति के प्रवाहों से प्रभावित होकर यदि उनका दुरुपयोग किया जाता है तो राष्ट्रपति उन्हें नियन्त्रित कर सकता है। वह राज्यपाल को हटा भी सकता है। विवेकाधिकार का प्रयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए ताकि संसदीय प्रजातंत्र को खतरा नहीं पहुँचे।[8] राज्यपाल जिन क्षेत्रों व परिस्थितियों में विवेकाधिकार शक्तियों का प्रयोग कर सकता है उन पर चर्चा व विचार करना उपयुक्त होगा।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति

स्वतंत्रता के 20 वर्ष तक केन्द्र तथा राज्य दोनों ही में कांग्रेस का वर्चस्व तथा बहुमत रहा। ऐसे में राज्य में राज्यपाल के पास बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री पद के लिए आमन्त्रित करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। उसके विवेकाधिकार शक्तियों के प्रयोग के लिए गुंजाइश नहीं थी। लेकिन 1967 के आम चुनाव के बाद देश के 8 राज्यों में कांग्रेस दल अल्पमत में आ गई जिससे दुविधापूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न उभर कर सामने आये। यदि किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त न हो तो क्या राज्यपाल को सबसे अधिक स्थान पाने वाले दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित करना चाहिए? यदि वह दल कांग्रेस ही हो तो ऐसे में क्या यह मतदाता के साथ अन्याय नहीं होता। एक बात निश्चित थी। लोगों ने चाहे विरोधी दलों के पक्ष में मतदान किया हो या न किया हो पर उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध मतदान अवश्य किया था।[9] क्या सबसे अधिक स्थान प्राप्त करने वाले अकेले विरोधी दल के नेता को या कई दलों द्वारा संयुक्त मोर्चे के नेता को मुख्यमंत्री

पर के लिए आमंत्रित करना चाहिए? संविधान विशेषज्ञों का मानना है कि ऐसी स्थिति में विरोधी दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना चाहिए, लेकिन इस शर्त पर कि वह शासन को स्थायित्व प्रदान कर सके। स्थायित्व से तात्पर्य सत्ताधारी दल की संख्यात्मक शक्ति से ही नहीं है अपितु बहुमत को अपने साथ बनाये रखने से भी है।[10] लेकिन स्वतंत्र विधायकों व दल बदलते रहने की प्रवृति से ग्रस्त विधायकों के कारण स्थिति में बहुत बदलाव आता रहता है। प्रत्येक राजनीतिक दल में ऐसी प्रवृत्ति के विधायक मौजूद होते हैं। इस स्थिति से उबरने या बचने के लिए कोई सहज रास्ता नहीं है। किसी भी अल्पमत दल या दलों को सरकार बनाने के लिए आमन्त्रित क्यों न किया जाये, सदैव यह सम्भावना रहती है कि मंत्री पद का आश्वासन अथवा अन्य प्रलोभनों को देकर दल बदलुओं को अपने साथ मिलाकर बहुमत प्राप्त किया जा सकता है।[11] ऐसी स्थिति में राज्यपाल के सामने क्या विकल्प रहा जाता है? अभी तक विभिन्न राज्यों में विभिन्न परिस्थितियों में राज्यपालों ने तीन तरीकों को अपनाया है:

(i) समर्थक विधायकों की सूची प्राप्त करना।
(ii) विधायकों को विधायिका में बुलाना और उनको दी हुई सूची से वास्तविक मिलान करना।
(iii) उपर्युक्त दोनों पद्धतियों का प्रयोग करना।

इसके पश्चात् राज्यपाल राज्य विधान-सभा का सत्र आहूत करता है, और दल को बहुमत सिद्ध करने का आदेश देता है। लेकिन इन पद्धतियों के परिणाम बहुत उत्साहजनक नहीं रहे। वास्तव में इस प्रणाली से जनता के अभिमत का प्रतिनिधित्व नहीं होता।[12] ऐसी सरकारें स्थायित्व भी प्रदान नहीं कर पाईं। इसका मुख्य कारण उनमें वैचारिक स्थायित्व का अभाव रहा है। इन सरकारों के सदस्य वास्तव में सत्ता-विरोधी यानि नकारात्मक विचारधारा के अन्तर्गत एकत्र हुए थे। पद और सत्ता के लाभ का अवसर समाप्त होते ही विधायकों या दलों ने अपना समर्थन वापस ले लिया और फिर सिद्धान्त की रक्षा के नाम पर दल बदल लिया। 1982 में केरल में करुणाकरन सरकार का पतन ऐसे ही विधायकों के समर्थन वापस लेने के कारण हुआ। इस सम्बन्ध में सरकारिया आयोग की राय तथा एस.आर. बोमई मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय राज्यपाल के स्वविवेक को सीमित करने के पक्ष में है।

मुख्यमंत्री की विमुक्ति

यह विषय कई जटिल प्रश्नों की ओर इंगित करता है। केन्द्र सरकार ने इस मुद्दे को अपना नेतृत्व व श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए प्रयोग किया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 164 (1) के अनुसार मुख्यमंत्री व उसका मंत्रिमंडल राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त अपने पद पर बने रहे सकते हैं, लेकिन यदि अनुच्छेद की दूसरी धारा का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि वास्तव में वे राज्यपाल की दया पर पूर्णतया आश्रित नहीं हैं। अनुच्छेद की दूसरी धारा के अनुसार मंत्रिमंडल विधायिका के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी है। मुख्यमंत्री भी इसमें शामिल है क्योंकि वह मंत्रिमंडल को नेतृत्व प्रदान करता है। इसका अर्थ है कि मंत्रिमंडल जब तक विधायिका में विश्वास प्राप्त करता है तब तक पद पर बना रहता है, लेकिन यह धारा उतनी सहज नहीं है जितनी ऊपरी तौर पर दृष्टिगत होती है।

विधान सभा में यदि मंत्रिमंडल व उसका दल विधायकों के दल-बदल के कारण अल्पमत में आ जाये तो मुख्यमंत्री की क्या भूमिका होगी? ऐसे में राज्यपाल विधान सभा में मुख्यमंत्री को अपना

उनका स्वरूप विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न है। पर यह निश्चित है कि राज्यपाल को राजनीतिक हस्तक्षेप से विश्वविद्यालय को दूर रखते हुए उसकी स्वायत्तता का सम्मान करना चाहिए तथा स्वायत्तता बनाये रखनी चाहिए।

2004 में राजस्थान के राज्यपाल मदन लाल खुराना ने राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रशासनिक सुधार हेतु हस्तक्षेप कर कई आवश्यक परिवर्तनों हेतु मार्ग प्रशस्त किया। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यपालों को विशेषाधिकार भी प्राप्त हैं, यथा– असम के राज्यपाल को जनजातीय क्षेत्रों के प्रबन्ध के लिए तथा सिक्किम के राज्यपाल को शान्ति स्थापित करने के लिए विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं।

राज्यपाल की विधायी शक्तियाँ

राज्यपाल व्यवस्थापिका का प्रमुख है। वह राज्य विधान-सभा का अधिवेशन बुला सकता है, किसी सदन का सत्रावसन कर सकता है, तथा राज्य विधान-सभा को किसी भी समय भंग कर सकता है। वह राज्य विधान मंडल के दोनों सदनों को पृथक् या संयुक्त रूप से सम्बोधित कर सकता है। साधारणतया आम निर्वाचन के बाद नई विधान-सभा बनने पर वह उद्घाटन भाषण देता है। हर वर्ष पहले सत्र में सदन के सत्र को सम्बोधित करता है। सत्र के समय विधान-सभा के पास विचार हेतु अपना संदेश भेज सकता है। उल्लेखनीय है कि विधान-सभा द्वारा पारित विधेयक को कानून का रूप धारण करने के लिए राज्यपाल के हस्ताक्षर आवश्यक होते हैं। वह चाहे तो विधेयक पर हस्ताक्षर कर सकता है या सदन के पास पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है। ऐसे विधेयक को संशोधन सहित या रहित जैसा भी विधान-सभा चाहे, दोबारा राज्यपाल के पास यदि भेजती है तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर करना आवश्यक होता है। वित्तीय विधेयक को राज्यपाल पुनर्विचार के लिए नहीं भेज सकता। यदि राज्य विधान-सभा के अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष तथा विधान परिषद् के सभापति अथवा उप-सभापति का पद रिक्त होता है तो राज्यपाल उस सदन के किसी व्यक्ति को बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए नियुक्त कर सकता है।

राज्यपाल की सबसे महत्त्वपूर्ण विधायी शक्ति अध्यादेश जारी करने के अधिकार की है। राष्ट्रपति या राज्य के मुख्यमंत्री की सलाह पर, किसी आपातकालीन निर्णय की आवश्यकता पूर्ण करने हेतु, सदन के सत्र में न होने पर अनुच्छेद 213 (1) के तहत राज्यपाल आध्यादेश जारी कर सकता है। अध्यादेश कानून की भाँति प्रभावी होता है। ये अध्यादेश विधान-सभा के सत्र में आने के छः सप्ताह तक जारी रहते हैं। इन छः सप्ताहों के अन्दर भी यदि विधान मंडल उन्हें स्वीकृत नहीं करता तो ये स्वयं समाप्त हो जाते हैं। राज्यपाल इन अध्यादेशों को पहले भी वापस ले सकता है। कुछ परिस्थितियों में राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना अध्यादेश जारी नहीं कर सकता, या जिन्हें राज्यपाल राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखता है। अध्यादेश जारी करने का अधिकार बहुत उपयोगी है, विशेषकर तुरन्त कार्यवाही की आवश्यकता की स्थिति में आपातकाल में, लेकिन इसका सदुपयोग होना चाहिए। एक प्रसिद्ध विधिवेत्ता का मानना है कि एक राज्य को बिना विधायी कानून के सिर्फ अध्यादेश के जरिये शासित किया जा सकता है। 1971-81 में बिहार विधायिका में 163 विधेयक पारित किये गये, जबकि 1,956 अध्यादेश राज्यपाल द्वारा जारी किये गये। कुल मिलाकर एक विधेयक के पीछे 12 अध्यादेशों का औसत रहा।[5] कुछ अध्यादेशों का जीवन काल 13 से 14 वर्षों का रहा। इतने अध्यादेशों के पीछे संविधान द्वारा संख्या की कोई सीमा का निर्धारण न होना है।

जिन राज्यों में विधान मंडलों में उच्च सदन है उनमें राज्यपाल कुल सदस्यों का 1/6 सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। ये साहित्य, कला, विज्ञान, समाज सेवा आदि क्षेत्र के लब्धप्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। इनकी नियुक्ति राज्य के मुख्यमंत्री की सलाह पर की जाती है। इन मनोनयनों के सम्बन्ध में राज्यपाल किसी प्रकार के तथ्यों की जानकारी प्रदान करने के लिए बाध्य नहीं है।

वित्तीय शक्तियाँ

वित्तीय शक्तियों के अन्तर्गत राज्यपाल वित्तीय वर्ष प्रारम्भ होने से पूर्व, वार्षिक वित्तीय विवरण विधान मंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है, पूरक व अतिरिक्त व्यय के बजट को विधान मंडल में प्रस्तुत करता है तथा जब तक बजट विधान मंडल द्वारा पारित नहीं होता, तब तक आकस्मिक निधि से अदृश्य व्यय की पूर्ति की आज्ञा दे सकता है। वित्तीय विधेयक राज्य विधान मंडल में राज्यपाल की पूर्वानुमति के बाद ही प्रस्तुत किये जाते हैं।

न्यायिक शक्तियाँ

संविधान द्वारा प्रदत्त न्यायिक शक्तियों के अन्तर्गत राज्यपाल राज्य-सूची में दिये गये विषयों के सम्बन्ध में न्यायालय द्वारा दण्डित किये गये व्यक्तियों को क्षमा कर सकता है, तथा दण्ड को निलम्बित या स्थगित कर सकता है। राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राष्ट्रपति राज्यपाल से परामर्श करता है। जिला न्यायाधीश व अन्य न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति व पदोन्नति से सम्बन्धित विषयों का निर्णय भी राज्यपाल करता है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 कें अन्तर्गत राष्ट्रपति की व अनुच्छेद 161 के अन्तर्गत राज्यपाल की क्षमादान की शक्तियों में मूलभूत भेद है। मृत्युदण्ड के मामले में राष्ट्रपति को क्षमादान का पूर्ण अधिकार है तथा सैनिक न्यायालयों द्वारा दिये दण्ड को भी राष्ट्रपति क्षमा कर सकता है। राज्यपाल के पास ऐसी शक्तियाँ नहीं है।[6]

विवेकाधिकार शक्तियाँ

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 74 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को विवेकाधिकार शक्तियाँ प्रदान नहीं की गई हैं, किन्तु अनुच्छेद 163 में विवेकाधिकार से सम्बन्धित राज्यपाल को पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। संविधान के अनुच्छेद 163 (2) के अनुसारः

> इस बात का निर्धारण करना स्वयं राज्यपाल का क्षेत्राधिकार है कि कौन-सा कार्य उसके विवेकाधिकार के अन्तर्गत आता है। राज्यपाल के इस निर्णय को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती कि अमुक विषय उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत है या नहीं। विवेकाधिकार शक्तियों का प्रयोग राज्यपाल अपने विवेक या व्यक्तिगत निर्णय से करता है। उसे इस सम्बन्ध में मंत्री-परिषद् से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है।

इसके अतिरिक्त संविधान के अन्य अनुच्छेदों में ऐसी शक्तियों का उल्लेख है, यथा–

1. अनुच्छेद 166 (3) के अनुसार राज्यपाल उन क्षेत्रों को छोड़कर जहाँ विवेकाधिकार का प्रयोग करता है, राज्य सरकार के कार्य सम्बन्धी नियम बना सकता है।
2. अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ भेजने के लिए रोक सकता है।

बहुमत सिद्ध करने का आदेश दे सकता है। 1970 में राष्ट्रपति द्वारा गठित राज्यपालों की समिति ने यह सुझाव दिया था कि यदि कोई मुख्यमंत्री विधान सभा में बहुमत सिद्ध करने के प्रस्ताव को टालने का प्रयास करता है तो इसका तात्पर्य है कि वह विधान सभा का विश्वास खो चुका है। ऐसे में राज्यपाल के पास मुख्यमंत्री व उसके मंत्रिमंडल को बर्खास्त करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह जाता। वह अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की सूचना भी दे सकता है। यदि मुख्यमंत्री अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए तैयार है और इस प्रयास में वह असफल होता है तब भी राज्यपाल उसे बर्खास्त कर सकता है। इस सारी विवेचना का अभिप्राय है कि संविधान की भावना के अनुरूप ही सरकार को बर्खास्त करने की प्रक्रिया अपनाई जा सकती है। संविधान के अनुच्छेद 164 की धारा 2 की पालना के पश्चात् ही धारा 1 को अमल में लाया जा सकता है। विधान सभा में सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के बाद भी यदि मुख्यमंत्री त्याग-पत्र नहीं देता है तो राज्यपाल को अधिकार है कि वह मंत्रिमंडल को बर्खास्त कर दे तथा नया मंत्रिमंडल बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ करे।[13] महत्त्वपूर्ण नीतियों की विफलता की स्थिति में भी अविश्वास प्रस्ताव लाया जा सकता है। ऐसे में राज्यपाल को हस्तक्षेप करने का अधिकार है तथा सरकार की बर्खास्तगी का पूरा वातावरण तैयार हो जाता है। राज्यपाल रोमेश भण्डारी द्वारा उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह सरकार को गलत ढंग से बर्खास्त करने की काफी आलोचना हुई तथा अन्ततः यह कदम अवैधानिक ही सिद्ध हुआ। अतः राज्यपाल को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पूर्वाग्रह से प्रभावित होकर कोई गलत राजनीतिक निर्णय न ले।

स्थिति की कल्पना कीजिये जिसमें मुख्यमंत्री भ्रष्टाचार, कुप्रशासन तथा अन्य नकारात्मक कार्यों में लिप्त हो, किन्तु सदन का विश्वास प्राप्त करता हो। एम.वी. पायली[14] का मत है कि यदि कोई मुख्यमंत्री और उसका मंत्रीमंडल देश की एकता को कम करके आँकता हो तथा स्वतंत्र राज्य बनाना चाहता हो, या संघ से विलग होने के लिए विदेशी सत्ता के साथ हाथ मिलाता हो तो उसे बर्खास्त किया जा सकता है, चाहे भले ही उसे सदन का विश्वास प्राप्त हो। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री एम.ए.आर. अन्तुले ने 1980 में पद-भार ग्रहण किया। अगस्त 1981 में प्रसिद्ध पत्रकार अरुण शोरी ने *इण्डियन एक्सप्रेस* में एक लेख द्वारा अन्तुले पर सीमेन्ट, जो कि कम मात्रा में उपलब्ध थी, के वितरण के मामले में भ्रष्ट तरीकों को अपनाने का आरोप लगाया। सीमेंट के समान वितरण के सम्बन्ध में नियम निश्चित थे, किन्तु अन्तुले सरकार द्वारा उसका उल्लंघन किया गया तथा ठेकेदारों को अधिक मात्रा में वितरण किया गया। ये बड़े ठेकेदार वे थे जिन्होंने अन्तुले द्वारा गठित ट्रस्ट को दान दिया था। पी. वी. सामन्त तथा कुछ अन्य लोगों ने उच्च न्यायालय में याचिका दायर की तथा जस्टिस लेन्टिन ने अन्तुले को भ्रष्टाचार का अपराधी पाया। अन्तुले ने अपने पद से त्याग-पत्र दिया और निर्णय के विरुद्ध अपील की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। महाराष्ट्र के तत्कालीन राज्यपाल ने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए अन्तुले की पूरी बात सुनी और अपीलकारियों को अन्तुले पर भ्रष्टाचार निरोध अधिनियम के तहत मुकदता चलाने की अनुमति दी।

वस्तुतः मुख्यमंत्री की विमुक्ति के सम्बन्ध में राज्यपाल को कोई वास्तविक विवेकाधिकार प्राप्त नहीं है, क्योंकि ऐसे किसी कदम से राज्यपाल के स्वयं के भविष्य पर दूरगामी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। 2 अप्रैल, 1994 में गोवा के मुख्यमंत्री डी. सूजा तथा राज्यपाल भानुप्रताप सिंह के

मध्य गम्भीर मतभेद उत्पन्न हो गये। परिणामस्वरूप, सदन का विश्वास व बहुमत प्राप्त होने के बावजूद राज्यपाल ने मुख्यमंत्री को बर्खास्त कर दिया। उल्लेखनीय है कि उस समयै भी डी. सूजा को सदन में 38 में से 23 विधायकों का समर्थन प्राप्त था। राज्यपाल ने उनके विरोधी रविनायक को केन्द्र की सहमति से मुख्यमंत्री पद की शपथ दिला दी। बदले की भावना तथा प्रतिक्रियात्मक गतिविधियों के कारण अप्रैल, 1994 में राज्यपाल को पद से हटा दिया गया ।

मंत्री अथवा मंत्रिमंडल की विमुक्ति

अनुच्छेद 164 (1) के अन्तर्गत राज्यपाल जब मुख्यमंत्री को नियुक्त करता है तो उसे किसी की सलाह की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु मंत्रिमंडल के मंत्रियों की नियुक्ति वह मुख्यमंत्री की सलाह से ही करता है। इस व्यवस्था में यह भी अन्तर्निहित है कि मुख्यमंत्री को पदच्युत करते समय वह जितना स्वतंत्र होता है, उतना मंत्रिमंडल को पदच्युत करते समय नहीं होता। अन्य मंत्रियों के पदच्युति के पहले उसे मुख्यमंत्री की सलाह लेना आवश्यक है। मुख्यमंत्री के पास भी यह अधिकार न हो तो संसदीय प्रजातंत्र एक छलावा मात्र रह जायेगा।[15] मुख्यमंत्री की सलाह पर राज्यपाल मंत्री को बर्खास्त कर सकता है लेकिन राज्यपाल 'प्रसाद-पर्यन्त' शब्दों के सहारे सम्पूर्ण मंत्रिमंडल को बर्खास्त नहीं कर सकता। मंत्रिमंडल को सामूहिक रूप से बर्खास्त करने का अधिकार विधायिका का है, राज्यपाल का नहीं। लेकिन अन्ततः मुख्यमंत्री या उसके मंत्रिमंडल की बर्खास्तगी का निर्णय राज्यपाल का ही होता है, और उसे किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।[16]

विधान-सभा की बैठक का आह्वान करना

राज्यपाल को अधिकार है कि वह विधान मंडल के सदनों की संयुक्त या अलग-अलग **बैठकें** बुलाये। बैठकों के मध्य छः मास से अधिक का अन्तराल नहीं होना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 175 (1) के तहत राज्यपाल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक आहूत कर सकता है तथा दोनों सदनों को सम्बोधित कर सकता है। यह व्यवस्था तब लागू नहीं होती जब राज्य में अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू हो अथवा विधान-सभा भंग हो या निलम्बित हो। राज्यपाल के इस अधिकार को विवेकाधिकार के अन्तर्गत समाहित किया जाये या नहीं, इस प्रश्न पर संविधान विशेषज्ञों में मतभेद हैं। श्री सी.के. दफ्तरी, श्री एम.सी छागला तथा डॉ. एल.एम. सिंघवी जैसे विशेषज्ञ इसे राज्यपाल का विवेकाधिकार मानते हैं।

इस विवेकाधिकार के उपयोग के समय राज्यपाल को मुख्यमंत्री व उसके मंत्रिमंडल से सलाह लेनी चाहिए, क्योंकि मुख्यमंत्री ही विधान सभा के इस सत्र के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। लेकिन मुख्यमंत्री यदि विधान सभा में हार के भय से यदि राज्यपाल को सत्र आह्वान की सलाह न दे तो उस स्थिति में क्या होगा? विधान सभा आहूत न करने से क्या संवैधानिक व्यवस्था का उल्लंघन नहीं होगा? क्या इस कार्यवाही के लिए राष्ट्रपति उसे पदच्युत कर सकता है? यदि केन्द्र व राज्य में एक ही राजनीतिक दल का शासन हो और सत्ताधारी राजनीतिक दल का समर्थन प्राप्त राष्ट्रपति राज्यपाल को विधान सभा आहूत न करने का परामर्श दे, तो उस स्थिति में क्या होगा? इन प्रश्नों के कोई स्पष्ट उत्तर नहीं हैं क्योंकि समान परिस्थितियों में विभिन्न राज्यपालों ने भिन्न-भिन्न तरीके से कदम उठाये हैं। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का मत था कि यह राज्यपाल का अधिकार नहीं कर्तव्य है, अतः विधान-सभा आहूत न करके राज्यपाल संविधान का उल्लंघन करता है। 1970 में हुई राज्यपालों

की संगोष्ठी में यह मत प्रतिपादित किया गया कि विधान-सभा सत्ता के दावेदारों के मूल्यांकन का स्थान है, अतः मुख्यमंत्री की सलाह के विरुद्ध भी राज्यपाल को उसका आह्वान करना चाहिए।

विधान-सभा का सत्रावसान

विधायिका का प्रमुख होने के कारण राज्यपाल विधान-सभा के सत्रावसन करने के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस सम्बन्ध में व्यापक विवेचन के पूर्व विधान-सभा के निलम्बन, अवसान तथा भंग करने के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। एक ही सत्र के मध्य विधान-सभा की कार्यवाही में व्यवधान उत्पन्न होना निलम्बन है; इस अधिकार का पूर्ण रूप से विधान-सभा अध्यक्ष प्रयोग करता है। अवसान का अर्थ है संविधान सभा के सत्र का अन्त तथा भंग होने का अर्थ है विधान-सभा के अस्तित्व का अन्त, यह पुनः निर्वाचन के प्रति संकेत है।

सदन के अवसान को घोषित करते समय मुख्यमंत्री व मंत्रीमंडल से सलाह लेने की प्रथा है। लेकिन इस क्षेत्र में राज्यपाल को विवेकाधिकार प्राप्त है, जिसका प्रयोग न्यायपूर्वक ही होना चाहिए। यदि मुख्यमंत्री अपनी हार से बचने के लिए एवं अविश्वास प्रस्ताव से बचने के लिए राज्यपाल को सत्र के मध्य ही सभा को भंग करने की सलाह देता है, तो राज्यपाल को विवेकाधिकार है कि वह उसकी सलाह न माने। दल-बदल या दल में फूट की वजह से यदि मुख्यमंत्री बहुमत खो देता है, लेकिन सत्ता में जोड़-तोड़ व खरीद-फरोख्त के द्वारा बहुमत प्राप्त करके सत्ता में बना रहना चाहता है,[17] तो राज्यपाल को स्थिति का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना चाहिए तथा सदन का अवसान तदनुरूप करना चाहिए।

विधान-सभा भंग करना

यदि सरकार बहुमत में होते हुए भी विधान-सभा को भंग करने का परामर्श देती है तो राज्यपाल के पास उसे भंग करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। इसी तरह यदि मंत्रिमंडल बिना बजट पारित किये त्याग-पत्र दे देता है तब भी राज्यपाल अनुच्छेद 356 के तहत विधान-सभा भंग कर सकता है। लेकिन कोई सरकार यदि बहुमत खो देने की सम्भावना के भय से विधान-सभा भंग करने की सलाह देती है तो राज्यपाल का अधिकार है कि वह उसकी उपेक्षा करे। ऐसी स्थिति में राज्यपाल का कर्तव्य है कि वह विधान-सभा की बैठक तथा वैकल्पिक व्यवस्था प्राप्त करने का प्रयास करे। ऐसा करते समय राज्यपाल को प्रयास करना चाहिए कि वह विवादास्पद स्थिति में न पड़े तथा स्वयं दल-बदल की राजनीति का हिस्सा न बन जाए। राज्यपाल के महत्त्वपूर्ण पद का केन्द्रीय सरकार द्वारा दल-बदल को बढ़ावा देने के लिए दुरुपयोग कदाचित नहीं करना चाहिए।

राज्यपाल का सम्बोधन/भाषण

अनुच्छेद 175 (1) राज्यपाल को यह अधिकार देता है वह राज्य व्यवस्थापिका के दोनों सदनों को अलग-अलग या संयुक्त रूप से सम्बोधित कर सकता है। प्रत्येक आम चुनाव के बाद विधान-सभा के वर्ष के पहले सत्र को राज्यपाल सम्बोधित करता है तथा व्यवस्थापिका में बजट प्रस्तुत करता है। राज्यपाल के सभी भाषण मुख्यमंत्री व उसके मंत्रिमंडल द्वारा तैयार किये जाते हैं। भाषण संविधान के अनुच्छेद 159 के तहत राज्यपाल द्वारा ली गई शपथ की भावना के अनुरूप होना चाहिए। उसमें उच्च न्यायालय से सम्बन्धित कोई टिप्पणी नहीं होनी चाहिए। राज्यपाल का कार्य लिखित भाषण को प्रस्तुत करना मात्र है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वह भाषण के किसी आपत्तिजनक अंश को

छोड़ सकता है? श्री एम.सी. सीतलवाड़ तथा अशोक सेन जैसे न्यायविदों का मानना है कि भाषण की वे पंक्तियाँ या पैरा जिसमें राज्यपाल द्वारा पूर्व में किसी किये गये कार्य को अनुचित ठहराया गया हो, को राज्यपाल द्वारा छोड़ देना चाहिए, नहीं तो ऐसा प्रतीत होगा जैसे राज्यपाल अपने स्वयं के ही कार्य की निन्दा कर रहा हो। राज्यपाल भाषण के उन आपत्तिजनक अंशों को भी छोड़ सकता है जो राज्य और संघ के सम्बन्धों में कटुता व संघर्ष उत्पन्न करते हों या संवैधानिक भावनाओं का उल्लंघन करते हों।[18]

राष्ट्रपति के पुनर्विचारार्थ विधेयक को रोकना

विधि-निमार्ण की प्रक्रिया में राज्यपाल को सम्पूर्ण निषेधाधिकार प्राप्त नहीं है, वह एक विधेयक को सिर्फ विलम्बित ही कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के पुनर्विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है। विधेयक निम्नलिखित स्थितियों में राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा जा सकता है:

(i) विधेयक असंवैधानिक प्रतीत हो।
(ii) देश के व्यापक हित के विरुद्ध हो।
(iii) नीति निर्देशक तत्त्वों के परोक्ष रूप में विरुद्ध हो।
(iv) राष्ट्रीय महत्त्व का हो।
(v) उच्च न्यायालय की स्थिति को खतरे में डालता हो।
(vi) विधेयक अनुच्छेद 31(3) के तहत सम्पत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण से संबंधित हो।

इस सम्बन्ध में दुर्गादास बसु का मत है–

> अनुच्छेद 200 का यह तात्पर्य नहीं है कि राज्यपाल पहले अपने हस्ताक्षर कर दे और जब विधेयक पूर्ण रूप से कानून बन जाए तो उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख ले। विधेयक रोकने की प्रक्रिया उस पर हस्ताक्षर न करने का विकल्प है। जहाँ विचारार्थ सुरक्षित रखना अनिवार्य है तब निश्चित रूप में राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर नहीं करने चाहिए।[19]

विधेयक विचारार्थ रोकना निश्चित रूप से राज्यपाल का विवेकाधिकार है, क्योंकि विधान सभा में बहुमत द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित करने की सलाह मुख्यमंत्री कभी भी राज्यपाल को नहीं देगा। संविधान इस पर स्पष्ट नहीं है कि विधेयक को कब तक रोका जा सकता है तथा कब तक इसे वापस आ जाना चाहिए?

संविधान के अनुच्छेद 201 के अनुसार जब विधेयक राष्ट्रपति के पास विचारार्थ भेजा जाता है, तब राष्ट्रपति को यह घोषित करना होता है कि वह विधेयक पर हस्ताक्षर करेगा या नहीं। गैरवित्तीय विधेयक पर यदि राष्ट्रपति हस्ताक्षर नहीं करता तो वह राज्यपाल को विधान सभा को वापस भेजने की सलाह दे सकता है। ऐसे में यदि विधान सभा राष्ट्रपति द्वारा भेजे गये विधेयक को प्राप्त होने के छः महीने के अन्दर पुनर्विचार करती है, तथा संशोधन या बिना संशोधन के दोबारा पारित करती है तो यह राष्ट्रपति के पास विचारार्थ दोबारा भेजा जाता है।

राज्यपाल द्वारा विधेयक पर हस्ताक्षर तथा विधेयक सदन में वापस भेजना

संविधान के अनुच्छेद 200 के अनुसार कोई विधेयक जब राज्य विधायिका द्वारा पारित कर दिया जाता है तो राज्यपाल के पास भेजा जाता है। ऐसी स्थिति में राज्यपाल घोषित करता है कि वह

विधेयक पर हस्ताक्षर करेगा, नहीं करेगा अथवा राष्ट्रपति के पास विचारार्थ भेजेगा। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, वित्त विधेयक पर वह हस्ताक्षर करने से मना नहीं कर सकता, क्योंकि वित्त विधेयक राज्यपाल की अनुमति से ही राज्य विधायिका में प्रस्तुत किये जाते हैं। वह वित्त विधेयक को पुनर्विचारार्थ विधान सभा को वापस भी नहीं भेज सकता।

गैर-वित्तीय विधेयक को वह अपने संदेश में सुझाव के साथ विधान सभा के दोनों सदनों या सदन को वापस भेज सकता है। सदन या दोनों सदन उस पर पुनर्विचार करते हैं और फिर संशोधनों सहित अथवा मूल रूप में भी पारित करते हैं तो राज्यपाल को उस विधेयक पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ते हैं। यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि विधेयक विचारार्थ पुनः विधायिका के पास भेजने का अर्थ हस्ताक्षर करने से इन्कार नहीं है। प्रो. जे.आर. सिवाच का मत है कि जब राज्यपाल द्वारा हस्ताक्षर नहीं करने होते हैं तो विधेयक विधायिका को वापस भेजा जाता है।[20] संविधान का अनुच्छेद 200 उस समय सीमा को निर्धारित नहीं करता जिसमें राज्यपाल को विधेयक विधान सभा को पुनर्विचारार्थ भेजना चाहिए। इस सम्बन्ध में सिर्फ '' यथाशीघ्र'' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

समय-समय पर राज्यपालों ने अनुच्छेद 200 के अन्तर्गत प्रदत्त इस अधिकार का प्रयोग करते हुए विधेयक पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं।[21] तथापि, सामान्यतया इस अधिकार का अधिक प्रयोग नहीं किया गया। क्या संविधान निर्माताओं की शायद ऐसी ही मंशा रही होगी? वे निश्चित रूप से राज्यपाल को विधायिका के महत्त्वपूर्ण व श्रेष्ठ अंग के रूप में स्थापित नहीं करना चाहते होंगे। सत्ता के दुरुपयोग से सरकार के त्याग-पत्र की सम्भावना बढ़ जाती है। संसदीय परम्पराओं का इस प्रकार विकास हुआ है कि राज्यपाल सीधे निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं कर, विवादास्पद विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रोक कर एक अवांछित स्थिति से बचने का प्रयास करता है।

सूचना प्राप्त करना

राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री से सूचनाएँ प्राप्त करना भी विवेकाधिकार के अन्तर्गत ही आता है, क्योंकि यह मानना हास्यास्पद होगा कि वह पहले मुख्यमंत्री से सलाह ले फिर उससे सूचना प्राप्त करे। अनुच्छेद 167 (ए) के अनुसार यह मुख्यमंत्री का कर्तव्य है कि वह मंत्रिमंडल के राज्य प्रशासन सम्बन्धी तथा नये विधेयकों सम्बन्धी निर्णयों से राज्यपाल को अवगत कराये। अनुच्छेद 167 (सी) के अन्तर्गत राज्यपाल को अधिकार है कि ऐसा विषय, जिस पर सम्बन्धित मंत्री ने तो निर्णय ले लिया है पर मंत्रिमंडल के विचारार्थ प्रस्तुत नहीं किया गया हो, को मुख्यमंत्री से अपने पास विचारार्थ मंगवा ले। यही राज्यपाल का सूचना प्राप्त करने का अधिकार है। मंत्री या मंत्रीमंडल के निर्णयों पर विचार करते समय राज्यपाल उन निर्णयों को रेखांकित कर सकता है, जिन पर पूरे मंत्रिमंडल द्वारा पुनर्विचार आवश्यक है।

राज्यपाल तथा राज्य प्रशासन

राज्यपाल व्यावहारिक रूप में राज्य के मुख्य कार्यपालक की भूमिका का भी निर्वाह करता है। राष्ट्रपति शासन के दौरान वह राज्य का वास्तविक प्रशासन होता है, लेकिन सामान्य परिस्थितियों में भी राज्यपाल प्रशासन का कार्य करता है। 1967 के बाद राज्यों में अनिश्चित राजनैतिक स्थितियों

ने राज्यपालों को ''परिस्थितिकीय स्वविवेक'' के प्रयोग के पर्याप्त असर दिये। राज्यपाल के अति उत्साही व पहल करने के व्यवहार से कभी-कभी राज्य में सकारात्मक परिणाम आये तो कभी-कभी विवादों को भी बढ़ावा मिला। गुजरात के राज्यपाल श्रीमन नारायण ने अनुसूचित जनजातियों के आर्थिक अधिकारों की सुरक्षा में बहुत रुचि दिखाई। डेंग जिले में स्वतंत्र रूप से इस कार्य की देखरेख के लिए जिलाधीश नियुक्त किया गया। जिले में पंचायत की व्यवस्था नहीं थी। राज्यपाल की सलाह पर राज्य सरकार ने ग्राम पंचायतों का गठन करना स्वीकार किया।[22]

राज्यपालों ने कई बार राज्य सरकार के कार्य को अधिक गतिशीलता प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। 1974 में पश्चिम बंगाल के राज्यपाल श्री ए. एल. डायस ने राज्य में खराब सड़क व्यवस्था पर चिन्ता व्यक्त की। उन्होंने मुख्यमंत्री सिद्धार्थशंकर राय व सार्वजनिक निर्माण विभाग के मंत्री को बुलाया और सलाह दी कि सड़कों की मरम्मत के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग की सहायता लेनी चाहिए। उस समय यह कार्य कलकत्ता नगर निगम के अधिकार क्षेत्र में था। पर राज्यपाल के सलाह पर तुरन्त अमल किया गया और इस दिशा में वांछित कदम उठाये गये।[23]

विभाजन पश्चात् पंजाब में श्री सी.एम. त्रिवेदी ने कई बार मंत्रिमंडल की अध्यक्षता की।[24] उत्तर प्रदेश में सरोजिनी नायडू व पश्चिम बंगाल में पद्मजा नायडू ने मुसलमानों व शरणार्थियों के कल्याणार्थ महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। उड़ीसा में ए.एन. खोसला, जो स्वयं इन्जीनियर थे, ने राज्य में जल-विद्युत संसाधनों के विकास के लिए स्वयं योजना बनाई।[25] वी. वी. गिरि ने केरल के राज्यपाल के रूप में केन्द्र से केरल हेतु अधिक अनुदान दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पर कई बार राज्यों में राज्यपाल का प्रशासनिक मामलों में अति उत्साह दखलन्दाजी की सीमा में आ गया, और उसकी भूमिका पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया। 1967 में पश्चिम बंगाल के राज्यपाल धर्मवीर ने जिला न्यायाधीशों व पुलिस अधीक्षकों को राजभवन बुला कर उन्हें सलाह दी कि वे मंत्रियों के आदेश लिखित में ही स्वीकार करें। 1973 में बिहार के राज्यपाल आर.डी. भन्डारे ने कुछ मंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप जन-सभाओं में लगाये। 1982 में बिहार के राज्यपाल ने उनसे मिलने आ रहे पत्रकारों पर लाठी चार्ज पर खुली नाराजगी जाहिर की। डॉ. चेन्ना रेड्डी के तमिलनाडु में राज्यपाल के रूप में मुख्यमंत्रियों के साथ सम्बन्ध सहज नहीं रहे। इस कारण कई विवादास्पद स्थितियाँ उभर कर आईं। ऐसे व्यवहारों ने राज्यपाल के वांछित ''तटस्थता के गुण'' पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया।[26]

राजस्थान के विशेष संदर्भ में यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि यहाँ राज्यपाल एवं मुख्यमंत्री के पारस्परिक सम्बन्ध अधिकांशतया गरिमामय एवं परिपक्वतापूर्ण रहे हैं। न तो किसी मुख्यमंत्री ने किसी राज्यपाल के प्रति सम्मान प्रदर्शन करने में कोई भूल ही की, न ही किसी राज्यपाल ने राज्य की राजनीति में हस्तक्षेप कर किसी मुख्यमंत्री की शासकीय शक्ति एवं प्रभाव को कम करने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि दोनों पदाधिकारियों की राजनीतिक पृष्ठभूमि एवं विचारधाराओं में भिन्नता के बावजूद टकराहट की स्थिति शायद ही कभी बनी। इसी कारण राज्य के अधिकारी-तन्त्र को राज्पाल-मुख्यमंत्री के सम्बन्ध को लेकर विडम्बनाओं का सामना नहीं करना पड़ा है।

राज्यपाल व राष्ट्रपति शासन

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत यदि राष्ट्रपति यह महसूस करे कि किसी राज्य में संवैधानिक प्रावधानों के आधार पर शासन चलाया जाना सम्भव नहीं है तब वह आपात स्थिति लागू कर सकता है। एच.एस. कबूरिया ने अपनी पुस्तक *प्रेसीडेन्ट्स ऑफ इण्डिया* में उन परिस्थितियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जिनमें ऐसी आपात स्थिति उत्पन्न होती हैं। वे स्थितियाँ हैं:

(i) कानून और व्यवस्था की विफलता।

(ii) दल-बदल के कारण राजनैतिक अस्थिरता।

(iii) संसदीय व्यवस्था पर आघात, जैसे बहुमत खोने पर भी मुख्यमंत्री त्याग-पत्र न दे।

(iv) भ्रष्टाचार, कुप्रशासन, अलगाववादी व आतंककारी गतिविधियाँ।

(v) राज्य सरकार के प्रति जनता का विरोध।

(vi) बहुमत दल से जनता का विश्वास उठना।

(vii) बहुमत प्राप्त होने पर भी कोई दल यदि सरकार बनाने से इन्कार कर दे तथा अल्पमत दल को सरकार बनाने से रोके।

(viii) गठबन्धन सरकार का गठन न हो पाये।

(ix) किसी विशिष्ट समस्या से बचने के लिए सरकार द्वारा स्वयं ऐसा प्रस्ताव।

ऐसे आपात काल में ये परिणाम होंगे:

(i) उच्च न्यायालय के अतिरिक्त राज्य सरकार के सारे कार्य या कुछ कार्य राष्ट्रपति स्वयं ग्रहण कर ले।

(ii) राज्य की विधायिका शक्तियों का प्रयोग संसद के द्वारा या संसद के अधीन किया जाए।

(iii) आपातकालीन घोषणा के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक एवं वांछित कदम उठाये जाएँ।

ऐसी कोई भी घोषणा संसद के दोनों सदनों में रखी जानी चाहिए। संसद द्वारा समर्थित न होने पर दो माह में ऐसी घोषणा स्वयं निरस्त हो जायेगी, अर्थात् दो माह के अन्दर संसद द्वारा घोषणा को स्वीकृति मिल जानी चाहिए। यदि इन दो महीनों के दौरान लोकसभा भंग हो जाती है, और राज्यसभा ने इसे सहमति प्रदान कर दी है तो नवगठित लोकसभा की पहली बैठक के 30 दिन समाप्त होते ही यह उद्घोषणा भी समाप्त हो जायेगी और इस बीच नवगठित लोकसभा भी अपनी सहमति दे देती है तो घोषणा लागू होने के छः महीने तक चल सकती है। उसकी अवधि छः-छः महीने करके कई बार बढ़ाई जा सकती है लेकिन इन सबकी कुल अवधि तीन वर्ष से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। हाँ, संविधान संशोधन से यह अवधि और भी आगे बढ़ाई जा सकती है, जैसे जम्मू तथा कश्मीर के मामले में हुआ है।

अनुच्छेद 356, अनुच्छेद 355 का सहज परिणाम है तथा दोनों अनुच्छेद एक-दूसरे से से जुड़े हुए हैं। अनुच्छेद 255 के अनुसार केन्द्र का कर्तव्य है प्रत्येक राज्य में संवैधानिक शासन व्यवस्था को सुनिश्चित करे। यदि सुदृढ़ तथा सक्षम शासन सम्भव नहीं हो पा रहा हो तो अनुच्छेद 356 के मदद से स्वयं प्रयास करे।

राज्यपाल स्वविवेक का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति को प्रतिवेदन भेजता है। इसके लिए उसे मुख्यमंत्री से सलाह लेना व्यावहारिक नहीं है, अन्यथा होगा यह कि मुख्यमंत्री द्वारा प्रतिवेदन स्वीकार करना या उसकी सलाह देने का तात्पर्य होगा कि उसकी सरकार संविधान के अनुसार काम नहीं कर रही है।[27] राज्यपाल को प्रतिवेदन भेजते समय सरकार के संवैधानिक आधार पर न चल पाने के पर्याप्त आधार होने चाहिए।

राष्ट्रपति शासन के दौरान लोकप्रिय सरकार नहीं होती। अतः समस्त मंत्री-परिषद् के कार्य राज्यपाल में केन्द्रित हो जाते हैं। परिणामस्वरूप इस काल में राज्यपाल राज्य एवं सरकार दोनों का प्रमुख बन जाता है। उसकी सहायता के लिए दो अथवा तीन सलाहकार होते हैं जो सामान्यतया सेवानिवृत प्रशासनिक अधिकारी होते हैं। विभिन्न सचिवों की समस्त 'फाइलें' इन्हीं सलाहकारों के माध्यम से राज्यपाल को जाती हैं।

यह राज्यपाल के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है कि वह राष्ट्रपति शासन के दौरान अपने पद को क्या स्वरूप प्रदान करता है? एक सत्ताप्रिय राज्यपाल अति हस्तक्षेपवादी हो सकता है अथवा एक 'संविधानवादी' राज्यपाल सक्रियता के बावजूद संतुलित ढंग से निर्णय ले सकता है। सामान्यतया, दूसरी कोटि के ही राज्यपाल विभिन्न राज्यों में देखने को मिले हैं।

राज्यपाल संघ का अभिकर्ता?

संविधान के कुछ अनुच्छेदों की व्यवस्था के अनुसार राज्यपाल केन्द्र व राज्य के मध्य एक कड़ी के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। संविधान के अनुच्छेद 160 के अनुसार राष्ट्रपति राज्यपाल को उन आकस्मिक स्थितियों के सम्बन्ध में कार्य करने का अधिकार दे सकता है जिनके सम्बन्ध में संविधान मौन है।

अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयक को रोक सकता है।

अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत राष्ट्रपति राज्यपाल के प्रतिवेदन या बिना प्रतिवेदन के राज्य में आपात स्थिति घोषित कर सकता है।

अनुच्छेद 167 मुख्यमंत्री को यह दायित्व सौंपता है कि वह राज्य गतिविधियों के बारे में राज्यपाल को सूचना दे जिसकी आगे सूचना राज्यपाल राष्ट्रपति को देता है।

अनुच्छेद 257 के अन्तर्गत प्रावधान है कि राज्य कार्यपालिका को केन्द्र के विरुद्ध पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर काम नहीं करना चाहिए, अर्थात् राज्यपाल को राष्ट्रपति के निर्देश व सलाह की अनुपालना करनी चाहिए।

उपर्युक्त अनुच्छेदों को मद्देनजर रखते हुए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि राज्यपाल की केन्द्र के सम्बन्ध में वास्तविक भूमिका क्या होनी चाहिए। क्या वह केन्द्र की ''इच्छा'' के अनुरूप काम करे या उसे स्वनिर्णय व स्वविवेक के आधार पर काम करने का अधिकार है? समस्या की जड़ वस्तुतः राज्यपाल की नियुक्ति सम्बन्धी पद्धति में ही निहित है। राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। प्रो. के.वी. राव का मत है कि समस्या की जड़ यही है कि राज्य का प्रधान न तो राज्य द्वारा चुना जाता है, न उसके प्रति उत्तरदायी है, न उसके द्वारा हटाया जा सकता है।[28] राज्यपाल की नियुक्ति और विमुक्ति की पद्धति उसे राष्ट्रपति के अधीनस्थ होने का दर्जा प्रदान करती है। घटनाक्रमों ने यह सिद्ध भी कर दिया है कि वह राष्ट्रपति की अवज्ञा नहीं कर सकता। ''कड़ी'' व

"अभिकर्ता" भूमिकाओं में विभेद करते हुए वे मानते हैं कि अभिकर्ता की तुलना में "कड़ी" के रूप में उसकी भूमिका अधिक सकारात्मक है। लेकिन एक ही समय में वह दोनों भूमिकाओं का निर्वाह नहीं कर सकता। उसे राज्य सरकार को प्रतिबिम्बित करना चाहिए न कि प्रतिवादी या केन्द्र के जासूस के रूप में काम करना चाहिए।[29] किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले उचित होगा कि विभिन्न राज्यों में राज्यपालों की कार्यशैली व तत्सम्बन्धी घटनाक्रम पर एक विश्लेषणात्मक दृष्टि डालें।

कई बार राज्यपाल ने राज्य के हित में अपने केन्द्र के साथ सम्बन्धों का सकारात्मक प्रयोग किया। राज्यपाल वी.वी. गिरि ने योजना आयोग के समक्ष केरल के हित में संघर्ष किया। आयोग ने तृतीय योजना में राज्य के लिए 105 करोड़ रुपये देने का प्रस्ताव किया था, किन्तु अन्ततः फैसला 175 करोड़ पर हुआ।[30] यह गिरि के ही प्रयत्नों का फल था।

कई राज्यपालों ने राज्यों में संवेदनशील प्रशासक की भाँति समस्याओं को सुलझाने तथा वैधानिक कार्यक्रम को गति देने में सक्रिय भूमिका निभाई। अक्टूबर, 1983 में कनिष्ठ चिकित्सकों की हड़ताल की वजह से पश्चिम बंगाल में चिकित्सा सेवाएं लगभग ठप्प हो गई थीं। उप-मुख्यमंत्री द्वारा किये गये सारे प्रयास निष्फल सिद्ध हो रहे थे। वरिष्ठ चिकित्सकों ने भी सहानुभूति से हड़ताल में शामिल होने का निर्णय ले लिया। तत्कालीन राज्यपाल ए.सी. शर्मा ने मुख्यमंत्री की निर्धारित यात्रा को रोक कर उन्हें बुलाया। उन्होंने भारतीय चिकित्सा संघ, स्वास्थ्य सेवा संघ व कनिष्ठ चिकित्सक संघ के प्रतिनिधियों से बातचीत का दौर प्रारम्भ किया और अन्त में हड़ताल वापिस ले ली गई।[31]

लेकिन 1967 के बाद की अधिकांश घटनाओं ने यह इंगित किया है कि राज्यपाल संघ के हितों को अधिक ध्यान में रखता है। 1967 में राजस्थान के राज्यपाल डॉ. सम्पूणानंद ने संयुक्त दल द्वारा बहुमत प्रदर्शन के बाद भी अल्पमत वाली कांग्रेस के मोहनलाल सुखाड़िया को सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया। स्पष्टतः वे संघ के निर्देश पर काम कर रहे थे। कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवराज अर्स 3 जनवरी, 1978 को विधान सभा का सामना करते लेकिन उसके पहले ही 1 जनवरी को राज्यपाल ने उन्हें पदच्युत कर दिया। किसी-किसी राज्य में राज्यपाल ने अत्यन्त सक्रिय भूमिका निभाते हुए दल-बदल के लिए विधायकों को प्रोत्साहित किया। फलतः सत्ताधारी शासन को बर्खास्त होना पड़ा। ऐसे उदाहरणों की विभिन्न राज्यों की राजनीति में संख्या बहुत है। ये सिद्ध करते हैं कि कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकतर राज्यपालों ने संघ के अभिकर्ता की भूमिका का निर्वाह ज्यादा किया है।

समीक्षा

राज्यपाल के पद का मूल्यांकन करते हुए विभिन्न विद्वानों, विशेषज्ञों, राजनीतिज्ञों तथा विचारकों ने अपना मत व्यक्त किया है।

डॉ. अम्बेडकर– शक्तियों की बात तो दूर, राज्यपाल के तो कोई कार्य ही नहीं हैं, उसके तो केवल कर्तव्य हैं।

इन्दर मल्होत्रा– जनसाधारण की बात छोड़ दी जाये, स्वयं राज्यपाल पदधारी भी अपने इस पद को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते।

डॉ. पट्टाभि सीतारमैय्या– राज्यपाल का पद अतिथि-सत्कार और राष्ट्रपति को एक पखवाड़े के प्रतिवेदन देने के लिए है।

विजयलक्ष्मी पण्डित– यदि कोई व्यक्ति इस पद को स्वीकार करता है तो उसको पद नहीं वरन् वेतन का आकर्षण है।

सरोजिनी नायडू– राज्यपाल उस पक्षी की भाँति है जो सोने के पिंजरे में बन्द है।

एच.पी. मोदी– संवैधानिक अध्यक्ष होने से राज्यपाल के कोई विशेष कार्य नहीं हैं।

श्री प्रकाश– राज्यपाल को छूटी हुई जगह पर हस्ताक्षर करने के अलावा कुछ नहीं करना है।

के.एम. मुंशी– राज्यपाल संवैधानिक औचित्य का प्रहरी और वह कड़ी है जो राज्य को केन्द्र के साथ जोड़ते हुए भारत की एकता के लक्ष्य को प्राप्त करता है।

एम.वी. पायली– वह केवल नाममात्र का अध्यक्ष नहीं है, वह एक ऐसा अधिकारी है जो राज्य के शासन में महत्त्वपूर्ण रूप से भाग ले सकता है।

इन्दिरा गाँधी– संकीर्ण प्रान्तीयतावाद पर विजय प्राप्त करने में राज्यपाल की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है।

उपर्युक्त मत राज्यपाल के पद के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी धारणाओं को व्यक्त करते हैं जिससे इस पद के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न व समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। इसके लिए संविधान निर्माताओं को दोष देना सर्वथा अनुचित होगा, क्योंकि वे भावी समस्याओं का पूर्वानुमान एक सीमा तक ही लगा सकते थे। राज्यपाल के सम्बन्ध में संविधान का प्रत्येक अनुच्छेद एक विवाद को जन्म देता है। वस्तुतः इस पद को समझने के लिए संविधान को उसकी सम्पूर्णता में देखना होगा। राज्यपाल को निश्चित रूप से अधिक कुछ करने को नहीं होता क्योंकि संविधान निर्माता वस्तुतः चाहते ही यही थे। राज्यपाल से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि राज्य में एक समानान्तर सरकार चलाये। उसकी भूमिका बुद्धिमान परामर्शदाता, मध्यस्थ तथा विवाद की स्थिति में बीच-बचाव करने वाले की है, न की सक्रिय राजनीतिज्ञ की। उसे मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार चलना चाहिए किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्रत्येंक सलाह को तुरन्त स्वीकार कर ले। वह विधेयकों को पुनर्विचार के लिए रोक सकता है ताकि जल्दबाजी से निर्णय न लिये जायें। अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति को प्रतिवेदन भेजते समय उसे पर्याप्त सावधानी व नियन्त्रण से काम लेना चाहिए, अन्यथा राज्य के संरक्षक के रूप में उसकी तस्वीर धूमिल हो जायेगी। उसे सक्रिय राजनीति से अलग रहना चाहिए, क्योंकि किसी दल विशेष का प्रतिनिधित्व करता हुए एक सक्रिय राजनीतिज्ञ समस्त जनता का विश्वासपात्र नहीं बन सकता। इसी कारण सरकारिया आयोग के सुझावों (जिसका विवरण पिछले अध्याय में दिया जा चुका है) पर ध्यान देना आवश्यक है। राज्यपाल पद के आलोचकों को इस बात पर ध्यान नहीं देना चाहिए कि संसदात्मक एवं संघ व्यवस्था में यह पद एक परम आवश्यकता है। अतः इस पद पर उन्हीं व्यक्तियों की नियुक्ति होनी चाहिए जो संतुलन एवं निष्पक्षता के गुण लिए हुए हों।

राजस्थान के राज्यपाल

1. सरदार गुरुमुख निहाल सिंह	1 नवम्बर, 1956 से 15 अप्रैल, 1962
2. डॉ. सम्पूर्णानन्द	16 अप्रैल, 1962 से 15 अप्रैल, 1967

3.	सरदार हुकुमसिंह	16 अप्रैल, 1967 से 30 जून, 1972
4.	सरदार जोगेन्द्रसिंह	1 जुलाई, 1972 से 14 फरवरी, 1977
5.	श्री रघुकुल तिलक	12 मई, 1977 से 14 फरवरी, 1977
6.	श्री ओमप्रकाश मेहरा	6 मार्च, 1982 से 3 नवम्बर, 1985
7.	श्री बसन्त राव पाटिल	20 नवम्बर, 1985 से 10 नवम्बर, 1987
8.	श्री सुखदेव प्रसाद	20 फरवरी, 1988 से 17 जनवरी, 1990
9.	प्रो. देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय	14 फरवरी, 1990 से 22 अगस्त, 1991
10.	श्री स्वरूप सिंह	26 अगस्त, 1991 से 5 फरवरी, 1992
11.	डॉ. एम. चेन्नारेड्डी	5 फरवरी, 1992 से 31 मई, 1993
12.	श्री धनिकलाल मंडल	31 मई, 1993 से 30 जून, 1993
13.	श्री बलिराम भगत	30 जून, 1993 से 30 अप्रैल, 1998
14.	श्री दरबारा सिंह	1 मई, 1998 से 24 मई, 1998
15.	न्यायाधिपति नवरंगलाल टिबरेवाल	25 मई,1998 से 17 जनवरी, 1999
16.	श्री अंशुमान सिंह	17 जनवरी, 1999 से 13 मई, 2003
17.	श्री निर्मलचन्द जैन	14 मई से 2003 से 21 सितम्बर,2003
18.	श्री कैलाशपति मिश्र	21 सितम्बर, 2003 से 13 जनवरी, 2004
19.	श्री मदनलाल खुराना	15 जनवरी, 2004 से 27 अक्टूबर, 2004
20.	श्रीमती प्रतिभा पाटिल	31 अक्टूबर, 2004 से निरन्तर कार्यरत।

राजस्थान में राष्ट्रपति शासन

1. 13 मार्च, 1967 से 26 अप्रैल, 1967
2. 30 अप्रैल, 1977 से 21 जून, 1977
3. 16 फरवरी, 1980 से 5 जून, 1980
4. 15 दिसम्बर, 1992 से 3 दिसम्बर, 1993

राज्यपाल सचिवालय

राजस्थान में राज्यपाल को प्रशासनिक सहायता प्रदान करने के लिए एक राज्यपाल सचिवालय कार्यरत है। इस सचिवालय का प्रमुख राज्यपाल का सचिव होता है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए एक उपसचिव होता है जो राजस्थान प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त एक लेखाधिकारी राजभवन में वित्तीय प्रशासन एवं लेखों को देखता है। राजभवन में इन अधिकारियों के अतिरिक्त सम्पत्ति, उद्यान आदि के प्रशासन हेतु कई कार्मिक नियुक्त हैं। राजभवन के पुस्तकालय का प्रबन्धन पुस्तकालयाध्यक्ष करता है।

राजस्थान सरकार से प्राप्त ढेरों पत्रावलियां राजभवन में राज्यपाल के अनुमोदन हेतु आती हैं जिन्हें राजभवन सचिवालय के अधिकारियों की टिप्पणी के साथ राज्यपाल को प्रस्तुत किया जाता है। राज्यपाल अपने निर्णय देते समय, आवश्यकता पड़ने पर कानूनी राय भी लेते हैं।

राज्यपाल का भूमिका तन्त्र

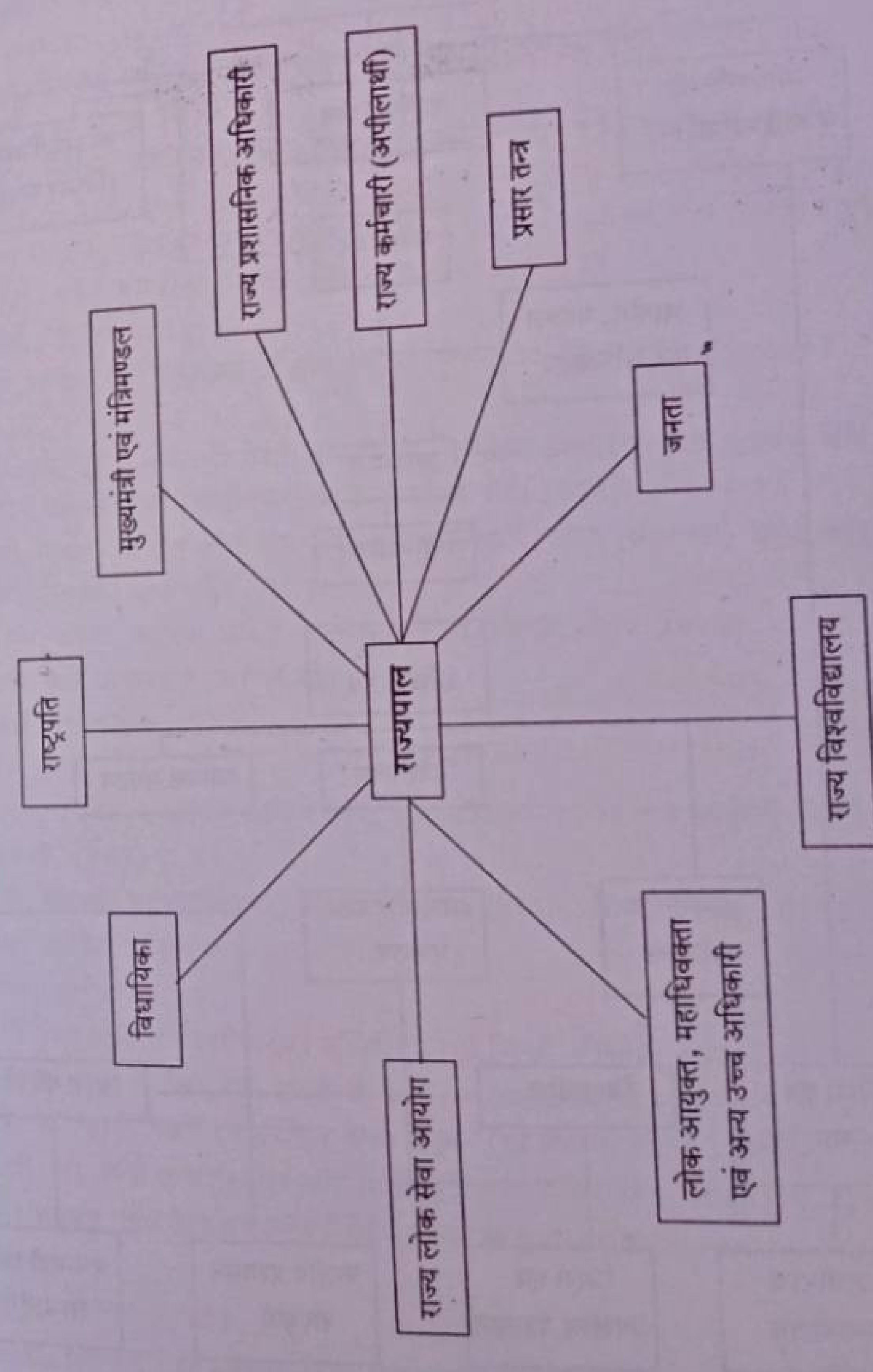

राज्य सरकार का संगठन

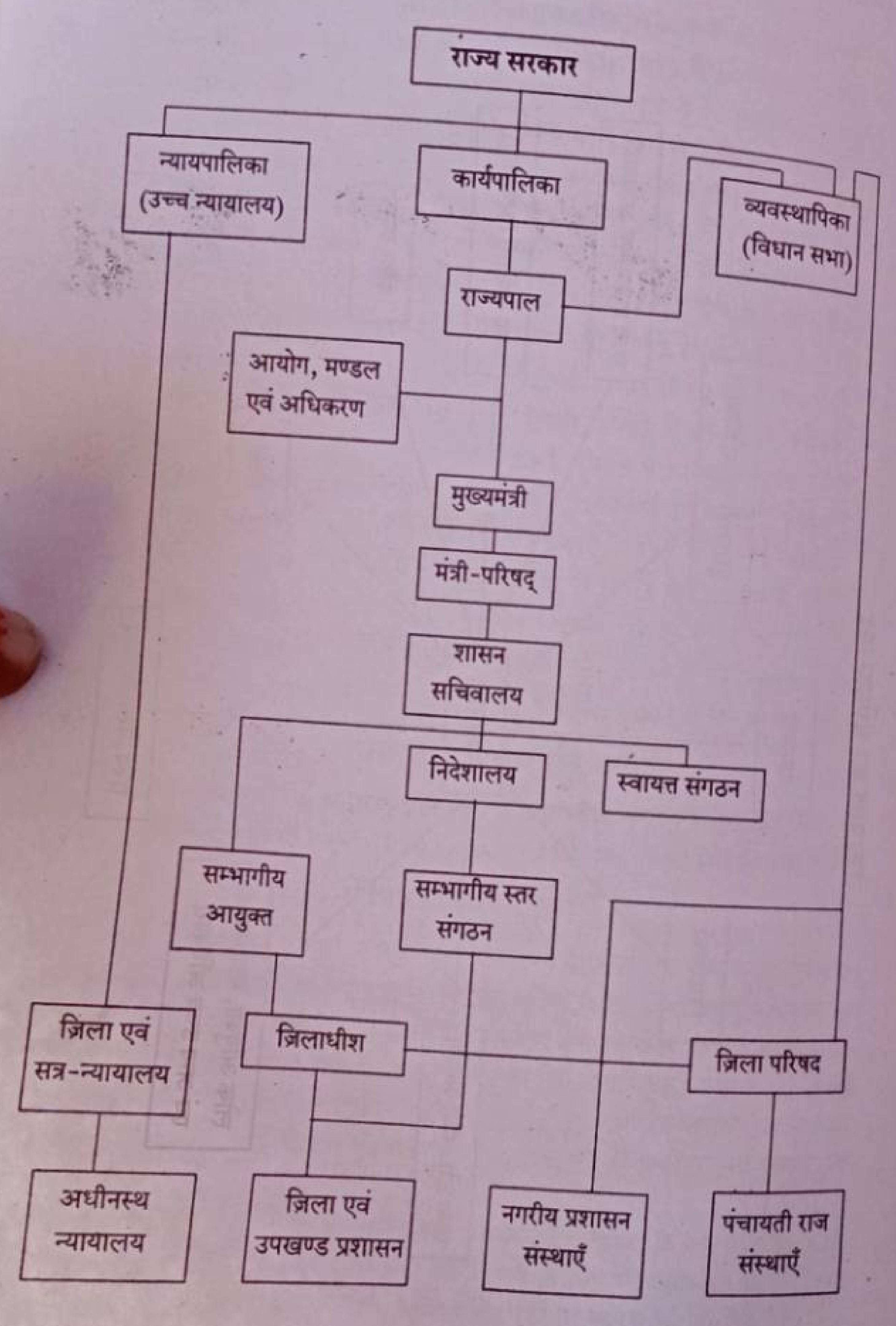

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. राज्यपाल के पद के संवैधानिक एवं व्यावहारिक पहलुओं के विश्लेषण हेतु देखें, रमेश के. अरोड़ा तथा रजनी गोयल, *इण्डियन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन* (नई दिल्ली: न्यू एज, 2004).
2. एच.एम. सिरवाई, *कॉंस्टिट्युशनल लॉ ऑफ इण्डिया*, वोल्यूम 2, तृतीय संस्करण (मुम्बई: त्रिपाठी, 1984), पृ. 1736.
3. जे. आर. सिवाच, *ऑफिस द गवर्नरः क्रिटिकल स्टडी, 1950-73* (नई दिल्ली: स्टर्लिंग, 1977), पृ. 260-261.
4. गोविन्द नारायण, "कान्सटिट्यूशनल ऑब्लीगेशन्स", सोली सोराबयी एवं अन्य (सम्पादक), *द गर्वनर : एसेज और रोबेट* (दिल्ली: रोली बुक्स, 1985), पृ. 77.
5. सीरवाई, *उपरोक्त*, पृ. 2193.
6. जे.एप. पाण्डेय, *कॉंस्टिट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया* (इलाहाबादः सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 1981), पृ. 312.
7. के.वी. राव, "रोल ऑफ स्टेट गवर्नर इन इण्डिया," वीरिन्दर ग्रोवर (सम्पादक), एसेज ऑन *इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलेटिक्स* (दिल्ली: दीप एण्ड दीप, 1988), षृ. 194-95.
8. एम.वी. पायल "द रोल ऑफ स्टेट गवनर्स इन इण्डिया", ग्रोवर (सम्पादक) एसेज ऑन *इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स*, पृ. 193.
9. एम. एस. दहिया, *ऑफिस ऑद द गवर्नर इन इण्डिया* (दिल्ली, संदीप, 1979), पृ. 57.
10. सिवाच, *ऑफिस आव द गवर्नर* से उद्धत, पृ. 52.
11. सीरवाई, *उपरोक्त*, पृ. 1723.
12. *वही।*
13. एन. एस. गहलोत, *द ऑफिस ऑफ द गवर्नर : कान्स्टीट्यूशनल इमेज एण्ड रियलिटी* (दिल्ली: गीतांजली, 1987) पृ. 87.
14. एम.वी. पायली, *कान्सटीट्यूशनल गवर्नर इन इण्डिया* (बम्बई: एशिया, 1968), पृ. 521.
15. दहिया, *ऑफिस ऑफ द गवर्नर इन इण्डिया*, पृ. 880.
16. सिवाच, *उपरोक्त*, पृ. 83.
17. डी.सी.गुप्ता *इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स* (नई दिल्ली: विकास, 1978), पृ. 35.
18. विस्तृत अध्ययन के लिए देखें, सोली सोराबजी, *द कान्सटीट्यूशन एण्ड गवर्नर*, पृ. 25; वी.के. वरदाचारीं, *गवर्नर इन इण्डियन कन्सटीट्यूशन* (नई दिल्ली: हैरिटैज, 1980),
19. डी. डी. बसु, *शॉर्टर कन्सटीट्यूशन ऑफ इण्डिया* (दिल्ली: प्रैन्टिस-हॉल, 1988), पृ. 419.
20. श्रीमन नारायण, *दोज टैन मंथस ऑफ प्रैसिडैन्ट्स रूल इन गुजरात* (दिल्ली: विकास, 1973), पृ.3-4.
21. सिवाच, *उपरोक्त*, पृ. 223.
22. गहलोत, *स्टेट गवर्नर इन इण्डियाः ट्रैन्डस एण्ड इश्यूज* (दिल्ली: विकास, 1973), पृ. 3-4.

23. शिव रंजन चटर्जी, ''गवर्नर एज एडमिनिस्ट्रेटर'' *एडमिनिस्ट्रेटिव चेन्ज*, XXI, (जुलाई, 1993, जून, 1994), पृ. 62.
24. *वही*, पृ. 63.
25. विष्णु सहाय, ''गवर्नर्स रोल इन एडमिनिस्ट्रेशन'', *द इण्डियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, XVI (जुलाई-सितम्बर, 1970), पृ 27a, 80.
26. भारत सरकार, ''केन्द्र राज्य सरकार सम्बन्ध आयोग'' *सरकारिया आयोग रिपोर्ट*, पार्ट-1(नई दिल्ली: 1988), पृ. 115.
27. अशोक सेन, *रोल ऑफ गवर्नर्स इन इमजिंग पैटर्न ऑफ सेन्टर स्टेट रिलेशन्स इन इण्डिया* (दिल्ली: नेशनल, 1975), पृ. 65.
28. ग्रोवर (सम्पादक), *एसेज ऑन इण्डियन गवर्नमेन्ट एण्ड पॉलिटिक्स*, पृ. 159.
29. *वही।*
30. *द स्टेट्समेन* (दिल्ली), 30 जुलाई, 1970.
31. *द स्टेट्समेन* (कोलकाता), 14 अक्टूबर, 1983.

□□□

अध्याय 3

राज्य मंत्री-परिषद्

भारत में केन्द्र व राज्य दोनों ही स्तर पर समान शासन पद्धति अपनाई गई है। ब्रिटिश संसदीय व्यवस्था के अनुरूप केन्द्र में प्रधानमंत्री कार्यपालिका का वास्तविक प्रमुख है। राज्य स्तर पर वही स्थिति मुख्यमंत्री की है। किन्तु, संवैधानिक दृष्टि से सम्पूर्ण कार्यपालिका शक्ति मंत्री-परिषद् में निहित है। संविधान के अनुच्छेद 163, 164, 167, में राज्यों की मंत्री-परिषद् की चर्चा की गई है। अनुच्छेद 163 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक मंत्री-परिषद् होगी जिसका प्रमुख मंख्यमंत्री होगा। इस मंत्री-परिषद् का कार्य राज्यपाल को उसके कर्तव्यों के निर्वहन में सहायता व मंत्रणा देना है। वस्तुतः राज्यपाल का पद नाममात्र के प्रधान का है, यद्यपि जैसाकि पिछले अध्याय में स्पष्ट किया गया है, राष्ट्रपति शासन के दौरान वह वास्तविक सत्ता का प्रयोग करता है।

संरचना

मंत्री-परिषद् की संरचना सम्बन्धी प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 164 में उल्लिखित हैं। यह एक त्रिस्तरीय संगठन है जिसमें मुख्यमंत्री के अतिरिक्त कैबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री तथा उपमंत्री होते हैं। कुछ स्थिति में संसदीय सचिव भी नियुक्त किये जाते हैं जो संगठन की चतुर्थ पंक्ति स्थापित करते हैं। राजस्थान में संसदीय सचिव के पद की व्यवस्था पहली बार श्री मोहनलाल सुखाड़िया के मुख्यमंत्रित्व के समय 1967 में की गई थी।

राज्य मंत्री-परिषद् का अध्यक्ष मुख्यमंत्री होता है जिसकी नियुक्ति राज्यपाल करता है। यदि विधान सभा में किसी राजनैतिक दल अथवा कतिपय दलों के गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त है तो राज्यपाल को उस दल के नेता को मुख्यमंत्री पद के लिए आमंत्रित करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, किन्तु जब किसी भी राजनैतिक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता तब राज्यपाल की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसे स्वविवेक के प्रयोग करने का अधिकार है।

मुख्यमंत्री की नियुक्ति के पश्चात् मंत्री-परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति की जाती है। अन्य मंत्रियों की नियुक्ति भी राज्यपाल ही करता है पर ऐसा वह मुख्यमंत्री की सलाह से करता है। वास्तविकता यह है कि इस मामले में मुख्यमंत्री की भूमिका ही निर्णायक होती है।

मंत्री-परिषद् में महत्त्वपूर्ण स्थान कैबिनेट मंत्रियों का होता है। यह कैबिनेट मंत्री-परिषद् की छोटी इकाई है, जिसमें महत्त्वपूर्ण विभाग यथा, गृह, शिक्षा, वित्त, कृषि, उद्योग आदि आते हैं। कैबिनेट स्तर के इन मंत्रियों के समूह को मंत्रिमंडल के नाम से जाना जाता है, बाकी तीनों श्रेणी के

मंत्री यानि राज्यमंत्री, उपमंत्री तथा संसदीय सचिव को मिलाकर मंत्री-परिषद् बनता है। कैबिनेट स्तर के मंत्रियों की सहायता हेतु राज्यमंत्री तथा उनकी सहायता हेतु उपमंत्री होते हैं।

मंत्री-परिषद् की रचना के समय कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है, यथा– व्यक्तियों की योग्यता एवं अनुभव, दल के वरिष्ठ नेताओं का दृष्टिकोण व इच्छा, राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को उचित तथा पर्याप्त प्रतिनिधित्व, विभिन्न जातियों, जनजातियों, पिछड़ी हुई जातियों एवं महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व। यद्यपि यह राज्य का आंतरिक मामला है तथापि मंत्रिमंडल तथा मंत्री-परिषद् निर्माण में राष्ट्रीय स्तर पर दल के उच्च कमान की इच्छा व निर्देश बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।

दल अथवा शासक दल गठबंधन के प्रभावी, अनुभवी एवं योग्य व्यक्तियों को सामान्यतया मंत्रिमंडल में नियुक्त किया जाता है। ये कैबिनेट मंत्री स्वतंत्र रूप से एक अथवा अधिक विभाग के राजनीतिक प्रमुख के रूप में कार्य करते हैं। सर्वाधिक वरिष्ठ कैबिनेट मंत्री स्वयं मुख्यमंत्री होता है जो कई विभागों का प्रमुख होता है।

राज्य मंत्रियों का पद इस सोपान की दूसरी श्रेणी है। इन पदों पर तुलनात्मक रूप से राजनीतिक दृष्टि से कम प्रभावी व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। राज्यमंत्री दो प्रकार के होते हैं, एक वे जो किसी कैबिनेट मंत्री के सहायक के रूप में कार्य करते हैं तथा दूसरे वे जो किन्ही विषयों के स्वतंत्र प्रभारी हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक राज्यमंत्री किन्हीं विषयों के लिए तो स्वतंत्र प्रभारी हों तो किन्हीं अन्य विषयों के लिए किसी कैबिनेट मंत्री के सहायक हों। उपमंत्री की भूमिका सहायक की होती है और बहुत विशेष परिस्थिति में ही उन्हें स्वतंत्र भार सौंपा जाता है। उपमंत्री की मुख्य भूमिका कैबिनेट मंत्री के कार्यभार को कम करना होता है। संसदीय सचिव दल के नये एवं युवा व्यक्ति होते हैं जिन्हें राजनीतिक एवं शासकीय अनुभव लम्बा नहीं होता। वस्तुतः उन्हें यह पद देने का अर्थ होता है शासकीय दायित्व का प्रशिक्षण प्रदान करना।

मंत्रियों में विभागों का वितरण राज्यपाल मुख्यमंत्री की सलाह से करता है। मंत्रिमंडल में फेरबदल, विस्तार आदि के माध्यम से मुख्यमंत्री प्रशासन में चुस्ती एवं कुशलता लाने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से मंत्रियों को पुरस्कृत तथा प्रताड़ित भी किया जाता है। कई बार यह तुष्टिकरण व समझौते का माध्यम भी बन जाता है जैसाकि 1998 में भैरोंसिंह शेखावत मंत्री-परिषद् के विस्तार के समय हुआ। ऐसी अवस्था में मुख्यमंत्री की वास्तविक शक्ति कम हो सकती है। व्यावहारिक रूप में राज्य के मंत्रियों की सूची को अन्तिम रूप शासक दल के केन्द्रीय नेतृत्व द्वारा दिया जाता है। राज्य शासन में ऐसी व्यवस्था व परम्परा का विकास नहीं किया गया है कि कोई मंत्री किसी विभाग विशेष में दक्षता व विशेषज्ञता प्राप्त कर ले। परिणामतः भारत में सरकारों के मंत्री, उच्चतर लोक सेवकों की भाँति ''सामान्यज्ञ'' (जर्नलिस्ट) ही हैं।

मंत्री पद के लिए आवश्यक नहीं कि व्यक्ति विधायिका का सदस्य हो ही। लेकिन मंत्री पदग्रहण करने के बाद छः महीने के अन्दर विधायक बनना आवश्यक है, अन्यथा उसे पद त्याग करना पड़ता है। ऐसे कई मौके देखे गये हैं जब कोई व्यक्ति विधायिका का सदस्य न होने पर भी मुख्यमंत्री या मंत्री बना दिया गया। 1977 में जनता दल की हवा होने के कारण कई राज्यों में इस दल की सरकारें बनीं। उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में श्री रामनरेश यादव तथा श्री भैरोंसिंह शेखावत

को अपने-अपने राज्यों में मुख्यमंत्री बनाया गया। यद्यपि ये उस समय विधायिका के सदस्य नहीं थे। इसके पहले 1952 में श्री सी. राजगोपालाचार्य को मद्रास कांग्रेस विधायक दल का नेता तत्पश्चात् मुख्यमंत्री बनाया गया। बाद में वे उच्च सदन में मनोनीत किये गये। इस प्रकार उन्होंने संवैधानिक योग्यता प्राप्त की और पद पर बने रहे।[1]

मंत्री-परिषद् का आकार

मंत्री-परिषद् के आकार के बारे मे संविधान में कुछ भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है। वस्तुतः केन्द्र तथा राज्य दोनों में ही यह आकार बदलता रहता है। भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग का सुझाव था कि मंत्रियों की संख्या विधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या का 10 प्रतिशत से अधिक होना नहीं होना चाहिए।[2] मंत्री-परिषद् के लिए ''राज्य योजना'' कांग्रेस द्वारा यह निश्चित हुआ था कि 20 से ज्यादा मंत्री न हो। पर इस सिद्धान्त का पूर्ण परिपालन न हो सका। बिहार में मंत्री-परिषद् के सदस्यों की संख्या 35 से 40 तक के बीच रही। 1967 से 1972 के बीच मंत्रियों की संख्या 53 तक हो गई।[3] श्री कर्पूरी ठाकुर के समय (1977) भी संसदीय सचिव सहित यह संख्या 52 थी। वस्तुतः 1977 में 9 राज्यों में गैर कांग्रेस दल सत्ता में आये। उन्हें अपने दल के अधिकतम सदस्यों को संतुष्ट करना आवश्यक था। ऐसे में मंत्रियों की संख्या ज्यादा हो जाना स्वाभाविक था।

राजस्थान में श्री भैरोंसिंह शेखावत (1977) के मंत्री-परिषद् की सदस्य संख्या 37 थी तथा सुखाड़िया मंत्री-परिषद् (1967-68) में यह सदस्य संख्या 30 से ज्यादा थी। 1989 में हरिदेव जोशी मंत्री-परिषद् में कुल 36 सदस्य थे जिनमें 12 कैबिनेट मंत्री, 16 राज्यमंत्री, 1 उपमंत्री तथा 7 संसदीय सचिव थे। यह उल्लेखनीय है कि जहाँ मुख्यमंत्री राजनीतिक दृष्टि से सक्षम होता है वह छोटे आकार की मंत्री-परिषद् भी बनाकर सुरक्षित रह सकता है, किन्तु उसकी स्थिति यदि पूर्णतया सुरक्षित न हो तो उसे यथार्थ से समझौता कर बड़ी मंत्री-परिषद् बनानी पड़ती है जिससे विरोधियों को संतुष्ट किया जा सके। 1996 में कर्नाटक के जे.एच. पटेल की मंत्री-परिषद् में इतने मंत्री हो गये कि उनके लिए पृथक् व विशिष्ट विषयों का अभाव हो गया। एक समय राजस्थान में सुखाड़िया मंत्री-परिषद् में कई उपमंत्रियों की नियुक्ति राजनीतिक आधार पर की गई थी किन्तु अधिकांश उपमंत्रियों के पास एक भी फाइल नहीं जाती थी। श्री भैरोंसिंह शेखावत की 1994 में बनी सरकार में विधानमंडल में भाजपा के पूर्ण बहुमत के अभाव के कारण कतिपय स्वतंत्र सदस्यों को मंत्री पद दिया गया जिससे उनके समर्थन से बहुमत बनाया जा सके तथापि इस कदम के कारण राजनीतिक अस्थिरता का माहौल नहीं बना क्योंकि श्री शेखावत को अपने दल का प्रचुर समर्थन प्राप्त था।

राजस्थान में नवम्बर, 1998 में सम्पन्न हुए विधानसभा चुनावों के फलस्वरूप गठित नवीन मंत्री-परिषद् का गठन 7 दिसम्बर, 1998 को किया गया। इस मंत्रिमंडल में मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत के अधीन 17 विभागों का प्रभार था। पारम्परिक रूप से मुख्यमंत्री कार्मिक विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग, मंत्रिमंडल सचिवालय, प्रशासनिक सुधार विभाग एवं भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो आदि महत्त्वपूर्ण विभाग अपने अधीन ही रखते रहे हैं। किन्तु 26 फरवरी, 1999 को श्री गहलोत ने लीक से हटकर एक विशिष्ट एवं अभूतपूर्व निर्णय लिया जिसके अन्तर्गत उन्होंने अपने सारे विभागों का भार अन्य मंत्रियों को सौंप दिया एवं अपने पास केवल समग्र पर्यवेक्षण एवं समन्वय का दायित्व रखा।

इस व्यवस्था का लाभ यह रहा कि मुख्यमंत्री को सभी विभागों की महत्त्वपूर्ण नीतियों एवं उनके क्रियान्वयन पर निगरानी रखने हेतु यथेष्ट समय मिला तथा प्रशासन में कसावट लाने का अवसर भी। किन्तु जब यह देखा गया कि कई महत्त्वपूर्ण निर्णय मुख्यमंत्री की अनुमति के बिना भी लिये जा सकते हैं तो प्रशासनिक प्रक्रिया में परिवर्तन कर नियमों में संशोधन कर दिया गया। इन संशोधनों के फलस्वरूप प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नीतिगत मामला एवं निर्णय मुख्यमंत्री के पास सूचना अथवा अनुमति हेतु आने लगा। इस प्रकार मुख्यमंत्री की पकड़ प्रशासन पर ढीली नहीं हुई।

किन्तु वसुन्धरा राजे सरकार ने इस परिपाटी को आगे नहीं चलाया तथा पूर्व की भांति मुख्यमंत्री भी कतिपय महत्त्वपूर्ण विभाग की प्रत्यक्ष प्रभारी बनीं। नव-निर्मित मंत्रीमंडल की रचना इस प्रकार थी:

कैबिनेट मंत्री

श्रीमती वसुन्धरा राजे

1. वित्त, करारोपण, आबकारी, राज्य बीमा, राज्य लाटरी एवं अल्प बचत
2. आयोजना, जनशक्ति, आर्थिक एवं सांख्यिकी
3. नीति निर्धारण
4. कार्मिक
5. प्रशासनिक सुधार
6. जन-अभियोग निराकरण
7. मंत्रिमंडल सचिवालय
8. ऊर्जा
9. सूचना-प्रौद्योगिकी एवं संचार
10. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी
11. पर्यटन, कला, संस्कृति एवं पुरातत्त्व
12. देवस्थान
13. राज्य अवेषण ब्यूरो
14. चुनाव
15. सूचना एवं जन-सम्पर्क

श्री गुलाबचंद कटारिया

1. गृह, गृह रक्षा एवं नागरिक सुरक्षा
2. कारागार

श्री घनश्याम तिवाड़ी

1. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा
2. उच्च शिक्षा
3. संस्कृत शिक्षा
4. भाषा एवं भाषायी अल्पसंख्यक विभाग
5. तकनीकी शिक्षा
6. विधि एवं न्याय

श्री सांवरलाल जाट

1. सिंचाई एवं इंदिरा गाँधी नहर
2. जनस्वास्थ्य अभियांत्रिकी
3. भू-जल
4. सिंचित क्षेत्र

श्री किरोड़ी लाल मीणा

1. खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति
2. आपदा प्रबन्धन एवं सहायता

श्री राजेन्द्र सिंह राठौड़

1. सार्वजनिक निर्माण
2. संसदीय मामले

श्री मदन दिलावर

1. समाज कल्याण
2. सहकारिता

श्री रामनारायण डूडी

1. राजस्व
2. उपनिवेशक
3. सैनिक कल्याण

श्री कालू गुर्जर

1. ग्रामीण विकास
2. पंचायती राज

श्री कनकमल कटारा

1. महिला एवं बाल विकास
2. जनजाति क्षेत्रीय विकास
3. सामान्य प्रशासन
4. नागरिक उड्डयन
5. संपदा
6. मोटर गैराज
7. मुद्रण एवं लेखन सामग्री

श्री नरपत सिंह राजवी

1. उद्योग
2. अप्रवासी भारतीय विभाग
3. खादी एवं ग्रामोद्योग
4. राजकीय उपक्रम

श्री लक्ष्मीनारायण दवे

1. वन एवं पर्यावरण
2. खनिज

श्री युनुस खाँ

1. यातायात
2. युवा एवं खेलकूद

श्री प्रभुलाल सैनी

1. कृषि
2. डेयरी
3. पशुपालन
4. भेड़ एवं ऊन
5. मत्स्य
6. कृषि विपणन

श्री दिगम्बर सिंह

1. चिकित्सा एवं स्वास्थ्य
2. परिवार-कल्याण एवं आयुर्वेद

राज्यमंत्री

श्री प्रतापसिंह सिंघवी (स्वतंत्र प्रभार)

1. नगरीय विकास, आवासन
2. स्थानीय शासन

श्री अमराराम चौधरी

गृह

श्री भवानी जोशी

चिकित्सा एवं स्वास्थ्य

श्री सुरेन्द्र पाल टीटी

कृषि

श्रीमती ऊषा पूनिया

पर्यटन, कला, संस्कृति, पुरातत्त्व, देवस्थान

श्री वासुदेव देवनानी

1. प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा
2. उच्च शिक्षा
3. संस्कृत शिक्षा
4. भाषा एवं भाषायी अल्पसंख्यक
5. तकनीकी शिक्षा

श्री वीरेन्द्र मीणा

वित्त एवं करारोपण

श्री सुरेन्द्र सिंह राठौड़

सिंचाई

श्री चुन्नीलाल जांगिड़

1. जनस्वास्थ्य अभियांत्रिकी
2. खादी ग्रामोद्योग

श्री खेमराज मेघवाल

खनिज

श्री गजेन्द्र सिंह

ऊर्जा

97वाँ संशोधन

भारतीय जनतंत्र के स्वरूप में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन संविधान के 97वें संशोधन से हुआ है। अब राज्य के मंत्री-परिषद् का आकार विधानसभा सदस्यों की संख्या के केवल 15 प्रतिशत कर दिया गया है। अतः राजस्थान में जहाँ 200 विधायक हैं वहा मंत्रिमंडल का आकार 30 से अधिक नहीं हो सकता। श्रीमती वसुन्धरा राजे के मंत्री-परिषद् में 27 ही सदस्य हैं तथा तीन स्थान अभी रिक्त हैं।

मंत्रियों की संख्या सीमित करने से न केवल मितव्ययता सम्भव बनेगी, प्रशासन में कसावट भी आएगी। किन्तु इस का एक राजनीतिक प्रतिफल यह होगा कि कई महत्वाकांक्षी विधायकों को संतुष्ट करना कठिन होगा। इसी कारण मंत्री-परिषद् के बाहर कई ऐसे पद बनाए जाते हैं जिन्हें मंत्री का दर्जा प्रदान किया जाता है। राजस्थान में भी इस प्रकार के कतिपय पदों की रचना की गई है। यह परम्परा तो वैसे आरम्भ से ही सभी राज्य सरकारों के कार्यकाल में विद्यमान रही।

इन विभिन्न पदों का भी प्रशासनिक महत्त्व है। इन पदों को सुशोभित करने वाले व्यक्ति भी मंत्रियों की भांति विभिन्न क्षेत्रों में दिशा-निर्देशन एवं नीति- क्रियान्वयन में योगदान करते हैं। उदाहरणार्थ, वसुन्धरा राजे सरकार में श्री हरिशंकर भाभड़ा आर्थिक नीति एवं सुधार परिषद् के उपाध्यक्ष है तथा श्री चंद्रराज सिंघवी बीस सूत्री कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति के उपाध्यक्ष हैं। लोक प्रशासन के विद्यार्थियों को ऐसे पदों का भी अध्ययन करना चाहिए, तभी सरकार का सम्पूर्ण चित्र स्पष्ट होगा।

मंत्री-परिषद् के कार्य

संविधान के अनुच्छेद 163 के अनुसार मंत्री-परिषद् का कार्य राज्यपाल को सलाह व उसके कार्यों में सहायता देना है। किन्तु व्यावहारिक रूप से सारे महत्त्वपूर्ण नीतिगत निर्णय लेने का कार्य राज्य मंत्री-परिषद् का है। जैसा कि पिछले पृष्ठों में स्पष्ट किया गया है, कैबिनेट मंत्री महत्त्वपूर्ण विभागों के मंत्री होते हैं। यह मंत्री-परिषद की सबसे छोटी किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। ये मंत्री तथा स्वतंत्र प्रभार वाले राज्यमंत्री मंत्रीमंडल की बैठकों में भाग लेते हैं। अन्य राज्यमंत्री तथा उपमंत्री

कैबिनेट मंत्रियों की सहायता के लिए होते हैं। ये मंत्रिमंडलीय बैठकों में भाग नहीं लेते पर आवश्यकता पड़ने पर उन्हें मंत्रीमंडल की बैठक में बुलाया जा सकता है।

मंत्री-परिषद् का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य राज्य में शासन की नीति-निर्धारण करना है। विभाग के मंत्री द्वारा लोक सेवकों की सहायता से नीति का प्रारूप तैयार किया जाता है, जो मंत्री-परिषद् द्वारा स्वीकृत किया जाता है। तत्पश्चात् इसे अनुमोदन हेतु विधान मंडल में प्रस्तुत किया जाता है। मंत्री का कार्य नीति-निर्माण तक सीमित नहीं हैं। वह यह भी देखता है कि मंत्री-परिषद् द्वारा निर्मित तथा विधान सभा द्वारा स्वीकृत नीति का क्रियान्वयन भली प्रकार से हो रहा है या नहीं। वह विधान सभा के समक्ष अपनी नीतियों व कार्यों को प्रस्तुत करता है, सदस्यों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देता है, विधान सभा में हो रहे वाद-विवाद में भाग लेता है, अपने विभाग के विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत करता है इत्यादि।

मंत्री-परिषद् को मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्यों में महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभानी पड़ती है:

- मुख्यमंत्री द्वारा विचारार्थ दिया गया कोई भी विषय।
- नये विधेयक के लिए प्रस्ताव अथवा वर्तमान कानूनों में संशोधन का प्रस्ताव।
- वर्तमान नीतियों सहित महत्त्वपूर्ण नीति सम्बन्धी विषय।
- पिछले मंत्रिमंडल द्वारा लिये गये निर्णय के विपरीत या भिन्न प्रस्ताव।
- अन्तर्विभागीय एवं अन्तःसांस्थानिक समन्वय स्थापित करना।
- राज्य राजस्व, व्यय, निवेश तथा लेखा का परीक्षण।
- बजट के लिए प्रस्ताव, अनुपूरक माँगे तथा आकस्मिक निधि से अग्रिम।
- राज्य प्रशासनिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण संरचनात्मक परिवर्तन।
- लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति हेतु राज्यपाल को की जाने वाली सिफारिशों के बारे में मतैक्य स्थापित करना।
- राजस्व मंडल, जिला एवं सत्र न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में सिफारिशें राज्यपाल को देना।
- राज्य सेवा की शर्तों का निरूपण एवं संशोधन।
- राज्य सरकार द्वारा जारी अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध किसी सरकारी अधिकारी की राज्यपाल को अपील।
- क्षेत्रीय परिषदों को निर्देश देने वाले प्रस्ताव।
- संघ-राज्य सम्बन्ध।
- अन्तर्राज्यीय सम्बन्ध।
- अन्य ऐसे विषय जिन्हें मंत्री-परिषद् अनुभव करती है, विचारार्थ रखे जाते हैं।

मंत्रीमंडल में निर्णय प्रक्रिया

गौरतलब है कि भारतीय संविधान में मंत्रिमंडल (कैबिनेट) शब्द का उल्लेख नहीं है (एक अपवाद के अतिरिक्त) केवल मंत्री-परिषद् (कांउसिल ऑफ मिनिस्टर्स) का है। तथापि, कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियाँ मंत्रीमंडल के पास ही निहित हैं। इसलिए भारतीय शासकीय व्यवस्था, चाहे वह केन्द्र की हो अथवा राज्य की, को ''कैबिनेट गवर्नमेन्ट'' के नाम से जाना जाता है। स्पष्ट है कि

राज्य सरकार के सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय मंत्रीमण्डल द्वारा लिये जाते हैं। एक प्रस्ताव को निर्णय तक पहुँचाने के लिए कई प्रक्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता है। ये प्रक्रियाएँ इस प्रकार हैं :

बैठक के लिए 'कार्य-सूची' (एजेण्डा) तैयार करना

बैठक में जो भी प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता है तत्सम्बन्धी समस्त सूचनाएँ मंत्रीमण्डल के पास होनी चाहिए, यथा– विषय सम्बन्धित पृष्ठभूमि, पूर्व निर्णय फाइलें आदि। विषय के पक्ष तथा विपक्ष में तर्क, प्रस्ताव से होने वाले सम्भावित सुप्रभाव एवं दुष्प्रभाव, लागत तथा लाभ आदि का विश्लेषण भी निर्णयों को विवेकपूर्ण बनाने में सहायक होते हैं। आदर्श रूप से प्रत्येक विषय पर विस्तृत 'नीति प्रपत्र' बनाये जाते हैं जिनके आधार पर निर्णय लिये जाने चाहिए। इन प्रपत्रों के निरूपण का दायित्व सम्बन्धित विभाग का होता है।

कार्य-सूची में कोई विषय तभी शामिल किया जाता है जब सम्बन्धित मंत्री से स्वीकृत होकर उसके सम्बन्ध में ''मंत्रीमंडलीय मीमो'' मुख्यमंत्री द्वारा स्वीकृत कर लिया जाये। कार्य-सूची को तैयार करने में समन्वयकारी भूमिका मंत्रीमंडल सचिवालय (कैबिनेट सैक्रेटेरियट) की होती है जिसका राजनीतिक प्रमुख मुख्यमंत्री तथा प्रशासनिक प्रमुख मुख्य सचिव होता है।

मंत्रीमंडल बैठक की सूचना

मुख्यमंत्री जब बैठक के लिए सहमति प्रदान करता है तो मुख्य सचिव को एक पत्र द्वारा बैठक का समय, तिथि तथा स्थान के बारे में सूचित किया जाता है। सामान्यतया दो दिन की सूचना पर बैठक बुलाई जाती है, पर यदि आवश्यक हो तो फोन द्वारा कुछ घण्टों की सूचना के द्वारा भी बैठक बुलाई जा सकती है। राजस्थान में परम्परानुसार मंत्रीमंडल की बैठक प्रत्येक बुधवार को आयोजित की जाती है। यदि बुधवार को मुख्यमंत्री राजधानी में नहीं है तो मंत्रीमंडल की बैठक नहीं होती, किन्तु यदि मुख्यमंत्री लम्बे समय के लिए बाहर है तो मंत्रीमंडल की बैठक की अध्यक्षता उपमुख्यमंत्री अथवा उनकी अनुपस्थिति में वरिष्ठतम मंत्री करते हैं। किन्तु ऐसे अवसर बहुत ही कम आते हैं।

'परिचालन' द्वारा निर्णय

यदि कभी ऐसी परिस्थिति हो कि मंत्रीमंडल की बैठक आहूत करने का समय न हो और किसी मुद्दे पर तुरन्त निर्णय लेना आवश्यक हो, तब मुख्यमंत्री के आदेश द्वारा मंत्रियों के पास उस विषय से सम्बन्धित प्रस्ताव भिजवा दिया जाता है। ऐसी स्थिति में मंत्रियों को निश्चित तिथि पर अपना अभिमत व्यक्त करने के निर्देश दिये जाते हैं। ''मौनम् स्वीकृति लक्षणम्'' के सिद्धान्तानुसार यदि कोई मंत्री निर्धारित समय तक अपना अभिमत व्यक्त नहीं करता है तो यह मान लिया जाता है कि उक्त विषय में उसे कोई एतराज नहीं है। तत्पश्चात् निर्धारित नियमानुसार निर्णय ले लिये जाते हैं। वैसे इस प्रकार की प्रक्रिया अपनाने से पहले अनौपचारिक रूप से मंत्रिमंडल के सदस्यों में मतैक्य स्थापित पहले ही कर लिया जाता है, उनके हस्ताक्षर तो केवल औपचारिक ही रह जाते हैं। मंत्रिमंडल की अगली बैठक में ऐसे निर्णयों की सूचना दे दी जाती है।

मंत्रीमंडल में निर्णय प्रक्रिया

मंत्रीमंडल में विचारार्थ विषयों की सूची बनाई जाती है। साधारणतया सूचीवार ही विचार-विमर्श तथा निर्णय लिये जाते हैं। पर कभी-कभी विषय की महत्ता तथा आवश्यकतानुसार किसी विषय को

प्राथमिकता के आधार पर विचारार्थ ले लिया जाता है। मुख्य सचिव (जो मंत्रिमंडल सचिव भी है) विषय सम्बन्धित विस्तृत ब्यौरा पढ़कर सुनाता है। ऐसी परम्परा है कि जिस विषय पर मंत्रिमंडल में चर्चा होती है, उस समय उस विषय से सम्बन्धित शासन सचिव को भी मंत्रीमंडल की बैठक में आमंत्रित कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति में मुख्य सचिव के स्थान पर सम्बन्धित शासन सचिव ही किसी विषय को मंत्रीमंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है। आवश्यकता पड़ने पर इस अधिकारी से सम्बन्धित सूचनाएँ एवं विश्लेषण को खुलासा करने के लिए कहा जाता है। बहस के दौरान मुख्य सचिव, सम्बन्धित मंत्री एवं मुख्यमंत्री भी प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

सूची में निर्धारित हर विषय पर एक ही बैठक में निर्णय हो जाये यह आवश्यक नहीं है। वास्तव में मुख्यमंत्री तथा उसके सहयोगियों के बीच कितना तालमेल है इस पर ही बैठक का परिणाम निर्भर करता है। एक निर्णय पर सर्वसम्मति से पहुँचने में मुख्यमंत्री की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। सिद्धान्त रूप से सभी निर्णय मंत्रीमंडल द्वारा लिये जाने चाहिए, पर कई बार मुख्यमंत्री नीति सम्बन्धी निर्णय स्वयं ले लेता है तथा इसका अनुमोदन बाद में मंत्रीमंडल द्वारा कर दिया जाता है। ऐसी अवस्था में भी अनौपचारिक मतैक्य पहले ही स्थापित हो जाना चाहिए। मंत्रीमंडल के निर्णय या तो विधान सभा को सूचित किये जाते हैं या जनता को जनसंचार के माध्यम से सूचित किया जाता है।

राजस्थान में मंत्रिमंडल की बैठकें सामान्यतया सौहाद्रपूर्ण ही रही हैं। इसका मुख्य कारण मुख्यमंत्री की राजनीतिक एवं प्रशासनिक कुशलता रहा है। किन्तु श्री मोहनलाल सुखाड़िया के मुख्यमंत्रित्व के समय में एक ऐसा अवसर आया था जब वे राजनीतिक दृष्टि से अपने दल (कांग्रेस) में यथेष्ट रूप से शक्तिशाली नहीं थे। उस समय कतिपय वरिष्ठ मंत्री मुख्यमंत्री की राजनीतिक निर्बलता का लाभ उठाकर कई बार मंत्रीमंडल में हावी हो जाते थे। किन्तु इस प्रकार के लघुकालीन उतार-चढ़ाव की बात जाने दें, तो यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में मंत्रीमंडल की बैठकों को संचालित करने में मुख्यमंत्री ने अपनी दक्षता का परिचय भली-भाँति दिया है।

मंत्रीमंडल की बैठकों का विवरण

मंत्रीमंडल की बैठक की कार्यवाही का वर्णन लिखना मुख्य सचिव का दायित्व है, पर वास्तव में मंत्रीमंडल का विशेष सचिव इस कर्तव्य का निर्वाह करता है। मुख्यमंत्री के अनुमोदन के पश्चात् यह विवरण सभी मंत्रियों, राज्यपाल के सचिव तथा अन्य सचिवों के पास भेजा जाता है। इस विवरण में बैठक की विस्तृत कार्यवाही दर्ज नहीं की जाती, सिर्फ लिये गये निर्णयों को ही लिखा जाता है।

निर्णयों का क्रियान्वयन

मंत्रीमंडल के निर्णयों की सूचना प्रत्येक सम्बन्धित विभाग को दी जाती है। प्रत्येक निर्णय के साथ यह उल्लेख भी कर दिया जाता है कि उस निर्णय के निष्पादन के लिए उत्तरदायी कौन होगा? व्यवहार में सम्बन्धित विभाग के मंत्री एवं शासन सचिव का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह उस निर्णय को मंत्रीमंडल की भावना के अनुरूप नियत समय पर क्रियान्वित करे। इस हेतु आवश्यक निर्देश नीचे के अधिकारियों एवं सम्बद्ध एवं अधीनस्थ संस्थाओं को दे दिये जाते हैं। यदि किसी निर्णय को लागू करने हेतु अतिरिक्त साधनों अथवा अन्य विभागों के सहयोग की आवश्यकता हो तो उस सम्बन्ध में कार्यवाही करने का उत्तरदायित्व सम्बन्धित विभाग का ही है।

मंत्रीमंडल के निर्णय के निष्पादन की प्रगति के सम्बन्ध में विवरण सम्बन्धित विभाग द्वारा मंत्रीमंडल सचिवालय को दिया जाता है। इस बारे में संकलित सूचना मंत्रीमंडल की बैठकों में, अथवा मुख्यमंत्री तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व मंत्रीमंडल सचिवालय का ही है।

मंत्रीमंडल के किसी निर्णय के क्रियान्वयन में यदि कोई विलम्ब हो रहा हो तो सम्बन्धित विभाग को इस सम्बन्ध में स्मरण-पत्र मुख्य सचिव अथवा विशिष्ट सचिव/उप-सचिव, मंत्रीमंडल सचिवालय द्वारा भेजे जा सकते हैं। वैसे इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा सचिवों की बैठकों में अथवा मुख्य सचिव के स्तर पर होती रहती है।

जहाँ पर मंत्रीमंडल के निर्णय को लागू करने में कोई व्यावहारिक कठिनाई होती है, उसके बारे में भी सूचना मंत्रीमंडल की बैठकों में दी जाती है, जिससे कि यदि किन्ही निर्णयों में संशोधन की आवश्यकता हो तो वे किये जा सकें।

मंत्री-परिषद् की विधायी भूमिका

समस्त महत्त्वपूर्ण वित्तीय तथा गैर-वित्तीय विधेयक मंत्रीमंडल द्वारा तैयार किये जाते हैं। किसी वित्तीय विधेयकों को विधान सभा में प्रस्तुत या प्रस्तावित करने से पहले राज्यपाल की पूर्वानुमति आवश्यक है। विधान सभा में सरकारी विधेयक मंत्री द्वारा प्रस्तावित किये जाते हैं। अधिकतर विधान सभा में शासन दल अथवा गठबंधन के बहुमत में होने के कारण ये विधेयक पारित हो जाते हैं। विधायी प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के कारण मंत्रीमंडल को "लघु विधायी समिति" का दर्जा मिल जाता है। प्रत्यायोजित विधायन के कारण भी मंत्री-परिषद की शक्तियों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। विधान सभा, चूंकि अत्यधिक कार्यभार से ग्रस्त है, अतः वह विधेयकों को मोटे तौर पर पारित कर देती है। इसके सम्बन्ध में क्रियान्वयन सम्बन्धी विस्तृत तथा सूक्ष्म नियम एवं प्रक्रिया का दायित्व सम्बन्धित विभाग पर छोड़ दिया जाता है।

राज्यपाल के नाम पर जो अध्यादेश जारी किये जाते हैं वे भी वस्तुतः मंत्रीमंडल द्वारा तैयार किये जाते हैं। केवल असाधारण स्थितियों में ही राज्यपाल उन पर हस्ताक्षर करने से इन्कार करता है। राजस्थान में ऐसा अवसर शायद ही कभी आया हो। आम चुनाव के पश्चात् विधानसभा के उद्घाटन सत्र में, तथा बजट सत्र में पढ़ा जाने वाला भाषण मंत्रीमंडल द्वारा ही तैयार किया जाता है। सम्पूर्ण आलेख में से कोई एक अंश राज्यपाल निकालना चाहते हैं, तो वे ऐसा कर सकते हैं, लेकिन इससे स्थिति विवादास्पद हो जाती है। एम.सी. सीतलवाड़ तथा अशोक सेन जैसे न्यायविदों का मानना है कि भाषण की वे पंक्तियां या अंश जिसमें राज्यपाल के पूर्व में किसी किये गये कार्य को अनुचित ठहराया गया हो, उन्हें राज्यपाल को छोड़ देना चाहिए, नहीं तो ऐसा प्रतीत होगा जैसे राज्यपाल अपने स्वयं के किये किसी कार्य की निन्दा कर रहा हो। भाषण के उन आपत्तिजनक अंशों को भी छोड़ सकता है जो राज्य और संघ के सम्बन्धों में कटुता व संघर्ष उत्पन्न करते हों या संवैधानिक भावनाओं का उल्लंघन करते हों। मंत्रीमंडल राज्यपाल को सलाह दे सकता है कि वह विधान सभा को आहूत, निलम्बित या भंग कर दे। इस क्षेत्र में राज्यपाल अपने स्वविवेक का प्रयोग कर सकता है तथा मंत्रीमंडल की सलाह सदैव बाध्यकारी नहीं होती।

प्रश्न काल में विधानसभा में उठाये गये प्रश्नों का सम्बन्धित मंत्री को जवाब देना पड़ता है। ध्यानाकर्षण प्रस्ताव में अपने विभाग के कार्यकलाप से सम्बन्धित प्रश्नों का समाधान करना होता है।

यदि मंत्री ऐसा करने में अक्षम रहता है तो उसका कोई भी साथी अथवा मुख्यमंत्री उसकी सहायतार्थ जवाबदेही की भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

सामूहिक उत्तरदायित्व

ब्रिटिश संसदीय एवं कैबिनेट शासन परम्परा के अनुसार भारत में भी, केन्द्र एवं राज्य स्तर पर मंत्री-परिषद् ''सामूहिक उत्तरदायित्व'' (कलेक्टिव रेसपोंसिबिलिटी) के सिद्धान्तानुसार कार्य करता है। यह सिद्धान्त, बोलचाल की भाषा में ''साथ ही तैरने तथा साथ ही डूबने'' का सिद्धान्त है। अन्य शब्दों में मंत्री-परिषद् के किसी भी सदस्य के कृत्यों के लिए सम्पूर्ण मंत्री-परिषद् उत्तरदायी है। परिमाणतः किसी एक मंत्री की गंभीर भूल का खामियाजा समस्त मंत्री-परिषद् को उठाना पड़ सकता है। विधान मंडल में केवल दोषी मंत्री ही नहीं, सम्पूर्ण मंत्री-परिषद् के त्यागपत्र की माँग उठ सकती है। यह अलग बात है कि सामान्यतया, सम्पूर्ण मंत्री-परिषद् अपने किसी एक सदस्य के दुष्कृत्य के कारण त्यागपत्र नहीं देती, किन्तु इसकी छवि पर तो दाग लग ही सकता है।

विधान मंडल में भी किसी मंत्री के विभाग के सम्बध में उठाये गये मुद्दे का यदि वह मंत्री संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकता है तो उसके सहयोगी मंत्री अथवा मुख्यमंत्री स्वयं उसकी सहायता को आ सकते हैं। इसी प्रकार सम्बन्धित मंत्री की अनुपस्थिति में उसके विभाग से जुड़े प्रश्नों अथवा विवाद पर उसके सहयोगी उत्तर दे सकते हैं।

राजस्थान में यद्यपि कई मंत्रियों ने समय-समय पर त्यागपत्र दिये हैं, लेकिन समस्त मंत्री-परिषद् को किसी एक मंत्री के कृत्य के कारण कभी त्यागपत्र नहीं देना पड़ा। केन्द्र सरकार में भी यह स्थिति रही है।

निष्कर्ष

भारत में संविधान के अनुसार राज्य सरकार की कार्यपालिका का संवैधानिक प्रमुख राज्यपाल है। वह वास्तविक कार्यपालिका अर्थात मंत्री-परिषद् की राय पर कार्य करता है।

मंत्री-परिषद् में सामान्यतया तीन स्तर होते हैं– कैबिनेट मंत्री (मुख्यमंत्री सहित), राज्य मंत्री एवं उपमंत्री। बहुत कम अवसरों पर ही चौथे स्तर, जो संसदीय सचिव का है, को भी सम्मिलित किया जाता है। कैबिनेट स्तर के मंत्रियों से बना मंत्रीमंडल ही वास्तविक कार्यपालक शक्तियों का केन्द्र है।

मंत्री-परिषद् सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर कार्य करता है। इसके मुख्य दायित्व है– विधायी प्रस्तावों को तैयार करना, नीति-निरूपण, नीति-निष्पादन का मूल्यांकन, प्रशासनिक समन्वय तथा दूरदर्शिता से प्रशासन को दिशा एवं गति प्रदान करना। केन्द्र-राज्य एवं अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों जैसे जटिल विषयों पर नीति-निरूपण का कार्य मंत्रीमंडल का ही है। इसके अतिरिक्त नियोजन, वित्तीय प्रशासन, कार्मिक नीति, महत्त्वपूर्ण नियुक्तियां, प्रशासनिक समन्वय एवं नियंत्रण जैसे आधारभूत मामलों पर मंत्रीमंडल के निर्णय ही सर्वोच्च महत्त्व रखते हैं।

मंत्री-परिषद् में आन्तरिक सहयोग एवं मंत्रियों की दक्षता काफी कुछ मुख्यमंत्री के नेतृत्व पर ही निर्भर करती हैं। यह वांछनीय है कि मंत्री-परिषद् एकता एवं सौहार्द से कार्य करे नहीं तो सम्पूर्ण सरकार अस्थायित्व के गर्त में गिर सकती है। लोक-सेवक भी उस सरकार के प्रति अधिक अनुशासन

एवं निष्ठा से कार्य करते हैं जिस सरकार के राजनीतिक नेतृत्व में दूरदर्शिता एवं पारम्परिक सहयोग हो।

मंत्रीमंडल को उसकी बैठकों एवं निर्णय प्रक्रिया में सहायता प्रदान करने के लिए मंत्रीमंडल सचिवालय कार्य करता है जिसका प्रशासनिक प्रमुख मुख्य सचिव होता है। राज्य सरकार के विभिन्न विभागों एवं उनके शासन सचिवों तथा मुख्य सचिव पर यह निर्भर करता है कि मंत्रीमंडल के निर्णयों की गुणात्मकता क्या हो? विस्तृत सूचनाएँ, विश्लेषण एवं विवेकपूर्ण परामर्श उच्च कोटि के निर्णयों के आधार बन सकते हैं।

इसी प्रकार मंत्रीमंडल के निर्णयों का कुशल निष्पादन भी अधिकांश मात्रा में प्रशासनिक तंत्र पर निर्भर करता है। यदि मंत्रीमंडल निर्णयों के क्रियान्वयन के बारे में जागरूक है तो इसका सकारात्मक प्रभाव पूर्ण प्रशासनिक तंत्र पर पड़ेगा।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. श्री राम महेश्वरी, *स्टेट गवर्नमैंट्स इन इण्डिया*, नई दिल्लीः मैकमिलन, 1979, पृ.-47.
2. *वही*, पृ. 122.
3. *वही*।

□□□

अध्याय 4

मुख्यमंत्री

भारतीय संघ के राज्यों में राजस्थान में मुख्यमंत्री के पद को अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण करने में विशिष्ट प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ा, क्योंकि स्वतंत्रता से पूर्व राज्यों की प्रकृति एवं संरचना भिन्न थी। राजस्थान पुनर्गठन की प्रक्रिया लम्बे समय तक चली तथा कई चरणों में पूरी हुई। इसके पूर्व यहाँ राजाओं का शासन था जो कुछ सीमाओं को छोड़ सर्वाधिकार-सम्पन्न थे। ये राजा ही मंत्री तथा अन्य महत्त्वपूर्ण पदाधिकारियों को नियुक्त करते थे। कुछ राज्यों में मंत्रियों के पद पर वंशानुगत नियक्ति भी हुआ करती थी।[1] इन मंत्रियों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता था जैसे प्रधान, दीवान या धर्माध्यक्ष आदि। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर तथा मेवाड़ में मंत्री-परिषद् हुआ करती थी जिसमें सर्वोपरि स्थान प्रधानमंत्री अथवा मुसाहिब आला का हुआ करता था। कुछ राज्यों में प्रधान तथा कुछ राज्यों में दीवान दूसरा महत्त्वपूर्ण शक्तिशाली पद हुआ करता था। वस्तुतः प्रधान या दीवान को जो अधिकार प्राप्त थे वे मुख्यमंत्री के समकक्ष थे तथा शासक की अनुपस्थिति में वे शासन भी करते थे।[2] मंत्री-परिषद में कई मंत्री हुआ करते थे जो विभिन्न विभागों के प्रभारी थे।

अंग्रेजी शासन काल में स्थितियों में परिवर्तन आया। सिद्धान्त रूप में तो रियासतें व रजवाड़े अपने आंतरिक मामलों में स्वायत्त थे, लेकिन इन रियासतों में ब्रिटिश शासकीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति उन पर कतिपय अंकुश लगाये थी। यदि सिंहासन का उत्तराधिकारी नाबालिग होता तब तो अंग्रेजी प्रतिनिधि का वर्चस्व और भी बढ़ जाता। वस्तुतः किसी भी स्थिति में उनका उद्देश्य अंग्रेजी शासन की सर्वोपरिता को बनाये रखना था।

स्वतंत्रता के पश्चात् राज्यों के पुनर्गठन का कार्य जब प्रारम्भ हुआ तो राजस्थान को वर्तमान स्वरूप ग्रहण करने में कई वर्ष लगे। 1947 से लेकर 1956 तक विभिन्न चरणों में राजस्थान का एकीकरण संभव हो पाया, इसका वर्णन हम पूर्व में कर चुके हैं।

व्यवस्थापिका निर्माण के पूर्व की स्थिति

राजस्थान के एकीकरण की प्रक्रिया यद्यपि स्वतंत्रता के तुरन्त बाद ही शुरू हो गई थी तथापि विधान सभा का निर्माण 1952 में ही संभव हो पाया था। इस बीच यहाँ कांग्रेस का अन्तरिम शासन रहा जिसे दिशा-निर्देश भारत का तत्कालीन रियासती मंत्रालय देता था। राजस्थान की प्रथम "लोकप्रिय" सरकार के नेतृत्व का भार श्री हीरालाल शास्त्री ने 7 अप्रैल, 1949 को संभाला। उन्हें कई प्रकार की चुनौतियों व विरोध का सामना करना पड़ा। वस्तुतः उनके मंत्रीमंडल को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं था। राजनीतिक स्थिति ने इस प्रकार करवट ली कि पहले मुख्यमंत्री हीरालाल

शास्त्री को राज्य प्रशासन पर बिना कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाले 5 जनवरी, 1951 को अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा।[3] 5 जनवरी, 1951 को ही आई.सी.एस. अधिकारी श्री एस. वैंकटचारी को मुख्यमंत्री बनाया गया। इनके नेतृत्व में मंत्रिमंडल ने 26 अप्रैल,1951 तक कार्य किया।[4] 26 अप्रैल को ही श्री जयनारायण व्यास के नेतृत्व में नये मंत्रीमंडल का गठन हुआ जिसने 3 मार्च, 1952 तक काम किया।

वस्तुतः सत्ता को लेकर तीव्र मतभेद कांग्रेस के नेताओं में प्रारम्भ से ही हो गये थे। फलतः राजस्थान राज्य के आरम्भिक वर्षों में राजनीतिक स्थायित्व का अभाव रहा। प्रथम विधान सभा के गठन के बाद भी सत्ता संघर्ष के चलते प्रशासन ने कोई उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल नहीं की। 1954 में श्री मोहनलाल सुखाड़िया के मुख्यमंत्री बनने के बाद ही यह पद महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय बना।

संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुकूल मुख्यमंत्री राज्य सरकार का वास्तविक संवैधानिक प्रमुख है। संविधान के भाग 6 के अनुच्छेद 163, 164 में मंत्री-परिषद्, जिसका नेतृत्व मुख्यमंत्री करता है, के गठन की व्यवस्था की गई है। मुख्यमंत्री वस्तुतः केन्द्र में प्रधानमंत्री के समकक्ष है। यद्यपि राज्यपाल को राज्य का संवैधानिक प्रमुख बनाया गया है लेकिन राज्य शासन का वास्तविक कर्ताधर्ता मुख्यमंत्री है। संविधान सभा के वाद-विवाद में जब यह प्रश्न उठा कि राज्यपाल के पद के लिए निर्वाचन करना उचित है तब यह निश्चित किया गया कि प्रत्यक्ष निर्वाचित राज्यपाल व मुख्यमंत्री के बीच टकराव की स्थिति आ सकती है।[5] संविधान के अनुच्छेद 163 के अंतर्गत राज्यपाल अपने उत्तरदायित्वों का पालन मंत्री-परिषद् की सहायता व सलाह से करता है, जबकि मंत्री-परिषद् का नेतृत्व मुख्यमंत्री करता है।

नियुक्ति व विमुक्ति

मुख्यमंत्री की नियुक्ति के संवैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करते समय यह ध्यान रखना होगा कि सामान्य स्थिति में क्या व्यवस्थाएँ दी गई हैं तथा असामान्य स्थिति में क्या व्यवस्था है? संविधान के अनुच्छेद 164 (1) में मुख्यमंत्री के सम्बन्ध में कहा गया है कि मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जायेगी तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति मुख्यमंत्री की सलाह पर राज्यपाल करेगा तथा मंत्री राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त अपने पद धारण करेंगे।[6]

मुख्यमंत्री की नियुक्ति के सम्बन्ध में संविधान में विस्तृत व्यवस्था नहीं दी गई है, पर सामान्य स्थिति में मुख्यमंत्री को राज्य विधान सभा में बहुमत दल (अथवा दलों के गठबंधन) का सदस्य होना चाहिए। अगर विधान सभा में कोई राजनीतिक दल पूर्ण बहुमत प्राप्त किये हुए है, तब राज्यपाल के पास उस दल के नेता को मंत्रीमंडल गठन करने के लिए आंमत्रित करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। सामान्यतया मुख्यमंत्री को निम्न सदन (जिन राज्यों में द्विसदनीय विधायिका है) का सदस्य होना चाहिए लेकिन उच्च सदन के सदस्य को मनोनीत करने में भी कोई वैधानिक बाधा नहीं है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी सदन का सदस्य नहीं है तब भी वह मुख्यमंत्री बन सकता है, लेकिन ऐसा वह छः महीने तक ही कर सकता है।[7] इस बीच यदि वह विधायिका में निर्वाचित होकर नहीं आ जाता तो उसे अपना स्थान रिक्त करना पड़ता है।[8]

राजस्थान के मुख्यमंत्री

1.	श्री हीरालाल शास्त्री	7 अप्रैल, 1949	से	5 जनवरी, 1951
2.	श्री एस. वैंकटाचारी	5 जनवरी, 1951	से	26 अप्रैल, 1951
3.	श्री जयनारायण व्यास	26 अप्रैल, 1951	से	3 मार्च, 1952
4.	श्री टीकाराम पालीवाल	3 मार्च, 1952	से	31 अक्टूबर, 1952
5.	श्री जयनारायण व्यास	1 नवम्बर, 1952	से	6 नवम्बर, 1954
6.	श्री मोहनलाल सुखाड़िया	13 नवम्बर, 1954	से	4 अप्रैल, 1957
7.	श्री मोहनलाल सुखाड़िया	7 अप्रैल, 1957	से	11 मार्च, 1962
8.	श्री मोहनलाल सुखाड़िया	12 मार्च, 1962	से	13 मार्च, 1967
9.	श्री मोहनलाल सुखाड़िया	28 अप्रैल, 1967	से	8 जुलाई, 1971
10.	श्री बरकतुल्ला खाँ	9 जुलाई, 1971	से	15 मार्च, 1972
11.	श्री बरकतुल्ला खाँ	16 मार्च, 1972	से	11 अक्टूबर, 1973
12.	श्री हरिदेव जोशी	11 अक्टूबर, 1973	से	29 अप्रैल, 1977
13.	श्री भैरोंसिंह शेखावत	22 जून, 1977	से	16 फरवरी, 1980
14.	श्री जगन्नाथ पहाड़िया	6 जून, 1980	से	13 जुलाई, 1981
15.	श्री शिवचरण माथुर	14 जुलाई, 1981	से	23 फरवरी, 1985
16.	श्री हीरालाल देवपुरा	23 फरवरी, 1985	से	10 मार्च, 1985
17.	श्री हरिदेव जोशी	10 मार्च, 1985	से	20 जनवरी, 1988
18.	श्री शिवचरण माथुर	20 जनवरी, 1988	से	29 नवम्बर, 1989
19.	श्री हरिदेव जोशी	4 दिसम्बर, 1989	से	1 मार्च, 1990
20.	श्री भैरोंसिंह शेखावत	4 मार्च, 1990	से	15 दिसम्बर, 1992
21.	श्री भैरोंसिंह शेखावत	4 दिसम्बर, 1993	से	30 नवम्बर, 1988
22.	श्री अशोक गहलोत	1 दिसम्बर, 1998	से	7 दिसम्बर, 2003
23.	श्रीमती वसुन्धरा राजे	8 दिसम्बर, 2003	से	निरन्तर कार्यरत।

मध्यप्रदेश में पी.सी. सेठी (1972), उड़ीसा में नंदिनी सतपथी (1972), बिहार में कर्पूरी ठाकुर (1977) तथा उत्तर प्रदेश में राम नरेश यादव (1977) बिना राज्य विधायिका के सदस्य हुए ही मुख्यमंत्री बनाये गये। राजस्थान में भी ऐसे अवसरों के उदाहरण हैं। 1977 में भैरोंसिंह शेखावत तथा 1980 में जगन्नाथ पहाड़िया भी मुख्यमंत्री नियुक्त किये गये जबकि दोनों ही विधानसभा के सदस्य नहीं थे। बाद में वे क्रमशः छबड़ा तथा बयाना चुनाव क्षेत्र से मध्यावधि चुनाव की प्रक्रिया से राज्य विधान सभा के सदस्य चुने गये।

उच्च सदन के सदस्यों के मुख्यमंत्री बनने के भी उदाहरण है। मोरारजी देसाई तथा सी. राजगोपालाचारी क्रमशः 1952 तथा 1960 में बम्बई तथा मद्रास के मुख्यमंत्री बने। दोनों ही विधान परिषद् के सदस्य थे। ऐसे भी उदाहरण है जब मुख्यमंत्री बनने के बाद विधायिका के उच्च सदन में मनोनयन के माध्यम से सदस्यता प्राप्त की। 1960 में सी.बी. गुप्ता, उत्तर प्रदेश; 1968

में बी.पी. मंडल, बिहार तथा 1969 में टी.एन. सिंह, उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने और बाद में उन्होंने विधान परिषद् की सदस्यता प्राप्त की।[9] कतिपय विशेष परिस्थितियों में मुख्यमंत्री की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल को ''स्वविवेक'' का प्रयोग नियुक्ति के समय करना पड़ता है यथा:

1. यदि मुख्यमंत्री व्यक्तिगत कारणों से या सभा के बहुमत खो जाने पर त्याग-पत्र दे।
2. यदि सरकार के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव सभा में पारित हो जाये।
3. यदि कार्यकाल के दौरान मुख्यमंत्री की मृत्यु हो जाये।
4. यदि उच्च नेतृत्व के आदेश पर मंत्रिमंडल भंग कर दिया जाये।

"इन सभी परिस्थितियों में जब राज्यपाल मुख्यमंत्री की नियुक्ति के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं तो उन्हें स्वविवेक का प्रयोग करना होता है। निर्वाचन के बाद विधायिका के किसी भी दल के स्पष्ट बहुमत में न आने से भी राज्यपाल के सामने इस क्षेत्र में निर्णय की चुनौती आती है।

पिछले कुछ समय में कुछ राज्यों के घटनाक्रम ने मुख्यमंत्री के चयन व सरकार बनाने के आमंत्रण सम्बन्धी राज्यपाल के अधिकार व उससे सम्बन्धित व्यवहार पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। उत्तर प्रदेश में पिछले कुछ समय से सरकारों के गिरने व बनने की विचित्र प्रक्रिया रही। राज्यपाल के निर्णयों के बारे में उठे विवाद ने उत्तर प्रदेश की सरकार के शासन की गरिमा को ही कम किया है।

जहाँ तक मुख्यमंत्री की विमुक्ति का प्रश्न है इस सम्बन्ध में संविधान के अनुच्छेद 164 (1) में उल्लेख है कि मुख्यमंत्री राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर रहता है।[10] सामान्यतया जब तक मुख्यमंत्री व उसका दल सदन में बहुमत का आधार पाते हैं तब तक अपने पद पर रहते हैं। यदि वे सदन में बहुमत खो देते हैं, या किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाये तो मुख्यमंत्री व उसके मंत्रिमंडल को अपने पद से हटना होता है। इस सम्बन्ध में सैद्धान्तिक व्यवस्था व व्यवहार में अन्तर देखा गया है। राज्यपाल से अपेक्षा की जाती है कि वे राज्य की राजनीति में तटस्थ भूमिका का निर्वाह करेंगे तथा परिवार के मुखिया के रूप में राज्य व शासन को सलाह मशवरा देते रहेंगे। व्यवहार में विभिन्न राज्यों में राज्यपालों ने केन्द्र के एजेन्ट के रूप में उसके दिशा-निर्देश पर काम किया है। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक रूप में मुख्यमंत्री को हटाने का काम केन्द्रीय सरकार के दिशा-निर्देश पर होता है। ऐसी स्थिति अधिकतर तब आती है जब केन्द्र व राज्य में भिन्न राजनैतिक दलों की सरकारें हों तथा दोनों में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो। इस सम्बन्ध में कई बार अलग-अलग राज्यों में राज्यपालों ने परस्पर विरोधी निर्णय दिये हैं। पश्चिम बंगाल में 1967 में राज्यपाल धर्मवीर का मत था कि अजय मुखर्जी की संयुक्त मोर्चा सरकार ने अपना बहुमत खो दिया है क्योंकि कुछ सदस्यों ने दल परिवर्तन कर लिया है। उनका आदेश था कि मुख्यमंत्री को तुरन्त विधान सभा बुलानी चाहिए। जब मुख्यमंत्री ने ऐसा करने से इंकार कर दिया तो राज्यपाल ने मुख्यमंत्री तथा उनके मंत्रिमंडल को पदच्युत कर दिया। 1970 में राज्यपाल गोपाल रेड्डी ने चरणसिंह सरकार को ऐसी ही अवधारणा पर पदच्युत कर दिया। उन्होंने विधान सभा के निर्णय की प्रतीक्षा नहीं की जबकि विधान सभा का अधिवेशन कुछ ही दिनों में होने वाला था। जुलाई, 1998 में गोवा के राज्यपाल ने बहुमत खोने वाले मुख्यमंत्री को अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए कहा, ऐसा न करने पर ही नये मुख्यमंत्री की नियुक्ति की।

भूमिका एवं कार्य

भारतीय संविधान ने राज्य के मुख्यमंत्री को वही स्थान दिया है जो केन्द्र में प्रधानमंत्री को दिया है। वस्तुतः शासन संचालन का प्रमुख कर्ताधर्ता वहीं है। मंत्रिमंडल का मुखिया होने के नाते समस्त सत्ता उसी में अन्तर्निहित है।[11] मुख्यमंत्री के कार्यों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

मंत्री-परिषद् की नियुक्ति

संविधान के प्रावधानों के अनुकूल मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करता है तथा मंत्री-परिषद् के अन्य सदस्यों की नियुक्ति भी राज्यपाल ही करता है पर ऐसा वह राज्य के मुख्यमंत्री की सलाह पर करता है। वस्तुतः मंत्री-परिषद् के सदस्यों की नियुक्ति में राज्यपाल की कोई भूमिका नहीं है। मुख्यमंत्री ही मंत्रियों का चयन करता है। राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि उन नामों पर अपनी सहमति अभिव्यक्त करे। मुख्यमंत्री तथा उसकी मंत्री-परिषद् राज्य की विधायिका के प्रति उत्तरदायी है, न कि राज्यपाल के प्रति। मुख्यमंत्री ही मंत्रियों को विभागों का वितरण करता है। उसी की अनुसंशा पर मंत्रियों को बर्खास्त किया जा सकता है। मंत्री-परिषद् के आकार का निर्धारण भी वही करता है। विभागों के वितरण के समय यद्यपि सिद्धान्त रूप में मुख्यमंत्री का स्वविवेक ही निर्धारक तत्त्व होता है पर वास्तविकता में उसे कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों को ध्यान में रखना पड़ता है। दल के वरिष्ठ तथा विश्वासपात्र सदस्यों को महत्त्वपूर्ण विभाग सौंपे जाते हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य जो सदस्यों के विभाग वितरण के समय विचारार्थ रखने पड़ते हैं, वे हैं– राष्ट्रीय स्तर पर दल के उच्चतम नेतृत्व की इच्छा, राज्य स्तर पर दल के महत्त्वपूर्ण सदस्यों की इच्छा, राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को उचित तथा पर्याप्त प्रतिनिधित्व, विभिन्न जातियों यथा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग तथा महिलाओं का प्रतिनिधित्व इत्यादि। वस्तुतः मंत्री-परिषद् के स्थायित्व तथा सहज संचालन के लिए इन सब तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है, फिर भी सभी वर्गों व समूहों को संतुष्ट करना संभव नहीं हो पाता।

जहाँ तक मंत्री-परिषद् के आकार का प्रश्न है यह भी मुख्यमंत्री की इच्छा पर निर्भर करता था। भारत सरकार के प्रशासनिक सुधार आयोग (1960-70) की अनुशंसा थी कि विधायिका में सत्ता दल के कुल सदस्यों के दसवें भाग से अधिक मंत्रियों की संख्या नहीं होनी चाहिए, किन्तु व्यवहार में राजनीतिक कारणों से ऐसा करना संभव नहीं हो पाता। वस्तुतः जो मुख्यमंत्री राजनीतिक रूप से सुदृढ़ स्थिति में है तथा जिसे अपने दल के उच्च कमान का समर्थन प्राप्त है वही मंत्री-परिषद् के निर्माण में निर्णायक भूमिका का निर्वाह कर पाता है। वर्तमान में राज्य विधानसभा के कुल सदस्यों की 15 प्रतिशत संख्या ही मंत्री-परिषद् में शामिल हो सकती है।

मुख्यमंत्री मंत्रियों के विभागों का वितरण तो करता ही है उनमें फेरबदल भी कर सकता है। महत्त्वपूर्ण होते जा रहे मंत्री के विभाग में परिवर्तन करके वह उसे यथास्थान रखने का प्रयास करता है। कभी-कभी मंत्री को और अधिक महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए विभागों में तबदीली की जाती है। यह सारी बातें इस पर निर्भर करती हैं कि मुख्यमंत्री की स्थिति कितनी दृढ़ है तथा उक्त मंत्री का दल में क्या स्थान तथा प्रभाव है?

मंत्रियों की विमुक्ति तथा त्यागपत्र

मंत्री-परिषद् के सदस्यों में कोई यदि मुख्यमंत्री के मनोनुकूल कार्य नहीं करता, सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का पालन नहीं करता, अत्यधिक अस्वस्थ है, अथवा अपने उत्तरदायित्व को सक्षमता से वहन नहीं कर सकता तो मुख्यमंत्री उक्त मंत्री को त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है। यदि उक्त मंत्री ऐसा करने से इन्कार कर दे तो मुख्यमंत्री राज्यपाल को सलाह दे सकता है कि मंत्री को पद से बर्खास्त कर दे। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मुख्यमंत्री स्वयं पद से त्यागपत्र दे दे, ऐसी स्थिति में संपूर्ण मंत्री-परिषद् को त्यागपत्र देना होता है। विधायिका में बहुमत होने के कारण वही व्यक्ति फिर मुख्यमंत्री नियुक्त होता है और वह मंत्रियों का चयन तथा उनके विभागों का वितरण अपनी इच्छानुसार करता है। ऐसा भी देखा गया है कि एक राज्य मंत्री-परिषद् के सभी सदस्य अपना त्याग-पत्र मुख्यमंत्री को दे देते हैं जिससे मुख्यमंत्री अपनी इच्छा से मंत्री-परिषद् का पुनर्गठन कर सके।

मुख्यमंत्री तथा मंत्री-परिषद्

राज्य का मंत्री-परिषद् एक त्रि-स्तरीय संगठन है जिसमें सबसे ऊपर स्थान कैबिनेट मंत्रियों का होता है। कैबिनेट महत्त्वपूर्ण विभागों के मंत्रियों का छोटा संगठन होता है। कैबिनेट मंत्रियों के नीचे राज्यमंत्री होते हैं तथा उनके नीचे उपमंत्री। उपमंत्रियों की नियुक्ति बहुत कम अवसरों पर ही होती देखी गई है। राज्यमंत्री भी दो प्रकार के होते हैं– वे जिनके पास किन्हीं विभागों का स्वतंत्र भार होता है तथा वे जो किन्हीं वरिष्ठ मंत्रियों के सहायक होते हैं। सामान्यतया कैबिनेट में कैबिनेट मंत्रियों के अतिरिक्त उन राज्य मंत्रियों को भी आमंत्रित किया जाता है जिनके पास किन्हीं विभागों का स्वतंत्र भार हो। कैबिनेट बैठकों का स्थान, समय तथा मुद्दों का निर्णय मुख्यमंत्री ही करता है। ऐसी बैठक कुछ घण्टों की सूचना पर भी शीघ्र बुलाई जा सकती है, किन्तु व्यवहार में कैबिनेट की बैठकों का सप्ताह में एक दिन निश्चित होता है। इन बैठकों की अध्यक्षता मुख्यमंत्री ही करता है। कैबिनेट मुख्य नीति-निर्माता होने के कारण इसकी बैठकों की कार्यवाही अत्यन्त कुशलता से संचालित करनी पड़ती है। यदि कहीं किसी प्रकार का मत वैभिन्य हो तो मुख्यमंत्री उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह सारे निर्णय कैबिनेट की बैठकों में ही ले। कई बार निर्णय वह स्वयं ले लेता है और बाद में कैबिनेट को सूचित कर देता है। सम्बन्धित मंत्री को विश्वास में लेकर भी बैठक के पूर्व ही निर्णय लिया जा सकता है, तत्पश्चात् उसे कैबिनेट की स्वीकृति के लिए रखा जा सकता है। ऐसी अनौपचारिक व्यवस्था तभी संभव है जबकि मुख्यमंत्री को संपूर्ण मंत्रीमंडल का विश्वास प्राप्त हो।

कैबिनेट द्वारा लिये गए निर्णय को क्रियान्वित करने का उत्तरदायित्व सम्बन्धित विभाग के मंत्री तथा सचिव का होता है। मुख्यमंत्री इन क्रियान्वयन संस्थाओं का मूल्यांकन करता है तथा समय-समय पर संशोधनात्मक या सुधारात्मक कार्यवाही करता है।

मुख्यमंत्री तथा राज्यपाल

मुख्यमंत्री राज्यपाल तथा मंत्री-परिषद के बीच कड़ी का काम करता है। मंत्रीमंडल में लिये गये सभी निर्णयों की सूचना वह राज्यपाल को देता है, बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार प्रधानमंत्री राष्ट्रपति को मंत्रीमंडलीय निर्णयों से अवगत करता है। यदि राज्यपाल उन निर्णयों से सहमत नहीं है तो वह उन्हें पुनर्विचार के लिए वापिस भेज सकता है। लेकिन अगर वही प्रस्ताव दुबारा राज्यपाल के पास

जाता है तो राज्यपाल को उस पर सहमति व्यक्त करनी पड़ती है। संविधान के अनुच्छेद 167 (
के अनुसार मुख्यमंत्री का कर्तव्य है कि वह राज्यपाल को राज्य प्रशासन तथा प्रस्तावित विधा
के सम्बन्ध में समस्त सूचनाएँ दे। किन्तु राज्यपाल मंत्रिमंडल की कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं क
सकता।

राज्यपाल संघ तथा राज्य के बीच कड़ी का भी काम करता है। इसी दायित्व के अन्तर्गत व राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा केन्द्रीय गृह मंत्री को राज्य प्रशासन सम्बन्धी गुप्त विस्तृत प्रति प्रतिवेदन भेजता है। जब तक ये प्रतिवेदन राज्य प्रशासन के संतोषजनक पक्ष को प्रस्तुत करते रह हैं तब तक राज्य प्रशासन तथा मुख्यमंत्री के पद को कोई खतरा नहीं होता, लेकिन संतोषजनक प्रतिवेदन न होने की स्थिति में राज्य सरकार के अस्तित्व को खतरा हो सकता है। यह स्थिति ब बढ़ जाती है तब अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत आपात स्थिति लागू हो जाती है तथा राज्य में लोकप्रिय सरकार का पतन हो जाता है।

राज्य प्रशासन के अन्तर्गत मुख्यमंत्री का ही यह विशेषाधिकार है कि वह राज्यपाल से सीधा सम्पर्क स्थापित कर सकता है। मंत्री-परिषद् के अन्य सदस्यों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है किन्तु फिर भी विभिन्न मंत्री शिष्टाचारवश राज्यपाल से मिलते रहते हैं।

मुख्यमंत्री तथा विधायिका

मुख्यमंत्री मंत्री-परिषद् तथा विधायिका के बीच प्रधान कड़ी है। बहुमत दल के नेता या संयुक्त दल के नेता के रूप में वह अपनी उपस्थिति का अहसास विधायिका में हर समय कराता रहता है। जितने भी वित्तीय तथा गैर-वित्तीय विधेयक विधान सभा में रखे जाते हैं वे सभी मंत्रीमंडल, जिसका नेतृत्व मुख्यमंत्री करता है, द्वारा स्वीकृत होने चाहिये। वित्तीय विधेयक को प्रस्तुत करने के पहले राज्यपाल की स्वीकृति भी आवश्यक है। यद्यपि बजट की तैयारी वित्त मंत्री द्वारा की जाती है तथापि मुख्यमंत्री पूरी तरह से इस प्रक्रिया से जुड़ा रहता है। कभी-कभी मुख्यमंत्री के पास ही (जैसाकि 1993 से 1996 तक श्री भैरोंसिंह शेखावत के पास था) वित्त विभाग होने से बजट की तैयारी वही करता है। वह राज्य सरकार का प्रमुख प्रवक्ता है, अतः समय-समय पर विभिन्न नीतियों को स्पष्ट करता है। नीति सम्बन्धी सभी प्रमुख घोषणाएँ मुख्यमंत्री द्वारा की जाती हैं। विधान सभा के वाद-विवाद में वह सक्रिय रूप से भाग लेता है, तथा यदि मंत्री-परिषद् का कोई सदस्य प्रश्नोत्तर काल के समय उपयुक्त एवं संतोषजनक उत्तर देने की स्थिति में नहीं होता तो मुख्यमंत्री उसकी तरफ से सरकार के पक्ष को स्पष्ट करता है। समय-समय पर राज्यपाल द्वारा जो अध्यादेश जारी किये जाते हैं, वे वस्तुतः मुख्यमंत्री तथा मंत्रीमंडल द्वारा ही स्वीकृत किये जाते हैं। उल्लेखनीय है कि संविधान के अनुच्छेद 213 के अन्तर्गत राज्यपाल को अधिकार है कि वह किसी प्रस्तावित अध्यादेश के मसौदे पर हस्ताक्षर न करके अपनी असहमति प्रकट करे किन्तु ऐसी स्थितियाँ बहुत ही कम उत्पन्न होती हैं। राज्य विधान सभा की कार्यसूची यद्यपि विधानसभा अध्यक्ष निश्चित करता है पर ऐसा वह मुख्यमंत्री की सलाह के आधार पर करता है।

मुख्यमंत्री अपने पद पर विधान सभा के विश्वास प्राप्त करने पर्यन्त रह सकता है। वस्तुतः मुख्यमंत्री को अपने दल के साथ-साथ विरोधी दल के विधायकों की भावनाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है। अपने दल के कुछ वरिष्ठ विधायकों को वह मंत्रीमंडल तथा मंत्री-परिषद् में शामिल करता

ही है। अन्य महत्वपूर्ण विधायकों को लोक उपक्रमों इत्यादि में उच्च पद देकर संतुष्ट करता है। विरोधी दल के विधायकों से उचित तालमेल बैठाने से ही मुख्यमंत्री अपना कार्यकाल सुचारू रूप से पूरा कर सकता है अन्यथा हर कदम पर विरोध का सामना करना पड़ सकता है जो अन्ततः विकास कार्यों में अवरोध का कारण बन जाता है।

राजस्थान में यह स्वस्थ परम्परा रही है कि मुख्यमंत्री विरोधी दलों के विधायकों के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करता है। अपने क्षेत्रों के विकास तथा अन्य आवश्यक कारणों से विरोधी दलों के सदस्यों को मुख्यमंत्री तथा मंत्री-परिषद् के अन्य सदस्यों से सम्पर्क करना पड़ता है तथा कई अनुरोध करने होते हैं। प्रायः देखा गया है कि ऐसे अवसरों पर मुख्यमंत्री तथा उसके साथी इन विधायकों के मत एवं इच्छा का भरपूर ध्यान रखते हैं। यद्यपि सभी अनुशंसाएँ एवं इच्छाएँ पूरी नहीं की जा सकती, तो भी मुख्य बात तो व्यवहार की है। इस प्रकार की स्वस्थ परम्परा के लिए वास्तविक श्रेय श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री हरिदेव जोशी एवं श्री भैरोंसिंह को मुख्य रूप से है।

मुख्यमंत्री अपना त्यागपत्र देकर राज्यपाल को सदन भंग करने की सलाह दे सकता है। यह राज्यपाल का अपना दृष्टिकोण है कि वह मुख्यमंत्री की सलाह स्वीकार करे या स्वविवेक का प्रयोग करे।

मुख्यमंत्री : प्रशासकीय भूमिका

एक राज्य के मुख्यमंत्री की सफलता इस बात पर अत्यधिक निर्भर करती है कि वह अपने मंत्रीमंडल व मंत्री-परिषद् के माध्यम से विभिन्न विभागों में तालमेल तथा समन्वय किस प्रकार स्थापित करता है। कुछ शासकीय विभाग मुख्यमंत्री प्रत्यक्ष रूप से अपने अधीन रखता है। कौन से विभाग मुख्यमंत्री के पास रहेंगे इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है, यह मुख्यमंत्री की स्वयं की इच्छा तथा समयानुसार किसी विभाग के महत्व के ऊपर निर्भर करता है। कोई मंत्री मंत्रीमंडल से हटता है तो वैकल्पिक व्यवस्था होने तक वह विभाग भी मुख्यमंत्री के पास ही रहता है। जब किसी विभाग का उत्तरदायित्व मुख्यमंत्री प्रत्यक्ष रूप से संभाल लेता है तो उसकी शक्तियाँ व कार्य अन्य विभागों के प्रभारी मंत्रियों की भाँति ही होती हैं। राजस्थान में ऐसे कई अवसर आये हैं जबकि एक मुख्यमंत्री के पास लगभग एक दर्जन विभाग रहे हैं। सिद्धान्त रूप से मुख्यमंत्री को उतने विभाग ही अपने पास रखने चाहिए जिनका प्रबन्ध वह कुशलतापूर्वक कर सके। इसीलिए उसकी प्रबन्धकीय कुशलता व क्षमता ही यह निर्धारित करती है कि किसी मुख्यमंत्री के पास कितने विभाग रहेंगे?

पूर्व मुख्यमंत्री श्री अशोक गहलोत का मत था मुख्यमंत्री को अपने प्रत्यक्ष अधीन कम से कम विभाग रखने चाहिए तथा उसे "मोनिटरिंग" एवं पर्यवेक्षण पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यही मत मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह का रहा है। राजस्थान में अधिकतर मुख्यमंत्रियों ने सामान्य प्रशासन, योजना विभाग, कार्मिक विभाग तथा प्रशासनिक सुधार विभाग जैसे महत्वपूर्ण पद अपने पास रखे हैं। इस सम्बन्ध में कोई कठोर नियम अथवा परम्परा नहीं है, किन्तु सामान्यतया वे विभाग मुख्यमंत्री के अधीन होते हैं जिनका प्रशासनिक समन्वय के लिए सर्वोच्च महत्व है।

इस सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 26 फरवरी, 1999 को श्री अशोक गहलोत ने अपने अधीन सभी 17 विभागों को अपने सहयोगी मंत्रियों में बांट दिया। उनका मानना था कि

मुख्यमंत्री सचिवालय का संगठन

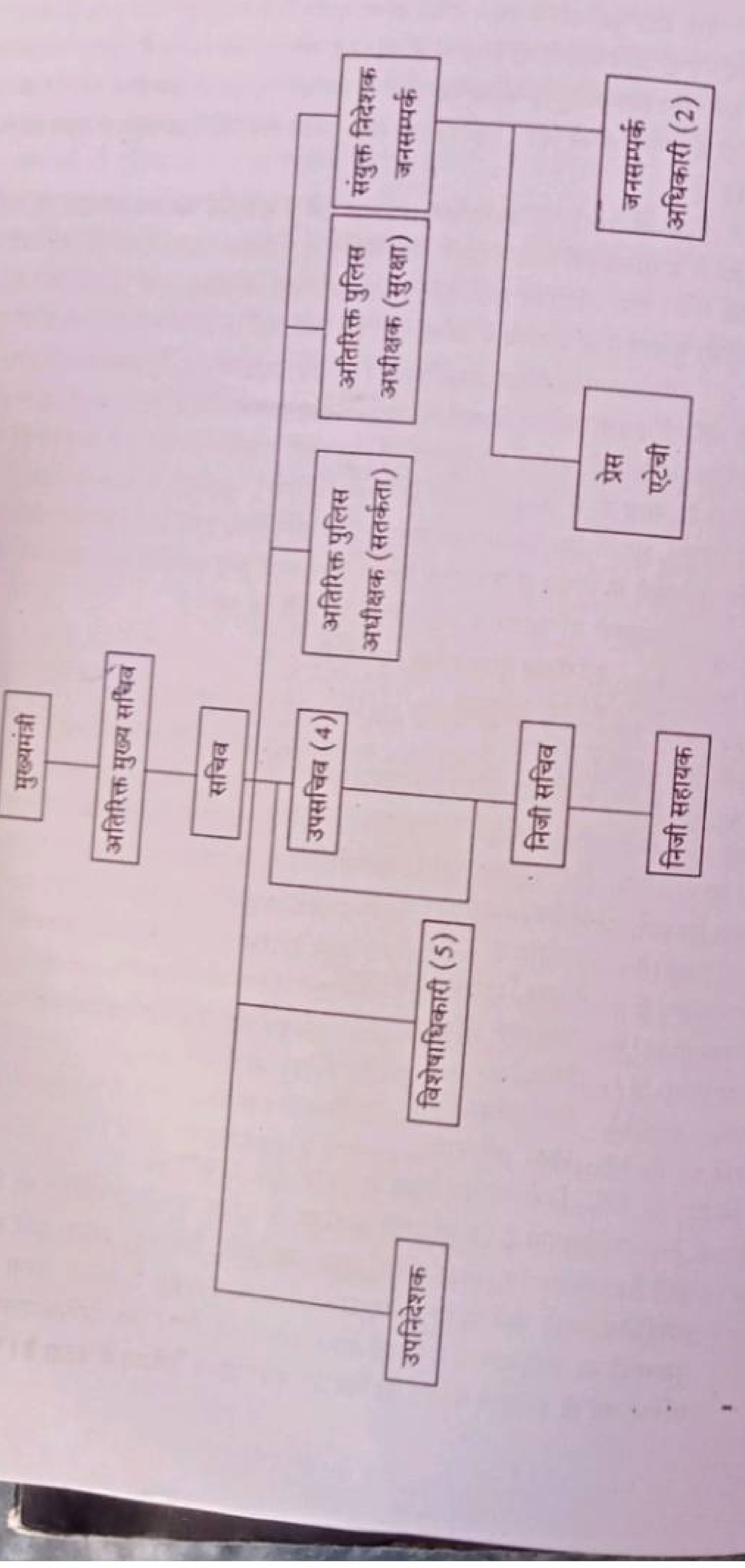

आता है कि मुख्यमंत्री के सचिव राजनीतिज्ञों से मुख्यमंत्री की ओर से राजनीतिक दृष्टि से भी बातचीत करते हैं। ऐसा करते समय राजनीतिक समझ-बूझ का परिचय देते हैं किन्तु अपनी तटस्थता पर आँच नहीं आने देते। यही विशेषता है भारतीय लोक-सेवकों की। वे अपनी भूमिका को बखूबी निभाते हैं तथा अपने आधारभूत आचरण के सिद्धान्तों से विचलित नहीं होते।

राजस्थान में मुख्यमंत्री के सचिवों की बड़ी स्वस्थ परम्परा रही है। मुख्यमंत्रियों ने अपने सचिवों पर पूर्ण विश्वास किया है। श्री मोहनलाल सुखाड़िया को अपने सचिव श्री टी. एन. चतुर्वेदी तथा श्री भूपेन्द्र हूजा पर पूर्ण विश्वास था; श्री हरिदेव जोशी की आस्था श्री डी. आर. मेहता में सम्पूर्ण थी; श्री भैरोंसिंह शेखावत का श्री मिट्ठालाल मेहता तथा श्री सुनील अरोड़ा में अटूट विश्वास था। डा. आदर्श किशोर तो दो मुख्यमंत्रियों (श्री शिवचरण माथुर तथा श्री अशोक गहलोत) के सचिव रहे तो दोनों का उनके प्रति शत-प्रतिशत विश्वास था। किन्तु फिर भी इन प्रशानिक अधिकारियों ने अपनी मर्यादा का सदैव पालन किया तथा व्यक्तिगत आस्थाओं को व्यावसायिक उत्तरदायित्व एवं अपेक्षाओं के मार्ग में कभी बाधा नहीं बनने दिया। इसे ही उच्चकोटि की व्यावसायिक श्रेष्ठता कहते हैं।

सचिव का कार्य मुख्यमंत्री को प्रशासनिक सहायता देना तो है ही साथ ही वह मुख्यमंत्री के साथ कभी-कभी दौरे पर भी जाता है, गुप्त-पत्रों व दस्तावेजों को अपनी निगरानी में रखता है, मंत्रीमंडल के निर्णयों की अनुपालना सही तरीके से हो रही है या नहीं, यह देखता है, मुख्यमंत्री को महत्त्वपूर्ण मुद्दों के बारे में सूचित करता है, उसे विधान सभा के कार्य में सहायता करता है।

देखा गया है कि मुख्यमंत्री के कार्यालय तथा विशेषतया मुख्यमंत्री के सचिव का अनौपचारिक महत्त्व शासकीय एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में औपचारिक संगठनों से काफी अधिक हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि शासन की सर्वोच्च सत्ता अर्थात् मुख्यमंत्री का पूर्ण विश्वास इस संगठन को उपलब्ध है। अतः यह सुनिश्चित करना वांछनीय है कि मुख्यमंत्री कार्यालय एवं मुख्यमंत्री सचिव का प्रभाव सरकार के अन्य अंगों पर अनुचित रूप से हावी न हो अर्थात् वे अपनी भूमिका का निर्वाह विवेकसंगत एवं संतुलित ढंग से करें।

निष्कर्ष

एक राज्य के शासन एवं प्रशासन की कुशलता एवं प्रभावशीलता उस राज्य के मुख्यमंत्री के व्यक्तित्व एवं दक्षता पर निर्भर करती है। राजनीतिक सूझबूझ, दूरदर्शिता, नियोजन शक्ति, प्रशासनिक क्षमता, पर्यवेक्षण कुशलता, टीम भावना, अभिप्रेरणा, प्रगतिशीलता एवं विकास-उन्मुखता के गुणों से युक्त मुख्यमंत्री अपने राज्य को सार्थक एवं प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान कर सकता है। सौभाग्य से राजस्थान में कुशल नेतृत्व करने वाले मुख्यमंत्रियों ने इस राज्य को सामंती परम्परा एवं सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के कुचक्र से बाहर निकालने में काफी सफलता अर्जित की है। प्राकृतिक कारणों, विशेषतया मरुस्थलीय विस्तार के फलस्वरूप, राजस्थान उन्नत एवं विकसित राज्यों की श्रेणी में नहीं आ पाया, किन्तु इस असंतोषजनक स्थिति का कारण यहाँ का प्रशासन नहीं है। देखा जाये तो प्रशासनिक व्यवस्था ने राजस्थान के सर्वांगीण प्रगति के पथ पर अग्रसर करने हेतु पूर्ण प्रयास किये हैं तथा राजस्थान का स्वरूप 1990 के दशक में एक गतिशील राज्य का बना है। इसके लिए श्रेय राज्य के राजनीतिक एवं प्रशासनिक नेतृत्व को जाता है। कमियां तो हैं, किन्तु उन पर विजय प्राप्त करने के प्रयत्नों में कमी नहीं आनी चाहिये।

श्री मोहनलाल सुखाड़िया, श्री हरिदेव जोशी एवं श्री भैरोंसिंह शेखावत, श्री अशोक गहलोत, श्रीमती वसुन्धरा राजे तथा अन्य मुख्यमंत्रियों ने अपने विवेक, संतुलन एवं प्रशासनिक प्रवीणता से जो नेतृत्व प्रदान किया है, वह प्रशंसनीय है।

संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. जी.सी. शर्मा, *एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ द राजपूत्स* (नई दिल्ली : राजेश पब्लिकेशन्स, 1979), पृ. 14.
2. जी.एन. शर्मा, *राजपूताना स्टडीज* (आगरा: लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1970) तथा बी.एल. पनगड़िया, *राजस्थान का इतिहास* (नई दिल्ली : नेशनल, 1982).
3. ज्ञान कपूर, *द चीफ मिनिस्टर एज एडमिनिस्ट्रेटर* (जयपुर : अरिहन्त, 1992), पृ. 17.
4. *राजस्थान वार्षिकी* (जयपुर : पंचगंगा प्रकाशन, 1993), खंड 5, पृ. 4.
5. *संविधान सभा, वाद-विवाद*, खण्ड X, संख्या 14, पृ. 452-55.
6. *भारतीय संविधान*, अनुच्छेद 164 (1).
7. उत्तर प्रदेश में 1996 में भंग हुई मंत्रीमंडल में सुश्री मायावती मुख्यमंत्री थीं तथा वे राज्य विधायिका के किसी भी सदन की सदस्य नहीं थीं। सुश्री मायावती ने छः महीने का कार्यकाल पूरा नहीं किया, वे चार महीने तक ही शासन में रह सकीं।
8. *भारतीय संविधान* का अनुच्छेद 164 (4).
9. ज्ञान कपूर, उपरोक्त, पृ. 22-23.
10. *भारतीय संविधान*, अनुच्छेद 164 (1).
11. दुर्गादास बसु, *भारत का संविधान-एक परिचय* (नई दिल्ली : प्रैंटिस हाल, 1989), पृ. 221.
12. ज्ञान कपूर, उपरोक्त, पृ. 49.

□□□

अध्याय 5

राज्य शासन सचिवालय

राज्य शासन सचिवालय, राज्य शासन व प्रशासन का वह केन्द्र है जहाँ से प्रत्यक्ष रूप से नीति निर्धारण तथा परोक्ष रूप से नीति के क्रियान्वयन की प्रक्रिया संचालित होती है। इस प्रशासनिक संरचना के शिखर पर राजनीतिक नेतृत्व, मध्य में सचिवालय तथा अन्त में निदेशालय होते हैं। सचिवालय वस्तुतः सत्ता का हृदय है, जहाँ से शासन शरीर के लिए आवश्यक निर्देश के रूप में रक्त संचार प्रवाहित होता है।

संरचना

केन्द्र सरकार की भाँति, प्रत्येक राज्य सरकार का एक शासन सचिवालय होता है, जो राज्य शासन की उच्चतम संस्था है। महाराष्ट्र में इसे ''मंत्रालय'' के रूप में जाना जाता है। नाम से तो प्रतीत होता है कि सचिवालय ''सचिवों'' का आलय (घर) है, किन्तु वास्तव में यह सचिवों के अतिरिक्त उनके उच्चतर राजनीतिक अधिकारी, मंत्रियों का भी कार्य-स्थल है अर्थात् सचिवालय वह संस्था है जहाँ राज्य सरकार के सभी मंत्रियों, सचिवों तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों के कार्यालय स्थित होते हैं। राज्य सरकार के सभी विभाग इस संस्था के अंग होते हैं। यहाँ एक अन्तर समझ लेना चाहिए। सचिवालय के अधीन कई कार्यपालक विभाग अथवा निदेशालय होते हैं, वे सचिवालय के अंग नहीं होते। जैसे राजस्थान का उच्च तकनीकी शिक्षा विभाग तो सचिवालय का अंग है, किन्तु इसके नीचे कार्यरत निदेशालय जैसे कॉलेज शिक्षा निदेशालय, सचिवालय का अंग नहीं है। वह तो कार्यकारी विभाग है। विभाग तथा कार्यकारी विभाग में अंतर है। सचिवालय का सम्बन्ध मूलतः 'नीति' से है। इन नीतियों के क्रियान्वयन के लिए कुछ संस्थाएं होती हैं जिन्हें कार्यकारी संस्थाएं या विभाग कहते हैं। कार्यकारी विभागों के प्रमुखों को अलग-अलग नामों से जाना जाता है यथा- निदेशक, महानिदेशक, महानिरीक्षक, आयुक्त, नियंत्रक आदि, पर सामान्यतया इन्हें विभागाध्यक्ष कहा जाता है। सचिवालय विभागों की स्थिति वरिष्ठ तथा निदेशालय विभागों की स्थिति कनिष् होती है। सचिवालय में कृषि उत्पादन विभाग का प्रमुख सचिव, कृषि उत्पादन होता है, तो निदेशाल में निदेशक, कृषि विभाग का प्रमुख होता है। सचिवालय के प्रत्येक विभाग के साथ कार्यका विभाग सम्बद्ध नहीं होते हैं, विशेषकर उन विभागों के साथ जिनकी भूमिका परामर्शीय एवं नियन्त्रकी हैं, जैसे वित्त, कार्मिक, योजना एवं प्रशासनिक सुधार। सचिवालय का विभाग प्रमुख अधिकांशत सामान्यज्ञ होता हैं, जबकि निदेशालय का विभाग प्रमुख सामान्यतया विषय-विशेषज्ञ होता है।

कुछ ऐसे भी विभाग हैं जहाँ सचिवालय-निदेशालय का पृथक्करण नहीं पाया जाता, जैसे ग्रामीण विकास तथा पंचायती राज विभाग, राहत विभाग, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग आदि। इसी प्रकार कतिपय महत्त्वपूर्ण विभाग हैं जो केवल सचिवालय तक ही सीमित हैं, जैसे कार्मिक विभाग, प्रशासनिक सुधार विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग, नियोजन विभाग, वित्त विभाग, विधि विभाग आदि।

भूमिका

राजस्थान शासन सचिवालय की भूमिका के मुख्य आयाम इस प्रकार हैं :

1. नीति-निर्माण

सत्ता के केन्द्र के रूप में सचिवालय राज्य सरकार के सभी शक्तियों का स्रोत है। यह राज्य सरकार की मुख्य नीति-निर्माण संस्था है। राज्य प्रशासन से सम्बन्धित सभी मामलों पर मुख्यमंत्री एवं अन्य मंत्रियों को यह नीति-निरूपण में सहायता प्रदान करता है। नीतियों का यह उद्गम स्थल है, साथ ही उनके संशोधन का केन्द्र भी यही है।

सचिवालय में ही स्थित मंत्रीमंडल सचिवालय प्रमुख नीति-निरूपण संस्था है। साथ ही मुख्यमंत्री एवं मुख्य सचिव के कार्यालय भी इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सचिवालय में एक नीति-नियोजन इकाई भी है जिसका सचिव मुख्यमंत्री का सचिव ही है। वैसे प्रत्येक विभाग के मंत्री एवं सचिव एकीकृत रूप से अपने-अपने विभाग के विषयों से सम्बन्धित नीतियों के प्रारूप बनाने के लिए उत्तरदायी हैं। यही प्रारूप मुख्यमंत्री की स्वीकृति के पश्चात् मंत्रीमंडल की बैठकों में प्रस्तुत किये जाते हैं। राज्य की औद्योगिक नीति, कृषि नीति, स्वास्थ्य नीति, आवास नीति आदि सचिवालय में विभिन्न स्तरों पर मंथन के ही परिणाम हैं। किन्तु कई बार कुछ नीतियाँ विभिन्न विभागों के पारस्परिक मतभेद के कारण अंतिम अवस्था तक नहीं पहुंच पातीं। 1995-96 में पर्यटन नीति का यही हाल हुआ, क्योंकि परिवहन विभाग इस नीति के कुछ भागों से सहमत नहीं था। उधर, 1996 में ही परिवहन नीति केन्द्र सरकार की कतिपय मुद्दों पर स्वीकृति के अभाव में अटकी रह गई थी। किन्तु सामान्यतया ऐसी कठिनाइयाँ नीति-प्रक्रिया में देखने को नहीं मिलती। 1994 के पश्चात् राजस्थान शासन सचिवालय में सचिवों की समितियों की नवीन व्यवस्था कार्य कर रही है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत सम्बन्धित विभागों के सचिव नीतिगत प्रश्नों पर विचार-विमर्श करते हैं। महत्त्वपूर्ण पत्रावलियाँ भी कई बार इस समिति को समीक्षा के लिए भेज दी जाती हैं। सचिवों की समिति के कुछ सदस्य स्थाई होते हैं, बाकी सम्बन्धित विषयों के सचिव होते हैं तथा मुख्य सचिव द्वारा मनोनीत भी किये जाते हैं।

2. सूचनाओं का केन्द्र

नीति-निर्माण का क्षेत्र हो अथवा नीति निष्पादन एवं मूल्यांकन का, सही सूचनाएँ एवं आँकड़े अति आवश्यक हैं जिनके आधार पर नीतियाँ एवं निर्णय लिये जाते हैं। सचिवालय राज्य प्रशासन के सभी पहलुओं के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करने, उनके वर्गीकरण एवं विश्लेषण करने एवं आवश्यकता पड़ने पर उन्हें विभिन्न संस्थाओं को सम्प्रेषित करने का दायित्व निभाता है। यह कार्य आयोजना एवं वित्त विभाग मुख्य रूप से करते हैं। आयोजना विभाग के अधीन कार्य कर रहे कम्प्यूटर विभाग,

सूचना प्रौद्योगिकी विभाग एवं जिला आयोजना सम्भाग विकासात्मक सांख्यिकी के एकत्रण एवं वर्गीकरण में विशेष सफलता अर्जित कर सके हैं।

3. मुख्य समन्वयक संस्था

राज्य प्रशासन में निदेशालय, मंडल, निगम, लोक उपक्रम, क्षेत्रीय एवं स्थानीय संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। समस्त प्रशासनिक तंत्र को एक सूत्र में बांधने का दायित्व सचिवालय का है। प्रशासन की मुख्य समन्वयात्मक संस्थाएं हैं – मंत्रीमंडल सचिवालय, मुख्यमंत्री का कार्यालय, मुख्य सचिव का कार्यालय, आयोजना विभाग, वित्त विभाग, विधि विभाग, कार्मिक विभाग, प्रशासनिक सुधार विभाग, सामान्य प्रशासन विभाग तथा सचिवालय स्थित अन्य विभाग। सचिवों की समितियां तथा आयोजना एवं विकास समन्वय समितियां भी इस क्षेत्र में महती भूमिका निभाती हैं।

4. नियमन एवं नियंत्रण

सरकारी प्रशासन के विभिन्न पहलुओं पर नियम-निरूपण का कार्य सचिवालय के विभिन्न विभागों में होता है। इनमें से मुख्य कार्मिक, वित्त एवं विधि विभाग हैं। अन्य विभाग भी अपने-अपने क्षेत्र से सम्बन्धित नियम बनाते हैं जिन्हें मंत्रीमंडल अथवा सम्बन्धित मंत्री की स्वीकृति से घोषित किया जाता है।

सरकारी योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों एवं नियमों का पालन एवं कुशल निष्पादन विभिन्न निदेशालय एवं अन्य संस्थाएँ करें, यह सुनिश्चित करना सचिवालय का ही कार्य है। नीतियों एवं निर्णयों के निष्पादन पर निगरानी रखना सचिवालय का ही मुख्य दायित्व है।

5. संसदीय एवं विधायी कार्य

राज्य सरकार के प्रशासन के बारे में संसद अथवा राज्य विधान सभा में उठाये गये प्रश्नों का उत्तर तैयार करना, विधायी समितियों के समक्ष प्रशासन का प्रतिनिधित्व, नये विधेयकों का निरूपण, पुराने विधानों में संशोधन आदि से सम्बन्धित मामले सचिवालय के ही कार्यक्षेत्र में आते हैं।

6. केन्द्र एवं अन्य राज्यों से सम्बन्ध

राजस्थान राज्य के केन्द्र सरकार एवं अन्य राज्यों से सम्बन्धित प्रशासनिक मामले राज्य सचिवालय के विभिन्न विभागों के कार्यक्षेत्र में ही आते हैं। केन्द्र सरकार से मिलने वाली सहायता, ऋण, कार्यक्रमों से सम्बन्धित निर्देश आदि के मामले सचिवालय में ही निपटाए जाते हैं। मुख्यमंत्री एवं मुख्य सचिव के कार्यालय इस सम्बन्ध में महत्ती भूमिका निभाते हैं। विभिन्न राज्यों से सीमा-निर्धारण, नदी-जल, नहरी-पानी, पर्यावरण-सुरक्षा, तस्करी-निरोध, दस्यु-उन्मुलन आदि से सम्बन्धित निर्णय एवं उनके निष्पादन के मामले सचिवालय के ही कार्य क्षेत्र में आते हैं।

7. कार्मिक प्रशासन

सचिवालय के कार्मिक विभाग में अखिल भारतीय सेवाओं एवं मुख्य उच्चतर राज्य सेवाओं के मामले निपटाए जाते हैं। इन सेवाओं से सम्बन्धित नियुक्तियाँ, पदस्थापना, पदोन्नति, स्थानान्तरण, अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि इसी विभाग के क्षेत्राधिकार में आते हैं। नये पदों का सृजन, उनका नियमन, अधिकारियों की पुनर्नियुक्ति, त्यागपत्र, विशेष वेतन, भत्ते, पेंशन आदि के मामले भी यहीं निपटाए जाते हैं। हाँ, कई विभागीय सेवाओं एवं मध्य एवं निम्न स्तर के कर्मचारियों के कार्मिक

प्रशासन सम्बन्धी मामले सम्बन्धित विभागों में ही निर्णीत होते हैं। राजस्थान सेवा नियम, आचरण एवं अनुशासनात्मक कार्यवाही नियम आदि सचिवालय में ही निरूपित एवं संशोधित होते हैं।

8. वित्तीय प्रशासनिक नियंत्रण

सचिवालय स्थित राजस्थान सरकार का वित्त विभाग वित्तीय प्रशासन एवं नियंत्रण का मुख्य केन्द्र है। विभिन्न विभागों से प्राप्त आय एवं व्यय के अनुमानों को संशोधित कर सरकार का वार्षिक बजट बनाना, विभागों को व्यय की वित्तीय स्वीकृतियां प्रदान करना, बजट में संशोधनों के प्रस्तावों की समीक्षा करना, वाणिज्य कर, उत्पाद कर एवं उत्पाद कर विभागों पर नियंत्रण रखना आदि इस विभाग के मुख्य दायित्व हैं। राजस्थान लेखा सेवा पर प्रशासनिक नियंत्रण भी इसी विभाग का है।

9. आयोजना प्रशासन

राज्य की पंचवर्षीय एवं वार्षिक योजनाओं के निरूपण एवं निष्पादन पर निगरानी एवं उनका मूल्यांकन सचिवालय स्थित आयोजना विभाग का मुख्य दायित्व है। केन्द्र स्थित योजना आयोग से विचार-विमर्श कर राज्य योजना के आकार, संसाधनों एवं सहायता के मामले इसी विभाग के अन्तर्गत आते हैं।

राजस्थान शासन में नियोजन के मामलों पर अन्तर्विभागीय समन्वय हेतु आयोजना तथा विकास समन्वय समितियाँ, मुख्य सचिव की अध्यक्षता में कार्य करती हैं। ये समितियां योजनागत कार्यक्रमों के निष्पादन में समन्वय को अधिक सुलभ बनाती हैं।

10. सामान्य प्रशासन

सचिवालय स्थित सामान्य प्रशासन विभाग के क्षेत्राधिकार में सरकारी आवास, भवनों, विश्रामगृहों, वाहनों, उत्सवों, अनुदानों एवं आयोजनों के विषय आते हैं। वैसे समस्त सरकारी सम्पदा इसी विभाग के क्षेत्राधिकार में आती है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, केन्द्रीय मंत्री, अन्य उच्च अधिकारी, विदेशों के प्रतिनिधि आदि उच्चस्तरीय अतिथियों की राजस्थान यात्रा के दौरान प्रबन्धों एवं शिष्टाचार से सम्बन्धित क्रियाएं सामान्य प्रशासन विभाग के ही क्षेत्राधिकार में आती हैं।

11. प्रशासनिक सुधार

1955 में राजस्थान सरकार के शासन सचिवालय में ''संगठन एवं पद्धति'' सम्भाग की स्थापना हुई थी। आज यह प्रशासनिक सुधार विभाग का एक व्यापक अंग है। समस्त शासकीय विभागों एवं संस्थाओं में प्रशासनिक सुधारों को निर्देशित करना एवं उनका मूल्यांकन करना इस विभाग का दायित्व है। 1992 से 1995 के बीच कार्यरत प्रशासनिक सुधार समिति (अध्यक्ष : गोपालकृष्ण भनोत) द्वारा दी गई सिफारिशों पर आजकल यह विभाग उचित कार्यवाही कर रहा है।

12. विधि परामर्श

विभिन्न सरकारी नीतियों एवं निर्णयों के वैधानिक पहलुओं की समीक्षा कर उपयुक्त राय एवं न्याय देने का उत्तरदायित्व राज्य के विधि विभाग का है। विभिन्न विभागों के सैंकड़ों मामले इस विभाग के पास सन्दर्भ एवं विचार-विमर्श हेतु आते रहते हैं।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि सचिवालय राज्य प्रशासन की सभी महत्त्वपूर्ण नीतियों एवं प्रशासनिक मामलों में केन्द्रीय भूमिका निभाता है। इसके कार्यों का विस्तार निरन्तर होता रहा है व नवीन शासकीय उत्तरदायित्वों के जुड़ने से इसके आकार व भूमिका की अभिवृद्धि अपेक्षित है।

संगठन

राजस्थान सरकार के शासन सचिवालय के एकीकृत स्वरूप का समारम्भ 1949 में हुआ जबकि पूर्व राजपूताना की रियासतों के प्रशासनिक तंत्र का एकीकरण हुआ। पिछले लगभग 50 वर्षों में सचिवालय के समय-समय पर पुनर्गठन हुए, पुराने विभागों का विस्तार हुआ, कतिपय विभागों का पृथक्करण हुआ एवं कई नये विभागों का निर्माण हुआ। सचिवालय स्थित विभागों के आंतरिक प्रशासन में भी कई परिवर्तन हुए।

2004-05 में राजस्थान शासन सचिवालय में निम्नलिखित विभाग/संगठन कार्यरत थे:

1. आयुर्वेद
2. आयोजना विभाग (जन-शक्ति सहित)
3. इंदिरा गाँधी नहर विभाग
4. उद्योग विभाग
5. ऊर्जा विभाग
6. कला एवं संस्कृति विभाग
7. कृषि विभाग (कृषि विकास परियोजना एवं कृषि उत्पादन विभाग)
8. कार्मिक विभाग
9. खान एवं पैट्रोलियम विभाग
10. खेल एवं युवा मामले विभाग
11. खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग
12. गृह विभाग (गृह अभियोजन सम्भाग एवं न्याय विभाग सहित)
13. ग्रामीण विकास विभाग
14. पंचायती राज विभाग
15. चुनाव विभाग
16. चिकित्सा विभाग
17. जन अभियोग निराकरण विभाग
18. जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग
19. जनस्वास्थ्य अभियांत्रिकी एवं भू-जल विभाग
20. जनसम्पर्क विभाग
21. नगरीय विकास, आवासन एवं नगर नियोजन विभाग
22. पशुपालन, भेड़ तथा ऊन, मत्स्य तथा डेयरी विकास विभाग
23. परिवहन विभाग
24. पर्यटन विभाग
25. पर्यावरण विभाग
26. परिवार कल्याण विभाग
27. पुनर्वास विभाग
28. प्रशासनिक सुधार विभाग

R.K. Science PG Co... Library S.No 130

29. मंत्रीमंडल सचिवालय
30. महिला तथा बाल विकास विभाग
31. राजकीय उपक्रम विभाग
32. राजस्व, उपनिवेशक, देवस्थान एवं जनगणना विभाग
33. वन विभाग
34. विज्ञान एवं प्रौद्योगिक विभाग
35. वित्त विभाग
36. विधि एवं संसदीय मामलात विभाग
37. विभागीय जाँच विभाग
38. शिक्षा विभाग (उच्च एवं तकनीकी शिक्षा)
39. शिक्षा विभाग (प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा)
40. श्रम एवं नियोजन विभाग
41. सहकारिता विभाग
42. सहायता विभाग
43. समाज कल्याण एवं जनजातीय क्षेत्र विकास विभाग
44. स्वायत्त शासन विभाग
45. सामान्य प्रशासन विभाग
46. सार्वजनिक निर्माण विभाग
47. सिंचाई विभाग
48. सिंचित क्षेत्रीय विकास विभाग
49. सूचना प्रौद्योगिकी विभाग
50. सैनिक कल्याण विभाग

उल्लेखनीय है कि उपरोकत सूची स्थायी नहीं हैं। इसमें समय-समय पर संशोधन होते रहते हैं।

शासन सचिवालय में सर्वोच्च राजनीतिक अधिकारी मुख्यमंत्री एवं सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी मुख्य सचिव होता है। मंत्री-परिषद् के सभी सदस्य, समस्त अतिरिक्त मुख्य सचिव, प्रमुख शासन सचिव एवं शासन सचिव, उनके सहायक एवं अधीनस्थ कार्मिक सभी सचिवालय में ही कार्यरत हैं। राष्ट्रपति शासन के दौरान राज्यपाल एवं उसके सलाहकार शासन सचिवालय से ही प्रशासन चलाते हैं।

प्रत्येक विभाग का राजनीतिक प्रमुख एक कैबिनेट मंत्री अथवा राज्य मंत्री होता है। राज्य मंत्री दो प्रकार के होते हैं, एक वो जो किसी कैबिनेट मंत्री के साथ सम्बन्द्ध हैं तथा दूसरे वे जो किन्हीं विभागों के स्वतंत्र प्रभारी मंत्री हैं। कई बार एक राज्यमंत्री कुछ विषयों के लिए तो स्वतंत्र प्रभारी होता है तथा कुछ विभागों के लिए किसी कैबिनेट मंत्री के साथ सम्बन्धित होता है। किन्हीं विभागों के लिए उपमंत्री भी होते हैं। उनके पास सामान्यतया स्वतंत्र प्रभार नहीं होता। इस सम्बन्ध में कोई विशिष्ट नियम नहीं है।

सचिवों में प्रमुख मुख्य सचिव होता है। जैसा कि अन्यत्र उल्लेख किया गया है, वह समस्त

राज्य प्रशासन का प्रमुख समन्वयक होता है। सचिवालय का वह वरिष्ठतम प्रशासनिक अधिकारी है। सभी विभागों की अति महत्त्वपूर्ण फाइलें उसके पास निर्णय अथवा सूचना के लिए भेजी जाती हैं। मंत्रिमंडल के सामने जाने वाली सभी फाइलें मुख्य सचिव के माध्यम से जाती हैं।

राजस्थान सरकार में अतिरिक्त मुख्य सचिव स्तर के अधिकारियों को कतिपय विभागों के पर्यवेक्षात्मक समन्वय का कार्य सौंपा गया है। एक अतिरिक्त मुख्य सचिव के अधीन तीन अथवा चार विभाग होते हैं जिनके सचिव उसके पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं।

मुख्य सचिव के नीचे अतिरिक्त मुख्य सचिव की नियुक्ति होती है। इस अधिकारी को भी मुख्य सचिव के समान 26,000 रुपये मूल वेतन मिलता है।

प्रत्येक विभाग अथवा दो अथवा अधिक विभागों का प्रशासनिक मुखिया एक शासन सचिव अथवा प्रमुख शासन सचिव होता है। प्रमुख शासन सचिव का दर्जा उस वरिष्ठ अधिकारी को मिलता है जिसे 22,400 से 24,500 रुपये मासिक का वेतनमान मिल रहा हो। उल्लेखनीय है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के सुपर-टाइम के सचिवों का वेतन 18,400 से 22,400 रुपए मासिक होता है। वैसे प्रमुख शासन सचिव, सभी अतिरिक्त मुख्य सचिव, प्रमुख सचिव एवं सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य होते हैं। केवल विधि एवं संसदीय कार्य विभाग सचिव उच्चतर न्यायिक सेवा का सदस्य होता है। उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार एक मंत्री अथवा राज्यमंत्री एक से अधिक विभागों का प्रभारी मंत्री हो सकता है, उसी प्रकार एक प्रमुख शासन सचिव अथवा शासन सचिव भी एक से अधिक विभागों का प्रशासनिक प्रमुख हो सकता है। कई बार यह कार्य विभाजन इस प्रकार का होता है कि एक सचिव दो या उससे अधिक मंत्रियों के अधीन कार्य करता है तथा एक मंत्री के अधीन एक से अधिक सचिव कार्य करते हैं।

कतिपय विभागों में प्रमुख शासन सचिव अथवा शासन सचिव के अधीन विशिष्ट शासन सचिव नियुक्त होते हैं। सामान्यतया यह भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी होते हैं। शासन सचिवालय में विशिष्ट शासन सचिव के अधीन उपसचिव का पद होता है। यह उपसचिव पाँच प्रकार की सेवाओं के होते हैं:

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा
2. राजस्थान प्रशासनिक सेवा
3. राजस्थान लेखा सेवा
4. राजस्थान सचिवालय सेवा
5. अन्य विशिष्ट सेवाएँ जैसे राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा

एक विभाग में एक से अधिक सेवाओं के उपसचिव हो सकते हैं जैसे गृह विभाग एवं वित्त विभाग।

उपसचिव के नीचे सहायक सचिव का पद होता है। यह अधिकारी सामान्यतया राजस्थान सचिवालय सेवा के सदस्य होते हैं। पदसोपानात्मक व्यवस्था में सहायक सचिव के अधीन अनुभाग अधिकारी होते हैं, यह राजपत्रित अधिकारी भी राजस्थान सचिवालय की सेवा के सदस्य होते हैं। उनके नीचे वरिष्ठ सहायक, वरिष्ठ लिपिक, कनिष्ठ लिपिक एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी होते हैं। सचिवालय की पदसोपानात्मक व्यवस्था का क्रम इस प्रकार है:

राजस्थान शासन सचिवालय में पदसोपानात्मक व्यवस्था

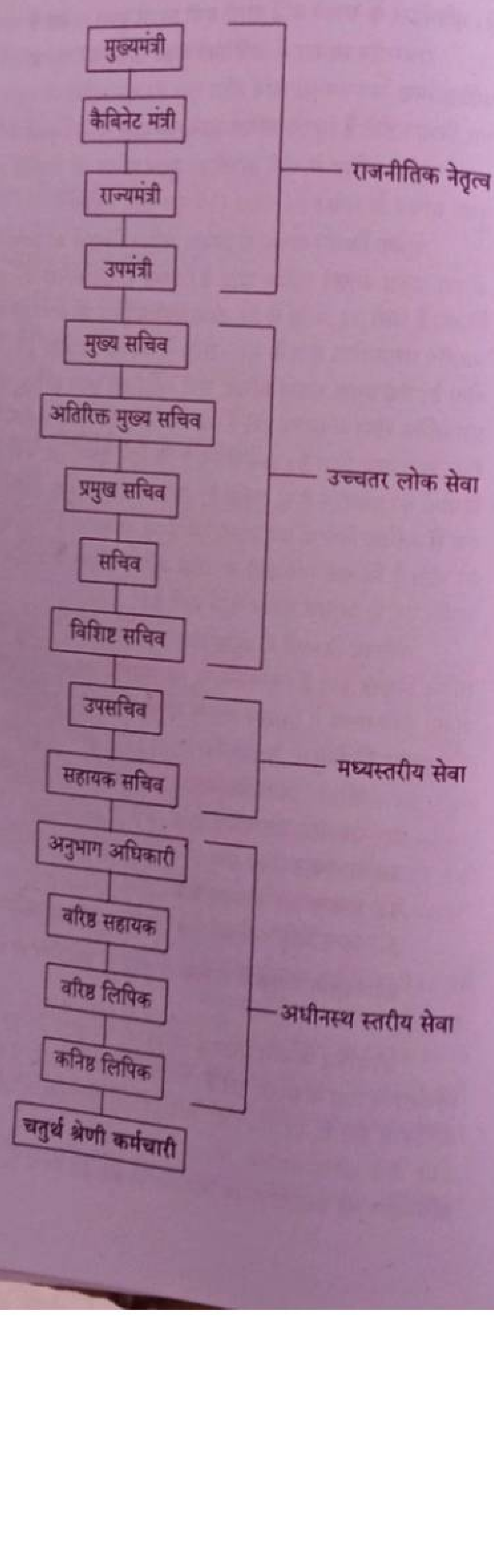

उपरोक्त शृंखला के बाहर कतिपय विशिष्ट सहायक निजी सचिव भी होते हैं जो मंत्रियों की सहायता करते हैं। ये सेवा-निवृत्त अधिकारी अथवा विभिन्न सेवाओं से आए प्रतिनियुक्ति पर अधिकारी होते हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय निजी सचिव होते हैं जो मुख्य सचिव तथा अन्य सचिवों को सहायता प्रदान करते हैं। ये अधिकारी राजस्थान शासन सचिवालय के वरिष्ठ स्टेनोग्राफर होते हैं।

विभागीय आन्तरिक प्रशासन

सचिवालय का प्रशासन कार्यविधि नियम (रुल्स ऑफ बिजनेस) के अन्तर्गत सम्पन्न होता है। इनका प्रकाशन संविधान के अनुच्छेद 166 के प्रावधान के अनुसार होता है। सचिवालय के विभिन्न विभागों के उत्तरदायित्व इन नियमों में उल्लेखित होते हैं। आवश्यकतानुसार, समय-समय पर इनमें संशोधन किया जाता है।

सचिवालय का प्रशासन''सेक्रेटेरियेट मैन्युल'' के अनुसार होता है। इस पुस्तिका के दो खण्ड हैं– पहले खण्ड में सरकारी काम के संचालन की विधि का विवरण है तथा दूसरे खण्ड में आवश्यक प्रपत्र, विभिन्न पदाधिकारियों की भूमिका आदि अंकित है।

पारम्परिक रूप से सचिवालय के प्रत्येक विभाग को अनुभागों में बांटा गया है। प्रत्येक अनुभाग का प्रभारी एक अनुभाग अधिकारी होता है। अनुभाग अधिकारी से प्रशासनिक पत्रावलियाँ सहायक सचिव को तथा फिर और आगे उच्चतर स्तरों पर भेजी जाती हैं। 1969-70 की सचिवालय पुनर्गठन समिति (अध्यक्ष : श्री मोहन मुखर्जी) ने सचिवालय के विभागों में ''समूह व्यवस्था'' अपनाने की सिफारिश की थी। इस सिफारिश को कई विभागों में लागू किया गया है। इस व्यवस्था के अनुसार उपसचिव स्तर के नीचे ''समूह प्रभारी'' कार्य करते हैं, ये या तो सहायक सचिव स्तर के होते हैं अथवा अनुभाग अधिकारी स्तर के। इसका परिणाम यह है कि अनुभाग अधिकारी अपनी पत्रावलियाँ सीधे उपसचिव को भेजता है तथा यही प्रथा सहायक सचिव के सम्बन्ध में लागू होती है। इससे प्रशासनिक निर्णय का एक स्तर कम हो जाता है एवं कार्य की गति में तीव्रता आती है। उल्लेखनीय है कि 1960-61 में कुछ विभागों मे ''इकाई व्यवस्था'' लागू की गई थी जिसके अन्तर्गत एक विभाग के कार्य को सचिव, उपसचिव एवं सहायक सचिवों में इस प्रकार विभक्त कर दिया गया कि वे स्वतंत्र रूप से मामलों का निपटारा कर पायें। इस व्यवस्था के अन्तर्गत पत्रावलियों पर टिप्पणियाँ लिपिक नहीं लिखते थे, सीधे ही उन पर निर्णय इकाई अधिकारी सम्बन्धित पत्रावलियों व सन्दर्भों की जाँच कर लिखवा देता था। किन्तु प्रयत्नों के बावजूद यह व्यवस्था सफल नहीं हो पाई। बिना नीचे से लिखी टिप्पणियों के अधिकारी निर्णय नहीं ले पा रहे थे, अतः शनैः-शनै इस पद्धति का व्यवहार में लोप हो गया।

राजस्थान में सचिवालय सुधार

राजस्थान शासन सचिवालय की कार्यप्रणाली का प्रथम व्यवस्थित अध्ययन भारत सरकार के राज्य मंत्रालय के श्री जी. स्वामीनाथन द्वारा अक्टूबर, 1951 में किया गया। सचिवालय की कार्य-प्रणाली एवं कार्मिकों की संख्या के बारे में सुझाए गये अधिकांश सुझावों को लागू कर दिया गया। नवम्बर, 1959 में तत्कालीन गृह-सचिव, श्री एस.डी. उज्ज्वल की अध्यक्षता में एक समिति का

गठन किया गया जिसकी सिफारिश पर सचिवालय विभागों का पुनर्गठन किया गया तथा क्षेत्रीय विभागों (निदेशालयों) को अधिक शक्तियाँ हस्तान्तरित की गईं। 1955 में संगठन तथा पद्धति अनुभाग की रचना की गई जो कि कार्यात्मक प्रक्रिया में सुधार के लिए निरन्तर सुझाव देता रहा। कालान्तर में यह अनुभाग प्रशासनिक सुधार विभाग का अंग बन गया। 1960 में इकाई व्यवस्था को सचिवालय के कुछ विभागों की आन्तरिक सांगठनिक प्रणाली के रूप में लागू किया गया, किन्तु शीघ्र ही इस प्रणाली का लोप हो गया।

1963 में राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति ने अपने प्रतिवेदन में सचिवालय के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिये:

(i) सचिवालय में केवल महत्त्वपूर्ण विषयों को ही निपटाया जाए।
(ii) सचिवों एवं उपसचिवों (तब विशिष्ट सचिव नहीं हुआ करते थे) का एक पद पर कार्यकाल चार से पाँच वर्ष का होना चाहिए, अर्थात् स्थानान्तरण शीघ्र नहीं होने चाहिए।
(iii) सचिव के पद पर नियुक्ति वरिष्ठता एवं योग्यता के आधार पर होनी चाहिए, न कि केवल वरिष्ठता के आधार पर।

1981 में भारतीय लोक प्रशासन की राजस्थान शाखा ने एक सम्मेलन में सचिवालय में सुधार हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये:

(i) विभिन्न मामलों को निपटाने में दक्षता हेतु समय-बद्धता पर ध्यान रखा जाए।
(ii) किसी मामले की जाँच एवं निर्णय के लिए स्तर तीन से अधिक नहीं होने चाहिए।
(iii) प्रशासन की नवीन विधियों के लिए कार्मिकों को आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

श्री गोपालकृष्ण भनोत की अध्यक्षता में नियुक्त प्रशासनिक सुधार समिति (1992-95) ने भी प्रशासन में दक्षता एवं विवेक की अभिवृद्धि हेतु कई महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं। इनमें नियमों के सरलीकरण एवं प्रशासनिक शक्तियों के प्रत्यायोजन अथवा विकेन्द्रीकरण पर बहुत बल दिया है। भनोत समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि प्रशासनिक पुनर्गठन के अन्तर्गत कतिपय विभागों में पृथक सचिवों के पद को समाप्त कर देना चाहिए। ये विभाग हैं– वन एवं पर्यावरण, श्रम एवं रोजगार, लोक उद्यम, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, युवा कल्याण एवं खेल विभाग। साथ ही कमाण्ड क्षेत्र विकाय योजना, विशिष्ट योजना एवं एकीकृत ग्रामीण विकास योजना, पशुपालन, कार्मिक आदि विभागों के सचिवों के स्तर को नीचा करने की राय दी है। भनोत समिति की इस राय को लागू करना व्यवहार में कठिन इस कारण है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के राजस्थान संवर्ग के अति वरिष्ठ अधिकारियों की उपलब्धता पहले से काफी अधिक हो गई है, अतः उन्हें उपयुक्त पद प्रदान करना भी आवश्यक हो जाता है। इसी कारण कई बार एक बड़े विभाग को विभक्त करना पड़ता है। वैसे भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी अपने राज्य प्रशासन के प्रतिवेदन में सचिवों की संख्या कम करने (केवल दस तक) का सुझाव दिया था, किन्तु यह सुझाव भी अव्यवहारिक ही है। सचिव इतने कार्यभार से नहीं दबने चाहिए कि वे रचनात्मक रूप से अपने विभागों को सम्भाल ही न सकें। अतः इस सम्बन्ध में अधिक संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।

भनोत समिति की यह राय मानने योग्य है कि विकास आयुक्त के पद को पुनः शक्तिशाली बनाना चाहिए। एक समय में उसका दर्जा अतिरिक्त मुख्य सचिव का था। ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान देने के लिए यह एक वांछनीय कदम होगा।

1999 से 2003 तक पूर्व मुख्यमंत्री श्री शिवचरण माथुर की अध्यक्षता में प्रशासनिक सुधार आयोग ने कार्य किया तथा राज्य प्रशासन के लगभग प्रत्येक पहलू पर दक्षता, संवेदनशीलता, पारदर्शिता तथा ईमानदारी की अभिवृद्धि पर अपने प्रतिवेदन दिये। इन प्रतिवेदनों पर वसुन्धरा राजे सरकार गम्भीरता से विचार कर रही है।

निष्कर्ष

शासन सचिवालय नीति-निर्माण, तथ्य-एकत्रण एवं विश्लेषण, समन्वय, नियमन, नियंत्रण, संसदीय एवं विधायी कार्य, केन्द्र एवं राज्य सम्बन्धों, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय नियंत्रण नियोजन, सामान्य प्रशासन, प्रशासनिक सुधार एवं विधि परामर्श से सम्बन्धित कार्यों का केन्द्र है।

सचिवालय की एक सामान्य आलोचना यह है कि यहाँ प्रशासनिक, वित्तीय, कार्मिक, नियोजन एवं नीति-निर्माण की शक्तियों का केन्द्रीकरण आवश्यकता से इतना अधिक है कि निदेशालय एवं क्षेत्रीय संस्थाएं स्वायत्तता-विहीन सी हो जाती हैं। सचिवालय पर उनकी निर्भरता प्रशासनिक दक्षता को कम करती है। निदेशालयों के तकनीकी अधिकारियों की यह राय सामान्यता देखी गई है कि सचिवालय के अधिकारी जो अधिकांशतया सामान्य प्रशासक होते हैं, तकनीकी प्रस्तावों की गहराई व जटिलता को समझे बिना या तो उन्हें संशोधित कर देते हैं अथवा अनावश्यक आपत्तियाँ करते हैं। इससे तकनीकी अधिकारियों का मनोबल नीचा होता है तथा निर्णयों में विलम्ब भी होता है। तकनीकी निदेशकों को यह भी शिकायत है कि सचिवालय के अधिकारी मंत्रियों के निकट होने के कारण समस्त महत्त्वपूर्ण नीतियों एवं निर्णयों को अतिरेक रूप से प्रभावित करते हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि शक्तियों का प्रत्यायोजन निदेशालयों को प्रचुर मात्रा में किया जाए। यही राय भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग की अपने राज्य प्रशासन पर प्रतिवेदन (1969) में थी। एक और सुझाव सामान्यतया सामने आता रहा है कि सचिवालय के पदों पर विशेषज्ञों को भी नियुक्त किया जाना चाहिए। यह व्यवस्था जटिल न रखकर अधिक खुली बनाई जानी चाहिए।

सीमाओं एवं आलोचनाओं के बावजूद सचिवालय का महत्त्व प्रचुर है। फिर भी यह तो आवश्यक है कि शक्तियों के केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण एवं प्रत्यायोजन पर बल हो तथा सचिवालय के स्तर पर होने वाले प्रशासनिक विलम्बों को न्यूनतम किया जाए। इस सम्बन्ध में श्री शिवचरण माथुर की अध्यक्षता में गठित राजस्थान प्रशासनिक सुधार आयोग ने सिफारिशें दे दी हैं।

□□□

अध्याय 6

मुख्य सचिव

राजस्थान प्रशासन में मुख्य सचिव वह केन्द्र बिन्दु है, जिसके चारों ओर सरकारी नीतियों के निरूपण एवं क्रियान्वयन की प्रक्रिया घूमती है। राज्य प्रशासन में मुख्य सचिव का वही स्थान है जो केन्द्रीय स्तर पर कैबिनेट सचिव का है तथा विभागों में वह राज्य प्रशासन का मुख्य समन्वयक एवं प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लिए प्रमुख उत्प्रेरक है।

पद का उदय तथा विकास

मुख्य सचिव का पद अंग्रेजी शासन की विरासत है। 1798 में लॉर्ड वेलेज़ली जब गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने केन्द्रीय सचिवालय का पुनर्गठन किया। उसी समय मुख्य सचिव का पद सृजित किया गया तथा जार्ब हिलेरो बालो पहले मुख्य सचिव बने।[1] ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन समाप्त होने तक इसी प्रकार की व्यवस्था बनी रही। 1858 में भारतीय शासन सीधे ब्रिटिश संसद के अधीन हो गया। ब्रिटिश शासित भारत में बंगाल, बम्बई तथा मद्रास "प्रेसीडेन्सी" में गवर्नर को प्रारम्भ में सीमित अधिकार दिये गये। धीरे-धीरे विभिन्न अधिनियमों द्वारा गवर्नर के अधिकारों में वृद्धि हुई। इसी काल में सभी प्रान्तों में मुख्य सचिव का पद सृजित हुआ था तथा राज्य स्तरीय प्रशासन में वह महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता था।[2] वह महत्त्वपूर्ण नियुक्तियां करता था जिनमें जिला स्तर के अधिकारियों की नियुक्तियां प्रमुख थीं। जैसे-जैसे विभिन्न अधिनियमों द्वारा भारतीयों ने शासन में प्रवेश करना प्रारम्भ किया, वैसे-वैसे मुख्य सचिव की भूमिका द्विविधापूर्ण होती गई। वस्तुतः ब्रिटिश शासन के हित तथा लोकप्रिय भारतीय नेताओं के हितों में किसका समर्थन वह किस सीमा तक करे यह निश्चित करना उसके लिए कठिन कार्य था।

देशी रियासतों (विशेषकर राजस्थान) की स्थिति

भारत की देशी रियासतें सीधे ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत आती थीं। वायसराय ब्रिटिश सत्ता का प्रतिनिधित्व करता था। विभिन्न देशी रियासतों में प्रशासन की भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएं थीं। जैसा कि सर्वविदित है, राजस्थान में सामन्ती राजतंत्र व्यवस्था प्रचलित थी। महाराज (कहीं-कहीं महाराव तथा महाराणा) समस्त शक्ति के स्रोत होते थे। उनकी सहायतार्थ दीवान या प्रधान हुआ करते थे, जिनकी तुलना आज के मुख्य सचिव से की जा सकती है। ये विभिन्न आर्थिक, न्यायिक, तथा सैनिक शक्तियों का उपभोग करते थे। वस्तुतः महाराजा के नाम पर समस्त अधिकारों का प्रयोग

दीवान या प्रधान द्वारा किया जाता था। पर इन सब पर नियंत्रण ब्रिटिश "रेज़ीडेन्ट" या "पॉलिटिकल एजेन्ट" का होता था तथा वे राज्य की रोजमर्रा की गतिविधियों का भी पर्यवेक्षण करते थे।

महाराजा के सहायतार्थ एक सलाहकार परिषद् होती थी, जो प्रशासन के मामलों में महाराजा को सलाह दिया करती थी। महाराजा इन परिषदों की बैठकों की अध्यक्षता करते थे। परिषद् के पास राज्य की सर्वोच्च कार्यकारिणी, विधायी तथा न्यायिक शक्तियाँ हुआ करती थीं। राज्य प्रशासन विभिन्न विभागों द्वारा चलाया जाता था, जिनकी अध्यक्षता परिषद् के सदस्य करते थे। कुछ विभाग सीधे शासक के नियंत्रण में होते थे, जिनका प्रशासन महाराज के राज्य सचिव द्वारा देखा जाता था। परिषद् का दूसरा प्रमुख अधिकारी परिषद् सचिव हुआ करता था। वस्तुतः परिषद् सचिव तथा महाराजा के राज्य सचिव दोनों के दायित्वों को मिला दिया जाए तो वर्तमान मुख्य सचिव के अधिकारों की स्थिति बनती है।

स्वतंत्रता के पश्चात् देश के विभिन्न राज्यों के पुनर्गठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। 1956 में जाकर यह प्रक्रिया पूरी हो पाई। इस काल में राजस्थान राज्य का संवैधानिक प्रमुख राजप्रमुख जाना जाता था तथा कार्यपालिका की वास्तविक शक्तियाँ मुख्यमंत्री तथा उसकी मंत्री-परिषद् में निहित थीं। प्रशासन का प्रमुख मुख्य सचिव राजस्थान का होता था– जो कभी तो राजस्थान का ही अधिकारी होता था तथा कभी केन्द्र से प्रतिनियुक्ति पर आता था।

एक नवम्बर 1956 को राज्यों के पुनर्गठन तक राजस्थान उस समय की व्यवस्था के अनुसार "बी" श्रेणी का राज्य था। राज्य के मुख्य सचिव बाहर से आते थे, जिनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाती थी। राजस्थान में यह व्यवस्था 1958 तक जारी रही। राजस्थान का निर्माण होने पर प्रथम मुख्य सचिव श्री के. राधाकृष्णन को नियुक्त किया गया, जो आई.सी.एस. थे। 1958 में प्रथम बार भारतीय प्रशासनिक सेवा के राजस्थान संवर्ग से मुख्य सचिव की नियुक्ति की शुरुआत हुई। श्री भगवत सिंह मेहता ऐसे प्रथम अधिकारी थे जो राजस्थान के ही अधिकारी थे तथा जिनका कार्यकाल मुख्य सचिवों में सर्वाधिक रहा।

उल्लेखनीय है कि 1970 से पूर्व भारत के सभी राज्यों में इस पद के सम्बन्ध में एकरूपता लाने का प्रयास किया गया।[3] फलस्वरूप, मुख्य सचिव की स्थिति भारत सरकार के सचिव के समकक्ष बना दी गई। राज्य लोक सेवा में यह पद सर्वाधिक महत्व, सम्मान एवं वरिष्ठता का पद माना जाता है।

नियुक्ति

मुख्य सचिव राज्य प्रशासन में अहम् भूमिका का निर्वहन करता है, अतः उसका चयन करते समय कई बातों का ध्यान रखा जाता है। चयन का कार्य राज्य का मुख्यमंत्री करता है। परम्परा यह है कि ऐसा करते समय वह संघ सरकार से सलाह करता है, किन्तु ऐसा करना आवश्यक नहीं है। वह अपने सहयोगी मंत्रियों से भी सलाह कर सकता है पर अन्तिम निर्णय उसी का होता है। मुख्य सचिव के चयन के समय तीन बातों का ध्यान रखा जाता है[4]:

(i) वरिष्ठता—सर्वोच्च स्तर के भारतीय प्रशासनिक सेवा के कुछ अधिकारियों में से मुख्य सचिव का चयन किया जाता है। यह स्पष्ट है कि सामान्यतया 28-30 वर्ष के सेवा अनुभव वाले व्यक्ति मुख्य सचिव बनाये जाते हैं। यह धारणा सही नहीं है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा के

वरिष्ठतम अधिकारी को ही मुख्य सचिव बनाया जाता है। राजस्थान में ऐसा कई बार हुआ है कि वरिष्ठता में चौथे, पाँचवें यहाँ तक की आठवें स्तर वाले अधिकारियों को मुख्य सचिव नियुक्त किया गया है। ऐसे अवसर पर सामान्यतया नवनियुक्त मुख्य सचिव से वरिष्ठ अधिकारियों को मुख्य सचिव का ही वेतनमान देकर उन्हें राज्य सचिवालय से बाहर कतिपय महत्त्वपूर्ण सरकारी पदों पर पद-स्थापित कर दिया जाता है।

(ii) सेवा अभिलेख एवं कार्य दक्षता— मुख्य सचिव का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसका पूर्व सेवा-अभिलेख अति श्रेष्ठ हो, वह शासकीय कार्य में दक्ष हो तथा उसमें निर्णय शक्ति प्रभावशाली हो। एक अन्य घटक जो मुख्य सचिव के चयन में सहायक होता है वह उस अधिकारी की अपने सहयोगियों में "टीम भावना" विकसित करने की क्षमता है।

(iii) मुख्यमंत्री का विश्वास— मुख्यमंत्री व मुख्य सचिव को आपसी तालमेल के साथ काम करना आवश्यक है। ऐसे में मुख्य सचिव को मुख्यमंत्री का विश्वासपात्र होना चाहिए। वस्तुतः मुख्य सचिव का कार्यकाल भी कभी-कभी उनके मुख्यमंत्री के साथ सम्बन्धों से प्रभावित होता है। राजस्थान प्रशासन में श्री मोहनलाल सुखाड़िया तथा श्री भगवतसिंह मेहता के अति सामन्जस्यपूर्ण सम्बन्ध रहे। फलतः श्री मेहता ने साढ़े आठ वर्ष के लम्बे समय तक मुख्य सचिव का पद भार सम्भाला तथा अपनी कार्य कुशलता का परिचय दिया। हाल ही में श्री भैरोंसिंह शेखावत एवं श्री मिठ्ठालाल मेहता का पारस्परिक विश्वास भी उल्लेखनीय रहा।

वस्तुतः मुख्य सचिव की नियुक्ति के समय उपरोक्त सभी बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है। फिर भी विभिन्न राज्यों में चयन प्रक्रिया में अपनी-अपनी परम्पराएँ व प्रवृत्तियाँ देखी गई हैं। कुछ राज्यों में वरिष्ठतम अधिकारी को मुख्य सचिव बनाने की परम्परा है[5] तो कहीं-कहीं इसके साथ-साथ विश्वास को भी महत्त्व दिया जाता है।

सेवा अवधि

भारतीय प्रशासनिक सुधार आयोग का सुझाव था कि मुख्य सचिव को कम से कम तीन या चार वर्ष अपने पद पर रहना चाहिए।[6] किन्तु इस प्रकार का नियम बना देने से मुख्यमंत्री के लिए आवश्यक हो जायेगा कि वह मुख्य सचिव के रूप में मनोनुकूल व्यक्ति न होने पर भी उसके साथ काम करने को बाध्य हो। अभी तक की व्यावहारिक प्रवृत्ति तो यही रही है कि मुख्य सचिव की सेवा अवधि उसके मुख्यमंत्री के साथ सम्बन्धों पर निर्भर करती है। राजस्थान में ऐसे भी उदाहरण है जब एक मुख्य सचिव ने ऐसे चार मुख्यमंत्रियों के साथ कार्य किया जो कि विभिन्न राजनैतिक दलों के नेता था। श्री विपिन बिहारी लाल माथुर ने 10 मार्च, 1986 से लेकर 31 जनवरी, 1992 तक मुख्य सचिव का पद भार सम्भाला। इस दौरान क्रमशः श्री हरिदेव जोशी (9 मार्च, 1985 से 20 जनवरी, 1988 तक), श्री शिवचरण माथुर (20 जनवरी, 1988 से 2 नवम्बर, 1989 तक), पुनः श्री हरिदेव जोशी (4 दिसम्बर, 1989 से 1 मार्च, 1990 तक), तथा भैरोंसिंह शेखावत (4 मार्च, 1990 से 15 जनवरी, 1992 तक) राजस्थान के मुख्यमंत्री रहे।[7] वस्तुतः मुख्य सचिव पद के लिए वस्तुनिष्ठता तथा संतुलित दृष्टि आवश्यक है। ख्यातिप्राप्त प्रशासक श्री धर्मवीर के अनुसार प्रशासकों को अपना मुँह यथासम्भव बंद रखना चाहिए।[8] वह प्रशासक जो निष्पक्षता, तटस्थता, संतुलित व्यवहार तथा निर्णय लेने में सक्षम हो, वह किसी भी मुख्यमंत्री के साथ काम कर सकता है।

राजस्थान के मुख्य सचिव

1.	श्री के. राधाकृष्णन	13 अप्रैल, 1949	से	2 मई, 1950
2.	श्री वी. नारायण	2 मई, 1950	से	1 सितम्बर, 1950
3.	श्री के. राधाकृष्णन	1 सितम्बर, 1950	से	31 जनवरी, 1951
4.	श्री एस. डब्ल्यू. शिवेश्कर	8 फरवरी, 1951	से	16 फरवरी, 1953
5.	श्री बी. जी. राव	16 फरवरी, 1953	से	30 दिसम्बर, 1954
6.	श्री किशन पुरी	30 दिसम्बर, 1954	से	12 जनवरी, 1957
7.	श्री के. एन. सुब्रह्मण्यम	11 मार्च, 1957	से	6 मई, 1958
8.	श्री भगवत सिंह मेहता	9 मई, 1958	से	26 सितम्बर, 1964
9.	श्री साँवल दान उज्ज्वल	26 सितम्बर, 1964	से	16 जनवरी, 1965
10.	श्री भगवत सिंह मेहता	16 जनवरी, 1965	से	29 अक्टूबर, 1966
11.	श्री के.पी.यू. मेनन	29 अक्टूबर, 1966	से	22 अक्टूबर, 1968
12.	श्री आ.डी. माथुर	22 अक्टूबर, 1968	से	17 मई, 1969
13.	श्री जोरावर सिंह झाला	17 मई, 1969	से	9 अगस्त, 1971
14.	श्री सुन्दर लाल खुराणा	9 अगस्त, 1971	से	23 जून, 1975
15.	श्री मोहन मुखर्जी	7 जुलाई, 1975	से	1 मई, 1977
16.	श्री आ.डी. थापर	4 मई, 1977	से	22 जून, 1977
17.	श्री मोहन मुखर्जी	22 जून, 1977	से	31 अक्टूबर, 1977
18.	श्री गोपाल कृष्ण भनोत	28 नवम्बर, 1977	से	29 दिसम्बर, 1980
19.	श्री मदनमोहन कृष्ण वली	29 दिसम्बर, 1980	से	20 फरवरी, 1984
20.	श्री आनन्दमोहन लाल सक्सेना	21 फरवरी, 1984	से	22 जुलाई, 1985
21.	श्री नरेश चन्द्र सक्सेना	23 जुलाई, 1985	से	10 मार्च, 1986
22.	श्री विपिन बिहारी लाल माथुर	10 मार्च, 1986	से	31 जनवरी, 1992
23.	श्री टी.वी. रमणन	31 जनवरी, 1992	से	30 अगस्त, 1993
24.	श्री गोविन्दजी मिश्रा	30 अगस्त, 1993	से	29 जनवरी, 1994
25.	श्री मिठ्ठालाल मेहता	2 फरवरी, 1994	से	31 दिसम्बर, 1997
26.	श्री अरुण कुमार	1 जनवरी, 1998	से	31 दिसम्बर, 1999
27.	श्री इन्द्रजीत खन्ना	1 जनवरी, 2000	से	26 दिसम्बर, 2002
28.	श्री आर.के. नायर	26 दिसम्बर, 2002	से	निरन्तर कार्यरत।

भूमिका तथा कार्य

मुख्य सचिव की भूमिका राज्य प्रशासन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हुए भी भारतीय संविधान में उसकी भूमिका तथा कार्यों को सूचीबद्ध नहीं किया गया है। उसके औपचारिक कर्तव्यों को राज्य सरकार के कार्य विधि नियमों में उल्लिखित किया गया है, पर ये उसकी प्रभावी भूमिका को स्पष्ट करने में सक्षम नहीं है। इन नियमों में समय-समय पर संशोधन भी किये जाते रहे हैं। मुख्य सचिव की भूमिका को मोटे तौर पर दो भागों मे बांटा जा सकता है:

(i) औपचारिक भूमिका
(ii) अनौपचारिक भूमिका

औपचारिक भूमिका के अन्तर्गत तीन महत्त्वपूर्ण दायित्वों को श्रेणीबद्ध किया जा सकता है–

(i) मंत्रीमंडल सचिव के रूप में
(ii) कतिपय विभागों के सचिव के रूप में
(iii) राज्य प्रशासन के मुख्य समन्वयक के रूप में।

(i) मंत्रीमंडलीय सचिव के रूप में

मुख्य सचिव राज्य मंत्रीमंडल का भी सचिव होता है। मंत्रीमंडल सचिवालय विभाग मुख्य सचिव के सीधे नियंत्रण में काम करता है, जिसका राजनैतिक प्रमुख मुख्यमंत्री होता है। इस विभाग के प्रमुख कार्य हैं– मंत्रीमंडल को सहायता देना, नीति समन्वय केन्द्र के रूप में काम करना, निर्णयों का क्रियान्वयन, आवश्यक सूचनाएँ प्रदान करना आदि।

राज्य सरकार मुख्य सचिव से कतिपय विषयों पर उसकी सलाह माँगती है यथा:

(i) मंत्रीमंडल बैठकों से सम्बन्धित प्रश्न।
(ii) केन्द्र राज्य सम्बन्ध, अन्तर्राज्य सम्बन्धों से सम्बन्धित विषय तथा क्षेत्रिय परिषद् की बैठकों के संचालन से सम्बन्धित विषय।
(iii) राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रियों से सम्बन्धित संस्थापना सम्बन्धी विषय।
(iv) मुख्यमंत्री तथा मंत्री से सम्बन्धित संसदीय तथा विधानसभायी प्रश्न।
(v) जनगणना से सम्बन्धित कार्यवाही।
(vi) राज्य के बाहर दी जाने वाली चिकित्सा सहायता।[9]

मंत्रीमंडलीय बैठक से सम्बन्धित कार्य

मंत्रीमंडल के सचिव के रूप में मुख्य सचिव जिन दायित्वों का निर्वाह करता है, उनमें हैं – मंत्रीमंडलों की बैठकों को बुलाने के बारे में सूचना देना, मंत्रीमंडल की बैठकों का ब्यौरा तैयार करना, मंत्रीमंडल तथा उप समितियों की बैठक में भाग लेना, मंत्रीमंडल में लिये गये निर्णयों, कार्यवाहियों का रिकार्ड रखना तथा उनकी प्रति राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा मंत्रियों को भेजना। विभागों द्वारा बैठक में विचारार्थ रखे जाने वाले मामलों से सम्बन्धित आवश्यक सूचना, तथ्य तथा आँकड़े सहित प्रस्तुत किये जा रहे हैं या नहीं, यह सुनिश्चित करना भी मुख्य सचिव का दायित्व है।

नीति-निर्माण प्रक्रिया में योगदान

मुख्य सचिव मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रियों के लिए प्रमुख सलाहकार की भूमिका का निर्वाह करता है। उसका मंत्रीमंडल की बैठकों में भाग लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मंत्रीमंडल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राज्य के विकास एवं उसी सुव्यवस्था हेतु ऐसे निर्णय ले जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से आदर्श एवं उपयुक्त हों। किन्तु कई बार राजनीतिक दबावों के कारण विवेकसंगत निर्णय लेने में कठिनाई होती है। ऐसे समय पर मुख्य सचिव की भूमिका महत्त्वपूर्ण बन जाती है।

मुख्य सचिव अपने लम्बे प्रशासनिक अनुभव के आधार पर राजनीतिज्ञों के निर्णय, उनके प्रशासनिक क्रियान्वयन तथा परिणामों के बीच सन्तुलन स्थापित करने में सहायता कर सकता है।

मंत्रीमंडल निर्णयों का क्रियान्वयन तथा ''फॉलो अप''

जब मंत्रीमंडल में कोई निर्णय ले लिया जाता है तब सम्बन्धित विभाग के कार्यपालक अध्यक्ष का यह दायित्व होता है कि वह उसे क्रियान्वित करे। यहाँ मुख्य सचिव की पर्यवेक्षीय भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वह समय-समय पर विभिन्न योजनाओं, परियोजनाओं, नीतियों एवं प्रशासनिक निर्णयों के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता रहता है। जहाँ कहीं उसे यह प्रतीत होता है कि किसी क्षेत्र में प्रगति आशानुकूल नहीं है तो उस सम्बन्ध में वह आवश्यक निर्देश देता है। कभी-कभी नीतियों एवं उपनीतियों में संशोधन हेतु भी कदम उठाने पड़ते हैं।

प्रशासनिक विभागाध्यक्ष की भूमिका

सामान्यतया राज्य का मुख्य सचिव, सामान्य प्रशासन, कार्मिक विभाग, प्रशासनिक सुधार तथा योजना विभाग का प्रशासनिक अध्यक्ष होता है। यद्यपि इस सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों में एकरूपता नहीं है कि कौन-से विभाग मुख्य सचिव के अधीन होने चाहिए, परन्तु यह निश्चित है कि वे विभाग, जो राज्य प्रशासन में महत्त्वपूर्ण समन्वयात्मक भूमिका निभाने वाले विभाग हों, मुख्य सचिव के अधीन रखे जाते हैं। जब एक विभाग मुख्य सचिव के अधीन काम करता है तो उस विभाग का भी महत्त्व बढ़ जाता है।

उल्लेखनीय है कि योजना विभाग को मुख्य सचिव के अधीन रखने की परम्परा रही है। यदि राजस्थान का उदाहरण लें तो चार दशक तक मुख्य सचिव ने योजना सचिव की भूमिका निभाई।[10] 1992 में योजना सचिव का पृथक पद सृजित किया गया, पर फिर भी इस क्षेत्र में मुख्य सचिव का दायित्व अभी भी महत्त्वपूर्ण है। एकवर्षीय तथा पंचवर्षीय योजनाओं के सन्दर्भ में राष्ट्रीय विचार-विमर्श में वही राज्य का प्रतिनिधित्व करता है, साथ ही योजना और विकास समन्वयन समितियों के अध्यक्ष के रूप में अन्तर्विभागीय समन्वय में मुख्य भूमिका निभाता है। जिन राज्यों में मुख्य सचिव योजना सचिव के रूप में काम करता है, वहाँ वह योजनाओं के निर्माण तथा क्रियान्वयन दोनों का पर्यवेक्षण करता है।

मुख्य सचिव कार्मिक प्रशासन की भी देखभाल करता है। भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग ने यह अनुशंसा भी की है कि कार्मिक प्रशासन मुख्य सचिव के नियंत्रण में होना चाहिए।[11] कार्मिक सचिव के रूप में वह निम्नलिखित प्रमुख कार्यों के लिए उत्तरदायी है:

(i) भारतीय प्रशासनिक सेवा के राज्य संवर्ग के अधिकारियों की स्थान रिक्ति, नियुक्ति, पदोन्नति, स्थानान्तरण, पदस्थापन, वरिष्ठता तथा सेवानिवृत्ति से सम्बन्धित मामले मुख्य सचिव के निर्देशानुसार क्रियान्वित किये जाते हैं। पदोन्नति तथा वरिष्ठता के निर्धारण में मुख्य सचिव की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।
(ii) सेवा शर्तों में संशोधन के लिए उसकी अनुमति आवश्यक है।
(iii) राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों की नियुक्ति के समय सामान्यतया: मुख्यमंत्री उससे सलाह करता है।
(iv) कार्मिक सचिव के नाते लोक सेवकों में नियम के प्रति प्रतिबद्धता पर नजर बनाये रखना मुख्य सचिव का काम है। अतः उसके अधीन सारी सेवाओं के अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले उसके पास विचारार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं। अखिल भारतीय

सेवा के अधिकारियों, विभागाध्यक्षों तथा अन्य उच्च पदस्थ अधिकारियों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के उसके निर्णयों को मुख्यमंत्री का समर्थन अधिकतर प्राप्त हो जाता है।

(v) राज्य में पदस्थापित अखिल भारतीय सेवा के अधिकारियों का वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (राजस्थान में वार्षिक निष्पत्ति प्रतिवेदन) लिखना उसका दायित्व है।

(vi) जिन राज्यों में लोक आयुक्त का पद है वहाँ उस पद पर नियुक्ति के समय मुख्यमंत्री मुख्य सचिव से सलाह लेता है। लोक आयुक्त के प्रतिवेदन का राज्य विधान सभा में पहुँचने के पहले मुख्य सचिव द्वारा अध्ययन किया जाता है।

(vii) राज्य के सरकारी अधिकारियों के कल्याण एवं सेवा शर्तों के निर्धारण के सम्बन्ध में वह हस्तक्षेप कर सकता है।

(viii) राज्य के लोक सेवकों के प्रशिक्षण तथा जीवक-प्रबन्धन (कैरियर-मैनेजमेंट) से सम्बन्धित व्यवस्था मुख्य सचिव के कार्य क्षेत्र में आती है। राजस्थान में प्रशिक्षण तथा प्रशिक्षण समन्वय की राज्य सलाहकार समिति का वह अध्यक्ष होता है।

उल्लेखनीय है कि 1992 से राजस्थान में कार्मिक विभाग का सचिव पृथक रूप से नियुक्त किया जाने लगा है। किन्तु इस व्यवस्था के बावजूद कार्मिक प्रशासन में मुख्य सचिव की भूमिका पहले से कम नहीं हुई है। मुख्य सचिव राज्य शासन के कार्मिक प्रशासन का वास्तविक प्रमुख है, अतः उपरोक्त सभी मामले अब भी मुख्य सचिव के पास निर्णय हेतु जाते हैं। जंहाँ आवश्यक हो वहाँ मुख्य सचिव कतिपय मामलों को मुख्यमंत्री अथवा मंत्रीमंडल को भेजता है।

प्रशासनिक सुधार विभाग, जो कि प्रशासनिक तंत्र के पुनर्गठन तथा प्रक्रिया सम्बन्धी सुधारों के लिए उत्तरदायी है, भी अधिकतर राज्यों में मुख्य सचिव के अधिकार क्षेत्र में आता है। इस क्षेत्र में यदि पृथक सचिव की नियुक्ति की जाती है तब भी मुख्य सचिव, निर्देश, नेतृत्व तथा प्रशासनिक सुधार सलाहकार के रूप में अपना महत्व बनाये रखता है। राजस्थान में प्रशासनिक सुधार सचिव पृथक होता है, तब भी प्रशासनिक सुधारों को दिशा एवं गति देने में मुख्य सचिव की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

अधिकतर राज्यों में मुख्य सचिव सामान्य प्रशासन विभाग का भी सचिव होता है। यह विभाग राज्य के अन्य प्रशासनिक विभागों की देख-रेख करता है तथा उन्हें विभिन्न आवश्यक सुविधाएँ मुहैया कराता है। सामान्य प्रशासन के सचिव के रूप में मुख्य सचिव विभिन्न महत्त्वपूर्ण कार्य करता है, यथा:

(i) विशिष्ट अतिथियों के राज्य में आगमन की आवश्यक व्यवस्था करना।

(ii) सम्मान व विशिष्ट पद देने वाले विशेषज्ञ समिति की अध्यक्षता करना।

(iii) पूर्व शासकों तथा स्वतंत्रता सेनानियों के सम्पत्ति तथा क्षतिपूर्ति सम्बन्धी मामले मुख्यमंत्री के पास भेजे जाने के पहले मामलों पर मत देना।

(iv) अन्तर्राज्यीय विवादों की समीक्षा करना।

(v) कार्य विधि नियमों में संशोधन के बारे में सुझाव देना। इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय मंत्रीमंडल का होता है।

(vi) मोटर गैरेज के प्रशासन पर पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करना।

(vii) सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में संलग्न ऐच्छिक संस्थाओं की अनुदान की मांगों के सम्बन्ध में अनुशंसा करना।

(viii) सरकारी आवास, भवन तथा विश्राम गृह से सम्बन्धित मामलों के सम्बन्ध में निर्णय लेना।

सामान्य प्रशासन विभाग का राजनीतिक प्रमुख सामान्य प्रशासन मंत्री होता है, अतः उपरोक्त में से अधिकांश मामलों पर अंतिम निर्णय मंत्री द्वारा किया जाता है।

उल्लेखनीय है वर्ष 1998 से राजस्थान में सामान्य प्रशासन विभाग का भी एक पृथक् सचिव है। अब मुख्य सचिव के पास सामान्य प्रशासन के वे ही मामले जाते है जो नीतियों में संशोधन अथवा अति विशिष्ट व्यक्तियों की यात्रा एवं सुरक्षा से सम्बन्धित हों अथवा विशिष्ट प्रकृति के हों। वैसे हर महत्त्वपूर्ण मामले की जानकारी मुख्य सचिव को निरन्तर दी जाती है।

मुख्य समन्वयक के रूप में

जैसा कि पिछले पृष्ठों से स्पष्ट है, मुख्य सचिव राज्य प्रशासनिक तंत्र का प्रमुख होता है। इस भूमिका में उसे राज्य प्रशासन के विभिन्न विभागों एवं अन्य संगठनों के बीच समन्वयक का कार्य करना पड़ता है। विभिन्न विभागों एवं संगठनों के कार्यकलाप इस तरह से संयोजित किये जाने चाहिए, ताकि कार्यों, कार्यक्रमों में दोहराव न हो। समय, धन व मानव श्रम का अपव्यय न हो, यह सुनिश्चित करना मुख्य सचिव का कार्य है। साथ ही यदि कहीं अन्तर-सांगठनिक अन्तर्विरोध की स्थिति हो तो उसे भी दूर करने का उत्तरदायित्व मुख्य सचिव का होता है। एक समन्वयक के रूप में मुख्य सचिव को विभिन्न स्तरों पर कार्य करना होता है, यथा –

(i) केन्द्र, राज्य तथा अन्तर्राज्यीय स्तर पर,

(ii) राज्य के अन्तर्गत अन्तर्राज्यीय स्तर पर।

केन्द्र, राज्य तथा अन्तर्राज्यीय स्तर पर

मुख्य सचिव केन्द्र व राज्य के बीच संवाद सेतु का कार्य करता है। योजना, वित्त तथा कार्मिक प्रबन्ध के क्षेत्र में केन्द्र तथा राज्य के बीच निरन्तर अन्तःक्रियाएं होती हैं। अतः मुख्य सचिव का केन्द्रीय स्तर के सचिवों से लगातार सम्पर्क बनाये रखना आवश्यक है। केन्द्र के मंत्रीमंडल सचिव, योजना सचिव तथा गृह सचिव आदि से वह औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों स्तर पर सम्पर्क बनाये रखता है। इन सम्पर्कों और सम्बन्धों के माध्यम से वह केन्द्र से राज्य के लिए वित्तीय व अन्य सहायता प्राप्त करने में सहायक होता है। इन सम्पर्कों के बनाये रखने के लिए समय-समय पर सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। समन्वय के लिए अन्तर्राज्यीय समितियों का भी समय-समय पर गठन किया जाता है।

मुख्य सचिवों का सम्मेलन– भारत के सभी राज्यों के मुख्य सचिवों का सम्मेलन प्रतिवर्ष नई दिल्ली में आयोजित किया जाता है। इस सम्मेलन की अध्यक्षता केन्द्र का मंत्रीमंडल सचिव करता है। इस सम्मेलन का कार्य-ब्यौरा केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा मिल कर निश्चित किया जाता है। इस सम्मेलन में राज्य प्रशासन से सम्बन्धित सभी विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता है। केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के सम्बन्ध में भी यहाँ चर्चा की जाती है।

क्षेत्रीय परिषदें– ये परिषदें राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के द्वारा स्थापित की गई थीं। इस समय पाँच क्षेत्रीय परिषदें कार्यरत हैं, जिनके अन्तर्गत सभी राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र आ जाते हैं। प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद् उस क्षेत्र के राज्यों से मिल कर बनती है। केन्द्रीय गृहमंत्री सभी क्षेत्रीय परिषदों का अध्यक्ष होता है। इनके अतिरिक्त राज्यों के मुख्यमंत्री, योजना आयोग का एक सदस्य, क्षेत्र के सभी मुख्य सचिव तथा सदस्य राज्यों के विकास आयुक्त इन बैठकों में भाग लेते हैं।

विभिन्न सदस्य राज्यों के मुख्य सचिव बारी-बारी से इन क्षेत्रीय परिषदों के सचिव बनाये जाते हैं। इन क्षेत्रीय परिषदों की प्रमुख गतिविधियाँ हैं– विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन में राज्यों को सहयोग प्रदान करना, समान नीति के निर्माण में केन्द्र तथा राज्य को विचार-विनिमय के अवसर प्रदान करना तथा राज्यों के आपसी विवाद को दूर करने में सहायता करना।

यद्यपि इन क्षेत्रीय परिषदों का निर्माण सदुद्देश्य से किया गया है तथापि नियमित बैठकों के न हो सकने के कारण ये अपनी भूमिका का निर्वाह करने में सक्षम नहीं हो पाई हैं। लेकिन यह निर्विवाद तथ्य है कि इन सम्मेलनों तथा परिषदों के माध्यम से मुख्य सचिव समन्वयक की भूमिका बेहतर तौर पर निभा सकता है। बिजली, पानी तथा राज्य सीमाओं से सम्बन्धित विवादों को निपटाने का प्रयास पहले मुख्य सचिव स्तर पर किया जाता है। तत्पश्चात् ही इन विवादों को उच्चतर स्तर पर प्रेषित किया जाता है।

राज्य प्रशासन में समन्वय

अपनी पदस्थिति तथा अधिकारों का प्रयोग करते हुए मुख्य सचिव राज्य प्रशासन के समन्वय का कार्य प्रभावशाली तरीके से कर सकता है। सचिवालय प्रशासन कई विभागों में बँटा होता है। हर विभाग का प्रमुख एक सचिव होता है। मुख्य सचिव इन सभी सचिवों को नेतृत्व प्रदान करता है। हाल ही में स्थापित सचिवों की समितियाँ भी समन्वय की महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं। अन्तर्विभागीय विवादों को निपटाना तथा विभागों की गतिविधियों का पर्यवेक्षण करना उसके प्रमुख दायित्वों में से एक है। वह मंत्रीमंडल तथा विभाग के बीच की कड़ी है, क्योंकि सभी महत्त्वपूर्ण प्रपत्र उसी के माध्यम से मंत्रीमंडल तक पहुँचते हैं।

राजस्थान प्रशासनिक सुधार समिति (1963) ने सुझाव दिया था कि नियमों तथा कार्य पद्धतियों में यदि परिवर्तन करना है तो तत्सम्बन्धी सुझाव मुख्य सचिव द्वारा ही दिये जाने चाहिए। भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग (1966-70) ने मुख्य सचिव के पद को और शक्तिशाली बनाने का सुझाव दिया था।

विभिन्न राज्यों के सचिवों की बैठक की अध्यक्षता मुख्य सचिव करता है तथा इसी दायित्व के अन्तर्गत अन्तर्विभागीय मुद्दों को सुलझाने का प्रयास करता है। विभिन्न योजना तथा विकास समन्वय समितियों का अध्यक्ष होने के नाते अन्तर्विभागीय समन्वय सम्भव बनाने में मुख्य सचिव महत्ती भूमिका निभाता है।

प्रशासनिक समन्वय का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत राज्य के वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों की वार्षिक बैठकें हैं। इन बैठकों में विभिन्न विभागों के सचिव एवं अध्यक्षों के अतिरिक्त सभी जिलों के कलक्टर भी भाग लेते हैं। प्रदेश के समक्ष सभी वैकासिक एवं अन्य समस्याओं का पारस्परिक विमर्श से समाधान होने में सहायता तो मिलती ही है, एक-दूसरे के विचारों एवं सुझावों से प्रशासनिक

दक्षता की भी वृद्धि होती है। इन सम्मेलन में मुख्यमंत्री समेत मंत्रीमंडल के सदस्य भी भाग लेते हैं। इस कारण इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इस वरिष्ठ अधिकारियों के इस सम्मेलन में मुख्यमंत्री एवं मुख्य सचिव की केन्द्रीय भूमिका रहती है।

मुख्य सचिव का भूमिका-समूह

मुख्य सचिव को राज्य के विभिन्न वर्गों, संस्थाओं, संगठनों तथा व्यक्तियों के साथ काम करना पड़ता है। ऐसे में उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि इन सबके साथ उसके सम्बन्ध तथा व्यवहार कैसा है? एक तरफ राजनीतिक नेतृत्व है तो दूसरी ओर सम्पूर्ण प्रशासनिक-तंत्र जिसका नेतृत्व उसे करना है। जन-प्रतिनिधियों तथा जनता के प्रति जवाबदेही उसे अपने निर्णयों तथा कार्यों में सतर्कता बरतने के लिए सचेत करती है। मुख्य सचिव को किन-किन स्तरों पर सहयोग व समन्वय करना आवश्यक है यह नीचे दिये रेखाचित्र से स्पष्ट है:

मुख्य-सचिव का भूमिका-समूह

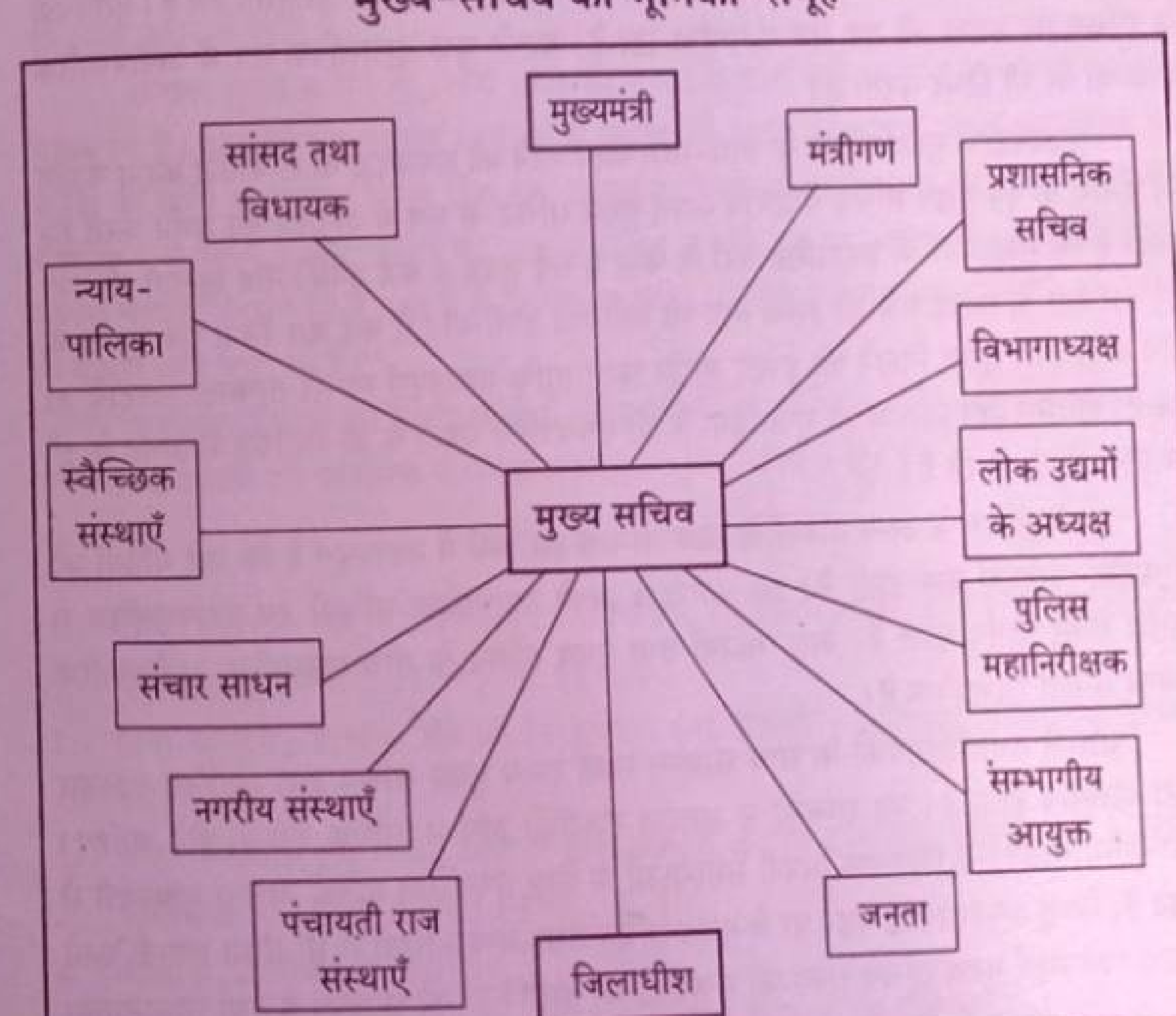

सर्वप्रथम मुख्य सचिव और मुख्यमंत्री के सम्बन्धों के मुद्दे को लें, तो यह माना जाता है कि दोनों का एक इकाई के रूप में काम करना आवश्यक है। ऐसा माना जाता है कि मुख्य सचिव को मुख्यमंत्री के मस्तिष्क की भाँति सोचना चाहिए तथा तदनुरूप कार्य करना चाहिए।[12] राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया तथा तत्कालीन मुख्य सचिव श्री बी. मेहता की शासकीय एवं प्रशासनिक जुगलबन्दी लम्बे साढ़े आठ वर्षों तक चली। श्री सुखाड़िया का मानना था कि

मेहता स्वतंत्र व निर्भीक राय देते थे तथा उन्हें मानव भाव की स्पष्ट समझ थी।[13] जब तक सुखाड़िया सरकार बहुमत में रही तब तक मेहता के निर्णयों को मुख्यमंत्री का सम्पूर्ण समर्थन प्राप्त था। चौथे आम चुनाव के बाद जब सुखाड़िया सरकार अल्पमत में आ गई तो उन्हें कतिपय राजनीतिक समझौते करने पड़े, लेकिन इससे उनके आपसी व्यक्तिगत सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं आया।[14]

मुख्य सचिव की औपचारिक शक्तियों के अतिरिक्त उसकी प्रशासनिक स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि मुख्यमंत्री उसे कितनी छूट तथा कितने अधिकार देते हैं। कई बार विभागों के सचिव मुख्य सचिव को दरकिनार करके मुख्यमंत्री से सीधे सम्पर्क करने का प्रयास करते हैं। यदि इस प्रवृति को मुख्यमंत्री बढ़ावा देते हैं तो मुख्य सचिव की स्थिति दृढ़ नहीं रहती। वस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि मुख्यमंत्री मख्य सचिव से राय ले, अधिकार भी दे पर आवश्यकता पड़ने पर स्वयं स्वतंत्र निर्णय भी ले।[15]

राजस्थान के विभिन्न मुख्यमंत्रियों ने अपने मुख्य सचिवों को पूर्ण सम्मान दिया है, किन्तु उन्होंने निर्णय लेने में अन्य सचिवों की राय भी विभिन्न विषयों पर आवश्यकतानुसार ली है। मुख्यमंत्री के सचिव का महत्त्व भी इस क्षेत्र में पर्याप्त रहा है। काफी कुछ प्रशासनिक तंत्र में अनौपचारिक सम्बन्धों पर भी निर्भर करता है।

मुख्यमंत्री व मुख्य सचिव के साथ-साथ काम करने को समयबद्ध या सीमाबद्ध करना कठिन है। पंजाब के पूर्व मुख्य सचिव मंगतराय अपने मुख्य सचिव के रूप में अनुभव का वर्णन करते हुए बताते हैं कि मुख्यमंत्री श्री प्रतापसिंह कैरों के फोन से सर्द सुबह 6 बजे उनकी नींद खुलती थी तथा कई बार रात के ग्यारह बजे या उसके बाद भी बातचीत होती थी। वे कई बार बिना पूर्व सूचना के फोन करते और तुरन्त मिलने की इच्छा जाहिर करते ताकि महत्त्वपूर्ण मामले तत्काल निपटाये जा सकें।[16] लगभग यही सम्बन्ध श्री सुखाड़िया के श्री भगवतसिंह मेहता के श्री भैरोंसिंह शेखावत के श्री एम.एल. मेहता से रहे हैं।

मुख्य सचिव के अन्य मंत्रियों के साथ सम्बन्ध इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि कई मंत्रियों को प्रशासनिक अनुभव कम होता है। इस कारण वे अपने प्रशासनिक सचिवों एवं मुख्य सचिव से परामर्श लेकर निर्णय करते हैं। अतः मंत्रियों तथा मुख्य सचिव के बीच पारस्परिक अनौपचारिक सम्बन्ध बनाना स्वभाविक है।

सांसदों तथा विधायकों के साथ सम्बन्ध रखते समय मुख्य सचिव द्वारा संतुलित व्यवहार करना वांछनीय होता है। यह सम्बन्ध न अत्यन्त नजदीकी और न अधिक दूरी के होने चाहिए। सामान्यतया सांसद एवं विधायक अपनी समस्याओं के लिए सम्बन्धित मंत्रियों अथवा मुख्यमंत्री से मिलते हैं, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर वे मुख्य सचिव तथा अन्य सचिवों से भी सीधा सम्पर्क करते हैं। एक विवेकपूर्ण मुख्य सचिव राज्य की राजनीति की बारीकियों को समझता है तथा सामान्यतया ऐसा आचरण करता है कि जिससे राज्य सरकार के राजनीतिक नेतृत्व को अनावश्यक रूप से शिकायतों का सामना न करना पड़े।

विभिन्न विभागों के अध्यक्ष के रूप में 'टीम' भावना के साथ काम करना आवश्यक है। इतने सारे दायित्वों को वह अकेले कुशलतापूर्वक नहीं निभा सकता। अतः सभी विभागों को यथोचित महत्त्व देते हुए उन्हें नेतृत्व प्रदान करने का उत्तरदायित्व मुख्य सचिव का है।

स्वैच्छिक संस्थाएँ विकास योजनाओं व कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब उन्हें अनुदान राशि सही समय और अधिक प्रक्रियाओं नियमों में उलझे बगैर मिल जाए। मुख्य सचिव इस दिशा में उनकी सहायता करके राज्य के विकास रथ को तेजी से आगे ले जा सकता है। किन्तु इस मद पर दिये जाने वाले अनुदान आवश्यकताओं की तुलना में अपर्याप्त सिद्ध होते हैं।

राज्य में कानून व व्यवस्था बनाये रखने का दायित्व यद्यपि गृह विभाग का है, पर अन्ततः सारे विभागों को नेतृत्व मुख्य सचिव का दायित्व है। ऐसे में राज्य की व्यवस्था की सम्पूर्ण तथा सही जानकारी उनके पास उपलब्ध होना आवश्यक है, अन्यथा सही तथा समयोचित निर्णय सम्भव नहीं हो पायेगा। राज्य के पुलिस प्रशासन, विशेषतया पुलिस महानिदेशक से मुख्य सचिव का निरन्तर सम्पर्क रहता है। जब भी कानून-व्यवस्था का कोई संकट आता है उस समय मुख्य सचिव तथा पुलिस महानिदेशक के बीच 24 घण्टे सम्पर्क रहता है। मुख्य सचिव का सम्भागीय आयुक्तों एवं जिलाधीशों से निरन्तर सम्पर्क बना रहता है। उनके द्वारा दिये गये निर्देश एवं परामर्श को ये अधिकारी हर समय ध्यान में रखते हैं।

अन्ततः मुख्य सचिव के अपनी राज्य की जनता के साथ कैसे सम्बन्ध है, यह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था में जनता को सुखी एवं संतुष्ट रखना आवश्यक है। जनता की मांगों के अनुसार निर्णय लेना तथा तदनुकूल शिकायतों का निवारण करना आवश्यक है। राजस्थान के मुख्य सचिव जनता की शिकायतों को सुनकर उन पर आवश्यक कार्यवाही करना अपना कर्तव्य समझते रहे हैं। इन में से अधिकांश अपने मानवीय व्यवहार तथा मानवीय दृष्टिकोण के कारण जाने जाते रहे हैं।[17]

इन सारे दायित्वों का निर्वाह करने में मुख्य सचिव का व्यक्तित्व, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, प्रशासनिक क्षमता एवं मानसिक चैतन्यता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सन्दर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. बी.बी मिश्रा, *द सेन्ट्रल एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी– 1773-1834* (लन्दनः मेनचेस्टर यूनिवर्सिटी, 1959), पृ. 79-80.
2. मीना सोगानी, *द चीफ सेक्रेटरी इन इण्डिया* (नई दिल्ली : ऐसोसिएट पब्लिशिंग हाऊस, 1984), पृ. 16.
3. मोहन मुखर्जी, *नॉन स्टोरी ऑफ ए चीफ सेक्रेटरी ड्यूरिंग इमरजेंसी, एटसेट्रा* (नई दिल्ली : ऐसोसियेट पब्लिशिंग हाऊस, 1982), पृ. 10.
4. सोगानी, उपरोक्त, पृ. 28-29.
5. एम.ए. मुतालिब तथा एम.ए. अलीम, ''आन्ध्र प्रदेश'', ए.पी. पाधी, (सम्पा.) *स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन* (नई दिल्ली, 1968), पृ. X.
6. भारत सरकार, प्रशासनिक सुधार आयोग, *रिपोर्ट ऑन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन* (नई दिल्ली : 1968), पृ. 26.
7. *राजस्थान वार्षिकी 1995* (जयपुर : पंचगंगा प्रकाशन, 1995), खण्ड 5, पृ. 67.

8. धर्मवीर, *मेमोयर्स ऑफ ए सिविल सर्वेन्ट* (नई दिल्ली : विकास 1975), पृ. 12.
9. राजस्थान सरकार, कैबिनेट सेक्रेटेरियट, *डिपार्टमेन्ट्स स्टेण्डिग आर्डर*, जुलाई 21, 1980.
10. आर. एम. खण्डेलवाल, *स्टेट लेवल प्लान एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया* (जयपुर : आर.बी.एस.ए. प्रकाशन, 1985).
11. प्रशासनिक सुधार आयोग, *रिपोर्ट ऑन स्टेट एडमिनिस्ट्रेशन*, पृ. 24.
12. आर.पी. नोरोना, *ए टेल टोल्ड बाई एन इडियट* (नई दिल्ली : विकास, 1976), पृ. 163-64.
13. *रिफलेक्शन ऑन एडमिनिस्ट्रेशन : स्पीचेस एण्ड राइटिंग्स ऑफ बी. मेहता* (जयपुर : गवर्नमेंट सेन्ट्रल प्रेस, 1966), पृ. iii-iv.
14. सोगानी, *उपरोक्त*, पृ. 151.
15. ई.एन मंगतराय, *कमिटमेन्ट माई स्टाइल : कैरियर इन द इण्डियन सिविल सर्विस* (नई दिल्लीः विकास, 1973), पृ. 184.
16. *वहीं*, पृ. 243.
17. सोगानी, *उपरोक्त*, पृ. 160.

❑❑❑

अध्याय 7

राजस्थान सरकार का गृह विभाग

गृह विभाग राज्य सरकार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभाग माना जाता है। इसकी सक्षमता व कुशलता के अभाव में कोई भी राज्य सरकार न तो शांति व्यवस्था ही बनाये रख सकती है न विकास कार्यों को समुचित रूप से क्रियान्वित कर सकती है। गृह विभाग का महत्त्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि इसका दायित्व केन्द्र तथा अन्य पड़ोसी राज्यों के साथ समन्वयात्मक सम्बन्धों का निर्माण तथा उनका निर्वहन भी है।

गृह विभाग के उत्तदायित्व

विभाग के दायित्वों को निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट किया जा सकता है :

1. शांति व्यवस्था बनाये रखना तथा पुलिस प्रशासन

किसी भी समाज या राज्य की क्रियाशीलता बनाये रखने तथा सृजनात्मक, रचनात्मक क्षमताओं के उत्तरोत्तर विकास के लिए शांतिपूर्ण तथा व्यवस्थित वातावरण की आवश्यकता होती है। गृह विभाग का दायित्व है कि वह शांतिपूर्ण वातावरण की यथास्थिति को बनाये रखे। इसके लिए वह समय-समय पर राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार से भी निर्देश प्राप्त करता है। गृह विभाग विभिन्न केन्द्रीय व राज्यीय कानूनों की क्रियान्विति हेतु आवश्यक कदम उठाने के निर्देश देता है। इस दायित्व के निर्वहन के लिए पुलिस विभाग ही राज्य के गृह विभाग के मुख्य उपकरण के रूप में कार्य करता है। पुलिस प्रशासन से सम्बन्धित सभी दायित्व राजस्थान सशस्त्र पुलिस, रेल्वे पुलिस, होमगार्ड आदि राजस्थान पुलिस प्रशासनिक नियंत्रण की परिधि में ही आते हैं।

2. आंतरिक सुरक्षा

कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने की सामान्य प्रक्रिया के अतिरिक्त आंतरिक सुरक्षा के अन्य कई आयाम हैं जिनसे गृह विभाग का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। राज्य कर्मचारियों की हड़ताल, सामाजिक तथा राजनीतिक संगठनों द्वारा किये जाने वाले आन्दोलन, साम्प्रदायिक दंगे तथा शत्रु-राष्ट्र द्वारा घोषित युद्ध जैसी परिस्थितियों के दौरान गृह विभाग को गम्भीर चिन्तन एवं मुस्तैदी से कार्य करना पड़ता है। राज्य, सम्भाग तथा जिला एवं स्थानीय स्तर पर सुरक्षा का वातावरण बना रहे, यह देखना गृह विभाग का ही दायित्व है। महत्त्वपूर्ण संस्थापनों की सुरक्षा के साथ-साथ अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों (वी.आई.पी.) तथा अति-अति महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों (वी.वी.आई.पी.) की सुरक्षा की जिम्मेदारी भी इसी विभाग की है।

3. निवारक नजरबंदी

आंतरिक सुरक्षा बनाये रखने के लिए निवारक कदम अति अपयोगी हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम तथा विदेशी विनियम संरक्षण एवं तस्करी गतिविधियाँ निवारण अधिनियम (कोफेपोसा) के अन्तर्गत अशांति फैलाने वाले अथवा अपराध करने वाले व्यक्तियों की निवारक नजरबंदी राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो जाती है। इस सम्बन्ध में आवश्यक दिशा-निर्देश गृह विभाग ही देता है। यह विभाग ही राज्यपाल को यह सिफारिश करता है कि किन मामलों में निवारक नजरबंदी की अवधि को कम करने अथवा क्षमा करने में वह (राज्यपाल) स्वविवेक का उपयोग करे।

4. अपराधों की रोकथाम

शांति व्यवस्था की यथास्थिति बनाये रखने के पश्चात् अपराधों पर नियंत्रण व अपराधियों पर पैनी-सजग दृष्टि रखना आवश्यक है। इसलिए राजस्थान पुलिस जुए, सट्टे, मटके जैसी प्रवृत्तियों पर सजग दृष्टि रखती है तथा उन्हें नियंत्रित करने का प्रयास करती है। डाका डाल कर, चोरी करके जीवन यापन करने वाले जरायम पेशा अपराध को जीवन वृत्ति बनाने वाले लोगों पर निरन्तर निगरानी रखना और उन पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। विष तथा खतरनाक औषधियों के दुष्प्रयोगों की रोकथाम तथा अन्य दायित्वों के लिए केन्द्रीय जाँच ब्यूरो राजस्थान पुलिस की मदद करते हैं।

5. शस्त्रों का नियमन

गृह विभाग शस्त्रों के प्रयोग के लिए लाइसेन्स जारी करता है। राज्य के शस्त्रागार की देख-रेख आग्नेयास्त्र, गोला-बारूद आदि का नियमन तथा व्यवस्था भी इसी विभाग का दायित्व है। शस्त्र के लाइसेन्स जारी करते समय यह सुनिश्चित किया जाता है कि उनकी आवश्यकता केवल व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए ही है, तथा वे किसी प्रकार राज्य की सुरक्षा के लिए खतरे नहीं होंगे।

6. अपराधों, कारागार तथा सुधारगृह सम्बन्धी दायित्व

राज्य की समस्त जेलों की व्यवस्था, कैदियों का एक जेल से दूसरे जेल में स्थानान्तरण, कैदियों का अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान, तथा जेल सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का समाधान गृह विभाग द्वारा किया जाता है। महिलाओं तथा बच्चों से सम्बन्धित सुधार गृहों पर भी गृह विभाग का नियंत्रण रहता है।

7. दण्डादेशों का क्रियान्वयन व तत्सम्बन्धी सलाह

यह विभाग अन्य राज्यों द्वारा दिये गये दीवानी तथा अपराधों से सम्बन्धित आदेशों की तामील करता है तथा राज्यपाल द्वारा दण्ड में कमी या क्षमादान सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने का कार्य करता है।

8. राज्य सीमा सुरक्षा

लगभग एक हजार किलोमीटर की राज्य से लगने वाली विदेशी सीमाओं पर सुरक्षा व्यवस्था तथा उस पर सतत् दृष्टि रखना गृह विभाग का दायित्व है। बीकानेर, श्रीगंगानगर, बाड़मेर तथा जैसलमेर जिलों में इस समस्या का विशेष प्रभाव है। सीमावर्ती शिकायतें व पाकिस्तान सीमा से सम्बन्धित मामले गृह विभाग के नियंत्रण में आते हैं। सीमा से होने वाली घुसपैठ एवं तस्करी को रोकने का

दायित्व इसी विभाग का है। सीमा पर कार्यरत अन्य विभागों तथा संस्थाओं से गृह विभाग को इस सम्बन्ध में निरन्तर समन्वय रखना पड़ता है। ये संगठन हैं– सीमा सुरक्षा बल, भारतीय सेना, केन्द्रीय जाँच ब्यूरो, सीमा शुल्क विभाग, राज्य पुलिस आदि। सरकारी गोपनीयता अधिनियम, सीमा शुल्क अधिनियम आदि के अधीन पकड़े गये अपराधियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का दायित्व गृह विभाग का ही है। सीमा विकास योजना का कार्य भी इसी विभाग के अधीन आता है।

9. विदेश यात्रा, पासपोर्ट एवं वीज़ा सम्बन्धी दायित्व

विदेशी नागरिकों, पर्यटकों तथा तीर्थ यात्रियों से सम्बन्धित निर्णय गृह विभाग ही लेता है। अधिवास, देशीकरण तथा नागरिकता सम्बन्धी मामले, भारत के आप्रवासन, भारत के बाहर उत्प्रवासन सम्बन्धी मामले गृह विभाग के क्षेत्राधिकार में आते हैं।

10. मानव अधिकार व क्रूरतानिवारण

बच्चों का संरक्षण, महिलाओं, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति पर हो रहे अत्याचारों की सुनवाई व नियंत्रण गृह विभाग का दायित्व है। हाल ही में इन दायित्वों पर पहले से काफी अधिक बल दिया गया है। यह विभाग पशुओं से सम्बन्धित क्रूरता की रोकथाम का भी प्रयास करता है।

11. मनोरंजन व्यवस्थापन

गृह विभाग द्वारा सिनेमा, रंगमंचों की व्यवस्था तथा उनके लिए लाइसेन्स जारी किया जाता है। विभाग बाहर से आये सांस्कृतिक दलों के कार्याक्रमों के आयोजन की सुरक्षा की दृष्टि से व्यवस्था करता है।

12. प्रकाशन तथा संचार माध्यमों का नियमन-नियंत्रण

गृह विभाग का दायित्व राजपत्र तथा राजकीय पुस्तकों का प्रकाशन तथा वितरण करना है। राजस्थान में सरकारी प्रेसों की व्यवस्था, समाचार एजेन्सियों के कार्य, राज्य के गैर-सरकारी प्रकाशनों का पंजीकरण, सरकारी विज्ञापनों की व्यवस्था, प्रेस कानून, कॉपीराइट कानूनों का क्रियान्वयन, समाचार-पत्रों पर नियंत्रण तथा आवश्यक सूचनाओं का प्रकाशन भी गृह विभाग द्वारा करवाया जाता है।

13. विविध कार्य

जमीन से खोद कर निकाले गये खजाने सम्बन्धी मामले, नगरपालिका तथा नगर क्षेत्र से बाहर कब्रिस्तान तथा श्मशान भूमि सम्बन्धी मामले, राजस्व विभाग द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता को छोड़कर नागरिकों को आयात सहायता उपलब्ध कराना, परमवीर, महावीर तथा अशोक चक्र प्राप्त व्यक्तियों को राजकीय अनुदान प्रदान करना गृह विभाग का क्षेत्राधिकार है। गृह विभाग स्वयं के स्टाफ के सेवा सम्बन्धी मामलों को तो निबटाता ही है, साथ ही अपने सम्बद्ध संगठनों के कार्मिक प्रशासन सम्बन्धी उन मामलों पर भी निर्णय लेता है जो इसके क्षेत्राधिकार में आते हैं।

गृह विभाग वस्तुतः सभी विभागों से कहीं न कहीं सम्बद्धित है अतः इसकी महत्ता स्वतः सिद्ध है। यह विभाग केन्द्र तथा राज्य सरकार के सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों तथा समन्वय के लिए भी उत्तरदायी है।

संगठन

राजनैतिक स्तर पर गृह मंत्रालय का नेतृत्व कैबिनेट स्तर के एक वरिष्ठ मंत्री द्वारा किया जाता है। कभी-कभी यह विभाग मुख्यमंत्री स्वयं भी अपने पास रखते हैं। इस सम्बन्ध में कोई विशेष प्रावधान नहीं है। गृहमंत्री के व्यक्तित्व तथा अन्य महत्त्वपूर्ण मंत्रियों की आपसी सहमति द्वारा ही इस विभाग का दायित्व सौंपा जाता है।

गृहमंत्री के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं–

- राज्य विधानसभा में गृह मंत्रालय से सम्बन्धित कानूनों, विधेयक एवं नीतियों के बारे में राज्य सरकार का दृष्टिकोण प्रस्तुत करना।
- गृह मंत्रालय से जुड़े विधानसभा में उठाये गये प्रश्नों का उत्तर देना।
- मंत्रीमंडल की बैठकों में भाग लेना, उसमें गृह विभाग से सम्बन्धित मामलों को प्रस्तुत करना तथा उन पर मंत्रीमंडलीय निर्णयों को लेने में सहायता प्रदान करना।
- गृह विभाग से सम्बन्धित मामलों में महत्त्वपूर्ण नीति-निर्णय लेना तथा इस बारे में आवश्यकता पड़ने पर मंत्रीमंडल एवं मुख्यमंत्री से समन्वय रखना।
- गृह विभाग के उच्च अधिकारियों के कार्यों का पर्यवेक्षण करना तथा उन्हें आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान करना।
- यह सुनिश्चित करना कि गृह विभाग से सम्बन्धित कानूनों, नियमों आदि का क्रियान्वयन सही ढंग से हो रहा है।
- गृह विभाग से सम्बद्ध संस्थाओं के क्रियाकलाप की जाँच हेतु आवश्यक दौरे एवं निरीक्षण करना।
- गृह विभाग से सम्बन्धित मामलों में जनता की शिकायतों को दूर करने हेतु आवश्यक कदम उठाना।

विभाग के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह) को नीति निर्माण, नीति-क्रियान्वयन पर नियंत्रण रखने, विधानसभा के प्रश्नों का उत्तर तैयार करने, आवश्यक निरीक्षण करने, भविष्य की योजनाएँ बनाने, सांगठनिक पुनर्गठन, विभागीय कार्मिकों पर नियंत्रण रखने, नये पदों की रचना, सम्बद्ध संस्थाओं के संचालन की दक्षता सुनिश्चित करने, केन्द्र सरकार से समन्वय रखने, केन्द्रीय सुरक्षा बलों से समन्वय स्थापित करने, राज्य में स्थित सेना-केन्द्रों से सम्पर्क रखने, अन्तर्राज्यीय सीमाओं पर होने वाली गतिविधियों पर नजर रखने, सीमा सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा आंतरिक सुरक्षा से सम्बन्धित अन्य मामलों के बारे में आवश्यक कर्तव्य सम्पन्न करने पड़ते हैं। वह गृहमंत्री का औपचारिक अधीनस्थ होने के साथ-साथ अनौपचारिक सलाहकार भी है। राज्य की गोपनीय सूचनाएँ अतिरिक्त मुख्य सचिव के माध्यम से ही मुख्यमंत्री तक पहुँचती है।

अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह) की सहायता के लिए एक गृह सचिव तथा एक विशिष्ट सचिव होते हैं जो आई.ए.एस. अधिकारी होते हैं। गृह सचिव अतिरिक्त मुख्य सचिव (गृह) के निदेशन में कार्य करते हैं। विशिष्ट सचिव के अधीन छः उपसचिव कार्य करते हैं, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा, राजस्थान प्रशासनिक सेवा अथवा राजस्थान सचिवालय सेवा के अधिकारी हैं। इनके पद इस प्रकार हैं:

R. K. SCIENCE COLLEGE
ACC. No.
JAIPUR

गृह विभाग का संगठन

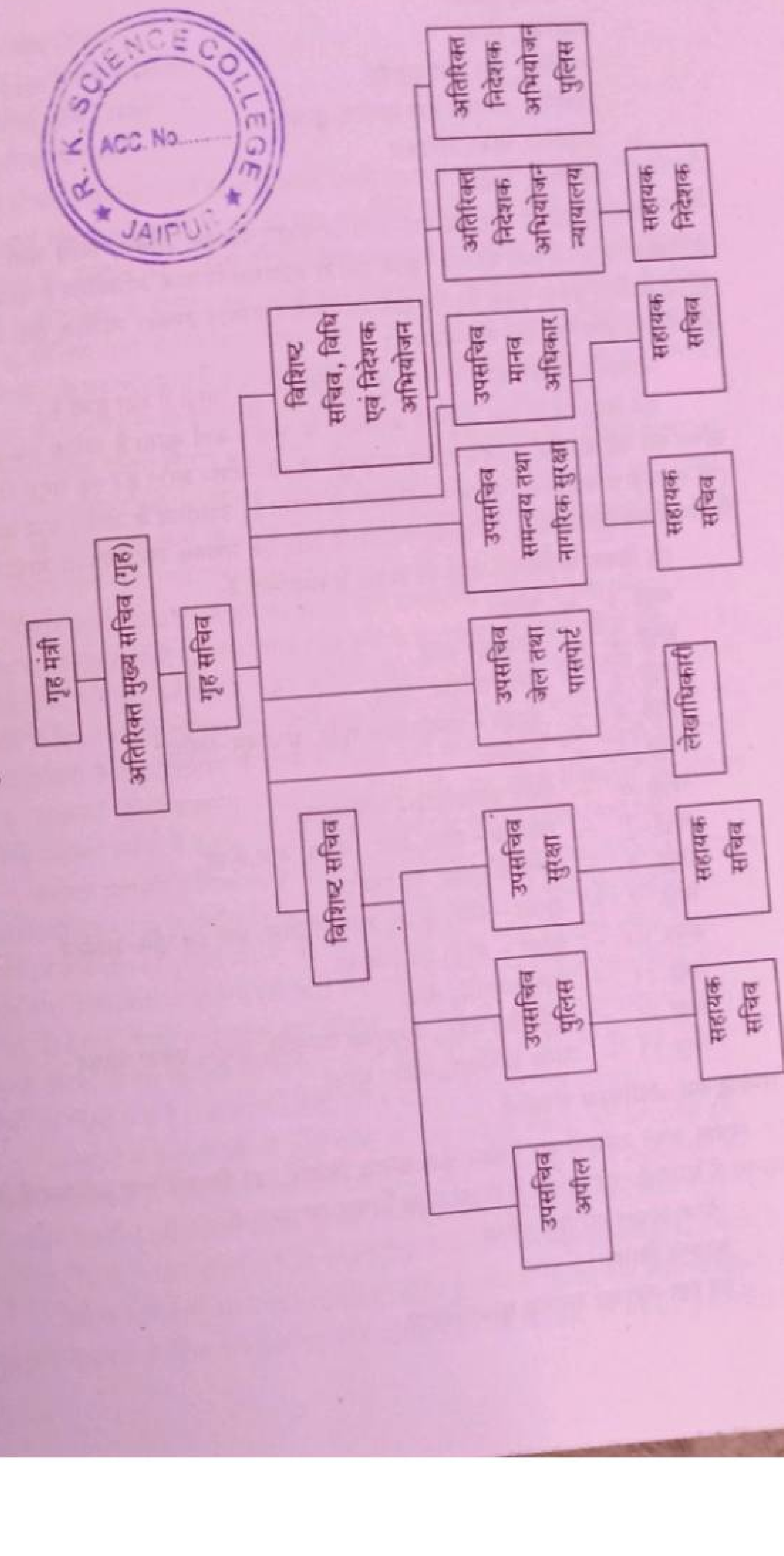

- उपसचिव, पुलिस
- उपसचिव, सुरक्षा
- उपसचिव, जेल तथा पासपोर्ट
- उपसचिव, समन्वय तथा नागरिक सुरक्षा
- उपसचिव, मानव अधिकार
- उपसचिव, अपील

विशिष्ट सचिव स्तर का एक अन्य अधिकारी विशिष्ट सचिव, विधि तथा निदेशक, अभियोजन के रूप में कार्य करता है। इसके नीचे दो अतिरिक्त निदेशक अभियोजन हैं जो न्याय तथा पुलिस के लिए पृथक्-पृथक् हैं। यह दोनों अधिकारी राजस्थान उच्चतर न्यायिक सेवा के सदस्य होते हैं तथा उपसचिव स्तर के समकक्ष हैं।

आन्तरिक संगठन की दृष्टि से सम्पूर्ण गृह विभाग 13 समूहों में बँटा हुआ है।

एक समूह या तो एक अनुभाग अधिकारी के अधीन कार्य करता है अथवा एक सहायक सचिव के। कई बार एक सहायक सचिव दो समूहों का भी निर्देशन करता है। एक समूह अधिकारी (जो सहायक सचिव अथवा अनुभाग अधिकारी हो सकता है) उपसचिव के अधीन कार्य करता है। विभाग में एक लेखाधिकारी है जिसकी सहायता के लिए एक सहायक लेखाधिकारी कार्यरत है।

गृह विभाग के विभिन्न समूह इन विषयों से सम्बन्धित हैं:

समूह 1 – पुलिस
समूह 2 – लेखा एवं बजट
समूह 3 – जेल, पार्सपोर्ट, वीज़ा
समूह 4 – सुरक्षा – साम्प्रदायिक शांति, भ्रष्टाचार-निरोध
समूह 5 – न्यायिक
समूह 6 – विधि परामर्शदाता (अभियोजन)
समूह 7 – समन्वय – सीमा, सेना, सिनेमा, आर.ए.सी.
समूह 8 – नागरिक सुरक्षा, गृह रक्षा दल
समूह 9 – सुरक्षा – सीमा सुरक्षा, शस्त्र लाइसेंस, सेना हेतु भूमि-आवंटन
समूह 10 – सुरक्षा – कानून एवं व्यवस्था
समूह 11 – जेल, पासपोर्ट, वीज़ा
समूह 12 – अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, राष्ट्रीय एकता परिषद
समूह 13 – मानव अधिकार, महिला सुरक्षा

सम्बद्ध एवं अधीनस्थ संस्थाएँ

गृह विभाग अपने दायित्वों का निर्वहन कुछ सम्बद्ध विभागों, उप विभागों तथा अभिकरणों के माध्यम से करता है। गृह विभाग से संलग्न प्रमुख विभाग इस प्रकार हैं:

पुलिस विभाग एवं रेल्वे पुलिस
कारागृह विभाग
गृह रक्षा-दल एवं नागरिक सुरक्षा विभाग

अभियोजन विभाग
भ्रष्टाचार निरोधक विभाग
अपराध जाँच विभाग
न्यायिक विभाग

गृह विभाग का मुख्य कार्य शांति व्यवस्था बनाये रखना है, साथ ही राज्य की सीमा से लगे राज्यों के साथ सह-अस्तित्व की भावना के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध भी बनाये रखना है। ऐसे में पुलिस विभाग का दायित्व बढ़ जाना स्वाभाविक तथा आवश्यक है। पुलिस विभाग के बढ़ते महत्त्व तथा सतत् आवश्यकता के कारण इसके संगठन तथा शक्तियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। बढ़ते अपराध, मूल्यहीनता तथा असीम जन-आवश्यकताओं एवं किसी भी कीमत पर आकांक्षाओं की पूर्ति की भावना के कारण समाज में असन्तोष बढ़ता है। ऐसी स्थिति में पुलिस को सामान्य व्यवस्था बनाये रखने के साथ शक्ति के प्रयोग की भी आवश्यकता समय-समय पर पड़ती है।

महानिदेशक पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता है जिसके अधीन पुलिस मुख्यालय, सी.आई.डी., राजस्थान पुलिस अकादमी, स्टेट क्राइम रिकार्ड ब्यूरो, पुलिस विधि विज्ञान प्रयोगशाला, दूर संचार, यातायात तथा अन्य सम्बन्धित संस्थाएँ आती हैं। इसके अतिरिक्त जिला पुलिस, रेलवे पुलिस, मेवाड़ भील कोर तथा राजस्थान आर्म्ड कान्स्टेबुलरी भी सम्मिलित हैं।

महानिदेशक पुलिस पर विभाग का वित्तीय तथा प्रशासनिक दायित्व है तथा राज्य में शांति व व्यवस्था बनाये रखना भी है। पुलिस प्रशासन की दृष्टि से राजस्थान को आठ रेन्जों में बाँटा गया है। इन आठ रेन्जों को पुनः 34 जिलों, 147 पुलिस सर्किलों, 676 पुलिस थानों तथा 731 पुलिस चौकियों में विभाजित किया गया है। पिछले कुछ दिनों में महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरुकता बढ़ी है तथा प्रशासन भी उनके प्रति होने वाले अत्याचारों के प्रति काफी संवेदनशील हुआ है। महिलाएँ पुलिस प्रशासन के पास बेहिचक आ सकें तथा अपनी समस्याओं को बेझिझक कह सकें इसलिए जयपुर में 8 मई, 1989 को पहला महिला थाना स्थापित किया गया।

उपरोक्त प्रशासनिक विभाजन के सन्दर्भ में यह सपष्ट कर देना आवश्यक है कि रेंज मुख्यालय उप-महानिरीक्षक पुलिस के अधीन है, जिला स्तर पर पुलिस अधीक्षक ही प्रमुख है। सर्किल अधिकारी के माध्यम से अधीनस्थ पुलिस स्टेशनों का कार्य संचालन किया जाता है। रेलवे पुलिस के द्वारा रेल लाइन तथा आस-पास के क्षेत्रों में होने वाले अपराधों को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है। पुलिस अधीक्षक, रेलवे तथा अपर महानिरीक्षक, सी.आई.डी. (रेलवे और अपराध शाखा) के संयुक्त प्रयासों से इस दायित्व का निर्वहन किया जाता है। गुप्तचर विभाग को चार शाखाओं में विभाजित किया गया है – अपराध शाखा, विशेष शाखा, सतर्कता तथा कम्प्यूटर।

अपराधों व अपराधियों की शीघ्र पकड़ के लिए गुप्तचर विभाग को आधुनिक संयंत्रों से युक्त किया गया है। वायरलैस तथा प्रयोगशालाओं द्वारा पुलिस को अपने कर्तव्य पूरे करने में सहायता मिलती है। राजस्थान सशस्त्र पुलिस तथा नागरिक पुलिस की कई बटालियनें बनाई गई हैं। भ्रष्टाचार निरोध विभाग भी गठित किया गया है जिसे राज्य अन्वेषण ब्यूरो के नाम से जाना जाता है।

पुलिस अधिकारी अपने दायित्वों को परिवर्तित सामाजिक परिवेश तथा आवश्यकताओं के अनुरूप सक्षमता से निभा सकें इसलिए उनके प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की गई है। कुछ प्रशिक्षण

सेवा में प्रवेश के समय भावी दायित्वों को दृष्टिगत रख कर दिये जाते हैं। साथ ही सेवा में रहते हुए दृष्टिकोण तथा ज्ञान के नवीनीकरण हेतु रिफ्रेशर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भी व्यवस्था की गई है। प्रशिक्षण के मुख्य केन्द्र, राजस्थान पुलिस अकादमी को जयपुर में स्थापित किय गया है। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रमुख शहरों में पुलिस प्रशिक्षण के कई कार्यक्रमों के लिए केन्द्र स्थापित किये गये हैं। राजस्थान में पुलिस अधिकारियों की पदसोपान व्यवस्था पृष्ठ-105 पर दी गई है।

गृह विभाग के महत्त्वपूर्ण अंगों में होमगार्ड है जिसकी स्थापना 1963 में की गई थी। आपात स्थिति को सम्भालने के लिए इस विभाग की स्थापना की गई थी। निदेशक, नागरिक सुरक्षा एवं महा समादेष्टा, होमगार्ड के प्रशासनिक नियंत्रण में विभाग काम करता है।

अपराधों की रोकथाम, दण्ड व्यवस्था तथा अपराधियों को सुधरने का मौका देने के लिए जेल व सुधारगृह भी गृह विभाग के नियंत्रण में ही क्रियाशील हैं। महानिदेशक, कारागार इस विभाग का सर्वोच्च पद है। महिलाओं तथा बाल अपराधों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, अतः उनके लिए पृथक सुधारगृहों की स्थापना की गई है।

गृह विभाग के अन्तर्गत अभियोजन विभाग निदेशक, अभियोजन के नियंत्रण में कार्यरत है। भ्रष्टाचार निरोध का दायित्व महानिदेशक भ्रष्टाचार निरोधक विभाग का है। न्यायालय सम्बन्धी मामलों के लिए उपसचिव की व्यवस्था की गई है।

गृह विभाग के सम्मुख चुनौतियाँ

यह स्पष्ट है कि राजस्थान राज्य की सरकार का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभाग गृह विभाग ही है। शांति व्यवस्था, साम्प्रदायिक एकता, सीमा सुरक्षा, मानव अधिकार आदि संवेदनशील विषयों से अंतरंग रूप से जुड़े गृह विभाग की दृष्टि एवं दक्षता पर निर्भर करता है कि राज्य में सौहार्दपूर्ण सहअस्तित्व एवं विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

मानव अधिकारों के उभरते आन्दोलन ने अब पुलिस के दृष्टिकोण, भूमिका एवं कार्यशैली में बदलाव के लिए दबाव डाला है।

गृह विभाग की अपेक्षित भूमिका में काफी परिवर्तन आ गया है। यथास्थिति बनाये रखना ही काफी नहीं है बल्कि उसे अब विकासकारी भूमिका भी निभानी है। नागरिकों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ क्रियान्वित करनी हैं, उनकी शारीरिक सुरक्षा के साथ-साथ उनके मनोरंजन तथा मानसिक गुणवत्ता में वृद्धि करने में सहायता भी करनी है। सिद्धान्त रूप में तो ये सारे दायित्व स्वीकार कर लिये गये हैं, पर व्यवहारिक रूप में उन्हें क्रियान्वित करने के लिए न तो अधिकारियों को नवीन दृष्टि प्रदान की गई है न पर्याप्त आर्थिक प्रशासनिक संरचना उपलब्ध है।

आज गृह विभाग को कानूनी विशेषज्ञों, पुलिस प्रशासन के ज्ञाताओं, अपराधों को समझने व रोकने के लिए मनोवैज्ञानिकों तथा मनोचिकित्सकों की आवश्यकता है। अपराधियों से अपराध उगलवाने के लिए क्रूर पद्धतियाँ ही प्रभावशाली होंगी, इस गलतफहमी को भी दूर करना जरुरी है। मनोवैज्ञानिक दबाव, अपराध स्वीकार करने के पश्चात गलतियों को सुधारने का मौका तथा फिर से जीवन प्रारम्भ करने का अवसर कल्याणकारी राज्य की भावना के अनुकूल हैं। साथ ही पेशेवर अपराधियों से टक्कर लेने के लिए हथियार तथा संयंत्र आवश्यक हैं।

पुलिस विभाग में पदसोपान व्यवस्था

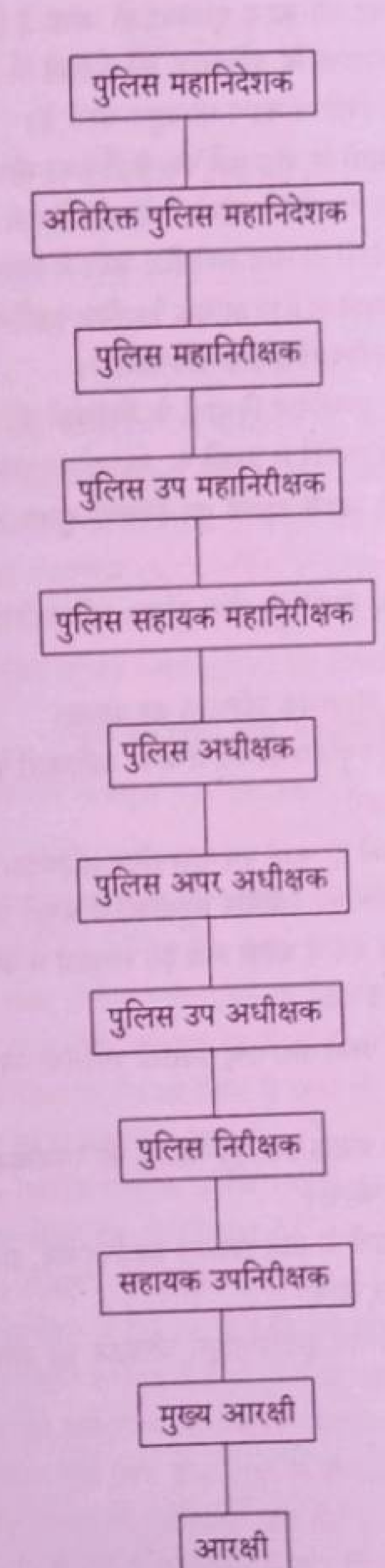

पुलिस प्रशासन में दृष्टिकोण परिवर्तन की विशेष आवश्यकता है। जन-सामान्य के साथ सहयोग तथा सहृदयता के व्यवहार के द्वारा वे पुलिस के प्रति विश्वास तथा आस्था जगा सकते हैं। कभी-कभी तो जनता के लिए यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि पुलिस उनकी रक्षक है या भक्षक। ऐसे अविश्वास तथा अनास्था के वातावरण को बदलने के लिए योजनाबद्ध प्रयास करने आवश्यक हैं। पुलिस प्रशासन में विशिष्टीकरण भी बहुत जरूरी है।

गृह विभाग कई ऐसे दायित्वों के बोझ तले दबा है जिसका सीधा सम्बन्ध इस विभाग से नहीं है। उन्हें गृह विभाग से अलग कर देना बेहतर होगा, तभी यह विभाग अपनी सम्पूर्ण चेतना, क्षमता तथा ऊर्जा को अपने मूलभूत कर्तव्यों के साथ सम्पादित करने में लगा सकेगा।

विभाग की सक्षमता को बढ़ाने के लिए अधिक वैज्ञानिक पद्धतियों के उपयोग की आवश्यकता है। इसके लिए समय-समय पर नवीन शोध होते रहने चाहिए।

नीति निर्माण के स्तर पर सम्बन्धित विभागों के विशेषज्ञों की राय लेना सार्थक होगा तभी कुछ व्यावहारिक सुझाव तथा कठिनाइयों से उबरने के वास्तविक रास्ते ज्ञात हो सकेंगे।

संक्षेप में गृह विभाग को अपनी दक्षता एवं निष्पत्ति सुधार हेतु निम्नलिखित उपायों को प्राथमिकता देनी चाहिए :

- उभरती चुनौतियों को देखते हुए योग्य पुलिस अधिकारियों एवं कर्मचारियों की संख्या में आवश्यक वृद्धि।
- कुशलता-वृद्धि हेतु आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबन्ध।
- दृष्टिकोण परिवर्तन एवं पुलिस कर्मियों में मानव अधिकारों के प्रति अधिक संवेदनशीलता हेतु आवश्यक प्रशिक्षण।
- साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने एवं पारस्परिक सहिष्णुता के वातावरण को बनाने हेतु सामाजिक, सांस्कृतिक एवं स्थानीय संस्थाओं व समूहों के साथ तालमेल रखना।
- सीमा सुरक्षा हेतु कड़े प्रबन्ध करना तथा इस सम्बन्ध में केन्द्र सरकार की संस्थाओं से पूर्ण सहयोग अर्जित करना।
- घुसपैठियों, अपराधी तत्वों तथा राष्ट्र-विरोधी शक्तियों को विवेक एव बल से नियंत्रित करना।
- कारागृहों को मानवीय बनाना तथा पूर्व-कैदियों को नवजीवन आरम्भ करने हेतु सुविधाएँ तथा प्रोत्साहन प्रदान करना।
- विभिन्न विकास विभागों के साथ समन्वय स्थापित कर, राज्य के बहुआयामी विकास की प्रक्रिया में योगदान करना।

आवश्यकता है कि गृह विभाग दूरदर्शितापूर्ण परिवर्तन एवं सांरचनिक क्षमता का प्रतीक बने।

□□□

अध्याय 8

वित्त विभाग

भूमिका एवं संरचना

राजस्थान सरकार के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली विभागों में वित्त विभाग का स्थान सम्भवतया सर्वोपरि है। राज्य की कोई भी ऐसी नियामकीय अथवा वैकासिक प्रक्रिया एवं गतिविधि नहीं हैं जिसके लिए वित्तीय साधनों की आवश्यकता न हो। इन साधनों को सुलभ कराने, किये गये व्यय पर नियंत्रण रखने तथा लेखांकन एवं वैधानिक अंकेक्षण को नियमितता प्रदान करने का उत्तरदायित्व वित्त विभाग का ही है। समष्टि स्तर पर सम्पूर्ण राज्य की वित्तीय स्थिति को संभालना एवं संसाधनों एवं व्ययों के बीच संतुलन स्थापित करने की जिम्मेदारी भी इसी विभाग की है।

वित्त विभाग की भूमिका

राजस्थान सरकार के वित्त विभाग के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं:

1. बजट प्रशासन

वित्त विभाग राजस्थान सरकार का बजट निर्माण करता है, उसकी स्वीकृति मंत्रीमंडल से प्राप्त कर उसे विधानसभा में प्रस्तुत करने हेतु अन्तिम रूप प्रदान करता है। विधानसभा में बजट वित्त मंत्री प्रस्तुत करता है तथा वहाँ बहस होने व पारित होने के पश्चात् वित्त विभाग विभिन्न प्रशासनिक विभागों को उनसे सम्बन्धित बजट-अंश सूचित करता है। बजट-निष्पादन का उत्तरदायित्व प्रशासनिक विभागों का है किन्तु इस निष्पादन पर निरन्तर निगरानी रखने की जिम्मेदारी वित्त विभाग की ही है।

बजट प्रशासन से सम्बन्धित मुख्य चरण इस प्रकार हैं:

1. **पहला चरण–** अगस्त मास के अंतिम सप्ताह तक वित्त विभाग विभिन्न प्रशासनिक विभागों को बजट के प्रस्ताव भेजने हेतु प्रपत्र भेजता है।

2. **दूसरा चरण–** अक्टूबर के अंतिम सप्ताह तक विभिन्न प्रशासनिक विभाग अगले वित्तीय वर्ष के लिए आय एवं व्यय के अनुमान वित्त विभाग को भेज देते हैं।

3. **तीसरा चरण–** विभिन्न विभागों से प्राप्त बजट अनुमानों का संकलन वित्त विभाग में किया जाता है तथा नवम्बर एवं जनवरी के बीच बजट 'निर्णायक' समितियों की बैठकें आयोजित की जाती हैं। ये बैठकें राजस्व एवं व्यय दोनों मदों के सम्बन्ध में की जाती हैं। इन बैठकों में सम्बन्धित विभागों तथा वित्त विभाग के अधिकारी भाग लेते हैं। सामान्यतया व्यय प्रस्ताव अधिक महत्त्वाकांक्षी होते हैं, अतः इन बैठकों में उनकी काट-छांट किया जाना स्वाभाविक ही है।

4. **चौथा चरण**– फरवरी में वित्त विभाग में सम्पूर्ण अनुमानों का समेंकन किया जाता है तथा उन्हें अंतिम रूप दिया जाता है।

5. **पाँचवाँ चरण**– फरवरी में ही प्रमुख वित्त सचिव का बजट प्रस्तावों से सम्बन्धित "मीमो" मंत्रीमंडल को भेजा जाता है। संक्षिप्त विचार-विमर्श के पश्चात् मंत्रीमंडल इसे स्वीकार कर लेता है।

6. **छठा चरण**– वित्त मंत्री द्वारा अगले वित्तीय वर्ष के लिए बजट प्रस्ताव राज्य विधान सभा में मार्च के आरम्भ में प्रस्तुत किये जाते हैं।

7. **सातवां चरण**– सामान्यतया मार्च-अप्रैल में ही बजट पर बहस होने के पश्चात् विधानसभा, यदि आवश्यक हुआ तो उपयुक्त संशोधनों के साथ उसे पारित कर देती है।

8. **आठवां चरण**– अप्रैल के आरम्भ में ही पारित बजट के सम्बन्धित अंश तथा स्वीकृतियाँ विभिन्न प्रशासनिक विभागों को भेज दी जाती हैं।

9. **नवाँ चरण**– विभाग अपने स्तर पर स्वीकृतियाँ जारी कर बजट का निष्पादन आरम्भ कर देते हैं। वित्त विभाग समय-समय पर इस निष्पादन पर निगरानी रखता रहता है।

2. व्यय-नियंत्रण

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, वित्त विभाग बजट-निर्माण एवं बजट-निष्पादन के दौरान विभिन्न प्रशासनिक विभागों के व्यय पर नियंत्रण रखता है। विशिष्ट सचिव (व्यय) एवं चार वित्त सचिव (व्यय) इस क्षेत्र में निरन्तर विमर्श एवं निगरानी रखते हैं। बजट निर्णायक समितियों में हुए निर्णय एवं पारित बजट के अनुसार सभी विभाग पूर्ण वर्ष के दौरान स्वीकृति के अनुसार व्यय करते हैं। हाल ही के वर्षों में व्यय की स्वीकृति के सम्बन्ध में शक्तियों का प्रचुर प्रत्यायोजन (विकेन्द्रीकरण) हुआ है। "बजट मैन्युअल" के अन्तर्गत विभागाध्यक्षों को वित्तीय समंजन हेतु भी काफी शक्तियाँ प्रदत्त की गई हैं।

3. मार्गोपाय (वेज़ एण्ड मीन्स)

राजस्थान सरकार के दिन-प्रतिदिन का वित्तीय प्रबन्धन एक जटिल प्रक्रिया है। भारतीय रिजर्व बैंक ने राजस्थान सरकार को दिन-प्रतिदिन के वित्तीय प्रशासन को चलाने के लिए 100.37 करोड़ रूपया पेशगी दे रखा है। वित्त विभाग का दायित्व है कि वह रिजर्व बैंक के नागपुर कार्यालय को रोज सूचित करे कि उसके आय व व्यय का संतुलन क्या रहा? यदि 100.37 करोड़ रुपये से अधिक व्यय हो जाता है तो राजस्थान सरकार को रिजर्व बैंक से "ओवरड्राफ्ट" लेना पड़ता है जिसके ब्याज का भार सरकार पर पड़ता है। प्रमुख वित्त सचिव, विभाग के बजट निदेशक एवं उसके नीचे कार्यरत वरिष्ठ लेखाधिकारी प्रति कार्य-दिवस वित्तीय संतुलन को बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं।

4. राजस्व प्रशासन

व्यय को उपलब्ध राजस्व की सीमा में रखने की समस्या से तो वित्त विभाग जूझता ही रहता है, किन्तु उसके समक्ष राज्य के वित्तीय साधनों की अभिवृद्धि भी एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। राज्य के राजस्व के दो प्रकार के स्रोत हैं– एक तो करों से सम्बन्धित तथा दूसरे अन्य स्रोत। करों में वाणिज्य कर, आबकारी, रजिस्ट्रेशन एवं स्टाम्प तथा भूमि तथा भवन कर हैं तथा अन्य राजस्व स्रोतों में भू-

राजस्व, सिंचाई-शुल्क तथा जल विभाग, राजस्थान राज्य विद्युत मंडल एवं राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम आदि लोक उपक्रमों से प्राप्त आय का अंश शामिल है। पिछले कुछ वर्षों में गैर-कर राजस्व स्रोत काफी सीमित रहे हैं, अतः अधिक बड़ा योगदान कर-स्रोत का ही है।

वित्त विभाग स्रोतों से प्राप्त राजस्व पर दैनिक निगरानी रखता है। हाल ही में बजट निर्णायक समितियों से राजस्व स्रोतों पर भी विमर्श होने लगा है। कई दशकों तक यह समितियाँ केवल व्यय के प्रावधानों पर ही विचार करती थीं।

5. सेवा एवं वित्त नियम

राजस्थान सेवा नियम एवं सामान्य वित्तीय एवं लेखांकन नियमों का निरूपण, संशोधन, कार्यान्वयन एवं उनकी व्याख्या पर आधारित निर्णय देने का दायित्व वित्त विभाग का ही है। इस हेतु प्रमुख वित्त सचिव की सहायतार्थ दो उपसचिव हैं, एक सेवा नियमों हेतु तथा दूसरा वित्त नियमों हेतु। वित्त विभाग के पास शासकीय विभागों एवं संस्थाओं के इन नियमों की अनुपालना, उनसे छूट एवं उनकी व्याख्या के सम्बन्ध में सैंकड़ों संदर्भ निरन्तर आते रहते हैं। इन सन्दर्भों के सम्बन्ध में अपना मत देना वित्त विभाग का ही दायित्व है।

6. केन्द्रीय भण्डार एवं क्रय संगठन (CSPO)

जिन वस्तुओं एवं सेवाओं की आवश्यकता राज्य सरकार के अधिकांश विभागों को पूरे वर्ष रहती है, उनके क्रय हेतु बार-बार टेन्डर मंगाने में लगने वाले समय एवं लागत को कम करने हेतु वित्त विभाग इन वस्तुओं व सेवाओं के लिए प्रमुख उत्पादकों एवं अभिकर्ताओं, विक्रेताओं आदि से दरें 'रेट-कांट्रेक्ट'' पर नियत कर लेता है। इन दरों पर सभी विभाग बिना टैण्डर बुलाये इन वस्तुओं के क्रय एवं सेवाओं को प्राप्त कर सकते हैं। अन्य वस्तुओं, जो किन्हीं विशिष्ट विभागों की ही मांग है, का भी 'रेट-कान्ट्रेक्ट'' वे विभाग नियमानुसार अपने स्तर पर कर सकते हैं।

7. लोक-निवेश

राजस्थान सरकार कई लोक उपक्रमों की पूँजी की अंशधारी है। अंशधारी बनना एवं संस्थाओं से प्राप्त होने वाले भुगतान आदि के सम्बन्ध में निर्णय वित्त विभाग ही करता है। इस बारे में किये गये निर्णय विवेकपूर्ण होने चाहिए जिससे सरकार को अपने वित्तीय निवेश पर उचित लाभ मिल सके।

8. अंकेक्षण एवं निरीक्षण

पूरे प्रदेश में फैले स्थानीय (नगरीय) निकायों, विश्वविद्यालयों एवं राजस्थान आवासन मंडल आदि का वैधानिक अंकेक्षण करना वित्त विभाग का उत्तरदायित्व है। स्थानीय निधि अंकेक्षण विभाग जो वित्त विभाग के अधीन कार्य करता है, इस हेतु पूरे वर्ष कार्यरत रहता है। इसी प्रकार विभिन्न प्रशासनिक विभागों की वित्तीय प्रक्रिया का निरीक्षण भी वित्त विभाग के निर्देशन में निरीक्षण निदेशालय करता है।

वित्त विभाग का यह भी दायित्व है कि वह विधान सभा की जन लेखा समिति एवं सार्वजनिक उपक्रम समिति से सम्बन्धित कार्य का आवश्यक प्रबोधन (मोनिटरिंग) करे। इन समितियों की सिफारिशें लागू करना तथा उनकी आपत्तियों का उत्तर एवं निराकरण वित्त विभाग के ही कार्य-क्षेत्र में आते हैं।

बजट प्रक्रिया के चरण

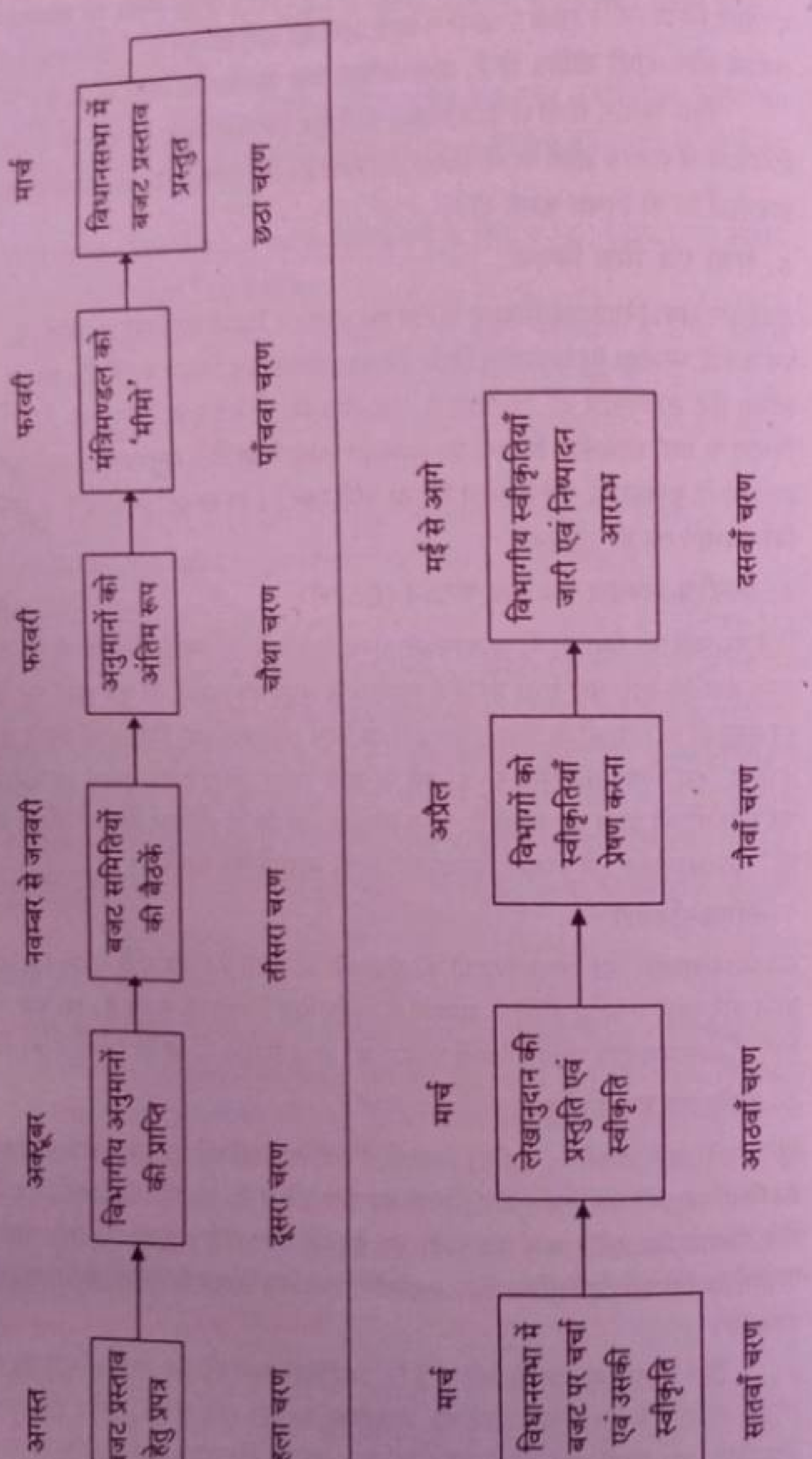

9. कोषालय-नियंत्रण

राजस्थान के 38 कोषालय, 181 उप-कोषालय तथा 10 पैंशन उप-कोषालयों पर तकनीकी एवं वित्तीय नियंत्रण वित्त विभाग द्वारा ही रखा जाता है। इस हेतु कोषालय एवं लेखा निदेशालय की भूमिका केन्द्रीय है। इस निदेशालय के अधिकारी कोषालयों एवं उप-कोषालयों से निरन्तर सम्पर्क रखते हैं, उन्हें दिशा-निर्देश देते हैं तथा उनका निरीक्षण भी समय-समय पर करते हैं। वित्त विभाग का भी कोषालयों से "मार्गोपाय" (वेज़ एण्ड मीन्स) के प्रबोधन हेतु निरन्तर सम्पर्क रहता है।

10. राजस्थान लेखा सेवा पर नियंत्रण

राजस्थान में लगभग 500 सदस्यों वाली राजस्थान लेखा सेवा राज्य की तीन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सेवाओं में से एक है। अन्य दो सेवाएँ राजस्थान प्रशासनिक सेवा एवं राजस्थान पुलिस सेवा है। उल्लेखनीय है कि राज्य-स्तरीय लेखा सेवा का निर्माण भारत में सबसे पहले राजस्थान में ही हुआ था। आज इस सेवा के अधिकारी प्रत्येक सरकारी एवं अर्द्ध-सरकारी संस्था में वित्तीय परामर्श एवं नियंत्रण की भूमिका निभा रहे हैं। इस सेवा के सदस्यों की नियुक्ति, स्थापन, पदोन्नति, सेवा की शर्तें, अनुशासन आदि से सम्बन्धित सभी मामले वित्त विभाग के क्षेत्राधिकार में ही आते हैं। विशिष्ट शासन सचिव (राजस्व) तथा प्रमुख वित्त सचिव के निर्देशन में इस सेवा का प्रबन्धन किया जाता है।

राज्य अधीनस्थ लेखा सेवा जिसमें लगभग साढ़े सात हजार सदस्य हैं, पर नियंत्रण कोषालय एवं लेखा निदेशालय द्वारा किया जाता है।

11. विविध कार्य

वित्त विभाग उपरोक्त मुख्य कार्यों के अतिरिक्त कई अन्य विषयों से सम्बन्धित कार्य सम्पन्न करता है, जैसे– पेंशनधारियों का कल्याण, लाटरी-नियंत्रण, अल्प बचत प्रशासन, राज्य कर्मचारियों के वेतन एवं भत्तों में संशोधन, राज्य सरकार की संचित निधि एवं आकस्मिक निधि पर नियंत्रण एवं केन्द्रीय सरकार के वित्त मंत्रालय, योजना आयोग, वित्त आयोग, विदेशी अभिकरण के राजकोष, महालेखापाल से समन्वय स्थापित करना आदि। ये सभी कार्य अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं जो राज्य की वित्तीय अवस्था एवं वित्तीय प्रशासनिक तंत्र को प्रभावित करते हैं।

संगठन

राजस्थान के वित्त विभाग का राजनीतिक प्रमुख वित्त मंत्री होता है जो कैबिनेट स्तर का एक वरिष्ठ मंत्री होता है। राज्य सरकार में इस पद का प्रचुर महत्त्व है, तथा इसी कारण से राजनीतिक दृष्टि से भी वित्त मंत्री को एक सशक्त मंत्री माना जाता है। हाल ही के वर्षों में ऐसा भी देखा गया है कि मुख्यमंत्री ने वित्त मंत्री का उत्तरदायित्व स्वयं संभाला है, जैसे कि श्री भैरोंसिंह शेखावत अपनी ही सरकार में लगभग तीन वर्ष तक वित्त मंत्री रहे। तत्पश्चात् उपमुख्यमंत्री श्री हरिशंकर भाभड़ा वित्त मंत्री बने। श्री भाभड़ा वित्त के साथ-साथ उद्योग मंत्री भी रहे।

राज्य के वित्तीय संसाधनों की अभिवृद्धि, वित्तीय व्यय पर नियंत्रण, बजट निरूपण एवं प्रशासन तथा अन्य वित्तीय मामलों में लगभग अंतिम निर्णय वित्त मंत्री का ही होता है, यद्यपि यह ऐसा विषय है जिसमें मुख्यमंत्री से विमर्श एवं उसकी कई विषयों पर स्वीकृति प्राप्त करना स्वाभाविक

है। चूँकि बजट विधायिका द्वारा पारित होता है, अतः विधायिका के प्रति राज्य सरकार का उत्तरदायित्व स्पष्ट रूप से बना रहता है। अभिप्राय यह है कि वित्त मंत्री को कई शासकीय सीमाओं में कार्य करना पड़ता है, तथापि उसके अधिकार यथेष्ट हैं।

वित्त मंत्री की सहायता के लिए कई बार एक वित्त राज्य मंत्री की नियुक्ति होती है, किन्तु यह कोई नियमित प्रथा नहीं है। 1993-98 के बीच भैरोंसिंह सरकार में लॉटरी एवं अल्प-बचत के लिए एक पृथक् राज्यमंत्री कार्य कर रहे थे, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे वित्त मंत्री के सीधे अधीन थे। तथापि दोनों पदों में समन्वय की आवश्यकता है, तथा यह तालमेल एक कैबिनेट व्यवस्था में आवश्यक भी है।

प्रशासनिक स्तर

वित्त विभाग एक विशाल विभाग है। इसकी शक्तियाँ तो विस्तृत हैं ही, इसका संगठन भी विस्तृत है। देखा जाये तो राजस्थान सरकार के प्रत्येक विभाग व निगम में वित्त विभाग के प्रतिनिधि कार्यरत हैं। निस्संदेह इस का सम्पूर्ण सरकार में जाल बिछा हुआ है।

वित्त विभाग की मुख्य शक्ति सरकारी विभागों व संस्थाओं के व्यय प्रस्तावों को ''हाँ'' अथवा ''ना'' करने की है। यह नहीं कि ऐसा बिना नियत आधार के किया जाता हो, तथापि विभाग की शक्तियाँ प्रभावशाली हैं। इसके स्वविवेक उपयोग के कई अवसर होते हैं। इन्हीं कारणों से वित्त विभाग के प्रशासनिक प्रमुख का एक विशिष्ट स्थान है। अतः राजस्थान सरकार के सर्वाधिक प्रभावशाली एवं शक्तिशाली अधिकारियों में वित्त सचिव भी है। अन्य अधिकारियों में मुख्य सचिव, गृह सचिव, मुख्यमंत्री के सचिव एवं उद्योग प्रमुख सचिव ही इस उच्चतम सशक्त श्रेणी में आते हैं। वैसे एक अधिकारी की शक्ति एवं प्रभाव काफी कुछ इस बात पर भी निर्भर करता हैं कि उसे राजनीतिक नेतृत्व का कितना विश्वास एवं सम्बल प्राप्त है।

राजस्थान में श्री मोहन मुखर्जी एक ऐसे वित्त सचिव हुए हैं जो एक संक्षिप्त अंतराल के साथ दस वर्ष तक इस पद पर स्थापित रहे। उन्होंने वित्त विभाग में आमूलचूल संरचनात्मक एवं प्रक्रियात्मक सुधार लागू किये। कुछ ऐसे भी वित्त सचिव हुए हैं जो वित्तीय अनुशासन में अपनी कठोरता के लिए प्रसिद्ध थे, जैसे श्री मंगल बिहारी। अलबत्ता, यह निर्विवाद तथ्य है कि वित्त सचिव के व्यक्तिगत, दृष्टिकोण एवं कुशाग्रता का प्रभाव सम्पूर्ण राज्य प्रशासन पर पड़ता है।

यदि वित्त सचिव, प्रमुख सचिव की वेतन शृंखला में हो तो उसे प्रमुख वित्त सचिव के नाम से जाना जाता है। लगभग छः वर्ष (1993-99) डॉ. आदर्श किशोर ने वित्त सचिव तथा तत्पश्चात् प्रमुख वित्त सचिव के रूप में अपनी गत्यात्मकता का प्रभाव वित्त विभाग के संचालन पर छोड़ा है। मई, 1999 में श्री टी. श्रीनिवासन ने वित्त सचिव का कार्यभार सम्भाला। अक्टूबर, 2000 में श्री अनिल वैश्य प्रमुख वित्त सचिव के रूप में नियुक्त किये गये। तत्पश्चात् श्री एम.डी. कोरानी ने अतिरिक्त मुख्य सचिव, वित्त के रूप में कार्य किया। वसुन्धरा राजे सरकार में श्री सत्यप्रिय गुप्ता प्रमुख वित्त सचिव बने।

लोक प्रशासन के विद्यार्थियों ने एक मुख्य कार्यपालक के कार्यों के बारे में पढ़ा ही है। सामान्यतया उस के कार्यों को लूथर ग्यूलिक के शब्दों में, ''पोस्डकार्ब'' (POSDCORB) में समाहित किया जाता है। वित्त विभाग के प्रशासनिक प्रमुख के रूप में प्रमुख वित्त सचिव भी वह

सभी कार्य सम्पन्न करता है जो एक विभाग का प्रमुख प्रशासनिक प्रमुख करता है। अतः पिछले पृष्ठों में वित्त विभाग के जिन कार्यों का उल्लेख किया गया है, वे प्रमुख वित्त सचिव के निर्देशन में सम्पादित किये जाते हैं।

वसुन्धरा राजे सरकार ने वित्त विभाग का पुनर्गठन बड़े स्तर पर किया। अब प्रमुख वित्त सचिव के अधीन तीन वित्त सचिव हैं। तीनों ही भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी हैं। एक वित्त सचिव (व्यय) है, दूसरा वित्त सचिव (राजस्व) है तथा तीसरा वित्त सचिव (मार्गोपाय) हैं। तीनों अपने-अपने विषयों में पर्याप्त स्वायत्तता रखते हैं किन्तु उच्च नीति स्तरीय मामलों पर निर्णय प्रमुख वित्त सचिव लेता है जो आवश्यकता पड़ने पर नीतिगत प्रश्नों एवं अति-महत्त्वपूर्ण निर्णयों के मामले वित्त मंत्री के आर्देशार्थ भेजता है।

इन तीन वरिष्ठ अधिकारियों के नीचे विभाग का एक बजट अधिकारी है जो भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी है।

इन उच्च स्तरीय चार अधिकारियों के नीचे 11 उपसचिव हैं, जो इस प्रकार हैं:

- चार – उप सचिव, व्यय (भारतीय प्रशासनिक सेवा के दो अधिकारी तथा राजस्थान लेखा सेवा के दो अधिकारी, कुल 4)
- एक – उप सचिव, बजट (राजस्थान लेखा सेवा का अधिकारी)
- एक – उप सचिव, सामान्य वित्त एवं लेखा नियम तथा कोष (राजस्थान लेखा सेवा का अधिकारी)
- एक – उप सचिव, नियम (राजस्थान लेखा सेवा का अधिकारी)
- एक – उप सचिव, कर (भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी)
- एक – उप सचिव, आर्थिक मामले (भारतीय लेखा सेवा का अधिकारी)
- एक – उप सचिव, अंकेक्षण (भारतीय लेखा सेवा का अधिकारी)
- एक – उप सचिव, उत्पादकर एवं राजस्व (भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी)

स्पष्ट है कि उप सचिव स्तर के 11 अधिकारियों में 4 अधिकारी भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी हैं तथा 7 राजस्थान लेखा सेवा के अधिकारी हैं। उल्लेखनीय है कि परियोजना मोनिटरिंग इकाई का निदेशक जो राजस्थान सांख्यिकी सेवा का अधिकारी है, यद्यपि वह आयोजना सचिव के अधीन है, किन्तु प्रमुख वित्त सचिव को भी रिपोर्ट करता है।

जैसाकि संगठन चार्ट से स्पष्ट है, प्रमुख वित्त सचिव विभाग-प्रमुख के रूप में कार्य करता है तथा अन्य सभी अधिकारी उसके निर्देशन में कार्य करते हैं। वित्त सचिव व्यय के अधीन चार उपसचिव हैं जो विभिन्न विभागों से सम्बन्धित मामले निपटाते हैं। वित्त सचिव राजस्व के अधीन तीन उपसचिव है, यद्यपि उपसचिव वित्त एवं सामान्य वित्त नियम भी उन्हें आवश्यकतानुसार रिपोर्ट करते हैं। वित्त सचिव मार्गोपाय के अधीन तीन उपसचिव हैं। बजट निदेशक भी भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी होता है जिसके नीचे एक उपसचिव, बजट कार्य करता है।

वित्त विभाग में उप सचिव स्तर के नीचे चार सहायक सचिव, एक विशेषाधिकारी अनुसंधान, दो वरिष्ठ लेखाधिकारी, चौदह सहायक लेखाधिकारी, दो अनुसंधान अधिकारी, एक उप-वैधानिक सलाहकार तथा पाँच अनुभाग अधिकारी हैं।

वित्त विभाग का संगठन

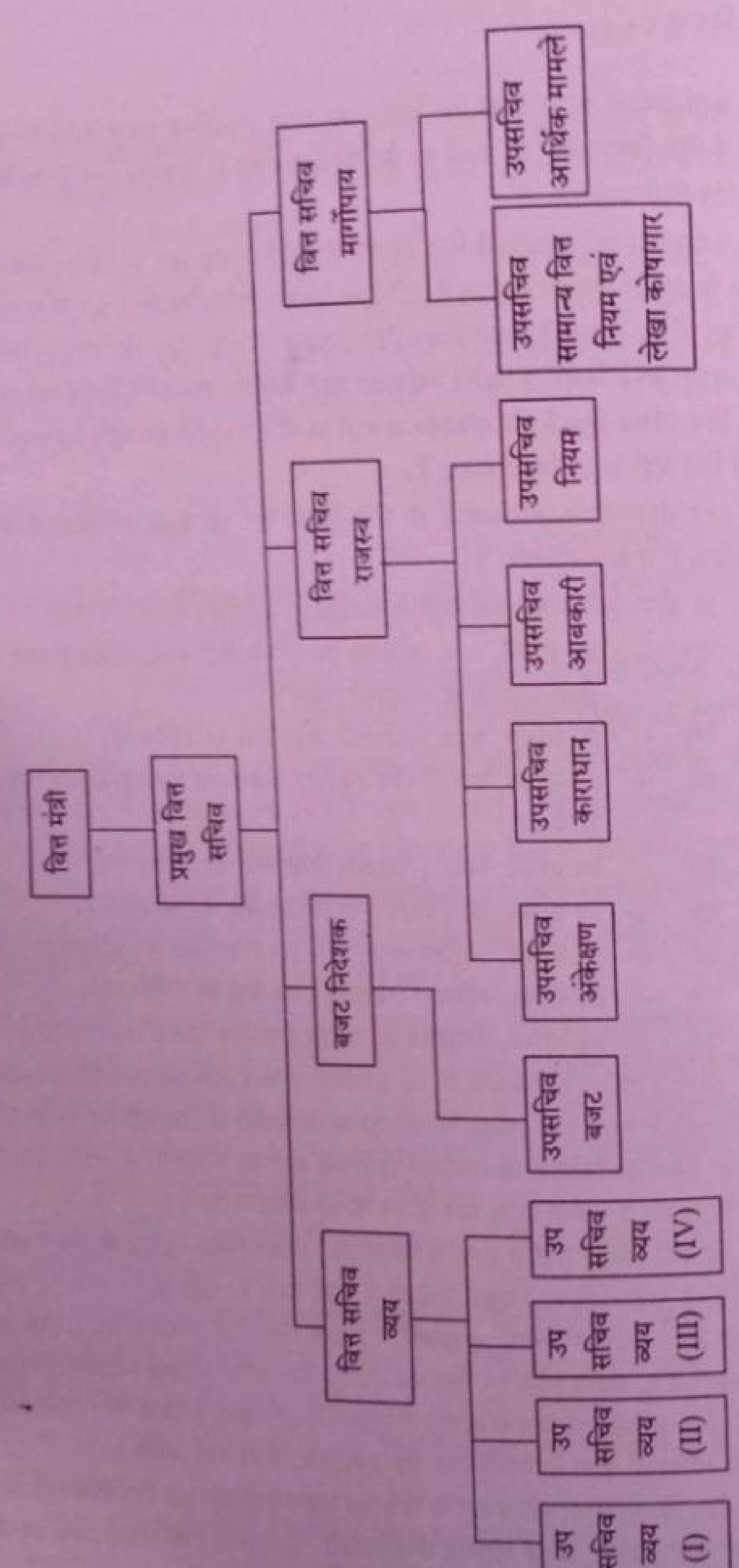

वित्त विभाग आंतरिक प्रशासन की दृष्टि से कई समूहों (ग्रुप) में बंटा हुआ है। ये समूह निम्नलिखित हैं:

1. व्यय-I
2. व्यय-II
3. व्यय-III
4. व्यय-IV एवं समन्वय
5. बजट
6. नियम
7. मार्गोपाय
8. आबकारी एवं अन्य राजस्व
9. अंकेक्षण
10. कराधान
11. सामान्य वित्तीय एवं लेखा नियम तथा कोषालय
12. विधि परामर्श

वित्त विभाग के अधीनस्थ संगठन

राज्य की वित्तीय प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु वित्त विभाग का एक विस्तृत सांगठनिक परिवार है जिसके 11 अन्य संगठन सदस्य हैं। ये सभी संगठन वित्त विभाग के नीति-निर्देशों एवं प्रशासनिक निगरानी में कार्य करते हैं, यद्यपि इनके दिन-प्रतिदिन के प्रशासन में वित्त विभाग का हस्तक्षेप नहीं है। ये संगठन अग्रलिखित हैं:

1. कोषालय एवं लेखा निदेशालय

राज्य के विभिन्न जिलों में स्थित कोषालयों पर तकनीकी एवं वित्तीय नियंत्रण, अधीनस्थ लेखा सेवा पर प्रशासनिक नियंत्रण, कोषालय मैन्यूअल में संशोधन हेतु प्रस्ताव सरकार को देना तथा समस्त कोषालयों में प्राप्त मार्गोपाय (वेज़ एण्ड मीन्स) सम्बन्धित आंकड़ों को नित्य वित्त विभाग को देने सम्बन्धित कार्य यह निदेशालय सम्पन्न करता है। राजस्थान में कुल 38 कोषालय व 181 उप-कोषालय हैं (जिनमें 93 स्वतंत्र उप-कोषालय हैं)। इनके अतिरिक्त राज्य में 10 पैंशन उप-कोषालय हैं। राजस्थान अधीनस्थ लेखा सेवा में संशोधित काडर-बल 7400 का निर्धारित किया जाता है।

2. स्थानीय कोष अंकेक्षण

राजस्थान में स्थित 11,106 स्थानीय निकायों के लेखों के निरन्तर अंकेक्षण का उत्तरदायित्व इस विभाग का है। विश्वविद्यालयों एवं राजस्थान आवासन मंडल के लेखों का अंकेक्षण भी इसी निदेशालय के अधीन है।

3. पेंशन तथा पेंशनर कल्याण निदेशालय

भारत में राजस्थान पहला राज्य है जहाँ सेवानिवृत कर्मचारियों के पेंशन के मामलों को त्वरित गति से निपटाने हेतु पृथक् विभाग बनाया गया है। इस निदेशालय के पाँच क्षेत्रीय कार्यालय हैं जो जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बीकानेर एवं अजमेर में स्थित हैं।

4. निरीक्षण निदेशालय

1995 में ही इस विभाग की स्थापना की गई है। यह विभाग विभागाध्यक्षों के कार्यालय, उनके स्टोर तथा अन्य सम्बन्धित विषयों का निरीक्षण करता है। वित्त विभाग द्वारा निर्देशित किसी विशेष अंकेक्षण को भी यह सम्पन्न करता है।

5. अल्प-बचत विभाग

राष्ट्रीय बचत योजना तथा अन्य योजनाओं को प्रोत्साहन देने का कार्य 1987 से अल्प बचत विभाग द्वारा सम्पन्न किया जाता है। चिट फंड अधिनियम के अंतर्गत नियंत्रण लागू करने का कार्य भी इसी विभाग का है। उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय बचत योजना से प्राप्त आय का 75 प्रतिशत भाग केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकार को दीर्घकालीन ऋण के रूप में दे दिया जाता है।

6. लाटरी विभाग

लाटरी विभाग का एक समय कार्य काफी विस्तृत था, किन्तु अब जबकि राज्य में लाटरी पर प्रतिबंध है, इसका कार्य लाटरी प्रतिबन्ध नियंत्रण एवं पिछले लेखों के समायोजन तक ही सीमित है।

7. वाणिज्य कर विभाग

यह वित्त विभाग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधीनस्थ विभाग है। बिक्री कर, मनोरंजन कर, विलासिता कर तथा विद्युत-ड्यूटी एकत्रित करने का दायित्व इसी विभाग का है। वाणिज्य कर विभाग का काडर-बल साढ़े चार हजार कर्मचारियों से भी अधिक है।

8. राज्य बीमा एवं सामान्य भविष्य निधि विभाग

अनिवार्य राज्य बीमा योजना, सामान्य भविष्य निधि योजना, सामान्य बीमा योजना, सामान्य बीमा (दुर्घटना) योजना तथा विद्यार्थी समूह बीमा (दुर्घटना) योजना के प्रशासन का दायित्व इसी विभाग का है। हाल ही में इस विभाग में विकेन्द्रीकरण एवं कंम्प्यूटरीकरण के माध्यम से कार्य-कुशलता में अत्यधिक वृद्धि हुई है।

9. नगरीय भूमि एवं भवन कर विभाग

इस विभाग का मुख्य दायित्व राजस्थान भूमि एवं भवन कर अधिनियम, 1964 तथा नगरीय भूमि (सीमा) अधिनियम, 1976 का कार्यान्वयन करना है। भूमि एवं भवन कर राजस्थान के ऐसे सभी नगरों में लगाया जाता है जहाँ कि जनसंख्या डेढ़ लाख से अधिक है। पिछले कुछ वर्षों से इस कर से मिलने वाली आय में भारी वृद्धि हुई है।

10. पंजीयन एवं स्टैम्प विभाग

अजमेर स्थित यह विभाग एक महा-निरीक्षक, पंजीयन एवं स्टैम्प के अधीन कार्य करता है। विभिन्न सम्पत्तियों पर अधिकार एवं स्वामित्व से सम्बन्धित दस्तावेजों के पंजीकरण शुल्क तथा स्टैम्प-विक्रय से प्राप्त राशि की प्राप्ति एवं लेखांकन इसी विभाग द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

11. आबकारी विभाग

उदयपुर स्थित यह विभाग मुख्यतः मद्य-उत्पादन पर लगने वाली आबकारी कर का नियमन, नियंत्रण एवं एकत्रण करता है।

उपरोक्त 11 संस्थाएँ ही वित्त विभाग की कार्यपालक उपकरण हैं। उल्लेखनीय है कि अल्प-बचत, लाटरी, वाणिज्य कर, राज्य बीमा एवं सामान्य प्राविधि कोष, नगरीय भूमि एवं भवन कर, पंजीयन एवं स्टैम्प एवं आबकारी विभाग के प्रशासनिक प्रमुख भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी हैं जबकि अन्य विभागों के प्रशासनिक प्रमुख राजस्थान लेखा सेवा की चयनित शृंखला के अधिकारी हैं। ये सभी अधिकारी सम्बन्धित उपसचिवों, विशिष्ट सचिवों के माध्यम से प्रमुख सचिव, वित्त के नियंत्रण एवं निर्देशन में कार्य करते हैं।

निष्कर्ष

राज्य की वित्तीय स्थिति इसके वित्त विभाग की कुशलता पर काफी मात्रा में निर्भर करती है। किन्तु वित्त विभाग को राज्य की वित्तीय व्यवस्था में संतुलन स्थापित करने हेतु कई दबावों, तनावों एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

करों की अभिवृद्धि का रास्ता राजनीतिक जोखिम का रास्ता है, अतः सरकार का राजनीतिक नेतृत्व इसकी अनुमति नहीं देता। सन् 1998 में चुँगी को समाप्त करने के पश्चात् भी उसकी एवज में स्थानापन्न कर लगाने का निर्णय इसी कारण लागू नहीं हो सका। यदि ऋण अधिक लिये जाते हैं तो राज्य सरकार एक ''ऋण-जाल'' में फँस सकती है। ऋण यदि पूँजीगत व्यय हेतु लिये जाए तो वह स्वीकार्य है किन्तु राजस्व व्यय हेतु ऋण लेना अर्थव्यवस्था की अतिरिक्त निर्बलता का ही परिचायक है। इन ऋणों को सीमित रखना भी वित्त विभाग के सामने चुनौती बनी रहती है।

राज्य के बजट में आदर्श संतुलन स्थापित करना तो एक विकासशील राज्य के लिए असंभव-सा ही है किन्तु घाटे की अर्थव्यवस्था एवं मुद्रास्फीति वित्त विभाग के लिए हर समय परेशानियों का कारण बनी रहतीं है। मार्गोपाय तो प्रतिदिन की ही चुनौती है।

गैर-योजनात्मक व्यय में असीम वृद्धि, पाँचवे वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर बढ़े वेतन एवं भत्ते, सरकारी विभागों में आवश्यकता से अधिक स्टाफ का होना, लोक उपक्रमों का हानि पर संचालन, प्रशासनिक शिथिलता आदि कारणों से वित्त विभाग का कार्य दूभर हो जाता है।

शून्य-आधारित बजट के लागू करने के पश्चात् भी सरकारी पदों एवं व्यय में कमी नहीं आ पाई है। निष्पत्ति-बजट को अधिक कुशाग्रता से उन विभागों में लागू करने की आवश्यकता है जहाँ की निष्पत्ति का मूल्यांकन परिमाण व दृष्टि से संभव है।

प्रशासनिक दृष्टि से भी वित्त विभाग में दक्षता का स्तर बढ़ाया जा सकता है। कोषालय एवं उप-कोषालयों की कुशलता की अभिवृद्धि की जा सकती है। विभिन्न विभागों के वित्तीय प्रशासन पर निरीक्षण एवं वैधानिक अंकेक्षण से अधिक कसावट लाई जा सकती है। वाणिज्य कर, भूमि एवं भवन कर एवं आबकारी प्रशासन में नवाचार के माध्यम से उनकी उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है तथा प्रशासन में अधिक मितव्ययता को बढ़ाया जा सकता है। निरन्तर प्रशिक्षण के माध्यम से वित्त विभाग से सम्बन्धित सभी संस्थाओं के कर्मचारियों की कुशलता को बढ़ाया जा सकता है। साथ ही इन कार्मिकों के दृष्टिकोण को अधिक सकारात्मक बनाये जाने के प्रयत्न किये जाने चाहिए।

□□□